श्री राम लाल प्रभु जी

परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का

चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण

द्वितीय खण्ड (आश्रम काण्ड)

लेखक :-

चमन लाल कपूर 'सेवक'

प्रकाशक :-

योग साधन आश्रम, 3 – माडल टाऊन,

होश्यारपुर (पंजाब)

श्री राम लाल प्रभु जी

परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का

चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण

द्वितीय खण्ड (आश्रम काण्ड)

लेखक :-

चमन लाल कपूर 'सेवक'

प्रकाशक :-

योग साधन आश्रम, 3 - माडल टाऊन,

होश्यारपुर (पंजाब)

द्वितीयबार 1000

योगेश्वर राम लालाब्द 112

विक्रम संबत 2057

ईस्वी सन 2000

भेंट :- रु. 250/-

योग वन्दना

योग – विद्यां नमाम्यहम्

सौंदर्यलहरीरूपां, तापत्रयविनाशनीम् ।
तेजस्विनीं तपोरूपां, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।१।।
संस्थापकां समत्वं तां, शक्तिसर्जनकारिणीम् ।
चित्तवृत्तिनिरोधाय, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।२।।
अर्धनारीश्वरस्येमां, चैतन्यसार संभवाम् ।
पूर्णरूपकुण्डलिनीं, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।३।।

●●●●

※ योग तुझे नमस्कार ※

सुन्दर करे जो देह को, करे दुखों से पार ।
तेज रूप तप रूप जो, योग तुझे नमस्कार ।।१।।
करे समत्व दान जो, शक्ति सिरजनहार ।
चित्तवृत्ति निरोधहित, योग तुझे नमस्कार ।।२।।
आदिनाथ से ऊपजा, चेतनता का सार ।
जागृत कुण्डली जो करे, योग तुझे नमस्कार ।।३।।
राम लाल जिस का किया, कलियुग में उद्धार ।
मुलखराज के "सेवक", का तुझे नमस्कार ।।४।।

चमन लाल कपूर "सेवक"

समर्पण

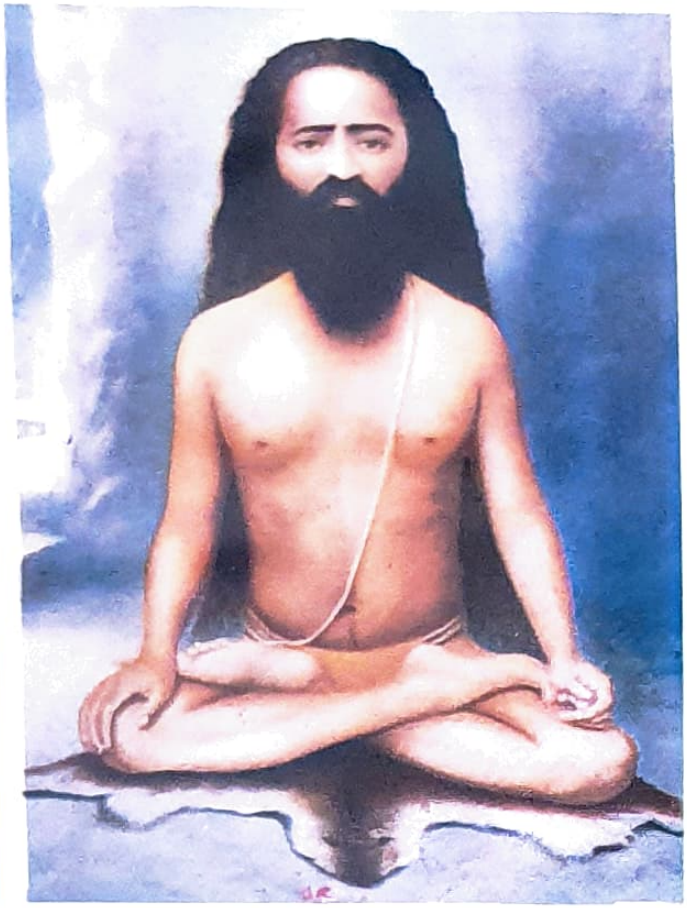

श्री 1008 योगेश्वर
प्रभु राम लाल जी महाराज

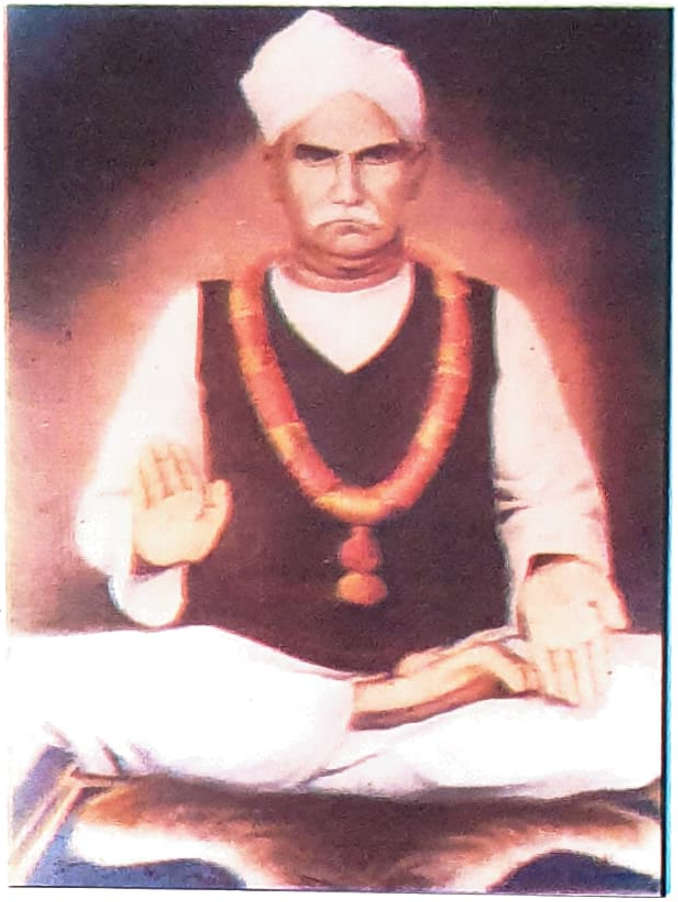

श्री 108 योगेश्वर
स्वामी मुलखराज जी महाराज

समर्पित उनके चरणों मे,
जिनकी है यह जीवन गाथा।
राम-मुलख भगवान की चरणी,
टेकत "सेवक चमन" है माथा ॥

❖ योग साधन आश्रम के नियम ❖

(श्री योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज द्वारा रचित)

1. आश्रम में किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती।
2. पुरूषों को पुरूष और स्त्रियों को स्त्रियां साधन सिखलाती हैं।
3. आश्रम के विद्यार्थी तीन श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं : –
   (क) जो सर्वदा आश्रम में रहकर अपने साधन को करते हुए आश्रम की यथा योग्य परिचर्य्या और अन्य भाईयों की प्रेम पूर्वक सेवा करेंगे।
   (ख) जो साधक यथा अवकाश आश्रम में रहकर स्वयं साधन सीखकर अपने देश में जाकर दूसरों को भी अपने अनुभव से लाभ पहुंचाते हुए प्रचार करेंगे।
   (ग) जो आश्रम में आकर साधनों से लाभ उठाएंगे।
4. प्रत्येक साधक को अपने सब खर्च का प्रबन्ध आप करना होगा।
5. रोगी साधक को अपने रोग निवारणार्थ कम से कम एक मास रहने का प्रबन्ध करके आना चाहिये, किन्तु जो भगवद्भक्ति मानसिक शान्ति के लिये योग के अन्तरंग साधन करना चाहते हों उनका श्री गुरू जी के ही विचार पर सदा निर्भर रहना होगा।
6. प्रत्येक साधक को अपनी दिनचर्य्या तथा रात्रिचर्य्या (टाईम टेबल) श्री गुरू जी की आज्ञानुसार नियत करनी होगी।
7. योग चिकित्सा से चिकित्सक होने वाले साधक को अपने चिकित्सा काल के अन्दर किसी भी डाक्टर वैद्य या हकीम की दवाई खाना निषिद्ध है।
8. यदि कोई साधक अन्य साधकों के किसी साधन को देखकर बिना अनुमति स्वयं उन साधनों को करेगा तो उस से लाभ हानि का जिम्मेवार वह स्वयं होगा और आश्रम के आचार्य के अनुशासन का भी भागी होगा।
9. २० वर्ष से कम आयु वाले को उसके संरक्षकों की सम्मति से प्रविष्ट किया जायेगा।
10. स्त्रियों को संबन्धियों के साथ आना चाहिये या वृद्ध स्त्री को जो संरक्षक हो उसी के साथ आना चाहिये।
11. साधकों को जो भी कोई उपासना या साधन दिया जावे उसे नित्य नियम पूर्वक करना होगा और आचार्य जी की आज्ञा के बिना अन्य कोई मनमानी नूतन उपासना धारणा नहीं करनी होगी।

●●●●

प्राक्कथन

योगेश्वर श्री १००८ प्रभु राम लाल जी महाराज और श्री सद्गुरुदेव श्री १००८ स्वामी मुलखराज जी महाराज की अहैतुकी अनुकम्पा से 'श्री योग महा दिव्य रामायण' का द्वितीय खण्ड (आश्रम काण्ड) सहृदय पाठकों के लिए दूसरी बार छपकर उनके अनुशीलनार्थ प्रस्तुत है। प्रथम संस्करण को समाप्त हुए कई वर्ष हो चुके थे। इस दौरान अन्य खण्डों का प्रकाशन होता रहा। अब तक 'श्री योग महा दिव्य रामायण' के निम्नलिखित सात खण्ड प्रकाशित हुए हैं, जो इस प्रकार से हैं:

(१) प्रथम खण्ड	–	बाल काण्ड, वन काण्ड
(२) द्वितीय खण्ड	–	आश्रम काण्ड
(३) तृतीय खण्ड	–	दिव्य काण्ड
(४) चतुर्थ खण्ड	–	उत्तर काण्ड
(५) पञ्चम खण्ड	–	विनय काण्ड
(६) षष्ठ खण्ड	–	शिक्षा काण्ड
(७) सप्तम खण्ड	–	विचार काण्ड
(८) अष्टम खण्ड	–	अनुग्रह काण्ड – अभी लिखा जा रहा है। प्रभु कृपा से संपूर्ण होने पर प्रकाशित होगा।

प्रस्तुत खण्ड (आश्रम काण्ड) में श्री रामलाल प्रभु जी की उन दिव्य लीलाओं का तथा उन द्वारा किये हुए उस योग प्रचार का वर्णन है जो उन्होंने अपने वनवास काल के उपरान्त अमृतसर में आकर जनता के कल्याण हेतु किये।

ई.सन1915 में वे हरिद्वार से अमृतसर पधारे और अपने निवास स्थान कटड़ा भाई संत सिंह में ठहर कर भक्तों को योग की शिक्षा, दीक्षा प्रदान करते रहे। फिर भक्तों के

आग्रह पर ई. सन 1920 में छेहरटा ग्राम में भूमि खरीदकर '**योग साधन आश्रम**' के नाम से आश्रम का निर्माण किया और वहीं पर रहने लगे। तत्पश्चात ऋषिकेश में आश्रम का निर्माण करवाया और उस के बाद लाहौर में । इन तीनों स्थानों पर वे स्वयं ठहर कर समय-समय पर योग का प्रचार करते रहे। बीच २ में वे काश्मीर, उत्तर प्रदेश और कांगड़ा प्रदेश के भी कई नगरों में पदार्पण करते रहे।

इस प्रस्तुत ग्रंथ में वे सभी नियम आदि भी दिये हैं जो श्री प्रभु राम लाल जी महाराज ने आश्रमों के सुचारु रूप से चलाने के लिए बनाये थे। तथा वे भी नियम हैं जिन्हें आश्रम में आने वाले साधकों को पालन करने चाहिएं।

इस ग्रंथ में श्री प्रभु जी महाराज के दिव्य उपदेशों के अन्तर्गत हठ योग और राजयोग की लगभग संपूर्ण शिक्षा है।

योग के पुनरुद्धारक श्री प्रभु राम लाल जी महाराज योग की दृढ़ नींव स्थापित कर अपने स्थान पर अपने परम शिष्य स्वामी मुलख राज जी महाराज को प्रतिष्ठित कर ई. सन् 1938 में पांच भौतिक देह का परित्याग कर दिव्य रूप में अपने श्री सदुरुदेव महाप्रभु के पास सुमेरु पर्वत पर प्रस्थान कर गये।

उसके उपरान्त जिस प्रकार हमारे सदुरुदेव श्री स्वामी मुलख राज जी महाराज आश्रमों का संचालन और योग का प्रचार करते और करवाते रहे हैं उसका वर्णन इस खण्ड के भीतर तथा अगले खण्डों में जिज्ञासु भक्त समाज को मिल सकता है। आशा है प्रभु प्रेमी इस ग्रंथ से लाभ उठायेंगे।

होश्यारपुर

21 मई, 2000

श्री सद्गुरु चरणों का 'सेवक'

चमन लाल कपूर

राजयोग विवरण

(अष्टांग योग)

राजयोग के निम्नलिखित आठ अंग हैं :

1. यम	2. नियम	3. आसन	4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार	6. धारणा	7. ध्यान	8. समाधि

1. **यम :** यम का अर्थ है रोकना। इसके पांच भेद है।
   - (क) अहिंसा – अर्थात किसी जीव को मन, वचन या कर्म से कष्ट न देना।
   - (ख) सत्य – सत्य बोलना, सत्य आचरण करना तथा मन, वाणी और कर्म में भिन्न न होना।
   - (ग) अस्तेय – अर्थात चोरी न करना। अपनी वस्तु में संतुष्ट रहना। पराई वस्तु को ग्रहण करने का विचार न रखना।
   - (घ) ब्रह्मचर्य – आत्मरूप को देखना। मन, वचन और कर्म से विषय भोग से बचना।
   - (ङ) अपरिग्रह – आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना।
2. **नियम :** नियम का अर्थ है प्रतिज्ञा। इसके पांच भेद है।
   - (क) शौच – मन, वचन और कर्म से पवित्र रहना।
   - (ख) संतोष – प्रभु कृपा से जो प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहना ।
   - (ग) तप – इन्द्रियों का दमन करना तथा भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी को सहन करना।
   - (घ) स्वाध्याय – धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना एवं मनन में लाना।
   - (ङ) ईश्वर प्रणिधान – ईश्वर में अटल विश्वास रखना।
3. **आसन :** सुख पूर्वक किसी मुद्रा में बैठकर मन को प्रभु चरणों मे एकाग्र करना। योगाभ्यास द्वारा शरीर एवं मन को स्वस्थ रखना।
4. **प्रणायाम :** प्राणों की गति को दीर्घ (लम्बा) तथा सम करने का अभ्यास करना।
5. **प्रत्याहार :** कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अन्त:करण पर पड़े संस्कारों को धोकर, पवित्र कर मन को ध्येय में लगाने योग्य बनाना।
6. **धारणा :** ध्येय के स्वरूप को हृदय में धारण करने का प्रयत्न करना।
7. **ध्यान :** ध्येय का मन में स्थिर हो जाना ध्यान कहलाता है।
8. **समाधि :** चित्तवृति का चैतन्य, दिव्य, अविनाशी प्रभु स्वरूप में विलीन रहना समाधि कहलाता है।

हठयोग विवरण

(सप्तांग योग)

हठयोग की विद्या को निम्नलिखित सात साधनों में विभक्त किया है :

1. षट् कर्म 2. आसन 3. मुद्रा 4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार 6. ध्यान 7. समाधि

1. षट् कर्म : इससे शरीर की शुद्धि होती है तथा इससे शरीर निरोग रहता है। इसमें छः कर्म आते हैं

1. नेति 2. धौति 3. नौली 4. बस्ति 5. त्राटक 6. कपाल भाति

नेति के दो भेद हैं - जल नेति तथा सूत्र नेति ।

धौति का अर्थ है धोना। इसके बारह प्रकार होते हैं :-

(क) वातसार धौति (ख) वारिसार (ग) वह्निसार (घ) वहिष्कृत धौति
(ङ) दन्त मूल धौति (च) जिह्वा मूल (छ) कर्ण रन्ध्र (ज) कपाल रन्ध्र धौति
(झ) दन्त धौति (ञ) वमन धौति (ट) वस्त्र धौति (ठ) मूल शोधन धौति

2. आसन : इस द्वारा शरीर बलवान व दृढ़ बनता है। आसन असंख्य प्रकार के हैं जैसे :

(क) जीवन तत्व के सात साधन (ख) यौवन तत्व के चार साधन (ग) शीर्ष आसन
(घ) सर्वांग आसन (ङ) पद्म आसन (च) सर्प आसन (छ) पश्चिमोत्तान आसन आदि

3. मुद्रा : इनसे मानसिक और शारीरिक स्थिरता प्राप्त होती है। मुद्रा निम्नलिखित २२ प्रकार की हैं :-

नभो मुद्रा, खेचरी मुद्रा, तडागी मुद्रा, मांडूकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, काकी मुद्रा, मातंगिनी मुद्रा, भुजंगिनी मुद्रा, विपरीतकरी मुद्रा, महामुद्रा, महाबन्ध मुद्रा, महाबेध मुद्रा, योनि मुद्रा, वज्रोनी मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, शांभवी मुद्रा, पृथिवी धारणा मुद्रा, जल धारणा मुद्रा, अग्नि धारणा मुद्रा, वायवी धारणा मुद्रा, आकाशी धारणा मुद्रा, पाशनी मुद्रा।

4. प्राणायाम : प्राणायाम से लाघवता आती है। इसके दस भेद है। जैसे : सूर्य भेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, केवली, प्लावनी, सीत्कारी, नाड़ीशुद्धि ।

5. प्रत्याहार : इससे धैर्य की प्राप्ति होती है। कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अन्त:करण पर पड़े संस्कारों को धोकर, पवित्र कर मन को ध्येय में लगाने योग्य बनाना प्रत्याहार है।

6. ध्यान : इससे आत्म साक्षात्कार होता है, मन और बुद्धि के विकार दूर होते है। चित्तवृतियों को एकाग्र कर किसी ध्येय में केन्द्रित करना ही ध्यान है। ध्यान तीन प्रकार का है - स्थूल ध्यान, ज्योति ध्यान तथा सूक्ष्म ध्यान।

7. समाधि : इस द्वारा संसार में निर्लेप रहने का सामर्थ्य और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

श्री योग महादिव्य रामायण (आश्रम काण्ड)

प्रसंग सूची

प्रसंग संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ट
१.	श्री प्रभु जी का घर में प्रवेश	२
२.	वन वेश का परित्याग	५
३.	पतित पावन योग दृष्टांत—विजना का उपाख्यान	६
४.	एक सिद्ध योगी का श्री प्रभु जी के दर्शन करने वनों से आना	१८
५.	श्री मुलखराज जी का प्रभु चरणों में अनुराग और साधु संग में रुचि	२३
६.	श्री मुलख राज का प्रभु खोज में घर से प्रस्थान	३६
७.	श्री मुलख राज का विवाह	३८
८.	जलियां वाले बाग काण्ड का श्री मुलखराज के मन पर गहरा प्रभाव	४०
९.	श्री मुलखराज को श्री प्रभु जी का प्रथम साक्षात्कार	४४
१०.	श्री मुलखराज का श्री प्रभु जी के पास जा दीक्षित होना	४६
११.	श्री मुलखराज की अखण्ड समाधि और उनके पिता जी का चिन्तातुर हो श्री प्रभु जी के पास आना	५४
१२.	श्री मुलखराज का श्री प्रभु जी के साथ ओकाड़ा जाना, मार्ग में अद्भुत लीलायें	५९
१३.	योग सिद्ध धृतराव का उपाख्यान	६५
१४.	ब्रह्मचारी गोपालानन्द का श्री प्रभु जी के चरणों में आना	७८
१५.	पितृभक्त कुमुद का उपाख्यान	८५
१६.	महन्त बाल कृष्ण का श्री प्रभु जी के चरणों में आना	९९
१७.	भक्त मैण्डू मल्लाह का प्रसंग, प्रयाग राज तीर्थ में	१०७
१८.	श्री प्रभु जी की काश्मीर यात्रा	११५
१९.	लाला कर्मचन्द दारोगा जेल का प्रसंग	१३३
२०.	उपदेश	१३८
२१.	श्री मुलखराज जी को जेल देखने के लिए भेजना	१४९
२२.	मंदिर यज्ञ-निषिद्ध कर्म उपाख्यान	१५७
२३.	जल मार्ग द्वारा बाग निशात को जाना	१६२
२४.	शंकराचल मन्दिर और अमरनाथ तीर्थ का वर्णन	१६८
२५.	क्षीर भवानी तीर्थ	१७३
२६.	श्री प्रभु जी का बाग निशात में पदार्पण	१७४
२७.	शालामार में पदार्पण	१७७
२८.	श्री मुलखराज जी की धर्म पत्नी का बैकुण्ठ गमन	१८१

प्रसंग संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ठ
२९.	उपदेश—मृत्यु का रहस्य	१८५
३०.	श्री मुलखराज जी की धर्म पत्नी का दिव्य रूप में प्रकट होना	१८८
३१.	योग साधन आश्रम की स्थापना	१९०
३२.	योग साधन आश्रम के उद्देश्य	१९३
३३.	योग साधन आश्रम के नियम	१९५
३४.	योग के आसन	२००
३५.	योग की मुद्रायें	२०५
३५.	महात्मा ऋषि देवी और माता द्रौपदी देवी का प्रभु चरणों में आना	२३१
३६.	योग प्रचार का विस्तार तथा ऋषिकेश में आश्रम की स्थापना	२४०
३८.	ग्रंथ माला का प्रकाशन	२४३
३९.	योय साधन आश्रम छेहरटा का निर्माण	२४५
४०.	काँगड़ा जाना	२४९
४१.	राजा कुबुद्ध उपाख्यान	२५२
४२.	कांगड़ा में श्री मुलखराज जी और श्री गोपालानन्द की समाधि अवस्था	२६५
४३.	गृहस्थी योग साधकों की दिनचर्या	२७२
४४	देवी साधिकाओं के लिये नियम	२७७
४५.	योग साधक साधुओं की दिनचर्या	२८०
४६	अमृतसर के भक्तों सहित समाईं गमन	२८४
४७.	समाईं में जवाहर पहलवान के घुटने की पीड़ा को दूर करना और उस द्वारा प्रभु लीला कथन	२९१
४८.	अन्धी कन्या को दृष्टि दान	२९९
४९.	एक दृढ़ गुरु भक्त शिष्य का उपाख्यान	३०२
५०.	नेति धौति आदि षटकर्म का उपदेश	३०७
५१.	लाहौर के आश्रम तथा वहां के भक्तों का वर्णन	३१७
५२.	भक्त नारायण दास	३२३
५३.	बाल भक्त घुग्घु	३२५
५४.	भक्तिमती शकुन्तला	३२८
५५.	पागल रोगी को ठीक करना	३२९
५६.	मानक चन्द दलाल का तपेदिक निवारण	३३०
५७.	लाला नियामत राय, एडवोकेट, हाईकोर्ट लाहौर	३३५
५८.	क्यू. सी. मल्लन (Q. C. Mallan)	३३७
५९.	योग से संबधित कुछ अन्य भक्त	३३९
६०.	बालक शांति स्वरूप की रक्षा	३४२
६१.	माला देवी का उद्धार	३४३

प्रसंग संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ठ
६२.	योग विभूति वर्णन	३४६
६३.	वेदान्ती का उपाख्यान	३५१
६४.	भक्त अमरनाथ	३५६
६५.	योग उपदेश	३६५
६६.	ईश्वर का स्वरूप	३७२
६७.	चित्त विक्षेप के संगी दुखादि और उन से त्राण के उपाय	३७५
६८.	चित्त एकाग्रता के विविध उपाय	३८०
६९.	एकाग्र मन का स्वरूप	३८३
७०.	अपने पूर्वजों का श्री प्रभु जी द्वारा वर्णन	३८५
७१.	अपने बाल्यकाल का श्री प्रभु जी द्वारा कथन	३९३
७२.	मुस्लिम मोची पर कृपा	४०२
७३.	तर्पण विद्या	४०५
७४.	योगी गुरु की शक्ति से पितरों का उद्धार—एक दृष्टांत	४०९
७५.	कुंभ के अवसर पर श्री मुलखराज जी को श्री सद्गुरुतत्व के विराट दर्शनों का दान	४१७
७६.	त्रेता युग में ऋषि काक भुषुण्डी की भविष्यवाणी	४२४
७७.	श्री मुलखराज का उपदेश	४२८
७८.	राजा शम्भू का दृष्टांत	४४२
७९.	श्री गोपालानन्द का देह त्याग	४४९
८०.	श्री गोपालानन्द के ध्यानानुभव	४५४
८१.	श्री गोपालानन्द को सृष्टि की उत्पत्ति तथा उस के विस्तार का ज्ञान देना	४६२
८२.	श्री गोपालानन्द को श्री महाप्रभु जी के दिव्य दर्शन	४७३
८३.	श्री गोपालानन्द को बैकुण्ठ धाम के दर्शन तथा नारद को श्री प्रभु जी द्वारा उपदेश	४७४
८४.	शूलो का शूल	४७९
८५.	गुरु भक्तों की गति	४८२
८६.	आकर्षण विद्या	४८६
८७.	ब्रह्मचर्य शिक्षा	४८८
८८.	ध्यानी भक्त बिहारी लाल	८९०
८९.	जसवन्त राय को दिव्य दर्शनों का दान	४९४
९०.	भगवान विष्णु की योग समाधि का स्वरूप	४९८
९१.	नारियों को योग साधन का उपदेश	५०२
९२.	योगिनी सुकर्मा उपाख्यान	५०४
९३.	योगिनी मर्यादा रानी का उपाख्यान	५१५
९४.	गुरु भक्त तस्कर उपाख्यान	५२६

प्रसंग संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ठ
९५.	योग में सब धर्मों का ऐक्य	५३७
९६.	जैन धर्म और योग	५३९
९७.	बौद्ध धर्म और योग	५५०
९८.	ईसाई धर्म और योग	५५३
९९.	योगी ऋषि वामदेव	५७५
१००.	योगी बालक नचिकेता	५७६
१०१.	योगी महर्षि त्रिशंकु	५७६
१०२.	योगी ऋषि भृगु की पंचकोष साधना	५७७
१०३.	योग जिज्ञासु 'प्राचीन योग्य' नामक ब्रह्मचारी तथा 'इन्द्र योनि मार्ग' का ज्ञान	५८४
१०४.	पिप्पलाद ऋषि द्वारा छः ऋषि कुमारों को योग की शिक्षा देना	५८५
१०५.	अवतारों का प्रसंग	६००
१०६.	नर-नारायण अवतार	६०१
१०७.	सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार अवतार	६०६
१०८.	वाराह अवतार	६०७
१०९.	देवर्षि नारद अवतार	६१०
११०.	सिद्धेश्वर कपिल अवतार	६१४
१११.	दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, यज्ञ, ऋषभ, पृथु और मत्स्य अवतार	६२५
११२	नृसिंह अवतार	६२८
११३.	वामन अवतार	६३०
११४.	परशुराम अवतार	६३२
११५.	श्री राम चन्द्र अवतार	६३३
११६.	श्री कृष्ण अवतार	६३४
११७.	श्री कृष्ण चन्द्र का भक्ति योग	६४३
११८.	श्री कृष्ण चन्द्र का सांख्य योग	६४४
११९.	श्री कृष्ण चन्द्र का ध्यान योग	६४६
१२०.	ज्ञानी की पहचान	६४८
१२१.	कलियुग में धर्म का लोप	६५०
१२२.	श्री महाप्रभु का सन्देश	६५४
१२३.	श्री मुलखराज को आज्ञा	६५५
१२४.	मंगल मुग्ध ज्ञानी उपाख्यान	६५७
१२५.	श्री प्रभु जी द्वारा दो शरीरों की रचना। एक का परित्याग और दूसरे द्वारा महाप्रभु जी के पास प्रस्थान	६६४
१२६.	आकाश मार्ग द्वारा महाप्रस्थान	६७३
१२७.	श्री महाप्रभु जी के पास पहुंचना	६७७

प्रसंग संख्या	प्रसंग विषय	पृष्ट
१२८.	देह निर्माण योग	६७९
१२९.	योग तथा कर्म विवेचन	६८२
१३०.	कैवल्य का साधन	६८७
१३१.	श्री प्रभु जी की भक्त वत्सलता	६९०
१३२.	श्री प्रभु जी का अभिन्न रूप—श्री मुलख राज	६९२
१३३.	आश्रम में प्रभु मूर्ति की प्रतिष्ठा	६९५
१३४.	जनता का श्री मुलख राज जी की शरण में आना	६९७
१३५.	ऋषिकेश आश्रम में प्रभु मूर्ति की विधिवत प्रतिष्ठा	७०२
१३६.	श्री मुलखराज जी का प्रवचन	७०९
१३७.	श्री मुलखराज जी द्वारा योग प्रचार	७१५
१३८.	श्री मुलखराज का भक्तों को उपदेश	७२०
१३९.	अमर कथा—शिव भवानी संवाद	७२५
१४०.	वास्तविक दण्डी कौन ?	७३४
१४१.	'सेवक' का श्री सद्गुरु देव मुलखराज जी महाराज की शरण में आना	७३८

श्री दिव्य रामायण सहगान

दिव्य रामायण की गाथा को,
जो नर सुने सुनावे ।
जीवन में रहे सुखी हमेशा,
अंत परमपद पावे ।।
श्री प्रभु गंडाराम दुलारे,
इस में उन के खेल हैं न्यारे ।
पतित पावनी कथा मनोहर,
भक्तन के मन भावे ।।
सुन्दर यह इतिहास मनोहर,
लीला कीनी जिमि योगेश्वर ।
योग साधना की पावस ऋतु,
योगामृत बरसावे ।।
उत्तम नीति इस में आई,
भक्त जनों के जो मन भाई ।
इस के सुनने से प्राणी का,
पाप नाश हो जावे ।।
श्री प्रभु राम लाल हैं नायक,
जीव चराचर के सुखदायक ।
उन के चरण कमल का भौंरा,
'सेवक' शीश झुकावे ।।

ओ३म् नमः श्री रामलाल प्रभुजी परब्रह्मणे नमः

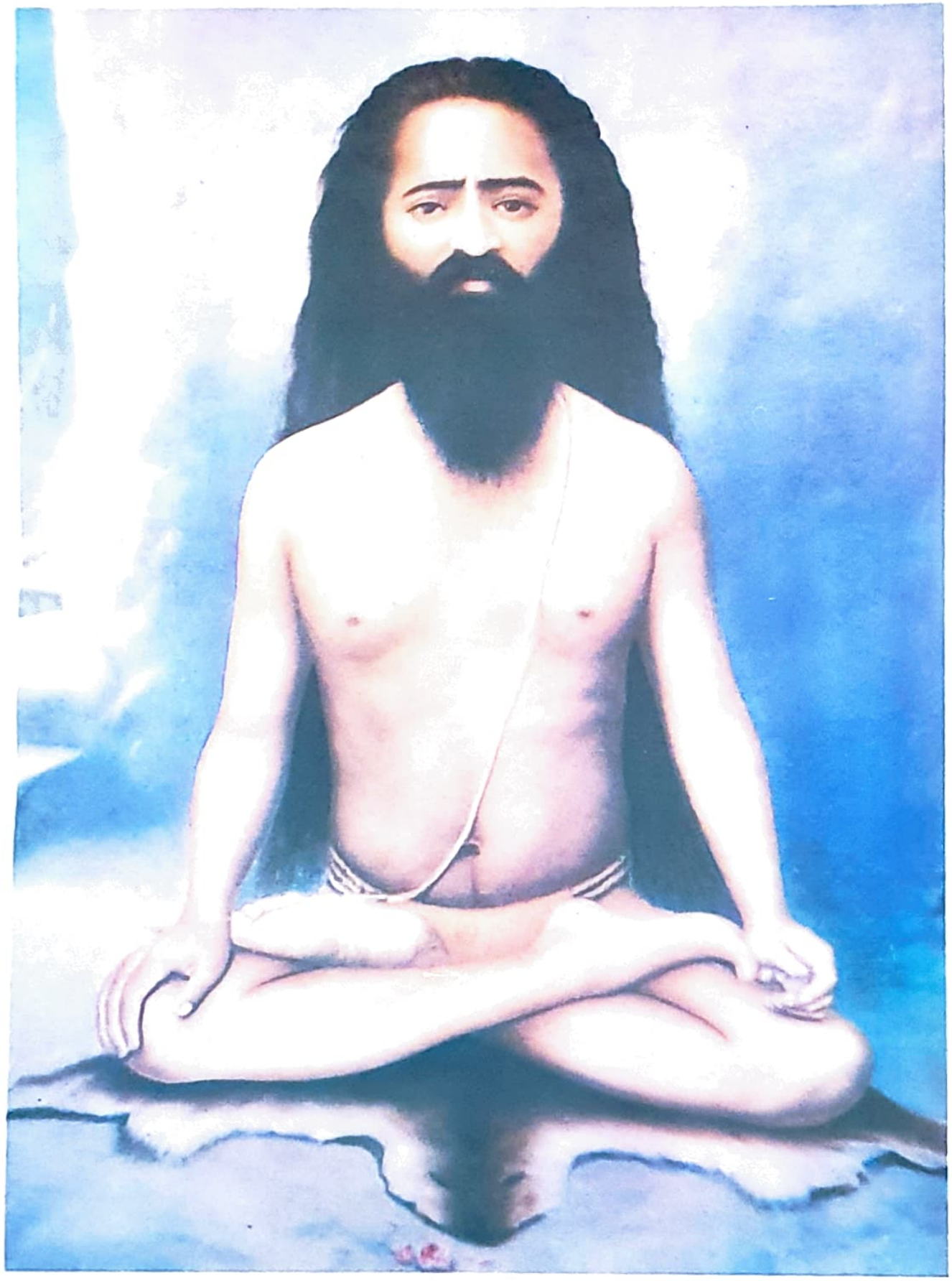

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

ॐ

अथ श्री योग महादिव्य रामायण का तृतीय काण्ड ।

आश्रम काण्ड

दो० जगत पिता की गाथ को, सेवक करे बखान ।
देना मेरे नाथ जी, मुझ को प्रतिभा दान ॥ ८०६ ख

गाथ महान गूढ़ है स्वामी, मुझ सा मूढ़ न अन्तर्यामी ।
अपनी लीला आप लिखावें, मूक से बातें जिमी करावें ।
पंगु जिमी पर्वत को लांघे, प्रभु की सेवक गाथ श्लाघे ।
मंद अतीव जीव जो भारे, वे भी मुझ से भले हैं सारे ।
फिर भी नाथ मुझे अपनाया, रहस न इसका मैंने पाया ।
प्रभु की बात प्रभु ही जाने, जीव मूढ़ तो रहत भुलाने ।
दया दास पै प्रभु जी करनी, महिम गूढ़ है वर्णन करनी ।
आश्रम काण्ड का करूं बखान, पास रहना प्रभु सदा समान ।
स्वयं बताना अपने भेद, रहस जानूं बिन पाये खेद ।

दो० आश्रम काण्ड बखानिये, जो रहस्य संपूर्ण ।
मूढ़ मती जन जो भयें, रहें सशंकित पूर्ण ॥ ८०७ क

दो० शंकित होंगे मूढ़ जन, देखं अलौकिक काम।
शरण पड़े जो साध जन, योग मिले अभिराम ॥ ८०७ ख

वन से वस्ती में प्रभु आये, अमृतसर की ओर सीधाये ।
सुभद्र और भाई के साथ, रेल को कीना प्रभु सनाथ ।
अमृतसर जभी रेल पधारी, देवगणों ने वह सत्कारी ।
तांगा एक देव ले आये, मानव भेद न उसका पाये ।
आदर से उस पर बिठलाया, तांगा घर की ओर सिधाया ।
कूचा संत सिंह का आया, तांगा सन्मुख तब रुक पाया ।
कूचा-बंद पै प्रभु उतारे, प्रभु कूचे में पग तब धारे ।
छाया देव सर पर कर पाये, नभ से पुष्प बहुत बरसाये ।
गली भरी जनता से ऐसी, आये राम अयोध्या जैसी ।

१. श्री प्रभु जी का घर में प्रवेश

दो० कूचे में जनता भरी, छत पर भी नर नार ।
उमड़ उमड़ झरोखों से, देखे भीड़ अपार ॥ ८०८

घर के द्वार पै प्रभु पधारे, देव लोक में बजे नगारे ।
अब देवन बंध पाई आस, अवश्य होंयगे असुर हताश ।
जग रक्षक जब प्रभु पधारे, नाशें असुर कर्म जो कारे ।
सिंह द्वार कीन प्रभु पार, चरण डयोढी दीना डार ।
डयोढी लांघ कक्ष में आये, उसी कक्ष में प्रभु थे जाये ।
भ्रात भतीजे प्रभु के सारे, और संबंधी भी बहु भारे ।

गली कूचे के सब नर नार, भर गई घर में भीड़ अपार ।
प्रभु के दर्शन हित सब आवें, देख देख के विस्मय पावें ।

दो० तेज प्रभु के रूप का, आ देखें जो लोग ।
"राम लाल" वे सब कहें, "कर के आया योग" ॥ ८०९

कई घंटे जनता की भीर, बैठ रहे प्रभु सहज गंभीर ।
भीड़ छटी तो प्रभु उठ पाये, स्नान कूप पर कर के आये ।
घर के आगे जो है कूप, उस पै प्रभु की दया अनूप ।
बाल काल में यहीं नहाते, बैठ उसी पै ध्यान लगाते ।
चमत्कार उन कई दिखाये, वर्णन में जो हैं ना आये ।
लौट प्रभु का वन से आना, इसी कूप पर पुनः नहाना ।
आत्म तेज अब इस में डाला, "अमरित कूप" भया तत्काला ।
अमरित कूप अमृत की खानी, सिमरे प्रभु को जो यहां प्राणी ।
उस को प्रभु दर्शन हो जावें, योग सिद्धि भी प्राणी पावें ।

दो० कर स्नान प्रभु आये, लायी सुभद्र भोग ।
बैठ प्रभु थे जीमते, भया अलौकिक योग ॥ ८१०

तप की साध सुभद्रा पायी, रूप पति का देख विस्मायी ।
शंकर सम देख निज स्वामी, जगत पिता जो अन्तर्यामी ।
ऊंची आंख न कर वह पावे, रूप उमा का निज लख पावे ।
मन में बार बार यह आया, पति रूप में गुरु है पाया ।
मैं शिष्या ये गुरु हों मेरे, सेव करूं मैं सांझ सवेरे ।
मेरा पति जो योग कमावे, मुझ को भी जग भोग न भावे ।

अनुसरण किया जिमि सीता राम, तिमि सेवूं निज पति सुख धाम ।
पतिव्रता गांधारी नार, पति सह लिया अंध व्रत धार ।

दो० राज महल को त्याग कर, रहत पति के संग ।
सवित्री को जग जानत, पालत धर्म निसंग ॥ ८११ क

दो० मेरा भी यह हो धर्म, जिधर पति मम जाय ।
संग उसी के मैं रहूं, मन चरणों में लाय ॥ ८११ ख

सेवा का व्रत सुभद्र धारा, चढ़ा भक्ति का रंग न्यारा ।
पति योगी थे अग्नि स्वरूप, तन मन आहुत किया उस गूप ।
मुख से वचन न कुछ उचारे, गुप्त रूप पति पग सत्कारे ।
जग पिता प्रभु राम कल्यानी, जगत जननी सुभद्रा रानी ।
घन का योग नगर में आया, बस्ती में प्रभु डेरा लाया ।
दर्शन हित नित जन चलि आवें, प्रभु से योग सीख अपनावें ।
ध्यान योग को जन अपनाते, दिव्य दृष्टि वे प्रभु से पाते ।
अमृतसर में ख्याति विस्तारी, गंडा राम सुत शक्ति भारी ।

दो० पुत्तर गंडा राम का, बन गया था साध ।
वन से आया लौट वह, लेकर शक्ति आगाध ॥ ८१२

योग की शक्ति उसमें भारी, मुख तेजस्वी मूर्ति प्यारी ।
सुन्न समाधी सदा लगावे, दर्शन को नित जनता जावे ।
भक्त जनों को भी मिल पावे, शरण पड़े को योग सिखावे ।
जिस को वह निज शिष्य बनाता, दिव्य चक्षु उस का खुल जाता ।

घंटों शिष्य दर्श को पाते, देह बदन की सुध विसराते ।
अद्भुत योग शक्ति उस लायी, वन में कीनी बहुत कमायी ।
ऐसे साधन योग करावे, बिन औषध के रोग मिटावे ।
रोगग्रस्त वर्षों के लोग, उस ने कर दीने नीरोग ।

दो० बहुत पुराने रोग से, जो रोगी निराश ।
स्वास्थ्य लाभ उन कर लिया, जाय राम के पास ॥ ८१३ क

दो० राम लाल की बात भी, सत से हो भरपूर ।
मुख से निकले जो वचन, पूरा होत जरूर ॥ ८१३ ख

यश प्रभु के गंग की धार, नगरी में उस का विस्तार ।
श्रवण किया जिस किस नर नार, मिल गया उसको पुण्य अपार ।
श्रवण से कीर्ति भीतर जावे, मन में प्रभु का रूप समावे ।
बुद्धि करे जब उसका चिन्तन, धुलें हृदय के पाप चिरन्तन ।
यश की गंग में जो नहावें, दर्शन करनें प्रभु के आवें ।
दर्श देव भी करने आते, समाधि में प्रभु को मिल पाते ।
देवों के मन इच्छा भारी, गृहस्थी सम हों प्रभु पापारी ।
वन के वेश को देवें त्याग, राखें जग से प्रभु अनुराग ।

दो० जग में हो अनुराग जब, रहे जगत का ध्यान ।
पापी जन के पाप को, प्रभु नाशें अब आन ॥ ८१४ क

२. वन-वेश का परित्याग

दो० देवों की अभिलाष पर, दीना प्रभु जी ध्यान ।
भक्तों से इक दिन कहा, सहित मधुर मुस्कान ॥ ८१४ ख

भक्तो हम इक बात बतावें, निज जीवन की घटन सुनावें ।
छुटपन मे मैं चैन न पाता, बनूं योगी विचार सताता ।
जहां कहीं योगी सुन पाता, छोड़ कर्म तुरत वहीं जाता ।
उस से जो भी मिलती सीख, चलता उस पर करत परीख ।
योगी मिला न कोई ऐसा, योग सिखावे मम मन जैसा ।
जीवन बहुत था गया विहाय, वर्ष इक्कीस हुआ मैं आय ।
और सहन ना मैं कर पाया, घर छोड़ कर यहां से धाया ।
साधु का भी वेष बनाया, जटा जूट भी वहीं बढ़ाया ।
देश देशान्तर कीनी खोज, मिला न योगी जिस में ओज ।

दो० गुरु योगी की खोज में, गया देश देशान्त ।
गुरु की किरपा जब भयी, आय मिले एकान्त ॥ ८१५ क

दो० मन की पूजी आस तब, स्थिर मम होई बुध ।
चरण गुरु के पाय कर, जग की रही न सुध ॥ ८१५ ख

क्या जानूं क्या गुरु मन आई, वन से दीनी मुझे विदाई ।
आज्ञा क़ीनी बस्ती जाओ, जनता को जा योग सिखाओ ।
गुरु आज्ञा पा नीचे आया, घर में मुझ को बन्धू लाया ।
जटाजूट अब भया निरर्थक, वन में हो वेश यह सार्थक ।
जग में जग के सम हो रहना, शास्त्र का मैं मानूं कहना ।
वस्त्रों को हम लें अब धार, त्यागें जटाजूट का भार ।
भक्तों के मन बात सुहायी, धारें वस्त्र प्रभु सुखदायी ।

धोती कुर्ता पगड़ी लाये, नापित आप देव बन आये
ब्रह्मा पण्डित बन के आया, प्रभु को उसने स्नान कराया ।

दो० स्नान क्षौर मे निपट कर, नूतन वस्त्र धार ।
भक्तन मध्य बैठे प्रभु, नभ से हो जयकार ॥ ८१६

था देवों का मन हर्षाया, मन जनता प्रभु रूप समाया ।
वस्त्र श्वेत प्रभु जब धारे, काम देव भी मन को हारे ।
प्रभु दर्शन हित जनता आई, उन में मिली देव समुदाई ।
प्रभु को पुष्प माल पहनावें, कल्पतरु के फूल भी लावें ।
पुष्प वृष्टि उन प्रभु पर कीनी, धरा पुष्पों से उन भर दीनी ।
पुष्पन मध्य प्रभु वीराजें, दिव सिंहासन पर जिमि साजें ।
तीरथ राम प्रभु का भाई, घर की सारी जन समुदाई ।
सुभद्र प्रभु की नार प्यारी, देख देख सब भये सुखारी ।

दो० वस्त्र धारी वेष में, कर के प्रभु का ध्यान ।
सुख जीवन का लाभ कर, सद्गति पांय महान ॥ ८१७

अत्युक्ति नहीं इसमें जानो, ध्यान प्रभु का कर पहचानो ।
सूरज से जिमी अंध नसावे, ध्यान प्रभु का दुःख मिटावे ।
गौर वर्ण जो प्रभु जी प्यारे, वस्त्र गौर उन्हों ने धारे ।
रूप अनूपम सब मन भाया, भक्त जनों के चित्त समाया ।
ध्यान भजन में सब जन देखें, दिव्य रूप सद्गुरु का पेखें ।
भृकुटि में जन ध्यान लगावें, प्रभु का दर्शन कर वे पावें ।
अद्भुत कर्म प्रभु कर पाया, वन त्याग गृहस्थ अपनाया ।

गृहस्थ धर्म की महिम जताइ, लोक संग्रह को मिली बढ़ाइ ।
जब जब प्रभु जगत में आवें, जीवन के आदर्श दिखावें ।

दो० वस्त्रों को अब धार कर, प्रभु जी कीन विचार ।
कौन वणिज अब हम करें, जीवन का आधार ॥ ८१८

ज्योतिष विद्या प्रभु अपनाई, पैतृक कर्म की लीक चलाई ।
ख्याति देश देशान्तर पाई, ज्योतिष में प्रभु की निपुणाई ।
पिता तो पण्डित थे विख्यात, भूत भविष्य उन को साक्षात ।
उन का पुत्र राम जो लाल, उस को भया सिद्ध त्रिकाल ।
वह तो अन्तकरण की जाने, भेद जन्म का वह पहचाने ।
उस से छिपा न कुछ भी भाई, कीनी थी उस योग कमाई ।
योग से हो विद्या साजीव, विद्या हो बिन योग निर्जीव ।
ज्योतिषि पाती से लख पाते, बिन पाती प्रभु भेद बताते ।
करते इस विध प्रभु जग कार, उठाया जब उन घर का भार ।

दो० ज्योतिष से निर्वाह कर, करें योग प्रचार ।
गुरु-आदेश को पाले, ईश्वर जो साकार ॥ ८१९

प्रातः सायं जन जो आते, प्रभु जी से वे शिक्षा पाते ।
चल जिज्ञासु भक्त जो आवें, ध्यान समाधी को वे पावें ।
घर प्रभु का बन गया आश्रम, करत सुभद्र सेवा बिन श्रम ।
रूप विष्णु का पति जब होवे, पत्नी लक्ष्मी सेव में खोवे ।
हित जगत का करे बिन आस, उपजे जग के मन विश्वास ।

भक्त आ निज प्रश्न सुनाते, दे दृष्टांत प्रभु समझाते ।
योग की महिम जनावन हेतु, आये जगत में जग के सेतु ।
जब से योग भुलाया जग ने, दुःख जगत में पाया सब ने ।

दो० योग सिखावन हेतु ही, आये वन को त्याग ।
प्रभु रहें अब जगत में, खुले नगर के भाग ॥ ८२०

३. पतित पावन योग

दृष्टांत

विजना का उपाख्यान

इक दिन संगत में प्रभु साजे, अनेकों भक्तन सह विराजे ।
विजना का दृष्टांत सुनाया, साधन योग महत्व बताया ।
पतित से होवे पतित महान, योग करे उस का कल्याण ।
मगध देश की बात लो जान, क्षत्री इक धनवान पहचान ।
विजना उस की सुन्दर जायी, उलटी बुद्धी उस मन आयी ।
इक डाकू से भया था संग, घूमे उस के संग निसंग ।
डाकू को इक रात बुलाया, मात पिता को कतल कराया ।
माया लेय भाग वे पाये, घर को दीनी आग लगाये ।

दो० घर को आग लगाय कर, जा छिपे वन मांझ ।
वित्त समापत जब भया, डाके डालें सांझ ॥ ८२१

इक दिन चोर पकड़ में आया, कारावास उसे मिल पाया ।
विजना भटके दर दर मारी, उस की भयी अतीव खवारी ।

पाप का अंत किमि सुख होवे, पापी पाप किये पर रोवे ।
पापी पुनः पाप में जावे, बुद्धी पापी पाप करावे ।
लता पाप की बढ़ती ऐसे, कड़ुवी बेल वर्षर्तु जैसे ।
विजना का भी हुआ यह हाल, वैश्या वृत्ति गही तत्काल ।
ऊंचे कुल की जो थी जायी, पड़ कुसंग दुर्गत हो पायी ।
अधः पतन की सीमा नाहीं, जीव थमे जब थामे सायीं ।
रोग उपदंश तब उसे हो पाया, कुष्ट रोग ने पुनः दबाया ।
अब तो पास न आवे कोई, करे पाप भोगे फल सोई ।

दो० संग न विजना के लगें, "धुत" करें सभी लोग ।
न कर्म गति से नर बचे, शरण गहे बिन योग ॥ ८२२ क
मारी मारी वह फिरे, पूछे न कोई बात ।
इक सज्जन की ड्योडि में, जा सोती वह रात ॥ ८२२ ख

जाकर रात वहां वह सोती, निज भाग्य पै सदा ही रोती ।
साधु आवें नित्य उस घर में, सज्जन की थी आस्था उनमें ।
इक दिन इक योगी चलि आया, हो प्रसन्न उस ने फरमाया ।
"तेरी सेवा से हर्षाये, मांगो जो तव मन में आये" ।
सज्जन तो परहित मन धारे, अपना हित दूजे पै वारे ।
प्रभु को सज्जन वह प्रिय लागे, परहित कारण निज हित त्यागे ।
उस सज्जन पर जग बलिहारी, जन हित पर जिस जिन्दगी वारी ।
योगी से वह सज्जन बोला, नम्र भाव से उस मुख खोला ।
"मुझ पर जो प्रसन्न महाराज, कृपा करो विजना पर आज" ।

इस का दुःख करो तुम दूर, मेरी विनय करिये मंजूर ।

दो० सुन कर उसकी बात को, योगी भया दयाल ।
कहने लगा "ले आओ, देखें उसका हाल" ॥ ८२३

सज्जन ने विजना बोलायी, दण्डवत दूर से कर पायी ।
योगी ने जब कुष्ठिन देखी, उस कर्मन की रेख उलेखी ।
"यह तो नर घातिन है भाई, खोटी इस की सर्व कमाई ।
इस पर कौन कृपा कर पावे, यही कृपा जो दुःख यह पावे ।
ले जब कर्मों को यह भोग, दूर तभी हो इस का रोग" ।
सुन कर योगी की यह वाणी, विजना के चित्त भई ग्लानी ।
श्रद्धा चरणों में उपजायी, जिस योगी ने छिपी बतायी ।
गिर चरणों में बोली बात, "तुम योगी हो प्रभु साक्षात ।

दो० कर्म पढ़े जो जीव के, उस योगी के पास ।
आकर चरणों में गिरी, क्यों फिर मुंडू हतास ॥ ८२४ क

गुरु चरणों में आय कर, यदि न हो निस्तार ।
आवागामी जीव तब, किमि हों भव से पार ॥ ८२४ ख

जैसे भी हो मुझ को तारो, इस संकट से मुझे उबारो ।
मैं पापिन तुम बनो दयाल, काढ़ो दुःख से दीन दयाल" ।
गिर चरणों पै विजन कुकर्मी, सींच के आंसुओं से उस उर्मी ।
निज कर्मों पै थी पछताती, योगी की थी मिनत मनाती ।
उस के मन पछतावा देख, योगी कीना मनहिं उल्लेख ।
निज कर्मों पर जो पछतावे, सन्मारग में वह लग जावे ।

अब तो बन पायी अधिकारी, योग करे यह विपदा मारी ।
निज मुख से फिर वे फरमावें, "उठ बच्चा हम योग सिखावें ।
रोग से तेरा हो निस्तार, भव से भी तुम होगी पार ।
दो० सुन योगी की बात को, भयी विजन मन धीर ।
ठाड़ी योगी सामने, दूर भयी थी पीर ॥ ८२५ क

इतनी कथा सुनाय कर, प्रभु हुए कुछ मौन ।
मन में कुछ सिमरन लगे, प्रभु मन जाने कौन ॥ ८२५ ख

कुछ मिनट प्रभु जी रुक पाये, मुख से फिर उन वचन सुनाये ।
योगी ने साधन सिखलाये, नाशक रोग उपाय बतायें ।
साधन से वह भयी निरोग, कंचन सम देह देखें लोग ।
जिस योगी ने देह उबारा, देही को भी उस ने तारा ।
योग से निर्मल हों संस्कार, गुरु योगी का महा उपकार ।
नाशे पाप पुण्य बढ़ जावे, मिटे तम प्रकाश जिमि आवे ।
विजना योगिन भयी इक सिद्ध, हो गई जगत मांहि प्रसिद्ध ।
उस ने किए बहुत उपकार, वर्णन करें क्या उस की कार ।
दो० इक दिन की यह बात है, फैला शोक महान ।
राजा का जो पूत था, निकले उस के प्रान ॥ ८२६ क

सारा शोक ग्रस्त था, राजा का परिवार ।
निकले उस के प्राण जब, नगरी हाहाकार ॥ ८२६ ख

विजना के भी कान में, पड़ गई वह बात ।
कहन लगी "क्यों व्यथित हो, मरा नहीं वह जात ॥ ८२६ ग

उस बालक को मरा न जानो, निद्रा में ही सोया मानो ।
उस की देह को मत जलाना, श्मशान घाट में न ले जाना ।
राजा पास पहुंची यह बात, बुलायी राजा विजन प्रात ।
कहन लगा "तुम देखो माई, लुट गये हैं हम तो भाई ।
यदि जीवित हो राजकुमार, उठाओ इस को मैं बलिहार" ।
विजना ने तब बाल निहारा, लात मार उस को फटकारा ।
क्यों चिरनींद चले हो सोने, दो पूत अभी तुमरे होने ।

दो० विजना की फटकार पर, बैठा उठ कुमार ।
सुख की दौड़ी लहर थी, बोले सब जयकार ॥ ८२७

खुशियां नगरी में हो पायीं, चर्चा विजना की सब थायीं ।
भक्त प्रभु की ओर निहारें, प्रभु कथनी को वे सत्कारें ।
जो सुनें, उपदेश वे पावें, मन में संशय लेश न लावें ।
प्रभु जी आगे कथा चलाई, महिम योग की प्रकट बताई ।
वाक सिद्धि विजना थी पायी, वाणी में थी शक्ति आई ।
मुख से वचन वह जो निकारे, ईश्वर पूरे वह कर डारे ।
एक सेठ सेठानी आये, आ विजना को शीश झुकाये ।
सेठ कहे "हे विजना रानी, हमरे कुल की हो रही हानी ।
वृद्धावस्था हैं अब आयी, अभी तलक ना संतति पायी ।
है निराश ने हम को घेरा, पुत्र बिना जग में अंधेरा ।

दो० दर पै आय जान कर, कृपा कर मातेश ।
पुत्तर का वरदान दो, सेवक रहें हमेश" ॥ ८२८

विनय सेठ ने बहुत सुनायी, उत्तर विजना ना दे पायी ।
तब सेठानी बात उच्चारी, "हो ना पूत तो दो कुमारी ।
पुत्री से ही करूं संतोष, वर तो दे दो हो बिन रोष" ।
सुन सेठानी की पूकार, दया विजना ने ली मन धार ।
श्वान शुनी उस देखे पास, बात कथी उनको यह खास ।
"पाप योनी अब यह दो त्याग, धारो नर तन खुलें जो भाग" ।
दंपति को तब उत्तर दीना, "वर दोनों को है अब दीना ।
एक पूत इक पुत्री पावो, उन से तुम निज वंश चलावो" ।
सेठ सेठानी मन प्रसन्न, लौटे घर को हो वे धन्य ।

दो० इस विध वर को पाय कर, लौटे दण्डवत कर ।
कन्या और कुमार का, भया जोड़ा उन घर ॥ ८२६

आगे तभी प्रभु समझाया, भक्त जनों को यह फरमाया ।
देखो समझो भक्तो आप, योग का कितना है प्रताप ।
पापी कुलटा नारी विजना, घाता जिस ने पिता था अपना ।
माता भी जिस मार मुकायी, धारी जिस ने थी कुटिलायी ।
भाई का भी कीना घात, डाके डाले सारी रात ।
दर दर रोगी जो थी भटके, पास भी जिस के को न सटके ।
प्राप्त भया जब उस को योग, वर देने के भयी वह योग ।
राजा का उस पूत जिवाया, सेठ ने पुत्री पुत्र पाया ।
श्वान शुनी का कीन उद्धार, किस को योग न देवे तार ।
गीता की मन बात लो धार, पापी का भी होत उद्धार ।

योगी गुरु मिले जभी जन को, धीरज आवे उस के मन को ।

दो० योगी गुरु को पाय कर, विजना भयी थी सिद्ध ।
योग की महिमा जानो, गीता में प्रसिद्ध ॥ ८३०

इक घटना हम और सुनावें, सिद्धी विजना की बतलावें ।
इक दिन फिरती फिरती आई, भील किसी के घर जा पाई ।
अन्धा भील वृद्ध थी नारी, दरिद्रता का जीवन भारी ।
केवल था इक पूत सहारा, बारह वर्ष का जो बिचारा ।
माता देती चने उबाल, बेच आता वह छोटा बाल ।
इक दो पैसे बच जो जाते, भोजन कारज में वे लाते ।
विजना आय मिली जब उन को, तीव्र भूख लागी थी उस को ।
बुढ़िया ने उस को बिठलाया, जल पान कुछ उसे करवाया ।

दो० तृप्ती भयी न विजन को, कर अल्प जल पान ।
क्षुधा उसे तो बहुत थी, किस विध हो अनुमान ॥ ८३१

विजना भोग और भी मांगा, वृद्धा ने निज भाग त्यागा ।
तृप्ती हुई न उस को खा कर, भाग वृद्ध का दीना ला कर ।
दोनों भाग विजन खा पायी, उसे न तृप्ती तब भी आयी ।
लड़के का जो भाग बचा था, बुढ़िया ने इक ओर धरा था ।
हो लाचार उसे भी दीना, विजना ने वह भी खा लीना ।
विजना तभी वहां पै ठहरी, इस से बढ़ी समस्या भारी ।
अब कहां से लाये खिलाये, आतिथ सेवा किमी कर पाये ।
मांग पड़ोसिन से वह लायी, ला रोटी तब उसे खिलायी ।

दो० मांग धांग के विजन की, बुढ़िया सेवा कीन ।
सुध भुलायी आपनी, विजना को सब दीन ॥ ८३२

विजना के मन भया संतोष, उठी चलने को तब बिन रोष ।
उठ बुढ़िया ने कीन प्रणाम, लड़के से उस पूछा नाम ।
लड़के ने निज नाम बताया, विजना ने मुख से फरमाया ।
"इस की शादी जब कर पाओ, हमें भी तुम अवश्य बुलाओ" ।
सुन कर बुढ़िया उसकी वाणी, अनहोनी यह सब अनुमानी ।
शाक पात ना घर में भाई, किमि लड़के की होय शगाई ।
फिर भी वह उत्तर दे पायी, "तुम पहले हम पीछे भाई" ।
बालक को उस थपथपाया, आशीर्वाद उसे दे पाया ।

दो० दीना आशीर्वाद उस, "एक वर्ष के बाद ।
इस का विवाह रचाना, करना हम को याद ॥ ८३३ क
बूढ़े को तब देख कर, विजना दी फटकार ।
अन्धा बन क्यों बैठा, जा कर, कर कुछ कार ॥ ८३३ ख

विजना ने जब वचन उचारे, मिले वृद्ध को नयनन तारे ।
प्रथम बार जो जग उस देखा, विजना के ही रूप को पेखा ।
चरण पर्श उस के तब कीने, अहोभाग्य बुढ़िया निज चीने ।
विजना उन से लीन विदायी, स्मृद्धी की वर्षा कर पायी ।
बुढ़िया ने कहा पुत्र जाओ, साग पात तुम तोड़ के लाओ ।
और तो घर में है कुछ नाहीं, साग पका निर्वाह चलाहीं ।
आज्ञाकारी वह उठ पाया, साग लेन को तभी सिधाया ।

जूहीं निकला घर से बाहर, ठोकर लगी ज़ोर से पग पर ।
दो० पग से ठोकर खाय कर, गिर पड़ा जब बाल ।
उठ कर देखन फिर लगा, उस भूमि का हाल ॥ ८३४
उस ने जब इक शिला उखाड़ी, देग मिली नीचे से भारी ।
पिता अपने को तब बुलाया, धन निकाल वह घर को लाया ।
घर में भयी बहुत खुशहाली, होठों पर भी छायी लाली ।
खान पान से रहे न तंग, सेवा का फल लाया रंग ।
चने न बालक बेचन जाता, वृद्ध न अंधा रह इठलाता ।
एक दोकान वहीं बनायी, साथ पिता मिल पुत्र चलायी ।
वणिज चला अब उन का भारी, संपति आई घर में सारी ।
बड़े घरों से नाते आवें, कहें पुत्र का व्याह रचावें ।
दो० निश्चित कीना ब्याह को, चढ़ा घोड़ी जब बाल ।
हुआ खड़ा फिर उतर कर, उपजा एक ख्याल ॥ ८३५
स्मृती तभी उस के मन आयी, विजना की जिस याद दिलायी ।
कहा "घोड़ी चढ़ूं तब भाई, संग चले जब विजना माई ।
उस का ही तो सब प्रताप, एक वर्ष था कहा उस आप ।
आया आज वही दिन भाई, जब थी लीनी विजन विदाई ।
जाते ही उस संपत दीनी, प्रभुता हम ने उस से लीनी ।
विजना आए तो करूं व्याह, नहीं तो मुझ को न परवाह ।
बन्धु जनों ने तब समझाया, लग्न मुहूरत वेला आया ।
शीघ्र चढ़ो घोड़ी पर भाई, स्वागत हित है जनता आई ।

सब लोगों ने मिल समझाया, टस से मस ना उसको पाया ।

दो० टस से मस ना वह भया, सब जन थे हैरान ।
विजना भी थी देखती, प्रकटी वह तब आन ॥ ८३६क
देख वहां तब विजन को, मन में अति हर्षाय ।
लिपटा उस के चरण से, कथा न सुख वह जाय ॥ ८३६ख
आशिष उस को देय कर, घोड़ी पर बिठलाय ।
गयी विजन तब कह कर, "कारज शुभ हो जाय" ॥ ८३६ग

प्रभु जी ने यह कथा सुनाई, शिक्षा भक्त जनों ने पाई ।
योग से हो जग का कल्याण, प्रभु समझाते देय प्रमाण ।

४. एक सिद्ध योगी का श्री प्रभु जी के दर्शन करने को वनों से आना

बस्ती में जब थे प्रभु आए, वन के सकल सिद्ध विस्माए ।
अमृतसर को चित्त में ध्यावें, जिस नगरी को प्रभु अपनावें ।
योगी एक अमृतसर आया, हाथी गेट ठहर वह पाया ।
सन्त राम की धर्म जो शाल, बैठा उस में आसन डाल ।
नग्न रूप में वह वैरागी, विभूति उस के तन पै लागी ।
जनता उसको बैठा देखे, रात्रि दिवस समाधि में पेखे ।
दिन हुए कई उस को आए, नयन न उस ने खोल दिखाए ।
जनता उस की ख्याति बखानी, इस योगी का न कोई सानी ।

दो० कौन नगर में आ गया, हाल न जाने कोइ ।
कब तक बैठा यह रहे, पूछे जन हर कोइ ॥ ८३७

उस का भेद न कोई जानें, अपने मन से सब अनुमानें ।
ऐसा कौन तपस्वी होये, देह की सकल सुधि जो खोये ।
शीत घाम ना उस को व्यापे, प्यास भूख न लेश संतापे ।
सुन्न समाधी ऐसी लायी, सकल जगत की सुधि विसरायी ।
इस के मन में ईश समाये, अहर्निश बैठा उसे ध्याये ।
सतयुग हों तो योगी ऐसे, कलियुग में बन पाया कैसे ।
जन सब जा कर शीश झुकावें, मूर्ती सम उस को लख पावें ।
जा कर यदि कोई पुष्प चढ़ाता, अथवा सन्मुख फल धर पाता ।
वह सब वहीं धरा रह जाता, उस को न कोइ हाथ लगाता ।

दो० उस योगी को देख कर, भक्त कहें प्रभु पास ।
नाथ चलो तुम देख लो, योगी हैं बिन आस ॥ ८३८क

योगी है बिन आस वह, बैठा जग को भूल ।
जनता की भरमार है, लेती जो पग धूल ॥ ८३८ख

चलो नाथ तुम को दिखलावें, उस योगी के दर्श करावें ।
मिला न वन में होगा ऐसा, आ कर बैठा है वह जैसा ।
योगी तुम को बहु हैं प्यारे, सुनते हैं तुम से नित सारे ।
आप भी चल कर देखें आज, दर्श करो उस के महाराज ।
आज तो हम संग हि ले जायें, जा कर वह तुम को दिखलायें ।
उस योगी की गूढ़ समाधी, जिस भूलो जग सकल व्याधी ।
उस योगी को देखें चल कर, जो आया है वन से चल कर ।
अथवा ब्रह्म लोक से आया, हाथी गेट आ डेरा लाया ।

दो० चल प्रभो तुम देख लो, अवसर मिला अनूप ।
उस योगी की क्या कहें, शिव का है वह रूप ॥ ८३९

भक्त आग्रह इसी विध करते, प्रभु सुनी अनसुनी थे करते ।
इक दिन भक्तन अति हठ कीना, प्रभु उठे उन संग चल दीना ।
हाथी गेट प्रभु तब आये, विश्वनाथ पैदल चल पाये ।
अमृतसर की धरती पवित्र, जहां कीने प्रभु दिव्य चरित्र ।
धर्मशाला में तब पधारे, जहां थे लोग इकत्र भारे ।
प्रभु जी ने जा साध निहारा, सचमुच योगी वह था न्यारा ।
जीवन में बस योग की साध, और थी मन में भक्ति अगाध ।
गूढ़ समाधी में आसीना, अन्तर्यामी ने यह चीना ।

दो० देख कृपा का पात्र वह, प्रभु पधारे पास ।
उस की पीठ के पीछे, जा खड़े बिन हास* ॥ ८४०

जनता ने कुछ ध्यान न दीना, प्रभु का आना भी ना चीना ।
वह तो योगी की अनुरागी, जिस की गूढ़ समाधी लागी ।
जनता योगी को ही देखे, योगी प्रभु को मन में पेखे ।
प्राणाधार थे आ पधारे, योगी ध्यान मध्य सत्कारे ।
पीठ ओर प्रभु जब खड़ पाये, सहार तेज न योगी पाये ।
कांपा तन आसन भी घूमा, मस्तक ने प्रभु पग को चूमा ।
निज कर से प्रभु उसे उठाया, जनता विस्मित भेद न पाया ।
प्रभु को हठ से जो थे लाये, वे तो मन में अति विस्माये ।

* गंभीर मुद्रा में

दो० कर बांधे योगी कथे, हे योगेश्वर राम ।
धन्य भाग्य मेरे भये, कर दर्शन अभिराम ॥ ८४१

यह प्रभो अब संकट टारो, साधन के सब विघ्न निवारो ।
मांझ गुफा मैं साधन करता, प्रमाद व आलस मन न धरता ।
साधन में थी आयी बाधा, मैं तब सद्गुरु पग आराधा ।
गुरु ने तुमरा रूप दिखाया, दिव रूप वह मनहिं समाया ।
जो ज्योती सद्गुरु दिखलायी, खींच मुझे यह यहां है लायी ।
मैं तो साहस ना कर पाया, आप के आश्रम में न आया ।
यहीं बैठ मैं तुम्हें ध्याता, दिव शिक्षा मैं तुम से पाता ।
आप की शक्ति देखी भारी, मेरी बाधा सकल निवारी ।
अब स्वयं हैं आप पधारे, मेरे विघ्न निवारे सारे ।

दो० खेचर मुद्रा नाथ जी, मुझ को थी न सिद्ध ।
कृपा आप की अब भई, जो है जग प्रसिद्ध ॥ ८४२ क
इस विध विनय उचार कर, भया तपस्वी मौन ।
जनता के मन बात थी, प्रभु भक्त यह कौन ॥ ८४२ ख

यह बात मन उन्हीं विचारी, जिन पर ना प्रभु कृपा भारी ।
जो थे प्रभु भक्त कुछ ज्ञानी, उन रहस की बात पहचानी ।
प्रभु भक्तों की गिनती नाहीं, और न रहते वे इक थाहीं ।
बस्ती पर्वत जंगल घोर, प्रभु के भक्त फैले सब ठोर ।
जहां भी जो बैठा है साध, प्रभु चरणों की करत आराध ।
एक अनादि जगत के स्वामी, जगत गुरु प्रभु अन्तर्यामी ।

योगी उन का ध्यान लगाते, जन उन्हीं के गुण हैं गाते ।
काक भुषुण्ड है जिमि बखाना, सब सिद्धों ने तिमि पहचाना ।
जो समस्या सिद्ध की भारी, कृपा कर प्रभु वही निवारी ।

दो० सिद्धों के प्रभु संग हैं, भक्तों के भी साथ ।
प्रभु को सन्मुख देख कर, योगी जोड़े हाथ ॥ ८४३

योगी को जब इस विध पाया, प्रभु जी ने मुख से फरमाया ।
हे योगी तुम बड़ हो भागी, वृत्ति जिस की योग में लागी ।
मैं जानूं तुम दूर से आये, तुम को ना यह नगर सुहाये ।
तुम ने आंख न खोली लेश, प्रभु चिन्तन में रहे हमेश ।
योगी जग में तभी सुहावे, जग से बच कर जब रह पावे ।
रहे जगत में कमल समान, अविद्या स्पर्श करे न आन ।
प्रभु कृपा तुम योग आराधा, दूर भयी अब तेरी बाधा ।
अपनी कन्द्रा में अब जाओ, निर्भय हो कर योग कमाओ ।

दो० योगी निर्भय जानिये, रक्षक जिसके नाथ ।
आश जगत की त्याग कर, गहे नाथ का हाथ ॥ ८४४ क
प्रभु के सुन उपदेश को, योगी माथ झुकाय ।
सब जनता के देखते, त्यागी उस सराय ॥ ८४४ ख

कुछ जनता उस पीछे लागी, प्रभु के पग थी कुछ हो लागी ।
योगी के जो पीछे जाते, लौट पड़े सब को बतलाते ।
"कुछ दूरी हम उस को देखा, लोप भया फिर किसी न पेखा" ।
इस घटना का भया पसार, नगर में चर्चा का विस्तार ।

जनता के मुख पर इक नाम, "गण्डा राम का सुत जो राम ।
योगी वन से चल कर आवें, उस से शिक्षा पा कर जावें ।
मत उस को साधारण जानो, गुरुओं का भी गुरु पहचानो ।
उस के गुरु सिद्ध महादेव, सुमेरु गिरि पै कीनी सेव ।
लौट वहां से घर जब आये, घर में श्वेत वस्त्र उन लाये ।
वस्त्रों में उन योग छिपाया, जनता पर उन डाली माया" ।

दो० इस विध घर घर हो गई, प्रभु की ख्याति पूर्ण ।
राम लाल के नाम को, जानें जन संपूर्ण ॥ ८४५

५. श्री मुलखराज जी का प्रभु चरणों में अनुराग और साधु संग में रुचि

उमड़ उमड़ कर तिमि जन आवें, जिस विध शलभ दीप पर जावें ।
नाम शलभ का जब सुन पायें, मुलख राज तब सन्मुख आयें ।
कीन मुलख ने शलभ को मात, प्रेम का पुतला जो साक्षात ।
जग में ऐसी प्रीत न देखी, प्रभु चरणि जो मुलख की पेखी ।
कैसे भया यह परम सुयोग, मिला मुलख को प्रभु का योग ।
करूं प्रथम मैं यही बखान, मुलख के धर चरणों का ध्यान ।
रत्न देवी का सुत प्यारा, मुलख जो सब मुलख से न्यारा ।
इक इलाही जोत थी उस में, ढूंढन से भी मिले न जग में ।

दो० प्रभु की उत्तम जोत वह, प्रकट भयी इक गाम ।
बटाला की तसील में, है दलेरपुर नाम ॥ ८४६

था मुलख भगवान का रूप, कर्म किए जिस प्रकट अनूप ।
देवी दास पिता का नाम, छोड़ के आया वह था ग्राम ।
अमृतसर आय वणिज चलाया, मुलख राज ग्राम से आया ।
बालपन वहां मुलख बिताया, अद्भुत लीला वह कर पाया ।
ऐसा बालक ना जग माहीं, जैसा मुलख दृष्टि में आहीं ।
प्रभु प्रेम का स्रोत अटूट, उस के चित्त से निकला फूट ।
साधु संग ही वह कर पावे, और कारज न उस को भावे ।
पढ़ने हेत पिता ने पाया, विद्यालय में नाम लिखाया ।
लिखना पढ़ना गुरु सिखलावे, वह विद्या ना उस मन भावे ।

दो० छोटी विद्या क्यों गहें, जहां ज्ञान भण्डार ।
चातक को तुम शत कहो, हो न जल स्वीकार ॥ ८४७

स्कूली ज्ञान मुलख ना पाया, देवी दास दुकान बिठाया ।
बाल इलाही वणिज चलावे, तीन काल यह ना हो पावे ।
पिता निमग्न शोक में भारी, अपनी सोचे वह लाचारी ।
ज्येष्ठ पुत्र ही निकला ऐसा, जो बिल्कुल हैं खोटा पैसा ।
देवी दास नहीं पहचाने, मात पिता थे मोह भुलाने ।
दैवी रूह जब ले अवतार, लगे वह मात पिता को भार ।
यही सदा से चलती आई, नवीन बात न अब हो पाई ।
मुलख दुकान छोड़ कर जावे, साधु संगती वह कर पावे ।

दो० साधु संगती वह करत, मन से रहत उदास ।
इक घटना का था पड़ा, असर चित्त पर खास ॥ ८४८

घर में इक घटना हो पायी, चाची मुलख स्वर्ग सिधायी ।
शव ध्यान से मुलख निहारे, क्यों रोते हैं इसको सारे ।
यह तो बिल्कुल ठीक पड़ी है, जनता घेर के क्यों खड़ी है ।
प्रश्न मुलख ने मां से कीना, कारण रोने का पुछ लीना ।
मात कहा "चाची मर पायी, हम से उस ने लीनि विदायी" ।
कहा मुलख "मरना क्या होवे, चाची यहां पड़ी है सोवे" ।
माता प्रेम से तब बतावे, "बोलन वाला निकल के जावे" ।
"क्या सबन यह मौत है आती ?", "हां बेटा यह सब को आती" ।
"मर कर लोग कहां को जावें ?", "पास प्रभु के सभी सिधावें" ।
"क्या मर कर ही प्रभु है मिलता ?", "नहीं पुत्र जीते भी मिलता" ।
"मां मुझ को तब प्रभु मिलाओ", "प्रसंग बेटा न यह चलाओ" ।

दो० मां की 'नाहीं' श्रवण कर, हठ मुलख ने कीन ।
योग साध कर मिलत है, मां प्रकट कह दीन ॥ ८४९

मात मुलख को इस विध टाला, वचन मां का मुलख संभाला ।
करने लगा योगी की खोज, हर के मन्दिर जाय हर रोज ।
हर मन्दिर कथा होत थी नित, मुलख श्रवण करे लाय चित्त ।
सब से पूर्व मुलख था आता, निश्चल बैठा वह सुन पाता ।
कथा समाप्त जभी हो पाती, संगत सारी उठ कर जाती ।
जो महातमा कथा सुनाता, वह भी उठ कर जब चल जाता ।
मुलख तभी आसन को त्यागे, संग महात्मा के हो लागे ।
इक दिन महात्मा ने यह पेखा, पीछे बालक आता देखा ।

दो० बालक को वह देख कर, रुक गया तत्काल ।
लगा मुलख से पूछने, सब कुछ उसका हाल ॥ ८५० क
नाम धाम को पूछ कर, कहन लगा 'हे बाल ।
क्यों मम पीछे आवते, जानूं तेरा हाल ॥ ८५० ख

मैं देखूं तुम नित हो आते, यहां ध्यान से सब सुन पाते ।
आते प्रथम अन्त में जाते, जो सुना क्या समझ भी पाते ।
साधू बन मैं जन्म बिताया, बालक तुम सा कहीं न पाया ।
गूढ़ तत्व शास्त्रों के भारे, किमी समझ पाता तू सारे ।
आज बता समझ क्या पाया', सुन कर मुलख ने सिर हिलाया ।
साध कहा "यदि समझ न पाता, कौन भाव तुम को फिर लाता" ।
कहा मुलख ने "भाव न जानूं, आना मैं तो अच्छा मानूं" ।
गहरी बात मुलख कह पायी, साध के मन में जो न आयी ।
गिरा साध ने पुनः उचारी, थी उत्कण्ठा उस मन भारी ।

दो० आना तो अच्छा लगे, यह ठीक है बात ।
परन्तु मुझे बतलाओ, इच्छा अपनी तात ॥ ८५१

निज मन की तब मुलख बतायी, "चाची थी मेरी मर पायी ।
प्रभु के पास है वह पधारी, मां जाने वह वार्ता सारी ।
मां कहती है साध के योग, प्रभु पाने के बनोगे योग ।
तुम वह योग मुझे बतलाओ, वा प्रभु के पास पहुंचाओ ।
प्रभु लगते हैं मुझ को प्यारे, ऐसे आता तुमरे द्वारे" ।
साध ने सुन बच्चे का हाल, हंसी में उसे डाला टाल ।

साध समझा न वार्ता सारी, दिव पुरुष था मुलख अवतारी ।
था निमित्त उस योग बनाना, पाय प्रभु को जगत तराना ।

दो० बच्चे को उस टाल कर, कहा देख मम बाल ।
वह है नर जो जा रहा, जाने योग कमाल ॥ ८५२ क

आया है वह लौट कर, कर विदेश में योग ।
मिल तू उस को जाय कर, वह बहुत है योग ॥ ८५२ ख

इन्द्र देव है उसका नाम, घूमे देश विदेश तमाम ।
आंगल हिंदी का विद्वान, और योगी प्रसिद्ध महान ।
योग विद्या वह सब सिखावे, प्रभु दर्शन भी वही करावे ।
मुलख जभी उस से सुन पाया, इन्द्र देव के पीछे धाया ।
इन्द्र देव ने कर साक्षात, पूछा "बच्चे क्या है बात ।
मेरे पीछे क्यों हो धाये," मुलख राज तब बात बताये ।
महात्मा का उसे बतलाया, जिस कारण उस वहां पठाया ।
मुलख राज की रुचि पहचान, परन्तु बालक उस को जान ।
इन्द्र देव ने उसे निवारा, उस के भाव को न सत्कारा ।

दो० बालक उस को जान कर, बोला योगी राज ।
अभी योग ना कर सको, घर जाओ तुम आज ॥ ८५३

सुन यह मुलख की टूटी आस, खड़ा भया वह होय उदास ।
योगी बोला "बात बताऊं, * षट् कर्म मैं तुम्हें सिखाऊं ।

* नेति, धौति, नौलि, वस्ति, त्राटक और कपाल भाति

षट् कर्म ना मुलख पहचाने, गुरु का मन्तर उस को माने ।
हो प्रसन्न वह कहने लागा, "षट् कर्मन का मैं अनुरागा" ।
"जाओ सौ रुपया ले आओ, यह विद्या फिर मुझ से पाओ" ।
मुलख वह धन कहां से लावे, उत्तर में उस को कह पावे ।
इतनी राशि कहां से लाऊं, नित इक पैसा मैं दे पाऊं ।
कानों में आनन्त पड़ी है, नूतन जाकट देह लगी है ।
ये दोनों मैं तुम पै वारूं, कर योग जिमी प्रभु को धारूं ।

दो० इन्द्र देव ये श्रवण कर, मन लागा मुस्कान ।
"जाओ यहां से भागो", दीना क्रोध जतान ॥ ८५४ क

लीला बालक मुलख की, भक्तन के मन भाय ।
'सेवक' इसको स्मरण कर, अद्भुत भक्ति पाय ॥ ८५४ ख

मुलख लौट आया निराश, हुआ न पर वह लेश हताश ।
अखण्ड जोती उस मन जलती, प्रभु प्रेम की ज्वाला उठती ।
देती विश्व को जो उजाला, उस को कौन बुझाने वाला ।
गुरु खोज में रहत निरन्तर, प्रभु प्रेम में पड़ा न अन्तर ।
हर मन्दिर में नित वह जाता, दर्शन साध जनों के पाता ।
इक दिन वृद्ध साध इक देखा, प्रभु गुण गाण करत उल्लेखा ।
उस की शिष्या भी थी गावे, प्रभु प्रेम का रस सरसावे ।
प्रभु प्रेम का मुलख प्यारा, कीर्तन सुन पाया वह सारा ।
उपजा साध प्रति अनुराग, भाये मन में उस के राग ।

दो० साधू को सत्कार कर, पूछी उस से बात ।
वास आप का किधर है, हमें बताओ तात ॥ ८५५ क

दर्शन हित हम आंयगे, नित प्रति महाराज ।
गंग बहायी आपने, प्रभु भक्ति की आज ॥ ८५५ ख

बालक के सत्कार युत, वचन सुने जब खास ।
सुलतान विण्ड के गेट, बताया निज निवास ॥ ८५५ ग

लौट मुलख जब घर को आया, उस मन प्रभु का रूप समाया ।
मन में उस ने निश्चय धारा, साध संगत करूं दिन सारा ।
सुलतान विण्ड जाने लागा, साध संग का जो अनुरागा ।
कबीर पंथ साध अनुयायी, केवल कीर्तन में रुचि लायी ।
पंथ में योग है बतलाया, साधन पर ना साध कमाया ।
मत सकल हैं योग से उपजे, अनुयायियों के मन न सुलझे ।
मन प्रमादी योग त्यागा, इन्द्रिन के वह पीछे लागा ।
अपनी मर्ज़ी करता मनुआ, जीव बना इस विध ना गुरुआ ।

दो० अपनी मर्ज़ी करत है, लेकर गुरु का नाम ।
उलटा मग इस विध गहे, करत धर्म बदनाम ॥ ८५६

हुए मुलख को कुछ दिन जाते, और कीर्तन में मन लगाते ।
प्रभु दर्शन का भया न भास, कुछ ज्ञान भी मिला न खास ।
भाव मुलख के मन तब जागा, साधु केवल राग अनुरागा ।
एक भक्त से पूछा उस ने, "शुरु किया कब आना तुमने" ।
"मैं वर्षों से आता" बोला, "साधु क्या मन ताला खोला" ।

"ऐसी तो मैं बात न जानूं, गाने में ही रति मैं मानूं ।
मन तो वैसा ही मैं पाऊं, वश में किमि मैं उस को लाऊं ।
राग सहित गुण प्रभु के गावें, अपना इमि हम काल बितावें" ।

दो० सुन कर उस की बात को, मन मुलख के आयी ।
राग रागिन की शिक्षा, यह न योग कमायी ॥ ८५७

योग कमायी यह ना जानूं, इस को लौकिक विद्या मानूं ।
लौकिक विद्या से जो न्यारी, मुझ को विद्या वह ही प्यारी ।
मैं तो समझूं गुरु से सोय, जन्म मरण का रहस जो होय ।
और पूछूं मैं वह इस्थान, जहां पर मिलता प्रभु का ज्ञान ।
इस जन ने कुछ वर्ष बिताये, मन तक वश ना इस का आये ।
क्यों मैं अपना समय गवाऊं, घर न अब इस साध के आऊं ।
हंडिया के पकवान स्वरूप, मुलख टटोला साध का रूप* ।
उस दिन से उस जाना त्यागा, योगी गुरु का वह अनुरागा ।

दो० मुलख मुलख के भूप जो, मन में परम उदास ।
योगी सद्गुरु कब मिलें, बीत रहे हैं श्वास ॥ ८५८

बीता श्वास जीव का जाता, चौरासी का चक्र चलाता ।
इस चक्र से छूटे वह जन, योग करे वा होवे स्थिर मन ।
यदी गुरु नहीं योग सिखावे, शिष्य किमि मन स्थिर कर पावे ।
स्थिर मन करत प्रभु का दर्शन, यही बतावें हैं सब दर्शन ।

* जैसे एक दाना लेकर हंडिया के पकने अथवा न पकने का ज्ञान कर लिया जाता है वैसे ही एक शिष्य की स्थिति से श्री मुलख राज ने पता लगा लिया कि वह महात्मा योग का ज्ञाता नहीं था ।

क्यों मुलख वहां चल के जावे, जहां योग की सीख न पावे ।
जग में गुरु बन फिरें अनेक, योग का ज्ञाता विरला एक ।
उस एक का मुलख अभिलाषी, वह ढूंढत पताल आकाशी ।
जहां साध की सुध वे पावें, तुरंत वहीं मुलख जी जावें ।

दो० प्रभु की साची प्रीत थी, घट मुलख के मांहि ।
प्रभु थे बैठे देखते, काल उडीकत* आंहि ॥ ८५९

काल मर्यादा प्रभु निभावें, नियम सृष्टि के पाल दिखावें ।
बैठ मुलख की प्रीती देखें, मुख से वचन न लेश उलेखें ।
मुलख था सत्संग में जाता, तोष कहीं भी वह ना पाता ।
उस के मन की जो बेचैनी, केवल मिलती प्रभु को सैनी ।
सिरफ मुलख ही उस को जाने, अथवा सद्गुरु राम पहचाने ।
काल ने कर राखा था दूर, नगरी एक पर कोसों दूर ।
धरा गगन का जिमि हो अन्तर, मेलें प्रभु जो नित्य स्वतन्त्र ।
चकोर चान्द को न मिल पावे, उस की तड़पन बढ़ती जावे ।

दो० बढ़े तड़प थी मुलख मन, कहे कहां हो ईश ।
प्राणों के प्रभु प्राण तुम, करो कृपा जगदीश ॥ ८६०

प्राणनाथ हे प्राण प्यारे, अन्तर की तुम जानन हारे ।
जल बिन मीन तड़प रही नाथ, कृपा वृष्टि कर करो सनाथ ।
प्रभु से उत्तर कुछ ना पावे, नित्य तड़प थी बढ़ती जावे ।

* उडीकत – प्रतीक्षा में

सुनता जहां साध है आया, उठ तुरन्त वह वहीं सिधाया ।
लक्ष्मण सर इक साध पधारा, नाम धारी उस वस्त्र धारा ।
माने उस को जनता भारी, उस की वाणी भी थी प्यारी ।
निकट उसी के जो चलि आता, राग रसिक था वह बन पाता ।
देता अति सुन्दर दृष्टांत, जो सुन होता था मन शांत ।

दो० ख्याति उस की श्रवण कर, गये मुलख उस पास ।
इक सज्जन वहां देखा, राम रटत हर श्वास ॥ ८६१

विह्वल हो कर कभी पुकारे, "हे राम मम प्राण प्यारे" ।
"कृष्ण कृष्ण" वह कभी उचारत, "राधे राधे" कभी पुकारत ।
"देवो दर्शन" कहे "मुरारी", बहुत करत वह आवाज़ारी ।
जन संत को कहें "महाराज, करा दो दर्शन इसको आज" ।
मुख से साध यही फरमावे, "पहले घायल होने पावे" ।
जब जब मुलख वहां पै जाता, यही दृश्य था सन्मुख आता ।
गुरु शक्ति का भास ना मिलता, मन कमल ना शिष्य का खिलता ।
प्रभु मिलन की तड़प जो भारी, योगी बिना अपूरण सारी ।

दो० योगी सद्गुरु ना मिले, मिटे न मन का खेद ।
सूरज के उजयार बिन, किमि हो तम का भेद ॥ ८६२

मुलख वहां पै जाना त्यागा, हर मन्दिर फिर आने लागा ।
इक महात्मा वहां पर आया, "चौक करोड़ी संत" कहाया ।
अति मधुर वह भजन था गाये, भक्तन के सुन मन हर्षाये ।
कीर्तन उस का मन हर्षाता, जो सुनता वह सुख को पाता ।

मुलख राज कीर्तन में आया, पास संत के आसन लाया ।
प्रभु भक्ति का भजन इक चाला, भूला सुधी मुलख तत्काला ।
देह गिरा उस का उस काल, जिसे संत ने लीन संभाल ।
भक्त देख के भये हैरान, अनन्य भक्ति का पा प्रमाण ।

दो० नाम प्रभु का श्रवण कर, जो बिसरे निज भास ।
वास करें उस मन प्रभु, दिव-दर्शन प्रकास ॥ ८६३

दिव प्रकाश मुलख मन छाया, देहाध्यास मुलख विसराया ।
मुलख भया जन अंखिन तारा, कीर्तन रस था सबन विसारा ।
साध से पूछत जन समुदाय, "बालक ने क्यों होश भुलाय ।
आप इसे हैं गोद लिटाय, होश में कब यह आना पाय" ।
सुन कर साध जनता की बात, बोला उन से "सुनो जी तात ।
इस को बालक ना तुम जानो, गुरु मुख इस को योगी मानो ।
सद्गुरु जोती इस घट मांही, दर्शन पाय सुधी विसरांही ।
इस ने देह की सुधि भुलाई, सद्गुरु चरणी है लिव लाई ।

दो० गुरु चरणों को ध्याय कर, मन इस का उपराम ।
गोद हमारी जो पड़ा, यह तन गुरु का धाम ॥ ८६४क
दर्शन इस का जो करे, हो वह पूरण काम ।
प्रभु का सुन्दर रूप है, यह बालक अभिराम" ॥ ८६४ख

सुनी संत की संगत वाणी, सब ने मानी वह कल्याणी ।
मुलख राज के दर्शन करते, दिव रूप वह चित्त में धरते ।
आंख मुलख की तब खुल पायी, मुलख निहारी जन समुदायी ।

जभी मुलख ने नयनन खोले, जनता सारी "धन धन" बोले ।
मुलख उठा वा चलने लागा, उस के संग संत हो लागा ।
मुलख़ राज जब घर में आया, संत स्वागत वह कर पाया ।
माता भी उस को सत्कारा, "जी आयां नूं" कह उचारा ।
संत कहे "हे माता प्यारी, तेरे सुत पर मैं बलिहारी ।

दो० ईश्वर का यह रूप ही, पुत्र अपना जान ।
तारेगा यह वंश को, ऐसा मेरा ज्ञान" ॥ ८६५ क

कहें मात "हे संत जी, संतों की यह दात ।
संतो कीं ही हैं दया, मैं कौन हूं मात ॥ ८६५ ख

यह है साधु संग का प्यारा, रहता है यह जग से न्यारा ।
घर का काम न इस को भावे, प्रभु भजन में चित्त को लावे ।
काम काज में रुचि ना लेवे, सतसंग में मन अपना देवे ।
पिता रहे इस का परेशान, जो होवे सब करता दान ।
वणिज में देता न यह ध्यान, देवो तुम कुछ इस को ज्ञान ।
घर बार की यह सुध न लेवे, निज पिता को मदद न देवे ।
यही हमारा जेठा पूत, करो कृपा जिमि होवे सूत ।
इस के सर पर राखो हाथ, काम करे यह पिता के साथ" ।

दो० सुत ममता की बात को, श्रवण किया जब साध ।
कहा तभी समझाय कर, "प्रभु को नित आराध ॥ ८६६ क

जो लिखा है भाल पर, होन हार है सोइ ।
किसमत को न मेट सकें, कहें ज्ञानी जोइ ॥ ८६६ ख

हे माता तुम चिन्ता त्यागो, ध्यान भजन में अब से लागो ।
त्यागो सकल शोक को आज, प्रभु संवारे तुमरे काज" ।
ऐसा कह कर गया वह साध, माता मन था शोक अगाध ।
पुत्र किमी कारज में लागे, संतों का वा पीछा त्यागे ।
शोक में डूब गई जब मात, नाद सुना इक उस साक्षात ।
"जग जननी शोक क्यों करती, मन अपने को छोटा करती ।
सुत यह तेरा है भगवान, जगत करेगा इसका मान ।
नभ में जब तक सूरज ताप, विचरेगा इस का परताप" ।

दौ० श्रवण करी जब मात ने, नभ की यह आवाज़ ।
चित्त भया कुछ शांत तब, नशा शोक का साज़ ॥ ८६७

रत्न देवी पुत्र पहचाना, नभ की वाणी को सन्माना ।
संत करोड़ी जब चलि आता, माता के मन को अति भाता ।
संत से पाया उस ने ज्ञान, अपने बालक की पहचान ।
नित्य करे उठ सुत का दर्श, ऐसा उस मन भया आकर्ष ।
मन मुलख की न कोई जाने, प्रेम विरह को ना पहचाने ।
प्रभु मिलन की तड़प थी भारी, उनिन्द्रित कटती रात्रि सारी ।
विरह आग थी मन में जलती, सकल देह थी उस की सलती ।
क्षण इक आंख लगे खुल जाती, याद प्रभु की तभी सताती ।

दो० अन्तर्यामी सद्गुरु, रहें मुलख के गात ।
मुलख विरह में तड़पता, यह अनोखी बात ॥ ८६८

श्वास श्वास मुलख उच्चारे, "कब मिलोगे सद्गुरु प्यारे" ।

संत न अब कोई रह पाया, मुलख न जिस को माथ झुकाया ।
योगी सद्गुरु ना मिल पाया, रहा मुलख़ का मन मुरझाया ।
मन का कमल खिलेगा तब ही, योगी राम मिलेंगे जब ही ।
योगी राम गुप्त थे रहते, संतों का न वेश वे वहते ।
उन को सब जन पण्डित जानें, पण्डित राम लाल ही मानें ।
ज्योतिष का हैं कारज करते, जिमी पिता थे उन के करते ।
राम की है अनोखी माया, जिस ने वेश में सत छिपाया ।

दो० हार गया था ख़ोज कर, मुलख न पाया राम ।
घर छोड़ा वा चल दिया, मिल पायें जिमी राम ॥ ८६९

६. श्री मुलख राज जी का प्रभु खोज में घर से प्रस्थान

पठानकोट को वह सिधारा, जमूं राज में तब पग धारा ।
जमूं नगरी अतीव प्यारी, भरी हैं जिसमें छवी न्यारी ।
इमि बसी है पर्वत ऊपर, देव पुरी जिमि उतरी भू पर ।
घर घर में जहां मिलते देव, पूजा अर्चन होती सेव ।
मन्दिरों की भरमार जानों, भक्त जनों का अन्त न मानों ।
आर्ती की जब घड़ियां आवें, बहु संख्या में भक्त लखावें ।
तिल धरने की थां ना दीखे, शंख धुनि संग नभ भी चीखे ।
अगर धूप धूम मण्डरावे, नभ में नूतन मेघ लखावे ।

दो० उस नगर में पहुँच कर, मुलख ढूंढता साध ।
मन्दिर मन्दिर जाय कर, करत देव आराध ॥ ८७०

साध संग में मुलख सिधाता, देवालय में उन को पाता ।
कभी नदी के तट पै जाये, स्नान 'तवी' में कर के आये ।
साधु की जहां कुटिया देखे, दर्शन हित जा उस को पेखे ।
प्रभु मिलने की बात चलाये, तोष न मन का फिर भी पाये ।
पार 'तवी के भी वह जाता, 'बाहवे' को भी वह सिधाता ।
उस को लगन यही थी भारी, मिलें गुरु मुझे अब पापारी ।
सुन कहीं पै है कोई साध, पहुँच जाये वहां बिन बाध ।
वन का भय ना उसे डरावे, सिंह चीते से भय न खावे ।
इक दिन ऐसा ही हो पाया, सिंह पास से उठ के धाया ।

दो० सिंह गया था पास से, मस्ती मुलख अभंग ।
किसका भय उस भक्त को, रहें प्रभु जिस सँग ॥ ८७१

प्रभु तो अंग संग थे चलते, खोज हित वन मुलख थे फिरते ।
मुलख के तन की रक्षा करते, मन में धीरज भी वे भरते ।
निर्भय होय मुलख था चलता, मुलख राज न लेश भी डरता ।
ऐसा निर्भय बालक भाई, यह तो थी प्रभु की प्रभुताई ।
प्रभु सदैव मुलख सँग रहते, उस का क्षेम योग थे बहते ।
वन थे कई मुलख ने छाने, कई संत भी उस सन्माने ।
सद्गुरु मिल पाये ना उस को, लौट आया तब अमृतसर को ।
मात पिता थे चिन्तित भारी, देख मुलख को भये सुखारी ।

दो० मात पिता ने सोच कर, यह निर्णय तब कीन ।
इसकी शादी हम करें, घर में तब हो लीन ॥ ८७२

७. श्री मुलख राज का विवाह

मुलख राज की कीन सगाई, झँडा राम की थी जो जाई ।
मोहन कौर था उस का नाम, जन्म भया जगदेव ग्राम ।
दिव्य लोक से थी वह उतरी, झँडा राम की सुन्दर पुत्री ।
मुलख राज के घर जब आई, पति भक्ति उस ने अपनाई ।
मुलख राज के शुभ वीचार, करती उन का वह सत्कार ।
साधू सेवी पति था प्यारा, मोहन कौर वही व्रत धारा ।
लौट न पति जब तक घर आवे, वह भी भोजन ना कर पावे ।
रात्री काल देर हो जाये, रहे द्वार पर कान लगाये ।
आहट पति की जब सुन पावे, द्वार खोल प्रवेश करावे ।

दो० मुलख राज की नार थी, पति परायण पूर्ण ।
उस का तो था मुलख को, योग मिला सँपूर्ण ॥ ८७३

मात पिता की इच्छा जान, मुलख गृहस्थ कीना प्रवान ।
प्रभु कृपा हो जिस के ऊपर, बाधा लेश न आवे उस पर ।
मुलख राज़ मर्याद निभावे, अपने कर्म सभी कर पावे ।
पिता की हाटी पर वह जाता, आढ़त का सब काम चलाता ।
पत्नी के संबन्धी प्यारे, मुलख सबन को था सत्कारे ।
ससुर आप का भया बीमार, प्रविष्ट हुआ वह हस्पताल ।
मुलख नित्य भोजन ले जाता, और सेव में चित्त लगाता ।
प्रभु भक्तों की यही बढ़ायी, दुःख में सब के बनें सहायी ।

दो० रेल लाईन के पास, देखा यवन फकीर ।
भोजन की जिस याचना, कीनी आ गंभीर ॥ ८७४

मुलख न भेद भाव को जाने, ईश्वर के सब बन्दे माने ।
हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई, जाने सब को भाई भाई ।
एक ईश्वर की सृष्टि सारी, प्रभु को लगती है जो प्यारी ।
जो सृष्टी से करता प्यार, ईश्वर से वह पाये दुलार ।
सृष्टी से जो करता द्रोह, कोप ईश्वर का पाये वोह ।
भूख लगी फकीर को देखी, वह भूख निज भूख ही पेखी ।
प्रभु भक्त की यही पहचान, पर दुःख ले निज दुःख ही मान ।
प्रभु कृपा को वही नर पाता, दीन दुःखी को जो अपनाता ।

दो० भूखा देख फकीर को, मुलख गया बाज़ार ।
भोजन उस को ला दिया, उस कीना स्वीकार ॥ ८७५

फकीर लिया भोजन जब पाय, दीनी मुलख को उस दुआय$ ।
'राज़ी रह बेटा' कह पाया, "कहां चले हो" तब फरमाया ।
मुलख ने सारी बात बताइ, रोगी ससुर की विथा सुनाइ ।
वह भी तो था सिद्ध फकीर, जनता माने उस को पीर† ।
उसने निज इक बाल उतारा, और मुलख को वह दे डारा ।
"यह रोगी के पल्ले‡ बांधो, और प्रभु का नाम अराधो ।
अल्लाह देगा उसे शफाओ††, हे बेटा तुम मत घबराओ" ।
साध सेवा न निष्फल जाये, सदा से ऐसा चलता आये ।

$ आशीर्वाद † गुरु ‡ वस्त्र †† नीरोगता

दो० भोजन उसे खिलाय कर, जा मुलख हस्पताल ।
निज ससुर को देखकर, बांधा वस्त्र बाल ॥ ८७६

मुलख के ससुर को मिली शफा, फकीर व मुलख में भयी वफा ।
कई बार यह मिलने आया, आओ-भगत* मुलख कर पाया ।
ऐसा मुलख का था प्रभाव, कर दर्शन बढ़ता भक्ति भाव ।
ईश्वर भक्त जोय नर होता, देख मुलख आकर्षित होता ।
प्रभु भक्ति की महिम जो होय, प्रकट भयी थी मुलख में सोय ।
मुलख का मन पर था बेचैन, सद्गुरु मिले सोचत दिन रैन ।
मिलता गुरु ना जब तक जन को, चैन आता न नर के मन को ।
लक्ष्य हीन ही जीवन जाये, जब तक नर ना गुरु को पाये ।

दो० मुलख का मन अशांत था, शान्ति किस विध पाये ।
इक घटना ऐसी घटी, किमि को सकत भुलाय ॥ ८७७ क

भारत मात अधीन थी, आंगल का था राज ।
अत्याचार असीम था, मौन रहे को साज ॥ ८७७ ख

८. जलियां वाले बाग काण्ड का

श्री मुलख राज के मन पर गहरा प्रभाव

शासक शोषक बन के बैठे, सर जनता के चढ़ कर बैठे ।
सैनिक शासन थां थां लागू, मौज करे जो थे पिछलागू ।
देश भक्त होते अपमानित, अथवा गोली से निशानित ।

* स्वागत

कारावास में ठूंसे जात, तख्ता फांसी चूम वे पात ।
खूनी होली खुल कर चलती, शासक शासित में थी खलती ।
घर से बाहिर निकलना दोष, आंगल शासन का बहु रोष ।
चाहे जिसे दो गोली दाग, परतन्त्रता का यह दुर्भाग ।
आत्मा भारत की विक्लांत, जागी देश में परम क्रांत ।

दो० देश भक्ति अपराध था, मां कहना भी दोष ।
मातरी भूमि जो कथे, उस पर बरषे रोष ॥ ८७८ क
माइ-बाप अंग्रेज थे, झुक झुक करो सलाम ।
जो नर ऐसा ना करे, जीना भये हराम ॥ ८७८ ख

जय अंग्रेज कहे न जो नर, लाठी बरसे उस के सर पर ।
मार पीट से जब मर जाये, और जो उस का शव उठाये ।
वह भी विद्रोही कहलाता, और जेल में डाला जाता ।
हिन्दु धर्म को जो अपनाये, राज द्रोही नर कहलाये ।
त्याग धर्म ईसाई बनता, ऊंचे पद पर नर वह चढ़ता ।
पढ़े हिन्दी सो मूढ़ महान, आंगल सीख बने विद्वान ।
धोती कुर्ता जो नर लाये, परम असभ्य वह जन कहाये ।
यज्ञोपवीत तिलक जो धारे, कौन न उस नर को दुतकारे ।
ला वही जब हैट था आता, आदर को वह नर था पाता ।

दो० राज द्रोह के चिन्ह थे, हिन्दी हिन्दी–वेष ।
कड़ी आंख उन नरन पै, जिन को प्रिय निज देश ॥ ८७९

हिन्दू पर्व को जो मनावें, दकिया नूसी वही कहावें ।

बड़ा दिवस* ही बना त्योहार, उसे मनावे थी सरकार ।
नव वर्ष का दिन वही आवे, प्रथम जनवरी तिथि कहलावे ।
उस दिन सभी बधाई देते, 'माइ-बाप'† थे डाली‡ लेते ।
वैसाखी से वर्ष आरम्भ, ऐसा कहना भी था दंभ ।
विक्रम संवत को तुम छोड़ो, ईस्वी सन से नाता जोड़ो ।
जनवरी इक को दो बधाई, वैसाखी से तुम लो विदाई ।
नीती जो ना यह अपनावे, राज द्रोह का दण्ड वह पावे ।
ऐसा आंगल का था शासन, लण्डन में था जिस का आसन ।

दो० सात समुन्दर पार से, करता जो था राज ।
उस के प्रति विद्रोह में, जागी जनता आज ॥ ८८०

आज जगी थी जनता सारी, अमरितसर नगरी में भारी ।
दिन वैसाखी$ परम पवित्र, नव वर्ष की धूम सर्वत्र ।
सब मनों में खुशी थी छाई, बहिर निकलना पर भय दाई ।
मार्शल-ला†† था लागु बाहर, भय शासन का व्यापक घर घर ।
राज मार्ग पर चलती गोली, बन्द बज़ार खून की होली ।
जनता पर्व मिल किमि मनावे, बाहर एकत्र न हो पावे ।
बाग़ जलियां में जन समुदाइ, वैसाखी के दिन मिल तब आइ ।
आज खुशी का दिन था भारा, वर्ष पूरे के बाद पधारा ।

दो० हर्ष पक्षी का देख कर, सहन करे न सांप ।
जनता के उल्लास से, गया फिरंगी कांप ॥ ८८१

* क्रिसमिस डे, 25 दिसम्बर † अंग्रेज अफसर ‡ उपहार $ 13 अप्रैल 1919 †† सैनिक शासन

आ फिरंगी बाग को घेरा, द्वार पै डाल दिया उस डेरा ।
मशीन गनें चहुँ ओर गाड़, बहा दीनी गोलों की हाड़ ।
तड़ तड़ तड़ तड़ भुन गये लोग, मिला फिरंगी को था भोग ।
नरक कूप बना वह स्थान, फिरंगी अकड़े सह अभिमान ।
हाहाकार मची चहुं ओर, शुभ दिन भया जुलम यह घोर ।
बिरला ही जन को बच पाया, सोय बचा जिसे प्रभु बचाया ।
जिस के रक्षक हों भगवान, उस का करते आ कर त्राण ।
मुलख राज भी बाग में ठहरा, रक्षक बन प्रभु दीन सहारा ।

दो० रक्षा कीनी नाथ ने, किसी अलौकिक रीत ।
रामलाल भगवान की, थी मुलख से प्रीत ॥ ८८२ क
परीक्षित की जिमि कृष्ण ने, गर्भ में रक्षा कीन ।
तिमी मुलख को राम ने, दान प्राण का दीन ॥ ८८२ ख
शांत भयी बोछाड़ जब, गोली की उस काल ।
उठा मुलख किसी रीति से, अपने होश सम्हाल ॥ ८८२ ग
असंख्य शवों के मध्य से, निकला मुलख अछूत ।
प्रभु कृपा किमी करत हैं, मिला प्रत्यक्ष सबूत ॥ ८८२ घ

जलियां वाले कांड को देख, मुलख ने मन में कीन उलेख ।
भारत मां जब तलक गुलाम, व्यर्थ हैं सारे दूजे काम ।
आंगल का हम करें सफाया, जिमी शिवा जी मुग़ल मुकाया ।
अंग्रेज़ करे तो नर संहार, कब तक लें हम इसे सहार ।
हथेली पर धर सर जब आवें, स्वतन्त्रता को हम तब पावें ।

हुआ मुलख तब क्रांति वादी, पहनी उस ने शुद्ध फिर खादी ।
सत्याग्रह में हुआ शरीक, चलाई जिसकी गांधी लीक ।
स्वतन्त्रता जन का अधिकार, सत्य करें यह सब स्वीकार ।

दो० सत्य को स्वीकार कर, करता आग्रह आन ।
सत्याग्रही वह नर हो, बने देश की शान ॥ ८८३ क

बने देश की शान वह, आहुत करत प्राण ।
सत्य ईश से वह मिले, प्रभु मिलें या आन ॥ ८८३ ख

९. श्री मुलख राज को श्री प्रभु जी का प्रथम साक्षात्कार

मन में उच्च भावना धार, करता नारों की ललकार ।
देश आज़ाद कराने हेतु, वह लहराता देश का केतु ।
चलता मुलख जलूस के आगे, प्रभु पधारे प्रेम में पागे ।
निज बालक को देखा जाता, प्रभु का मन स्नेह रस राता ।
निज संकल्प की शक्ति छोड़ी, उधर मुलख ने गर्दन मोड़ी ।
हुआ इक चुम्बक सा आभास, प्रभु बुलाया मुलख को पास ।
नाम धाम सब उस का जाना, दे कर आशिष हुए रवाना ।
जोश मुलख के मन था भारी, प्रभु लागी थी मूर्ति प्यारी ।

दो० प्रभु मूर्ति मन धार कर, थाम पताका हाथ ।
जय कारों को बोलता, मिल जनता के साथ ॥ ८८४

देख मुलख घर को प्रभु आये, हृदय मांझ न स्नेह समाये ।

रूप मुलख जब सन्मुख लाते, प्रेम भाव से प्रभु मुस्काते ।
प्रेम की शक्ति जो है गाई, आज प्रभु के चित्त समाई ।
सकल जगत को रचने वारे, और रहें जो जग से न्यारे ।
निज बालक को आज निहार, व्यापा उन मन स्नेह अपार ।
पण्डित राम रत्न प्रभु दास, हाथ बांध उस कीन अरदास ।
"मुदिता का प्रभो क्या कारण, त्रिगुणातीत हे दुःख निवारण ।
प्रभु मुख पर मुस्काहट देख, और अलौकिक भाव को पेख ।
हम सब हैं आनन्द विभोर, रहस्य बता दो प्रभु इस ठौर ।

दो० प्रभु रहस्य की बात को, हमें बतावें नाथ ।
हम भी बांटें नाथ जी, खुशी आप के साथ" ॥ ८८५

सुन कर राम रत्न की बात, लगे बताने जग के त्रात ।
"रहस विधाता के जो भारे, गुप्त हैं काल चक्र में सारे ।
जीव न उन को जानन पावें, प्रभु कृपा से वे प्रकटावें ।
कुछ संस्कासें का आकर्ष, जिस से मन में उमड़ा हर्ष ।
आज बाल इक हमने देखा, ईश्वर का स्वरूप ही पेखा ।
जिमि है किरण सूर्य से बंधी, उस की ईश्वर से है संधी ।
जिमि सूरज है किरण प्राण, प्राण उसी के तिमि भगवान ।
श्वास श्वास से बहती धारा, जिस में प्रभु का प्रेम अपारा ।

दो० राम रत्न मैं सच कहूँ, उस सा जग में नाहीं ।
उससे मिल कर चित्त का, परम न हर्ष समाहिं" ॥ ८८६ क

प्रभु के वचन श्रवण कर, हर्षा भक्त समाज ।
ऐसा बालक कौन है, देखा प्रभु जो आज ॥ ८८६ ख

हर्षित भक्त तभी कह पाये, "मुख से प्रभु जो वचन सुनाये ।
इच्छा उन से उपजी भारी, लालायित है मण्डली सारी ।
उस बालक को जा कर लायें, दर्शन हम सब भी कर पायें ।
नाम धाम जो आप बतायें, मिल कर हम सब अब ही लायें" ।
प्रभु जी भक्तों को समझाया, जो रहस्य था वह बतलाया ।
"ढूंढन बालक को ना जावें, स्वयं प्रभु उस को यहां लावें ।
ज्योति शलभ को खींच के लाती, भक्ति प्रभु से भक्त मिलाती ।
भक्ती में अति शक्ती मानो, योग की महिमा को पहचानो ।

दो० निजेच्छा से आयेगा, जन्म सिद्ध वह बाल ।
सात दिवस के बाद तुम, जान सको सब हाल ॥ ८८७

एक बात मैं यह बतलाऊं, महिमा बालक की समझाऊं ।
जब जब जग भीतर मैं आऊं, मैं उसे भी संग ही लाऊं ।
वियोग मेरा करे ना सहन, ढूंढत मुझ को दिन वा रैन ।
धर्म हेतु वह जग में आता, माया जाल न उसे सुहाता ।
मुझ को मिल वह करेगा योग, सहन न इक पल करे वियोग ।
दिवस आठवें वह चलि आये, बूंद सिन्धु वत सुरत समाये ।
ध्वजा योग की वह लहरावे, जब जब जग में मम सह आवे ।
जितने भक्त प्रभु के आये, उन सब से वह बढ़ चढ़ जाये ।

दो० उत्तम जन वह जानिये, दिवस आठवें आय ।
उसका दर्शन जो करे, मनोकामना पाय" ॥ ८८८

सुन कर यह रहस्यमय वाणी, प्रभु की महिमा सब ने जानी ।
प्रभु वचनों पर कर प्रतीत, करें प्रतीक्षा हो इक चीत ।
उधर मुलख के मन का हाल, प्रभु दर्शन से भया बेहाल ।
देश भक्ति की लिव जो लागी, वृत्ति रही ना वह अनुरागी ।
उदासीनता छाई ऐसी, भूली सुधी देह की जैसी ।
काम काज में चित्त न लाये, बैठा हाट उदास लखाये ।
पण्डित राम रत्न तब आया, मुलख राज को देख वह पाया ।
बोला "भाई क्यों हो उदास, आज लगे कुछ बात है खास ।

दो० जो भी मन में बात हैं, मुझे बतावो मीत ।
सेवा जो कुछ होयगी, मैं करूं ला चीत" ॥ ८८९

परिचित राम रत्न था खास, और बैठा था मुलख उदास ।
मुलख राज ने उसे बताया, अपने दिल का हाल सुनाया ।
"संकट में हूँ भाई भारी, व्यर्थ में आयु बीती सारी ।
ढूंढ ढूंढ कर मैं हूँ हारा, मिला मुझे न सत्गुरु प्यारा ।
हरमन्दिर में नित हूं जाता, साध-सेव भी मैं कर पाता ।
संत मिला ना अब तक ऐसा, गुरु चाहूं मैं मन से जैसा ।
पर्वतथल भी मैं हो आया, गुरु को वहां भी है न पाया ।
भया हूं अब तो मैं नीराश, सकल जीवन से होय हताश ।

दो० इतना काल गवाय कर, बैठा आश विहाय ।
अब हैं प्रभु से बेनती, गुरु मुझे मिल पाय ॥ ८६०

सद्गुरु बिन जो जीवन जाये, वह ना लेखे में लग पाये ।
मानव देह सफल तब होवे, गुरु चरणी जब नर मन खोवे ।
गुरु ही नर को जग से तारे, भव वाधा भी गुरु नीवारे ।
धर्म अर्थ का गुरु वीधाता, सकल कामना का वह दाता ।
चारों फल नर गुरु से पावे, गुरु किरपा ही मुक्त करावे ।
तीनों ऋणों से गुरु छुड़ावे, तीन तापों से गुरु बचावे ।
ऐसा गुरु ना अब तक पाया, जीवन इतना व्यर्थ गवाया ।
जीवन लगता गुरु बिन भारी, कहिए अब जो मति तुम्हारी" ।

दो० अपने भाव बताय कर, मुलख भया था मौन ।
राम रत्न कहने लगा, "गुरु बिन खुश है कौन ॥ ८६१

गुरु बिन दुखिया सब संसार, गुरु ही जन का पालन हार ।
गुरु जब जन को चरणी लावे, उस के दुःख वा दर्द नसावे ।
मैं बतलाऊं गुरु का द्वार, संग चलो मम तुम इक बार ।
ऐसा सद्गुरु तुझे मिलाऊं, महिमा उस की क्या बतलाऊं ।
धरती की जो स्लेट बनाऊं, पर्वत की मैं पैंसिल पाऊं ।
ब्रह्मा जितनी आयू होवे, रहूँ लिखत मैं बिन ही सोवे ।
अस्तुति फिर भी लिख ना पाऊं, ऐसा सद्गुरु तुझे मिलाऊं" ।
यह सुन मुलख की आशा जागी, पूछा उस ने हो अनुरागी ।

कहां मिलें वे सद्गुरु भाई, जिन की महिमा तुम बतलाई ।
दो० किस नगरी में वे मिलें, अथवा मिलें पहाड़ ।
मुझ को भी तुम ले चलो, कर लूं बन्द किवाड़" ॥ ८६२

राम रत्न ने तब बतलाया, प्रभु जी का उस नाम सुनाया ।
"सद्गुरु शक्ति के वे स्वामी, पूरण योगी अन्तर्यामी ।
गृहस्थ में उस योगी का वास, ज्योतिष के भी पण्डित खास ।
दूर दूर से जन चलि आवें, मनोकामना उन से पावें" ।
सुनी मुलख ने उस की वाणी, अपने मन में तब अनुमानी ।
राम लाल जो ज्योतिषी भारी, बात पते की पूछूं सारी ।
पाती मम वह देख बताये, सद्गुरु मुझ को कब मिल पाये
गुरु शक्ति का यदि वह स्वामी, जाऊं सेवक बन अनुगामी ।

दो० इस विध मन में सोच कर, ली मुलख ने पात ।
राम रत्न के सह चला, करने प्रभु साक्षात ॥ ८६३

१०. श्री मुलख राज का श्री प्रभु जी के पास जा दीक्षित होना

शुभ शकुन बहु तभी हो पाये, जभी मुलख ने कदम बढ़ाये ।
जो मन इच्छा मुलख समायी, पूरी होने को थी आई ।
क्या मुलख जा वहां पर देखा, इक अनोखा दृश्य ही पेखा ।
भक्तन की थी बहु समुदायी, विराजे मध्य जिमि रघुराई ।

उपदेशामृत की बहती धार, ध्यान मग्न भी भक्त अपार ।
मुलख के मन में क्या समाई, दर्शन कर उस सुधि बिसराई ।
इस का भेद न कोई जाने, अन्तर्यामी प्रभु पहचाने ।
दिन आठवें मुलख था आया, जब से प्रभु को वह मिल पाया ।

दो० आज दिवस था आठवां, मुलख खड़े इक हाथ ।
प्रश्न किया तब नाथ ने, क्या बालक तव हाथ ॥ ८९४

मुलख पात जो संग लियाई, प्रभु जी को उसने दिखलाई ।
खोल पात को प्रभु जी देखा, निज मुख से फिर वचन उलेखा ।
"बोलो जो है प्रश्न तुम्हारा" स्पष्ट वचन तब मुलख उचारा ।
"मैं तो जानन यह ही चाहूं, जाय कहां मैं सद्गुरु पाऊं ।
सद्गुरु जो भगवान मिलावें, हृदय का सभी खेद मिटावें" ।
पास राखी प्रभु जी ने पात, और कहा "कल आना प्रात ।
निराहार ही तुम आ जाना, उत्तर निश्चित हम से पाना ।
कर प्रणाम मुलख मुड़ पाया, वह लौट निज हाट पै आया ।

दो० हाटी बैठा लौट कर, मूर्त प्रभु मन मांहि ।
कल प्रात कब होयगी, पास प्रभु जो जांहि ॥ ८९५

इसी ध्यान में दिन गया बीत, लगा रात भी प्रभु में चीत ।
उठ प्रात तब कीन स्नान, साथ में प्रभु का कीना ध्यान ।
मन में प्रभु जी को तब धार, अनुभव करता हर्ष अपार ।
चल प्रभु के पास वह आया, दण्डवत चरणों में कर पाया ।
आशीर्वाद प्रभु ने दीनी, फिर मुलख से बात उन कीनी ।

"तव पाती हम देखी भाल, गुरु मिलेंगे तुम्हें तत्काल ।
इस विध लाओ तुम जा ध्यान, मिलेगा भीतर से ही ज्ञान ।
तुम प्रश्न जो हैं कर पाये, उत्तर मिलें मनहि मन लाये ।

दो० अन्तकरण में ध्यान ला, बैठो जा एकान्त ।
प्रभु बतायें प्रगट होय, और मिटेगा भ्रांत ॥ ८९६ क

हम औकाड़ा जा रहे, वहां लगें दिन सात ।
लौटन पर बतलाना, होवे जो साक्षात" ॥ ८९६ ख

मुलख सीख इस विध ले लीनी, विधि ध्यान की प्रभु कह दीनी ।
मुलख जा घर ध्यान लगाया, स्वरूप विराट सन्मुख आया ।
कोटि सूरज होंये उद्योत, उन सम प्रभु जी की थी ज्योत ।
प्रभु के लोक लोकान्तर अंग, जीव जीवान्तर भी थे संग ।
सब में प्रभु की जोत समायी, सब जीवों की जीवन दायी ।
देखे ऋषि मुनि करते ध्यान, नारद शारद करें गुण गान ।
युग युग के अवतार भी देखे, सभी प्रभु के अंग ही पेखे ।
शंकर, ब्रह्मा, विष्णु महान, सब थे करते सद्गुरु ध्यान ।
नेती नेती मुख से गावें, गुरु ज्योति का पार न पावें ।

दो० आदि मध्य ना अन्त था, प्रभु की ज्योति अपार ।
विश्व रूप प्रकटाया, राम जगत आधार ॥ ८९७ क

चित्त मुलख का मीन था, प्रभु असीम समुन्द ।
विहरत उसी में सुख से, मुलख चित्त आनन्द ॥ ८९७ ख

इस विध मुलख ने देखा, निराकार का रूप ।
निराकार साकार हो, सद्गुरु भया स्वरूप ॥ ८९७ ॥

निराकार जो सर्व व्यापक, वह ज्योति गुरु घट प्रकाशक ।
जिस पै गुरु किरपा हो जावे, उस को ही वह रूप लखावे ।
बिन किरपा मन में अंध्यारा, सूरज बिन जिमि ना उज्यारा ।
निराकार साकार की भ्रांति, गुरु किरपा बिन मन विक्लान्ति ।
गुरु किरपा का जब प्रकाश, भ्रांत मती का होय विनाश ।
दिव्य चक्षु गुरु देवन हारे, जिमि अर्जुन को कृष्ण मुरारे ।
गुरु से जो शिष्य नेत्र पाता, दिव्य लोक उस का खुल जाता ।
खुला मुलख का दिव्य था लोक, प्रभु किरपा से भया आलोक ।

दो० प्रभु किरपा को पाय कर, मन मुलख के मोद ।
रहने लगा समाधि में, जिमि प्रभु की गोद ॥ ८९८

प्रभु की गोद मुलख था रहता, देवों की संगत भी पाता ।
जो मुलख के चित्त में आवे, देव शक्ति सब कुछ बतलावे ।
पूर्व जन्म का बोध कराया, प्रभु की किरपा को समझाया ।
जन्म जन्म की गाथ को जान, भयी मुलख मन तृप्ति महान ।
सात दिवस इस विध ही बीते, मुलख ने जाते वे न चीते ।
जिस दिन प्रभु लौट के आये, मुलख राज चरणी जा पाये ।
नत मस्तक चरणि चित्त लाया, प्रभु जी ने मुख से फरमाया ।
चिरञ्जीव ! अब तुम बतलाओ, अनुभव क्या ध्यान में पाओ ।

दो० ध्यान में जो है देखा, तुम बतलाओ तात ।
प्रश्न तुम्हारे सुलझे, और हुआ साक्षात ॥ ८९९

हाथ बांध कर मुलख बतावे, "प्रभु किमि कोई महिमा गावे ।
शारद नारद शेष महेश, तव गुणगण किमि गायें अशेष ।
गुणगण तव प्रभु अपरंपार, आदि न उन का ना ही पार ।
देवों के तुम हो अधिदेव, तेरा आदि न जानें देव ।
सूरज मण्डल मध्य प्रकाश, तिमि कोटि जो उदें आकाश ।
वही भास जो सन्मुख आये, उतना प्रभु तव तेज दिखाये ।
तव शक्ति से भया वह सहन, किरपा बिन न होय निर्वहन ।
जन्म जन्म का मैं हूँ दास, राखो चरणी यह अरदास" ।

दो० इस विध विनय सुनाय कर, भया समाधि लीन ।
सबन बोध यह हो गया, यह बालक प्रवीन ॥ ९००

प्रभु किरपा का खास जो पात्र, प्रभु ने निज मुख कहा सुपात्र ।
धन जननी इस की है भाई, जिस की इतनी उच्च कमायी ।
भक्त जनों का भी सिरताज, कीना प्रभु ने जिस को आज ।
उच्च समाधी का वरदान, दान किया जिसे प्रभु महान ।
अखण्ड समाधि को जो लाय, जन्म जन्म के ज्ञान को पाय ।
प्रभु चरणों में जो है लागा, ऐसा बालक परम सुभागा ।
जिस की महिमा प्रभु कथि पाये, दर्शन कर अब सब विस्माये ।
घर गमन का समय जब आया, प्रभु जी ने तब मुलख उठाया ।

११. श्री मुलख राज की अखण्ड समाधि और उन के पिता जी का चिन्तातुर हो श्री प्रभु जी के पास आना

दो० प्रभु आज्ञा को पाय कर, मुलख गया निज धाम ।
उस के हिरदय में बसा, योगेश्वर गुरु राम ॥ ९०१ क
मास कई इस विध रहा, योग अवस्था लीन ।
मात पिता चिन्तित भये, स्त्री शोक में लीन ॥ ९०१ ख

पिता प्रभु के ढिग तब आया, शिष्ट वचन मुख से कह पाया ।
"पण्डित वर तव महिमा भारी, जनता से हम जानी सारी ।
ज्योतिष में आप हो प्रकाण्ड, योग विद्या के भी मार्तण्ड ।
मैं भी योग धर्म को मानूं, वेद वचन को मैं सन्मानूं ।
*ऐसा योग आर्य को भावे, जग के भी जो कार्य करावे ।
त्याग जो कार्य जग के जावे, मुझ को ना वह योगी भावे ।
तव चरणी मम सुत है लागा, घर का है उस काम त्यागा ।
यह तो मुझ को ना है भाया, कैसा है इस योग कमाया ।
आप गुरु यह शिष्य तुम्हारा, इस में ना कुछ गिला हमारा ।

दो० शिक्षा इस को दीजिये, सकल करे यह काज ।
वणिज हमारा जिमि चले, मुलख करे तिमि राज" ॥ ९०२ क
अपनी बात सुनाय कर, बैठा देवी दास ।
प्रभु प्रेम से तब कहा, "होवो मत उदास ॥ ९०२ ख

* स्मरण रहे कि श्री मुलख राज के पिता, ला० देवी दास, कट्टर आर्य समाजी विचारों के थे

लाला जी मैं बात बताऊं, बात पते की मैं समझाऊं ।
वेद वचन को तुम तो मानो, उस को पढ़ कर भी तो जानो ।
उसी में क्या लिखा है भाई, क्या यह बात किसी बतलाई ।
श्रुती वचन ही वेद बखाने, समाधि में ऋषियों ने जाने ।
समाधि अवस्था जो न पावे, वेद भाव को किमि ग्राहवे ।
लौकिक बुद्धी से जो पढ़ता, शब्द जाल में तब वह अड़ता ।
अनेक वेद के हैं जो भाष, लौकिक बुद्धियों के प्रकाश ।
अर्थ अनर्थ जगत ने कीना, भाव वेद का है ना चीना ।
वेद का अर्थ जानिए ज्ञान, वह मिलता जब निश्चल ध्यान ।
भ्रांत मति किमि वेद को जाने, भ्रम से पण्डित निज को माने ।
चित्त एकाग्र जब हो पावे, वेद ज्ञान पढ़े बिन आवे ।

दो० चित्त एकाग्र जब भये, जगे ज्ञान का दीप ।
निर्मल बुद्धी में रमे, बूंद सवाती सीप ॥ ९०३ क

मुलख राज का मन भया, इकाग्र लो तुम जान ।
बिन पढ़े ही पायेगा, सकल वेद का ज्ञान ॥ ९०३ ख

ऋषी अवस्था उस की जानो, ध्यान योग में लय पहचानो ।
योग धर्म को यदि तुम मानो, मुलख राज पै श्रद्धा आनो ।
जानो मुलख योगी का रूप, योग भूमि उस पायी अनूप ।
जिस घर योगी का हो वास, पावन वह घर मम विश्वास ।
सब वैभव का वह हो स्वामी, योगी का जो जन अनुगामी ।
योगी का जो करे विरोध, अथवा उस पर करत क्रोध ।

मन्द भाग्य वह जन हो जावे, भ्रांत चित्त वह फिर पछतावे ।
राजा मुलख योग में लागा, उस कुछ घर का काम त्यागा ।
चिन्ता की न बात यह मानो, हानी होगी मत तुम जानो ।
हानि लाभ है ईश अधीन, जिस ने अवस्था है यह दीन ।
दो० आस्तिक बुद्धि लाय कर, करो ईश विश्वास ।
उस नर का जीवन दुखी, जिस मन न विश्वास ॥ ६०४
मुलख राज से लाभ उठाओ, योगी नर तुम घर में पाओ ।
जहां योगी का होवे वास, सकल सिद्धि का वहां आवास" ।
इस विध प्रभु उसे समझाया, देवी दास पुनः कह पाया ।
"आंखे मुलख की देवें खोल, करे वणिज का काम अडोल ।
मुझे वणिज से है सरोकार, चलावे अपना कारोबार ।
गृहस्थी को न योग से काम, कथे हैं ऐसा लोक तमाम ।
वृद्ध अवस्था में जब आये, योग समाधी तब यह लाये ।
हाथ बांध फिर कहूं यह बात, चेत में लावें इस का ग़ात" ।
दो० इस विध बात सुनाय कर, भरा पिता ने श्वास ।
प्रभु वर तब सोचन लगे, किमि हो दुविधा रास ॥ ६०५
निश्चय उन ने तब यह कीना, हित मुलख का जिस में चीना ।
प्रभु ऐसी लीला प्रकटाई, जो देखन में कभी न आई ।
देखी सुनी पढ़ी ना जोई, वह अलौकिक शक्ति संजोई ।
कर के उन महा प्रभु का ध्यान, और मुलख को निज प्रिय जान ।
देवी दास को प्रभु फरमाये, "व्याकुल हो कर तुम हो आये ।

कृपा करेंगे प्रभु अब ऐसी, हुई कभी न अन्य पै जैसी ।
मुलख करे तव कारज सारे, बन्द रहें पर नयनन तारे ।
ध्यान न इक पल उस का टूटे, काम तुम्हारा भी न छूटे ।
दो० अन्तर बाहर के कर्म, दोय चलें इक साथ ।
मुलख राज के माथ पर, रहे प्रभु का हाथ ।। ६०६ क
ऐसा आशीर्वाद सुन, देव बहु विस्माये ।
परब्रह्म भगवान से, ही नर वर यह पाये ।। ६०६ ख
प्रभु जी की सुन कर यह वाणी, देवीदास गुरु कृपा मानी ।
मनहिं बसा उस संशय भारी, कारज किमि बिन आंख उघारी ।
निज संशय उस तब कह पाया, कृपा कर प्रभु जी समझाया ।
रहस्य योग के न तुम जानो, इस विध मन में भ्रम यह आनो ।
बिन आंखों ही ईश्वर देखे, बिन हाथों सब कारज लेखे ।
बिन पाओं के चलने हारा, योगी का प्रभु वही सहारा ।
समझ सको तो समझ लो मीत, बिन श्रद्धा न होय प्रतीत ।
मुलख चलाये वणिज तुम्हारा, लाभ होयगा उस में भारा ।
सके न यदि यह काम संभाल, आ बतलाना तब तत्काल ।
और करे यदि यह नुकसान, उस का भी हमें देना ज्ञान ।
दो० देवीदास श्रवण कर, प्रभु के वचन उदार ।
कर प्रणाम वह लौटा, मन में धीरज धार ।। ६०७
देवी दास मन शांति आई, जा घर में सब बात बताई ।
तब से ध्यान का बदला रूप, कारज करता मुलख अनूप ।

नेत्र बन्द वह चलने लागा, सारे कारज करने लागा ।
आंख बन्द ही वह चल पाता, चाहे जहां पहुँच भी जाता ।
मुड़ता मोड़ तुरत वह ऐसे, आंख खुली हो उस की जैसे ।
मोटर गाड़ी से बच पाता, किसी न नर से ठोकर खाता ।
हाटी पर वह जाय विराजे, बन सेठ वह वहां पर साजे ।
सब वणिज के काम वह करता, नेत्र बन्द ही लेता धरता ।

दो० नेत्र मुलख के बन्द थे, घट विराजें नाथ ।
घट मुलख के बैठ कर, रहें सदा उस साथ ॥ ६०८ क

रहें सदा उस साथ ही, कर्म करावें आप ।
अर्जुन के जिमि बैठ रथ, युद्ध करें बिन चाप ॥ ६०८ ख

युद्ध करें बिन चाप ही, हो अर्जुन की जीत ।
कर्म करें प्रभु राम जी, किसे न हो प्रतीत ॥ ६०८ ग

जिस के घट में नाथ हों, अन्तर्मुख हो ध्यान ।
कर्म जगत के करत भी, निर्मल उस का ज्ञान ॥ ६०८ घ

सारे कर्म मुलख कर पाता, ध्यान समाधी में मदमाता ।
प्रातः चार बजे उठ जाता, बैठ प्रभु का ध्यान लगाता ।
ध्यान से था स्नान उठ करता, फिर प्रभु के पास वह चलता ।
उपदेशामृत का करता पान, प्रभु से पाता दिव्य था ज्ञान ।
समय हाट का होने आवे, मुलख प्रभु से आज्ञा पावे ।
चिरञ्जीव ! लौट अब जाओ, हाट का कार्य तुम कर पाओ ।

श्री 108 योगेश्वर स्वामी मुलखराज जी महाराज

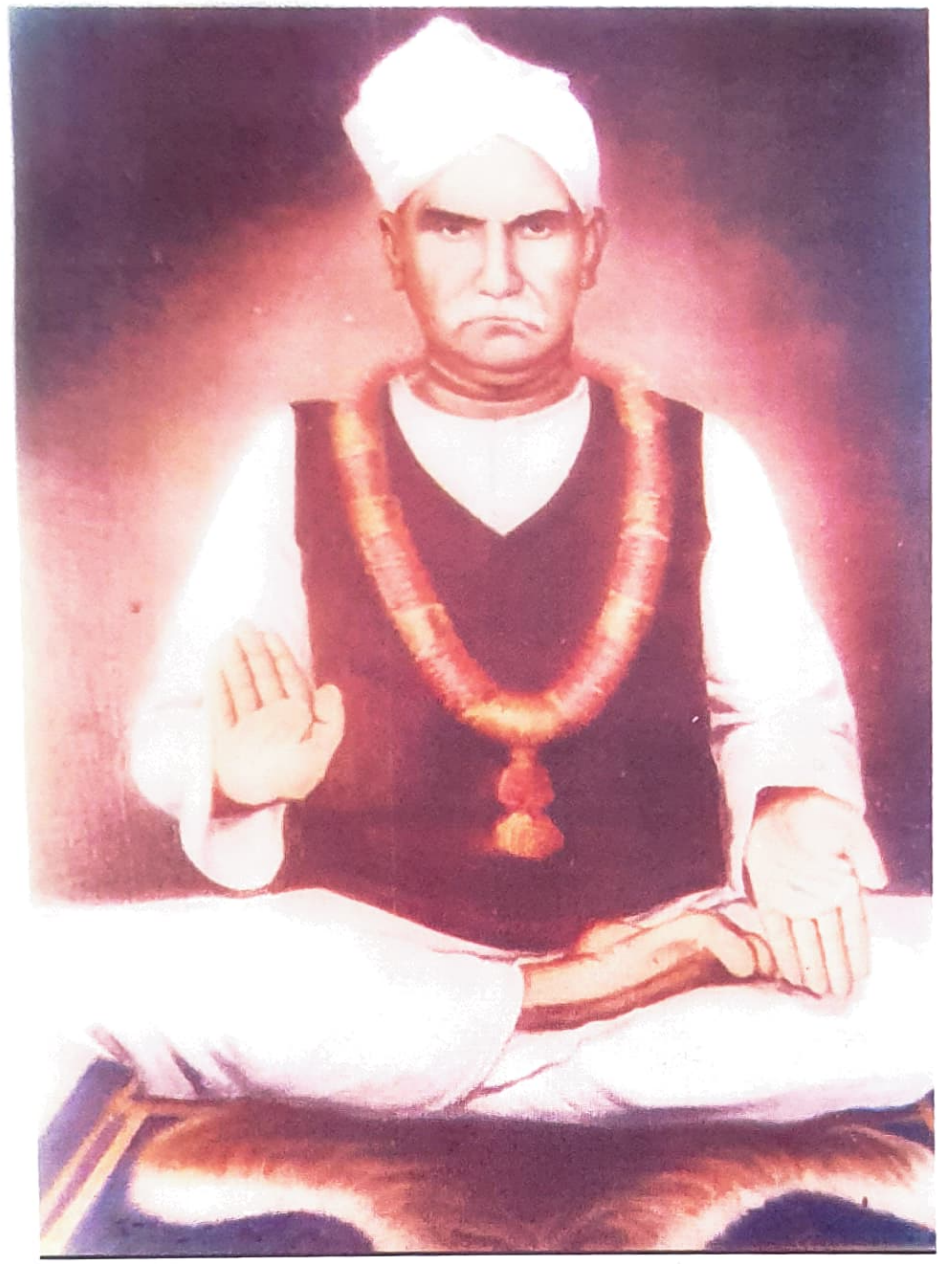

अन्तर बाहर के कर्म , दोई चलें इक साथ।
मुलख के मस्तक पर सदा, रहे प्रभु का हाथ॥ दोहा १०६ क

योगी राज श्री मुलखजी, योगेश्वर प्रभु राम।
एक रूप ही जान लो, रूप परम अभिराम॥ दोहा १२१६

आज्ञा पाय मुलख उठ जाता, बंद आंख वह हाटी आता ।
दिन भर हाट का कार्य कर के, और वहां से घर को चल के ।
सुन्न समाधी मुलख लगाता, संध्या काल प्रभु ढिग जाता ।

दो० प्रभु चरणों में बैठ कर, करे प्रभु का ध्यान ।
पहर रात जब बीतती, प्रभु कराते भान ॥ ९०९ क

राजा जी ! अब तुम चलो, बहुत भया है काल ।
शयन करो अब जाय कर, हो न मात बेहाल ॥ ९०९ ख

प्रभु की आज्ञा श्रवण कर, मुलख उठे तत्काल ।
समाधि में भी शिष्य ले, गुरु आज्ञा को पाल ॥ ९०९ ग

उठे मुलख मस्ती से चाले, प्रभु मूर्त को चित्त संभाले ।
घर के द्वार निकट तब आये, पत्नी बैठी कान लगाये ।
धीरे से दे द्वार को खोल, प्रवेशे भीतर पति अडोल ।
घर में जाग न कोई पावे, मोहन कौर यह मन मनावे ।
पतिव्रता की यही पहचान, राखे पति के सुख का ध्यान ।
तन से मुलख लौट घर आते, मन से प्रभु चरणी रह पाते ।
प्रभु चरणों का कर आलिंगन, रात बिताते कर के सिमरण ।
प्रभु कृपा से वह स्थिति पायी, दृष्टी दिव्य उदय हो आयी ।
ध्यान में वह सभी कुछ देखे, प्रभु के कर्म सकल वह पेखे ।

१२. श्री मुलख राज का श्री प्रभु जी के साथ औकाड़ा जाना, मार्ग की अद्भुत लीलायें

दो० देखा इक दिन मुलख ने, लेटें निज इस्थान ।
प्रभु जी थे तो जा रहे, हो रेल इस्वार ॥ ६१० क
एक चरण था रेल पर, प्लैट फार्म पर दूज ।
नाथ द्वारे पर खड़े, भयी मुलख को सूझ ॥ ६१० ख
त्यार रेल थी चलन को, गार्ड खड़ा था त्यार ।
प्लैट फार्म था दूसरा, थामे नाथ द्वार ॥ ६१० ग

आंख मुंदी मुलख उठ धाये, भागे भागे स्टेशन आये ।
चीर चार कर सारी भीर, आय लिपटा प्रभु चरण शरीर ।
जा रहे थे नाथ औकाड़े, प्लैट फार्म वे दो पर ठाड़े ।
एक पैर था रेल टिकाया, दूजा प्लैट फार्म पै आया ।
पकड़ द्वार नाथ थे ठहरे, पड़े सोच में जिमि वे गहरे ।
देख मुलख को चरणी लागा, मन प्रभु का प्रेम में पागा ।
बैठे रेल में जा तब नाथ, लिटाया मुलख राज निज साथ ।
लेट भयी थी गाड़ी भारी, थी यह लीला प्रभु की सारी ।
अनन्य भक्त को पीछे त्याग, किस विध जाती गाड़ी भाग ।
जभी प्रभु जी सीट संभाली, दी विसल और गाड़ी चाली ।
छक छक करती गाड़ी भागे, सुन्न समाधि मुलख थे पागे ।

दो० शीर्ष मुलख का गोद में, लेकर बैठे नाथ ।
शिष आपा जब देत है, रहे गुरु तब साथ ॥ ६११

अमृतसर से रेल पधारी, कुछ काल में आयी अटारी ।

टीटी एक रेल में आया, टिकट सब का चैक कर पाया ।
प्रभु जी के वह टिकट को देख, बैठा मुलख राज को पेख ।
उस ने मुलख को ना जगाया, प्रभु जी ने मुख से फरमाया ।
इस को भी भाई लो जगाय, देखो इस की टिकट उठाय ।
टीटी ने वह बात न मानी, चला गया उठ कर सन्मानी ।
मुगलपुर का स्टेशन आया, नूतन टीटी तब चढ़ पाया ।
वह भी सब की टिकटें देख, चलने लगा तब प्रभु उलेख ।
"इस की टिकट न देखी भाई, बात क्या यह समझ न आई" ।

दो० प्रभु की सुन कर बात को, उस दीना मुस्कान ।
श्रीमन इस को रहन दो, नींद में हो न हान ॥ ६१२

लाहौर नगर फिर चलि आया, प्रभु जी ने इक कुली बुलाया ।
मुलख़ राज को दीनी चेत, उतरे गाड़ी बदलन हेत ।
नयी गाड़ी में थी कुछ देर, मुलख न लाई सेवा बेर ।
जलपान वह प्रभु हित लाया, कृपा कर प्रभु भोग लगाया ।
मुलख राज को प्रभु बतलाई, मार्ग की सभी घटन सुनाई ।
टीटी मुग्ध भये जिस रीत, नाथ बतायी सहित परीत ।
सुन कर याद मुलख को आई, थी मस्ती मर्याद भुलायी ।
प्रभु जी को निज भूल बतायी, जा †इण्टर की टिकट लियायी ।

दो० देख मुलख की टिकट को, नाथ कहें सव्यंग ।
राजा इण्टर में चढ़ें, किमि बैठें हम संग ॥ ६१३ क

† डयोढ़ी किराये वाली

चरण मुलख ने पकड़ कर, कहा "सुनो मम नाथ ।
पाछल भाड़ा ना दिया, अब चुका इक साथ ॥ ६१३ ख

चरण नाथ के ही मैं बैठूं, भूल इण्टर में मैं न पैठूं ।
क्षमा करो मम पिछली भूल, छोड़ूं फिर नहीं कभी असूल ।
पग पग ही हो रक्षा करते, दोष दास के हो संहरते ।
ऐसा सद्गुरु किमि जन पावें, जिमि सेवक को प्रभु अपनावें" ।
इतने में तब गाड़ी आई, सब सामग्री मुलख उठायी ।
मुलख को गाड़ी मांझ बिठला, टिकट लेने को प्रभु गये आ ।
अभी टिकट न प्रभु ले पायी, गाड़ी ने थी विसल बजायी ।
छक छक करके वह गई भाग, "यह क्या भया" मुलख को लाग ।

दो० छोड़ नाथ को चल गई, औकाड़े की रेल
मुलख सहन ना कर सका, यह रेल का खेल ॥ ६१४ क
स्टेशन पर थे प्रभु खड़े, गाड़ी भागी जाय ।
आगा पीछा बिन किये, मुलख छलांग लगाय ॥ ६१४ ख

मुलख राज की करनी न्यारी, प्रभु मिलन से जान न प्यारी ।
मुलख राज जब तन निज घाला, निज शक्ति से प्रभु संभाला ।
इतने में प्रभु आन पधारे, "बिस्तर कहां है" प्रभु उचारे ।
मुलख राज को सुध तब आई, इंगित से गाड़ी दिखलाई ।
उस को गाड़ी ले है भागी, क्षमा करो मम भूल अभागी ।
प्रभु जी ने पर याद दिलाया, गुरु माता का भय दिखलाया ।
व्याकुल मन भया तभी घोर, दृष्टि डाली रेल की ओर ।

'फटक' रेल तब रुक वह पायी, उस की कल में भयी रुसाई ।
जड़ चेतन के प्रभु जी नाथ, जगत कला सब उन के हाथ ।
दो० मुलख सहित तब नाथ जी, चढ़े रेल में जाय ।
स्वागत हित औकाड़े में, भक्त बहुत थे आय ॥ ६१५ क
जयकारों के मध्य में, उतर रेल से नाथ ।
संग मुलख को लेकर, चाले सब के साथ ॥ ६१५ ख
जिस भवन प्रभु कीना वास, स्थान भया वह सब से खास ।
सब जनता थी चल कर आवे, नित्य प्रभु के दर्शन पावे ।
को अपना आ भाग्य पुछावे, रोगी को आ औषध पावे ।
योग साधन कुछ करने आते, शिक्षा योग प्रभु से पाते ।
नेती धौती प्रभु करवाते, आसन मुद्रा भी सिखलाते ।
प्राणायाम की देते सीख, अधिकारी की करते परीख ।
नर अधिकारी जो भी होवे, ध्यान समाधि प्रभु से गोवे ।
कलियुग में प्रभु सतयुग लाया, सतविद्या का स्रोत बहाया ।
ऋषि मुनियों की विद्या सारी, प्रभु जी आ कर जगत पसारी ।
दो० रोग दमा क्षय आदि से, देते प्रभु आराम ।
शरण आय जो नर पड़ा, पाया उस विश्राम ॥ ६१६
योग साधन में शक्ति भारी, इसी से हरते प्रभु बिमारी ।
किसी को सूत्र नेति करावें, अन्य को वस्त्र धौति सिखावें ।
प्राणायाम कोइ कर पाता, आसन मुद्रा अन्य लगाता ।
कच्ची सब्जी चने की दाल, उस को खाता कोइ संभाल ।

जीवन-तत के साधन करता, दैहिक दुर्बलता को हरता ।
वज्र रूप वह देह बनाता, हत्थोड़ों से उसे कुटाता ।
देख अचंभित होते लोग, अद्भुत विद्या है यह योग ।
वेदों में जो महिमा गाई, आज प्रभु ने प्रगट दिखाई ।

दो० प्रभु जी ने दिखाई जब, अद्भुत महिमा योग ।
घर घर में चरचा भई, नष्ट भये बहु रोग ॥ ६१७ क

नष्ट भये जब रोग बहु, लागी लोगन भीर ।
मुलख राज जन सेव में, घाला निज शरीर ॥ ६१७ ख

शिष्य गुरु का वही सूहाये, गुरु मारग पै तन मन लाये ।
गुरु के सकल कर्म जिस प्यारे, चरण कमल प्रिय गुरु के न्यारे ।
उसी शिष्य की महिमा गाई, आगम निगम में है जो आई ।
उत्तम सेव मुलख ने पाई, उत्तम योग बुद्धि अपनाई ।
उत्तम कर्म किये उस ऐसे, मनहिं प्रभु के भाये जैसे ।
प्रभु के मनहिं प्रसन्नता देख, चित्त मुलख का खिले विशेष ।
भक्त मुलख की देख प्रीती, और देख कर सेवा रीती ।
चित्त में सदा यही मनावें, ऐसी भक्ति हम भी पावें ।

दो० भक्तों ने तब नाथ से, कीन विनय कर बांध ।
नाथ हमें उपदेश दें, भक्ति मिले निर्बाध ॥ ६१८ क

प्रभु ने तब प्रसन्न हो, एक कहा प्रसंग ।
योग भक्ति जिस विध मिले, मिले शक्ति भी संग ॥ ६१८ ख

१३. योग सिद्ध धृत राव का उपाख्यान

इक योगी था वन में रहता, घाम शीत सब तन पै सहता ।
करता ईश्वर से वह प्रीत, राखे साधन माहिं प्रतीत ।
सारी कामना को वह छोड़, जग सुख से वह मुख को मोड़ ।
परमारथ का करता ध्यान, परम तत्व का पाया ज्ञान ।
इक दिन राजा वन में आया, धृतराव निज नाम बतलाया ।
कर प्रणाम विनय उस कीनी, मन की इच्छा भी कह दीनी ।
कृपा करो मुझ पर हे स्वामी, तुम योगी हो अन्तर्यामी ।
हरो चिन्ता तुम मेरे मन की, ऐसी विनती है इस जन की ।

दो० नाथ कृपा हो आपकी, चिन्ता मन की जाय ।
शांति को फिर लाभ कर, यह मन सुख को पाय ॥ ६१६ क

योगी ने सुन बात को, कहा "सुनो महाभाग ।
जिस की चिन्ता मन रमे, दो वह वस्तु त्याग ॥ ६१६ ख

वस्तु वह तुम त्यागो भाई, जिस चिन्ता है मन में लाई ।
राखे न जन संग दुखदायी, ईश भजो जो है सुखदायी" ।
योगी मौन था दे उपदेश, राजा मन उस कीन प्रवेश ।
नगरी जा वह सोचन लागा, किस चिन्ता मम मन अनुरागा ।
विषय एक ही सन्मुख आवे, उसे राज्य की चिन्ता खावे ।
रहत आशंक सदा मन मांहि, शत्रु का भय उसे सतांहि ।
राज पाट मैं देवूं त्याग, रहूँगा वन में बिन अनुराग ।

ऐसा दृढ़ निश्चय उस कीन, राज तिलक तब पुत्रहिं दीन ।
मन्त्री को फिर काम संभाल, योगी पास गया तत्काल ।

दो० पास गुरु के जाय कर, कहा "सुनो मम नाथ ।
मैं अब चिन्ता राज की, त्यागी करो सनाथ ॥ ६२०

राज्य को मैं त्याग हूं आया, तुम ने मुझ को था फरमाया ।
चिन्ता जिस की मन में होय, त्याग के उस को सुख से सोय ।
राज की चिन्ता में मैं ग्रस्त, उस को त्याग भया अलमस्त ।
अपना शिष अब मुझे बनाओ, कर कृपा मुझे योग सिखाओ ।
वन में वास करूं तुम पास, जग से रह कर परम उदास ।
योगी ने जब सुनी यह बात, और राजा को पा साक्षात ।
मन में उस के तब यह आया, शिष अधिकारी है मैं पाया ।
जो अधिकारी शिष को पाय, निज विद्या ना उसे सिखाय ।
ऋषिऋण से न मुक्त वह होवे, सद्गति को किमि जन वह गोवे ।

दो० इस राजा को पाय कर, करूं योग का दान ।
इस के चित्त में न बसे, माया का अभिमान ॥ ६२१ क
कृपा मन में लाय कर, दिया योग का दान ।
धृतराव को कीन तभी, योगी सिद्ध महान ॥ ६२१ ख

योगी ने बहु किरपा कीनी, धृतराजा को सिद्धी दीनी ।
समाधि में वह काल बिताता, गुरु की सेवा भी कर पाता ।
पाया गुरु का फिर आदेश, आसन लाया अन्य प्रदेश ।
नित्य समाधी में रह पाता, लोक सबन में हो कर आता ।

अन्तरिक्ष में जितने लोक, उस से आगे जो परलोक ।
स्वर्गादी जो हैं सुखदायी, जिन की संज्ञा वेद बतायी ।
उन सब में वह हो कर आता, गुरु शक्ति से वह था जाता ।
मंत्री देवों से हो पायी, जिन की संगति हैं सुखदायी ।

दो० देवों की शुभ संगति, योगी नर को होय ।
पाकर गुरु उपदेश को, साधन करता जोय ॥ ६२२

साधन में जो काल बितावे, गुरु किरपा को वह नर पावे ।
देव करें सब उस से प्रीत, सिद्धियां पावे बिन प्रतीत ।
जिस विध विचरें देह में प्राण, रमे योगी घट सिद्धि महान ।
सुन कर भक्त प्रभु की वाणी, कहें "धन्य धन्य महादानी" ।
प्रभु जी आगे कथा चलाई, नगरी की फिर घटन बताई ।
रघवर राव राजा का पूत, राज काज उस कीना सूत ।
मन्त्री था जो वृद्ध महान, जग से कीना उस प्रयाण ।
निज सुत का उस हाथ थमाया, रघवर ने तब वह अपनाया ।

दो० उस को मन्त्री पद दिया, कर कृपा रघराज ।
उस का नाम ललाह था, कीना उस तब काज ॥ ६२३

इक दिन राजा के मन आई, जनक मिलन की मन में लाई ।
ले कर संग में सब परिवार, घुड़ के ऊपर हो अस्वार ।
सेना साथ मन्त्री भी संग, चला वह वन को सहित उमंग ।
नदी किनारे जब सब आये, स्नान ध्यान सकल कर पाये ।
रानी एक रत्न गंवाया, कहीं नीर में वह गिर पाया ।

सब सेना ने खोजा भारी, छोड़ी खोज मान लाचारी ।
पार नदी के फिर वे आये, महाराज को ढूंढन पाये ।
देख शिला के ऊपर लेटा, तन पर केवल इक लंगोटा ।

दो० महाराज को देख कर, वस्त्र से जो हीन ।
और भूमि जो नग्न थी, उस पर वह आसीन ॥ ६२४ क
देख दशा निज जनक की, रघवर मन बेहाल ।
कहन लगा प्रणाम कर, "तात बताओ हाल ॥ ६२४ ख

राज पाट सब तुम ने त्यागा, भला न जीवन घर का लागा ।
बिन कुटिया के वन में वास, वस्तर भी नहीं तन पै खास ।
परम दरिद्री जीवन ऐसा, तात बताओ लगता कैसा ।
हम तो बहु दुःखी हैं मन में, अब चलें हम संग ही घर में ।
निज राज्य को स्वयं संभालें, तप में जीवन ना यह घालें ।
सारा लशकर लेने आया, मन्त्रिगण भी संग मैं लाया ।
†राजहरम भी चरण पधारा, लौट चलें यह भाव हमारा ।
राज मुकुट फिर मस्तक धार, चलो सेन संग हो अस्वार ।

दो० सेना को संग ले कर, राज दण्ड धर हाथ ।
जग का पालन कीजिये, होवे प्रजा सनाथ" ॥ ६२५ क
धृतराव सुनी बात जब, कहा "सुनो रघराव ।
दुःख जिसे तुम मानते, मम मन उस का चाव ॥ ६२५ ख

जब से नश्वर सुख मैं छोड़ा, और राज्य से मुख को मोड़ा ।

† रानियां

तब से शांत भया मन मोर, आनन्द मिला न मुझ को थोर ।
जग का राज न उस को भावे, सुख स्वर्ग जिस सन्मुख आवे ।
योगी स्वर्ग हेय कर माने, परमानन्द जब मन समाने ।
जिस सुख को है योगी पाता, और जिस शक्ति को अपनाता ।
राजा को वह कहां नसीब, योगी सन्मुख सभी गरीब" ।
रघवर ने यह सुन कर वाणी, चित्त में कुछ न वह सन्मानी ।
कहा पिता से "पूज्य हे तात, किस विध मानें तव यह बात ।
महिमा यह मैं कल्पित मानूं, तथ्य न उस में मैं कुछ जानूं ।
जो सुख पाओ राज के मांहि, निर्धनता में किस विध आंहि ।

दो० निर्धन कुछ ना कर सके, नृप करें सब तात ।
राजा के हां सैन्य बल, माने उस की बात" ॥ ६२६

सुत की बात सुनी धृत राव, प्रकटा तब उस मन इक भाव ।
निज सुत की अंगूठी ले कर, फैंक कहा "आओ यह ले कर" ।
रघवर राव लेन को धाया, ढूंढ न उस को वह पर पाया ।
रानी और सचिव भी लागे, खोजें मुद्रा हो अनुरागे ।
ढूंढन में बहु वेल बिहायी, चकित भये जब ना उन पायी ।
रघवर ने तब सैन बुलायी, आज्ञा सख्त उसे दे पायी ।
तुरत खोज कर मुद्रा लावो, लेश विलंब न तुम कर पावो ।
सब सेना तब ढूंढन मग्ना, कांकड़ पाथर खोजन लगना ।

दो० राजमुद्रा की खोज में, सहस्त्र पुरुष व्यस्त ।
दिन तब पूरा ढल गया, सूर्य भया था अस्त ॥ ६२७ क

मन्त्री ने तब कह दिया, "हे राजाधिराज ।
मुद्रा मिलनी कठिन है, खोज चुके सब आज" ॥ ६२७ ख

रघवर राव भया परेशान, बात पिता से कह दी आन ।
मुद्रा तो है ना मिल पायी, ढूंढी सब ने यथा रसायी ।
रघवर राव को पिता बताया, योग की शक्ति को जतलाया ।
आज्ञा देवों को दे पायी, देवी मुद्रा ले कर आयी ।
स्वर्ग की देवी को सब देख, स्तंभित हो गये परम विशेष ।
योग की शक्ति सब ने मानी, रानी के मन में तब आनी ।
मैं भी क्यों न रत्न मंगाऊं, अपनी वस्तू खोई पाऊं ।
विनती उस ने भी कर दीनी, सारी बात ससुर से कीनी ।
धृत राव सुन ध्यान लगाया, वरुण देव को तुरत बुलाया ।

दो० वरुण देव को बोल कर, मणि मंगायी राय ।
जलचर जीव इक लाया, मुख में उसे उठाय ॥ ६२८ क
धृत राव ने लेय कर, दीना रानी पास ।
यह तो इक आश्चर्य था, सबन भया विश्वास ॥ ६२८ ख
धृत राजा की बात को, माना सब ने सत्य ।
"योगी नर सब से बड़ा, न यह बात असत्य" ॥ ६२८ ग

भक्तों को तब प्रभु बताया, इस कथा का रहस्य जताया ।
योगी तीन लोक का स्वामी, जड़ चेतन उस के अनुगामी ।
देव लोक में जिस का आसन, वह भी माने उस का शासन ।
लोक लोकान्त जितने गाये, योगी के सब वश में आये ।

ऐसी शक्ति क्यों कर आवे, इस का उत्तर ज्ञानी पावे ।
मूढ़ न योगी को पहचानें, पड़े भूल में वे भ्रमानें ।
युक्त प्रभु से जो हो जाता, संज्ञा योगी की वह पाता ।
जिमी धातु में अग्नि समावे, ईश्वर योगी में तिमि आवे ।
लोहा बने जिमि अग्नि रूप, योगी होता ईश स्वरूप ।

दो० ईश रूप ही जान कर, इन्द्र आदी देव ।
भजते योगी को सदा, करते उस की सेव ॥ ६२६ क
योगी बनना कठिन है, खाला का न धाम ।
वह नर योगी बन सके, छोड़े राग तमाम ॥ ६२६ ख
राग न छोड़न सुगम है, बिना कठिन अभ्यास ।
अभ्यास व वैराग्य से, हो नर योगी खास ॥ ६२६ ग
गुरु चरणी जब नर लगे, ऐसी बुद्धि होय ।
गुरु योगी यदि ना मिले, नर माया में खोय ॥ ६२६ घ

उस से आगे कथा चलाई, संगत को प्रभु जी बतलाई ।
है यह रोमांचित इतिहास, महिमा योग की प्रकटे खास ।
रघवर राव ने सैन बुलाइ, मन्त्री संग नगरी भिजवाइ ।
खुद पिता की सेव में लागा, भया योग का वह अनुरागा ।
मन्त्री निकला बहुत हुश्यार, लीनी प्रजा कर में कर डार† ।
सेना का कमान संभाला, अनुचरों को हुक्म दे डाला ।
रघवर राव मिले जिस थांही, वध करो तुम उस का वहां ही ।

† प्रजा को हाथ में कर लिया

राज द्रोह की बात महान, कान पुरोहित पड़ गई आन ।
दो० पुरोहित अश्व लेय कर, आया वन की ओर ।
मग में उस को मिल गया, रघवर आता भोर ॥ ६३०

सभी पुरोहित घटन बतायी, षडयन्त्र की बात सुनायी ।
रघवर राव बड़ा घबराया, मुड़ पिता के पास वह आया ।
देख पिता को समाधी मग्न, उस का चित्त भया उद्विग्न ।
चार मास वह समाधि लाता, तब हाथ से राज ही जाता ।
पुरोहित ने तब युक्ति बतायी, ससुराल की याद दिलवायी ।
यदि ससुर कर पाये सहाय, मिले फौज और बने उपाय ।
रघवर को यह बात सुहायी, ससुराल को लीनी विदायी ।
लौट पुरोहित निज घर आया, रघवर ससुर पास जा पाया ।
मुकुरन्द राज उस का अभिधान, राज्य उस का भी बहु महान ।
रघवर की सुन सकल कहानी, उस ने मन में रिस बहु मानी ।
दो० मन में रिस को लाय कर, सैना-पति बुलाय ।
विजय सैन सुत संग कर, दीनी सैन भिजाय ॥ ६३१

सैन साथ रघवर ने लीनी, चुनौति जा ललाह को दीनी ।
ललाह सचिव आये मम पास, दण्डित होगा नहीं तो खास ।
दूत हाथ संदेश भिजाया, उत्तर वापस ले जो आया ।
रघवर राव छोड़े मम राज, अथवा नष्ट करूं सहसाज ।
यदि है जीवन उस को प्यारा, मेरे राज्य से करे किनारा ।
दो घड़ी यदि ठहर यहां पाय, विलंब जाने में यदि लगाय ।

सह सैन मैं उसे संहारूं, उस के संगी साथी मारूं ।
जभी दूत संदेश सुनाया, विजय सैन मन रोष समाया ।

दो० विजय सैन ने सैन को, दीना तब आदेश ।
धावा बोलें नगर पै, मत हटे कोइ पेश ॥ ९३२

घेरो नगर को तुम सब जाय, ईंट को ईंट से दो बजाय ।
जीवित लाओ ललाह को बांध, रच पायी जिस दुष्ट यह सांध ।
सावधान कहीं भाग न पाय, दण्ड पाये बिन छूट न जाय ।
पा आदेश चढ़ी तब सैन, फटा गगन नगारों के बैन ।
धूली बिन कुछ दृष्टि न आवे, ढोल धमाका ही सुन पावे ।
बिच बिच लसे खडग की धार, विद्युत का जिमी हो चमकार ।
बढ़ता बढ़ता गढ़ की ओर, विपक्षी सैना का दल घोर ।
लख ललाह भी रण में आया, गज से हो जिमि गज टकराया ।
उमड़ घुमड़ बादल टकरावें, समुद्र टक्कर तट से खावें ।

दो० दोय दलों के बीच में, भया घोर संग्राम ।
कट कट कर गिरने लगे, सैनिक परम ललाम ॥ ९३३ क

सैनिक परम ललाम कुछ, कट कट खोंय होश ।
रुण्ड मुण्ड धड़ ही लड़ें, क्षत्री का था जोश ॥ ९३३ ख

क्षत्री अपना शौर्य दिखावें, सीने तान खेत में आवें ।
युद्ध में न को पीठ दिखावे, बार शत्रु का सन्मुख खावे ।
रण में कटे स्वर्ग को जाये, क्षत्री क्यों फिर पीठ दिखाये ।
धर्म युद्ध में क्षत्री जूझे, कर्म न इस से उत्तम सूझे ।

धर्म युद्ध से बढ़ कर भाई, क्षत्री की ना और कमाई ।
सच्चा क्षत्री यही मन धार, प्रदर्शित करता शौर्य अपार ।
धर्म की शक्ति से बढ़ भाई, और कहां है कोइ सहायी ।
जिस को धर्म की होती टेक, आयें चाहें विघ्न अनेक ।
यम भी क्यों ना सन्मुख आवे, वीर कभी ना भय को पावे ।

दो० धर्म युद्ध के खेत में, धृतराव सुत वीर ।
लड़त लड़त पराजित भया, बंधन पड़ा गंभीर ॥ ६३४

शत्रु की वह कैद में आया, भ्रांत भया वा मन चकराया ।
मृत्यु को उस सन्मुख देख, मन में कीना तभी उल्लेख ।
पूज्य पिता जब योगी भारी, भयी है क्यों तब यह खवारी ।
जभी पिता की सुध उस कीनी, योगी तब सहायता दीनी ।
बंधक मूर्छा में भये लीन, रघवर भाग गया बल हीन ।
निज पिता के पास वह आया, सेवा में वह रत हो पाया ।
जभी पिता ने आंख उघारी, पकड़े चरण विनय कर डारी ।
"तात बताऊं क्या निज बीती, हम से जो ललाह है कीती ।

दो० राज सकल हथियाय कर, दीना मुझे निकार ।
पराजित रण में मैं भया, देत जान से मार ॥ ६३५ क
तव कृपा ना होती यदि, तुम हो जानन हार ।
मुख से मैं क्या कह सकूं, राखो राखन हार ॥ ६३५ ख

सुन कर योगी सुत की वाणी, भेद बुद्धि ना मन में आनी ।
सम दृष्टी से जग को देखे, भेद न निज पर सुत में पेखे ।

मुख से उस ने तभी उचारा, हम ने राज से कीन किनारा ।
तुम जानो व काम तुम्हारा, मुझ को मिला है गुरु सहारा ।
इन्द्र भी जहां रंक वत भाये, जग का राज्य न हमें सुहाये ।
उदासीनता तात की देख, पुत्र ने मन कीन उल्लेख ।
यह दर छोड़ मैं किस दर जाऊं, सेवा में अब जन्म बिताऊं ।
योगी भया समाधी लीन, सुत ने सेवा में चित्त दीन ।
योगी जगत में न उरझाये, सेवक पर फिर भी पतियाये ।

दो० सेवा से प्रसन्न होय, वर पिता ने दीन ।
मांगो जो तब मन बसे, वश मम मन तुम कीन ॥ ९३६

रघवर ने वर पिता से मांगा, मैं सुत हूं तव तात अभागा ।
छीना गया जो मेरा राज, तव कृपा से पाऊं ससाज ।
"तथाअस्तु" यह पिता उचारा, नदी ओर फिर किया इशारा ।
इस नदी के पार जा देखो, सैना एक सुसज्जित पेखो ।
उस सैना को ले कर जाओ, अपना राज्य पुनः तुम पाओ ।
सैना दिव्य सुसज्जित भाई, पा विजय फिर देनि लौटाई ।
पिता वचन रघवर ने मान, जा देखी इक सैन महान ।
भिन्न भिन्न अस्त्र सब के पास, देख बन्धी रघराव की आस ।

दो० उस सैना को देख कर, ठहरा नद के तीर ।
सेनापति ने आय कर, कहा वचन गंभीर ॥ ९३७

पधारो महाराज हम संग, निरीक्षण करो सैन के अंग ।
मिले कूच का फिर आदेश, विजित करो तुम अपना देश ।
रघवर राज सन्तोष जताया, सैना को जब देख वह पाया ।
पिता अपने के चरण ध्याय, गणपति को फिर स्वयं मनाय ।
कूच का दीना उस आदेश, कीन देश के बीच प्रवेश ।
ललाह खबर अचानक पाई, अपनी सैन तुरंत भिजाई ।
सैनिक भिड़े सभी इक संग, रण का रंग निरख भये दंग ।
देवों ने अमृत बरसाये, आहत सैनिक पुनः जिवाये ।

दो० दिव सैना के सामने, गई न कुछ भी पेश ।
पराजय भयी ललाह की, पाया रघवर देश ॥ ९३८

यह वृष्टांत प्रभु बतलाया, भक्त जनों ने सुख बहु पाया ।
जब नर शरण योग की आवे, विपदा को वह तुरत दुरावे ।
युक्त योगी ईश्वर का रूप, उस की महिमा कथी अनूप ।
जाये न योगी वचन व्यर्थ, उस के इंगित में बहु अर्थ ।
यही कथा में प्रभु समझाया, जनता का उत्साह बढ़ाया ।
ऋषि मुनियों की विद्या योग, परंपरागत सीखें लोग ।
समय की गति ने वह भुलाई, प्रभु जी आ कर फिर सिखलाई ।
शिष्य प्रभु जी ऐसे पाये, जीवन जिन आ चरणी लगाये ।

दो० जीवन चरणी लगाय कर, शिष सब भये निहाल ।
किस किस का वर्णन करें, उत्तम मुलख दयाल ॥ ९३९

औकाड़े में दिन कुछ बिताय, बहु भक्त प्रभु चरण लगाय ।

मुलख राज को संग तब लेय, विचारा प्रभु चलें अब गेह ।
वियोग में भक्तों को तड़पाय, रेल प्रभु जी तब चढ़ पाये ।
जनता को तो कीन बेहाल, देखो मुनियों का भी हाल ।
उच्च हिमालय योग आसीन, प्रभु को खोजें इत उत लीन ।
देख विराजत रेल के मांहि, सूक्ष्म रूप आ चरणि समाहिं ।
दिव दृष्टि से मुलख ने देखा, चकित भया प्रभु चरणि उल्लेखा ।
सन्मुख नाथ क्या मैं देखूं, ऋषि मुनियों के गण को पेखूं ।

दो० तब प्रभु श्री मुलख को, दीना भेद बताय ।
ढूंढ ढूंढ हैं ऋषि जन, मिले रेल में आय ॥ ६४० क

मिले रेल में आय कर, प्रभु की आशिष पाय ।
कृत-कृत्य हो सभी चले, अपना शीश झुकाय ॥ ६४० ख

अमृतसर फिर गाड़ी पधारी, प्रभु की नगरी प्रभु को प्यारी ।
स्टेशन से उन लीनी स्वारी, आये घर को प्रभु पापारी ।
भक्त जनों ने सूचन पायी, उमड़ उमड़ तब जनता आयी ।
कठिन प्रभु का विरह सहारा, चांद चकोर वत रह निहारा ।
प्रभु की ख्याती जग विस्तारी, जग देखे जिमि उदित तमारी ।
सब भक्त मन में यह चाहवें, प्रभु हमारे नगर में आवें ।
भक्त सहारणपुर के आये, प्रभु को अपने संग ले पाये ।
प्रभु को अपने पास ठहराया, सत्संग से मन लाभ उठाया ।
प्रभु को ईश्वर सम वे मानें, पूरण सत्गुरु उन को जानें ।

दो० पूरण सत्गुरु जब मिलें, जो ईश्वर का रूप ।
शिष्य शलभ वत होत है, सत्गुरु दीप स्वरूप ॥ ६४१

भक्त प्रभु की सेवा राते, निशि दिन रहें प्रेम मदमाते ।
तन मन धन नीछावर करते, चरणों पर आ सिर वे धरते ।
पुष्प चढ़ाते भोग लगाते, आर्ती पूजन भी कर पाते ।
प्रभु योगेश्वर जग में आये, थे संस्कारी जन अपनाये ।
परन्तु योगी रूप छिपाया, पण्डित का उन रूप बनाया ।
उन को जान न कोई पावें, जाने तब जब प्रभु जनावें ।
मानस कमल तभी खिल पाता, प्रभु चरणी जब जन लग जाता ।
सूर्य किरण ना जब तक आवे, पांख सरोज किमी खिल पावे ।

दो० जन संस्कारी बहुत से, जो थे प्रभु से दूर ।
प्रभु स्वयं थे जानते, जाननहार हजूर ॥ ६४२ क

इक संस्कारी भक्त का, वर्णन हो इतिहास ।
योग्य जिसे प्रभु जान कर, कृपा कीन प्रकास ॥ ६४२ ख

१४. ब्रह्मचारी गोपालानन्द का श्री प्रभु जी के चरणों में आना

दो० नैनीताल समीप इक, हल्द्वानी है गांव ।
वहां रहे था राम इक, गोपाल जिसका नाम ॥ ६४२ ग

गोविन्द राम पिता का नाम, आर्य समाज का करते काम ।
बालक के संस्कार कराये, पक्का आर्य जिमी बन पाये ।

बालक होनहार था भारी, धर्म कर्म में रुचि थी न्यारी ।
योग में रुचि भी बहु दिखाता, आसन मुद्रा भी कर पाता ।
आयुर्वेद का बना आचार्य, कीना प्रथम ग्राम में कार्य ।
फिर मुरादाबाद वह आया, कार्य जहां पै आन चलाया ।
ख्याति पाई वैद्य बन भारी, जनता मान करे थी सारी ।
राम गोपाल यह मन धारे, गुरु मिलें कोइ योगी भारे ।

दो० जब तक सत्गुरु ना मिलें, सभी अधूरे काम ।
योगी सत्गुरु जब मिलें, पाता मन विश्राम ॥ ६४३

राम गोपाल ढूंढन पाये, पूर्ण योगी कहीं मिल जाये ।
अल्मोड़ा इक योगी आया, यश उस का इत उत था छाया ।
राम गोपाल भया मन चाव, योगी पाया सहज स्वभाव ।
काम छोड़ अल्मोड़ा आया, योगी के वह पास सिधाया ।
योगी था हठ योग ज्ञाता, संगत को था ज्ञान प्रदाता ।
दूर करत वह संशय भारी, तोष थी पाय जनता सारी ।
चाहे जो भी दिन को आवे, रात्री ठहर न कोई पावे ।
यह था उस का कड़ा आदेश, करे न रात्री कोई प्रवेश ।

दो० योगी का आदेश यह, करें सभी प्रवाण ।
सब के मन आतंक यह, रहें रात हो हान ॥ ६४४

सब जन कहते थे यह बात, योगी सोता नहीं सब रात ।
पूरी रात समाधि लगावे, सिंह एक दर पर रह पावे ।
यदि रात जन वहां पै आवे, मार सिंह उस को खा जावे ।

योगी पूर्ण सिद्ध यह भाई, व्याघ्र सिंह करें सेवकाई ।
राम गोपाल इसे न माने, झूठा हि जन वाद वह जाने ।
मन में आई उस के बात, ठहर पाया इक सारी रात ।
आसन तरु के ऊपर लाया, योगी को देखत रह पाया ।
नेती धौति आदि उस कीनी, योगी ने तब समाधि लीनी ।

दो० श्वास चढ़ाये योगी ने, उठा भूमि से देह ।
जाय आकाशी ठहरा, मिटा देख संदेह ॥ ९४५

प्रात भई तब देह उतारा, नित्य कर्म को योगी धारा ।
राम गोपाल नीचे आया, विस्मित घर की ओर सिधाया ।
मन में भया यह दृढ़ विश्वास, पाया परम योगी हैं खास ।
छोड़ सकल अब जग जंजाल, सेव करूं इस की सब काल ।
योगी के फिर दर पर आया, अपने मन का भाव बताया ।
योगी ने सुन ध्यान लगाया, आंख खोल मुख से फरमाया ।
तेरा शुभ है यह वीचार, योग ही नर को करता पार ।
तेरा गुरु ना मैं हूं मीत, परब्रह्म से तव भये प्रीत ।

दो० परब्रह्म तुम को मिले, ऐसा तेरा भाग ।
दिव्य योग उन से मिले, चरणी जाना लाग ॥ ९४६ क
कहा राम गोपाल ने, "हे योगि महाराज ।
परब्रह्म कहां खोजूं, छोड़ जगत के काज ॥ ९४६ ख

योगी ने तब भेद बताया, आना प्रभु जी का समझाया ।
हिमालय से उतरेंगे नाथ, बनोगे उन को पाय सनाथ ।

पंचनद उन का है प्रदेश, गौर वर्ण और सुन्दर वेश ।
उन सा जग में न कोई और, रम रहे वे सबन ही ठौर ।
निराकार साकार स्वरूप, ऐसा उन का अद्भुत रूप ।
उन को पा तुम बनोगे धन्य, दृष्टी में फिर चढ़े ना अन्य ।
अपनी किरपा से मिल पाय, और न चाहिये कोइ उपाय ।
करते रहो उन की प्रतीख, पूरण योग की आ दें सीख ।

दो० अन्तर्यामी नाथ वे, स्वयं मिलेंगे आय ।
मानें केवल प्रेम को, न कोइ और उपाय ॥ ८४७

राम गोपाल सब सुन पाई, योगी से फिर लीन विदायी ।
मुरादाबाद लौट के आया, प्रतीक्षा में प्रभु की रह पाया ।
जहां कहीं कोइ योगि आता, राम गोपाल वहीं सिधाता ।
लग्न सत्य जब जन को होवे, और न सुख निद्रा जो सोवे ।
ईश मिले तब उस को आय, मत कोइ मन में संशय लाय ।
वर्ष बीते प्रभु की बहु आस, राम गोपाल फिर भया उदास ।
सहारणपुर प्रभु जी आये, राम गोपाल वहां आ पाये ।
सुन कर प्रभु की ख्याति भारी, आस जगी इक मन में न्यारी ।

दो० आस सहित तब चल पड़ा, ले कर मन में भाव ।
वस्त्रों में प्रभु देख कर, पड़ा न कुछ प्रभाव ॥ ८४८

वस्त्र श्वेत प्रभु के देखे, करते सेव भक्त भी पेखे ।
यह तो है इक पण्डित भाई, ऐसी मन में उस के आई ।
ब्राह्मण लीला पोप रचावें, भोली जनता को ठग पावें ।

राम गोपाल मुड़ कर आया, चित्त में था बहु खलबलाया ।
एक मित्र को बात बतायी, अपने मन की दुविध जतायी ।
एक गुरु हैं यहां पै आये, जनता से जो पाद पुजाये ।
लोग कहें वह योगी भारी, मानूं जनता की मति मारी ।
भेड़ चाल ने सब भरमाये, ज्ञान वेद से न कोइ पाये ।

दो० वेद का मार्ग भूल कर, भ्रांत भये हैं लोग ।
लुप्त भया है जगत से, ध्यान भजन वा योग ॥ ६४६

राम गोपाल की सुन वाणी, उस की दुविधा मीत पहचानी ।
वह था भक्त प्रभु का भारी, उस ने प्रभु की महिम उचारी ।
डाक्टर ! मेरी बात को मान, पूर्ण योगी उन्हें पहचान ।
उन को पूजा की नहीं चाह, शक्ती उन में परम अथाह ।
आओ चलो तुम मेरे साथ, कृपा पाय कर बनो सनाथ ।
शशोपंज में डाक्टर आया, पास प्रभु के वह जा पाया ।
मित्र ने जब परिचय कराया, मुख से प्रभु जी ने फरमाया ।
चिरञ्जीव ! तुम मत घबराओ, यह लो माटी मुख में पाओ ।
फिर जा प्रभु का ध्यान लगाओ, जप प्रणव का श्वास रचाओ ।

दो० प्रभु से माटी पाय कर, जा बैठा इक ठौर ।
अन्तर का पट खुल गया, भया समाध विभोर ॥ ६५०

बहु काल उस ध्यान लगाया, आतम दर्शन जिस में पाया ।
प्यासा तीर नदी के आये, पानी पी पी प्यास बुझाये ।
राम गोपाल भी था प्यासा, आतम दर्शन की जिज्ञासा ।

योगीराज श्री गोपालानन्द जी महाराज

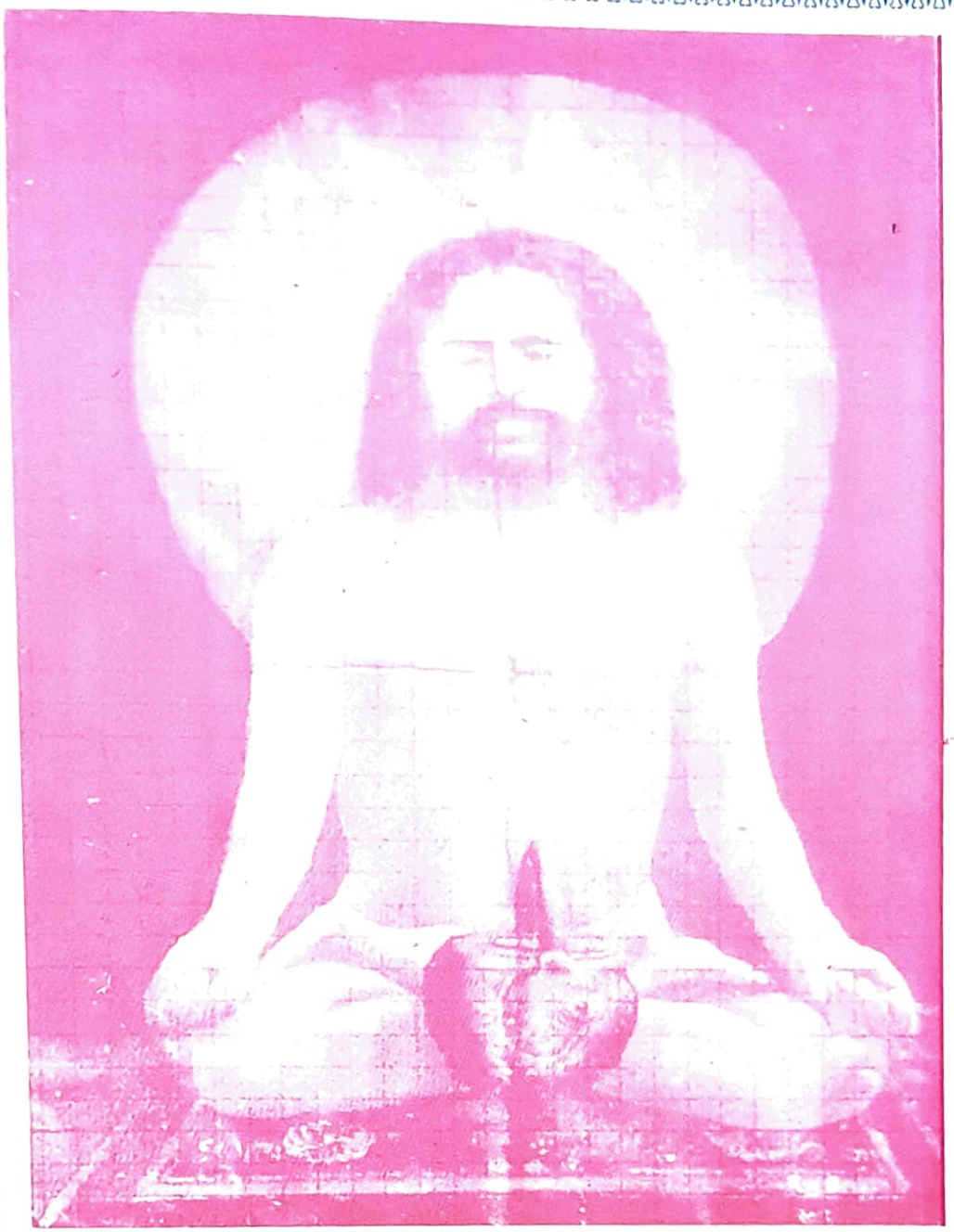

प्रभु से माटी पाय कर, जा बैठा एक ठौर।
अन्तर का पट खुल गया, भया समाध विभोर॥ दोहा ९५०

आत्म दर्शन पाय कर, तृप्त भया जब राम।
आत्म समर्पण तब भया, मिले राम को राम॥ दोहा ९५१

मिले प्रभु जी ज्ञान भण्डार, सुख के उस का रहा न पार ।
स्वाति बूंद जिमि चातक पाये, पा दर्शन तिमि राम अघाये ।
चित्त भया प्रसन्न था भारी, मिली दरिद्र निधी जग सारी ।
प्रसाद प्रभु से उस ने पाया, हृदय का सभी कलुष मिटाया ।
प्रसाद माटी का प्रभु दीना, मार्जन अन्तर का जिस कीना ।
अन्तकरण उस का इमि चमका, कान्तमणी में सूरज़ दमका ।

दो० आत्म दर्शन पाय कर, तृप्त भया जब राम ।
आत्म समर्पण तब भया, मिले राम को राम ॥ ८५१

कहा प्रभु तब राम को जाओ, कारज अपना जा कर पाओ ।
राम गोपाल कहा "हे नाथ, अब तो मैं हूं भया सनाथ ।
किस विध जाऊं तुम को छोड़, जग से चाहता लूं मुख मोड़ ।
मैंने लिया तुम्हें पहचान, दूर भया मम सकल अज्ञान ।
भूल से पण्डित मात्र जाना, परब्रह्म न मैं पहचाना ।
क्षमा भूल मम करिये नाथ, रह कर शरण में बनूं सनाथ ।
मेरा जीवन सफल बनायें, निज सेवा में इसे लगायें ।
मुझे न करिये अब तुम दूर, करिये सेवा मम मंजूर ।

दो० इस विध विनय सुनाय कर, गिरा चरण में राम ।
वरद हस्त सर पर धरा, प्रभु जो सुख के धाम ॥ ८५२

आज्ञा प्रभु जी राम को दीनी, घर जाने की शिक्षा दीनी ।
जग मर्यादा सदैव निभाना, भाग जगत से कहीं न जाना ।
कर्म करना वा प्रभु ध्याना, सनातन धर्म में मन लगाना ।

योग धर्म को उत्तम जानो, सनातन धर्म इसी को मानो ।
धर्म सदैव प्रभु को प्यारा, धर्म हेतु लें प्रभु अवतारा ।
जब जब योग को जग बिसराया, तब तब प्रभु आ जगत सिखाया ।
योग हेतु जो जीवन अर्पे, और प्रभु को सकल समर्पे ।
वह मुक्ती का जन अधिकारी, यह मुक्ती की युक्ती भारी ।

दो० चिरञ्जीव घर जाय कर, करिये साधन योग ।
चित्त एकाग्र ईश में, छोड़ जगत के भोग ॥ ८५३क

छोड़ जगत के भोग तू, रह जग में इस रीत ।
कमल जिमी जल बसत है, जल पंकज की प्रीत ॥ ८५३ख

जल सुशोभित कमल से होवे, कमल भी जल से भोजन गोवे ।
रहते फिर भी न्यारे न्यारे, मन धारो यह वचन हमारे ।
राम ने माना प्रभु उपदेश, घर गया जिमि मिला आदेश ।
साधन में वह रत था रहता, काम काज का भार भी बहता ।
कुछ दिन उस ने इमी बिताये, भाव विरक्त पुनः जग पाये ।
वैद्यक काम न उस को भावे, ध्यान भजन में काल बितावे ।
काम काज तब कर के बन्द, पहुँच गया जहां प्रभु सुखकन्द ।
आया अमृतसर प्रभु पास, प्रभु चरणों की अति तीव्र आस ।

दो० प्रभु चरणों में आय कर, विनय करे गोपाल ।
अपनी शरणी में प्रभो, रखिये सदा दयाल ॥ ८५४

विरह भाव उस जो प्रकटाया, अन्तर्यामी प्रभु सुन पाया ।
उस के मन की गति को देख, और भविष्यत उस का पेख ।

कीनी विनय उस की स्वीकार, कृपा नाथ चित्त कृपा धार ।
जभी राम ने घर था त्यागा, संग पिता भी आया भागा ।
चिन्तित वा दुःखी भी भारी, पुत्र एक आशा की क्यारी ।
प्रभु जी मानी बात गोपाल, सुन पिता मन भया बेहाल ।
कहन लगा "हे प्रभु जी प्यारे, कर रहे हो काम क्या न्यारे ।
मैं तो सुत को लेने आया, पाठ क्या तुम इसे पढ़ाया ।

दो० घर से इस ने भाग कर, कीन हमें बेहाल ।
मैं तो फिर भी पुरुष हूँ, बुरा भैन का हाल ॥ ८५५

भगिनी क्षण भर चैन न पावे, रात्री उस को नींद न आवे ।
उस का जीवन भया दुखारी, कृपा करो जिमि होय सुखारी ।
प्रभु जी ने तब उसे बताया, भजनादि का गुण समझाया ।
कर्मों की भी बात बतायी, विवशता मन की सब जतलायी ।
संस्कारों का रूप दिखाया, भावी का सब भेद बताया ।
सत पुत्रों के गुण बतलाये, मात पिता सुख जिस से पाये ।
धर्म कर्म में सुत जो लागे, मात पिता उस के बड़ भागे ।
मात पिता वे ही बुधमन्ता, धर्म कर्म पुत के अनुमन्ता ।

१५. पितृभक्त कुमुद का उपाख्यान

दो० धर्म कर्म में सुत लगे, मात पिता सुख पांय ।
विघ्न करें शुभ काम में, अन्त काल पछतांय ॥ ८५६

कुमुद का इतिहास बताऊं, मात पिता का धर्म जताऊं ।

मालव देश की गाथा जानो, दंपति एक धनी पहचानो ।
पुत्र रत्न उन के था जाया, जिस का नाम कुमुद रख पाया ।
बालक होनहार था भारी, मात पिता मन खुशी न्यारी ।
कुमुद जभी युवा हो पाया, मात पिता ने ब्याह रचाया ।
'वेला' पुत्र-वधू घर आयी, मानो लक्ष्मी स्वयं सिधायी ।
संपत उमड़ बढ़ी घर ऐसे, निरख चांद को सागर जैसे ।
संपत निरख याचक चलि आते, वेला से मुंह मांगा पाते ।

दो० अहर्निश जग को देत है, फिर भी गहर गंभीर ।
दानी का न धन घटे, जिमि समुद्र नीर ॥ ८५७ क

मुंह मांगा धन पाय कर, याचक होंय निहाल ।
चले दुआंए देत सब, "बढ़े सेठ का माल" ॥ ८५७ ख

वेला धन थी बांटती, घर में बढ़ता दाम ।
सास ससुर पर थे दुःखी, देख बहु का काम ॥ ८५७ ग

सास ससुर मन शँका भारी, लुट जायेगी सँपत सारी ।
इतना धन यह रोज लुटावे, इस की समझ न कुछ भी आवे ।
कब तक चलेगा ऐसा काम, किया दुखी इस बहु हे राम ।
सेठ सेठानी यह अनुमान, कीनी पुत्रवधू परेशान ।
बेला और कुमुद जब जाना, घर में रहना दुःखप्रद माना ।
घर से निकल पड़े वे ऐसे, महामारी से बच के जैसे ।
घर से लीना नाता तोड़, सुख सँपत से मुख भी मोड़ ।
धर्म कर्म में जहां हो बाध, बसना वहां पर है अपराध ।

दो० ऐसा मन में धार कर, चले वे वन की ओर ।
तन पै दुःख बहु झेले, मिली न सुख की ठौर ॥ ६५८

भटक भटक इक ग्राम में आये, मन्दिर में उन डेरे लाये ।
नित्य कर्म में चित्त लगाया, निश्चल मन से प्रभु को ध्याया ।
धर्म कर्म में रुचि जो लावे, मन को शुद्ध और कर पावे ।
रक्षक उस के हों भगवान, लाभ हान में रहत समान ।
कुमुद गया इक सेठ द्वार, लीना धन उस कुछ उधार ।
उस धन से उस वणिज चलाया, धर्म कर्म में चित्त लगाया ।
जो कुछ लाभ होत उस मांहि, भाग दशम था दान में जांहि ।
बेला की तो यह थी रीती, होती न बिन दान प्रतीती ।
इस नेम को कुमुद भी पाले, आय का दशमांश दे डाले ।

दो० ईश्वर का जो नाम ले, करता है नित दान ।
जो भी कारज वह करे, कभी न होवे हान ॥ ६५९

ईश्वर हित जो दान को देवे, उस पुरुष को लाभ भी होवे ।
दानी सदा लाभ को पावे, जीव जन्तु का प्रिय हो जावे ।
दानी देवों का भी प्यारा, सुख पावे वह दैव द्वारा ।
दानी के मन जो कुछ आवे, पूरा कारज वह हो जावे ।
दानी दीन जनों को पाले, दानी की सुध ईश संभाले ।
दानी दुःखियों को अपनाता, दानी प्रभु से रक्षा पाता ।
हानी लाभ न दानी जाने, दान की महिमा वह पहचाने ।
तन मन धन से करता दान, दानी मानों वही महान ।

ज्यों ज्यों दान कुमुद कर पाता, धन उस का था बढ़ता जाता ।
सेठ बना कुमुद बहु भारी, दान करे उस की नित नारी ।

दो० अखण्ड भण्डारा चाला, अन्न पायें नर नार ।
दीन दुःखी जन आय कर, पावें सुख अपार ॥ ८६०

पीछे के अब हाल को देखो, मात पिता की दशा को पेखो ।
दान धर्म जब घर से छूटा, लक्ष्मी का भी नाता टूटा ।
नित्य वणिज में होती हानी, मात पिता मन मांझ ग्लानी ।
नित्य नवीन विपत थी आती, संपत क्षीन ही होती जाती ।
सेठ सेठानी बने कंगाल, देखा जाये न उन का हाल ।
त्याग धर्म को जो दिखलावे, दुर्दशा को वही नर पावे ।
ऐसा बुरा हुवा तब हाल, नगर में बसना भया मुहाल ।
नगर छोड़ वे बने भिखारी, ऐसी उन पर आई लाचारी ।
इक दिन उस क्षेत्र मे आये, नर नारी जहां भोजन पाये ।

दो० उस क्षेत्र को देख कर, खड़े पांत में लाग ।
तभी कुमुद ने देखे, मात पिता हत भाग ॥ ८६१

मात पिता को कुमुद ने देखा, खिन्न होय मन मांहि उल्लेखा ।
प्रथम इन्हें मैं भोग दिलाऊं, पाछे ही इन से मिल पाऊं ।
इक सेवक को दीन आदेश, भोजन देवो इन्हें विशेष ।
भीतर ले जा तुम ठहराओ, सुख से घर में इन्हें सुलाओ ।
इन्हें विदायी न तुम देना, देख रेख इन की कर लेना ।
सेवक आज्ञा मानी सारी, सेवा कीनी उन की भारी ।

मात पिता थे विस्मित भारे, किस के सेवक हैं ये सारे ।
हमें इन्होंने किमि पहचाना, हम ने तो ना इन को जाना ।
इक सेवक से पूछा "भाई, कौन सेठ की सकल कमाई" ।

दो० उत्तर दीना दास ने, "कुमुद हमारा नाथ ।
बेला गृह की स्वामिनी, रहे दान में हाथ ॥ ८६२ क
रहे दान में हाथ नित, सिमरत कृष्ण मुरार ।
नित्य प्रभु को पूजती, जग पूज्या वह नार" ॥ ८६२ ख

इतनी प्रभु जी कथा सुनायी, बात पिता को यह समझाई ।
धर्म कर्म में सुत जब लागे, मात पिता समझो बड़ भागे ।
मात पिता जो होवें बाधक, परमार्थ में बनें ना साधक ।
उन को जानो माया मोहित, भव के जल में वे हैं बोढ़ित ।
प्रभु कृपा की वही अधिकारी, मात भक्त की जो है नारी ।
जिन के पुत्र धर्म में लागें, सब सुख उन के संग हों लागें ।
आगे की अब कथा सुनाऊं, मात पिता संग कुमुद मिलाऊं ।
बेला सहित कुमुद तब आया, झुक पाओं में शीश निवाया ।

दो० निज सुत को तब देखकर, शोक गया सब भाग ।
पुत्र जिन का धर्मात्मा, उन का परम सुभाग ॥ ८६३

सुख से सब दिन बीतन लागे, घटन सुनाऊं हुई जो आगे ।
इतनी संपत को तब देख, दान पुण्य बेला का पेख ।
माता के मन निशि दिन आये, यह लुटात मम सुत की आय ।
यदि निकल यह यहां से जावे, दौलत घर की घर रह पावे ।

नित्य पती से हठ कर पाती, बेला की करतूत सुनाती ।
घर में कलह कलेश मचाया, घर स्वर्ग को नरक बनाया ।
पति पुत्र के कान वह भरती, बेला से प्रति पल वह लड़ती ।
दासी दास पास जो आते, उस से झिड़की ही वे पाते ।

दो० धर्म कर्म है क्षीर सम, माया मद खटाई ।
मिले संग जब आय कर, स्वाद रहे न भाई । ६६४

माता ने जब बहुत सताया, वन ओर तभी कुमुद सिधाया ।
बेला भी संग में हो लागी, पतिव्रता शुभ मन अनुरागी ।
वन में कष्ट बहुत तब आये, अबला सहन किमि कर पाये ।
समाधि में वह प्राण नीकार, दिव्य लोक को गई सिधार ।
लगी कुमुद के मन बहु ठेस, बनाया उन्मादी सा भेस ।
गांव गांव में चल के जावे, शांती किसी ठोर न पावे ।
इक दिन इक धनी ने देखा, उस की पत्नी ने भी पेखा ।
उन की थी न कोई संतान, कुमुद बनाया निज पुत आन ।

दो० आवें दिन सर पर यदि, पड़े मुसीबत घोर ।
शुभ कर्म दें आश्रय, पास न बहुड़े और । ६६५

दान पुण्य जो उस था कीना, उस ने आ अब फल को दीना ।
धनी बना वह फिर से भारी, गई विपत्ति आई जो सारी ।
सुख से जीवन बीतन लागा, धर्म कर्म में भी वह लागा ।
साधू सेवा वह कर पावे, सुध बेला की नित्य हो आवे ।
स्वर्ग में बैठी वह विचारी, याद पति को करती भारी ।

धर्म पिता जो कुमुद बनाया, हीरों का उस वणिज चलाया ।
विदेशों से जा हीरे लाता, धन था इस विध बहुत कमाता ।
कुमुद गया इक बार विदेश, चढ़ नाव में पार के देश ।
धन लाद कर बहुत वह लाया, मग में घटन ग्रस्त हो पाया ।

दो० घटन ग्रस्त जब था कुमुद, बचाया प्रभु दे हाथ ।
बाल न बांका हो सके, प्रभु हों जिनके साथ । ९६६

प्रभु कृपा से बच जब पाया, तब वह वन की ओर सिधाया ।
देखे शिव भवानी बैठे, जाना साधू हैं कोई पैठे ।
दण्डवत जा तब उस ने कीना, महादेव ने आशिष दीना ।
पुत्र क्या है इच्छा तेरी, पार्वती ने गिरा उचेरी ।
मैं तो घर का मार्ग पाऊं, निज इच्छा मैं यही बताऊं ।
एक पुष्प महादेव ने दीना, हर्षित होय कुमुद ने लीना ।
आंख मूंद कर बैठो तात, मात पिता का हो साक्षात ।
महादेव की आज्ञा मान, बैठा कुमुद लाय कर ध्यान ।
जभी ध्यान उस का खुल पाया, निज को घर में बैठा पाया ।

दो० निज को घर में पाय कर, सुखी भया बहु कुमुद ।
मात पिता से भेंट कर, घटन बतायी दुखद ॥ ९६७

कुमुद ने सारी घटन बतायी, यात्रा की सब कथा सुनायी ।
धन संपद का नाश जताया, वन में साध से मिलन बताया ।
तब पुष्प की याद हो आई, कुसुम कली वह मात दिखायी ।
जब पिता ने पुष्प को देखा, "दिव्य लाल यह" इमि उल्लेखा ।

कह दी उस ने स्पष्ट यह बात, वह तो जौहरी था विख्यात ।
इस का मूल्य न आंका जाये, इस सम न कोई जग में पाये ।
सुन कर मात कही तब बात, इस सम चाहूं और मैं तात ।
सेठ ने पत्नी को समझाया, न जाने यह कहां से लाया ।

दो० ऐसा लाल न जगत में, मिले किसी भी ठौर ।
किस धुन में हो पड़ गई, लेने को इक और ॥ ६६८

सेठानी पर हठ न त्यागा, देख कुमुद तब कहने लागा ।
हे माता मैं यत्न करूंगा, ऐसा लाल ला चरण धरूंगा ।
कह कर मात को वह यह वाणी, घर से निकला धर्म का मानी ।
साधु से था लाल वह पाया, वह साधु की खोज सिधाया ।
साध एक उस वन में पेखा, मन मांझ तब कीन उल्लेखा ।
प्रथम सेव में रत हो पाऊं, कर प्रसन्न निज भाव बताऊं ।
अहर्निश करन लगा तब सेव, पाया साध ने मन का भेव ।
वह था साध सिद्ध इक योगो, साधन करता जगत वियोगी ।

दो० हो प्रसन्न तब साध ने, कही कुमुद से बात ।
जो इच्छा तव मन बसे, स्पष्ट बतावो तात । ६६९ क

सुनकर उस की बात को, कुमुद मुदित नीतांत ।
कह दीना तब साध को, अपना सकल वृतांत ॥ ६६९ ख

योगी ने फिर ध्यान लगाया, सारा भेद योग से पाया ।
बात कुमुद को तब कह दीनी, जो कुछ मन में थी उस चीनी ।
हे तात मैं तुम्हें बताऊं, उस फल को मैं स्वर्ग में पाऊं ।

तुम को फल वह शिव ने दीना, साध समझ जिस से था लीना ।
शिव के पास भी फल था एक, ऐसे फल न मिलें अनेक ।
यदि स्वर्ग में कोई नर जावे, तभी वहां से फल वह लावे ।
सुनी कुमुद ने साध को वाणी, कहन लगा "मम गुरु सन्मानी ।
ऐसी मुझ को विधि बतायें, जिमि स्वर्ग में नर जा पायें ।

दो० सुनी कुमुद की बात जब, साध कीन अनुमान ।
शांत भाव से कह दिया, विधि न योग बिन आन ॥ ९७०

योग वह जानों विद्या भाई, जिस की महिमा वेदन गाई ।
योग साधन साधे नर नार, शक्ति पावे वही अपार ।
लोक लोकान्तर योगी जावें, देवों को वे मिल कर आवें ।
न कोई ऐसा लोक अगम, योगी पहुँचे नहीं इक दम ।
योग साधन को कर लो मीत, स्वर्ग से लावो फल मन चीत ।
बिना योग न पूरी साध, चाहे करे कोई यत्न अगाध ।
सुन कर साध के कुमुद विचारा, योग साधन के व्रत को धारा ।
दृढ़ हो जब कोई व्रत को लेवे, सिद्धी उस के मग को सेवे ।

दो० योग साधन गुरु सेव का, व्रत कुमुद ने लीन ।
निशिदिन साधन योग में, कीना मन उस लीन ॥ ९७१

कठिन तपस्या कुमुद ने कीनी, जिस विध गुरु से उस ने चीनी ।
वृत्तियों का उस कीना रोध, कीना भावों का भी शोध ।
प्राणों को उस लीना साध, मुद्रा सब ही लीन आराध ।
खेचर मुद्रा को कर पाया, प्राणों को उस गगन चढ़ाया ।

लीना सूक्ष्म को उस जीत, त्यागे देह वह बिन प्रतीत ।
गुरु कृपा से योग आराधा, हुई न उस के मग में बाधा ।
गुरु ने उस की लीन परीख, सफल भया तब दीनी सीख ।
लोक लोकान्तर में तुम जाओ, दिव्य पुष्प तुम खोज के लाओ ।

दो० गुरु शासन को श्रवण कर, बैठा जाय समाध ।
शिव को प्रथम आराधा, मिला वही तब साध ॥ ९७२ क

मिला वही तब साध जब, कीना प्रगट वीचार ।
शिव शंकर कहने लगे, जा विष्णु के द्वार ॥ ९७२ ख

विष्णु लोक में कुमुद पधारा, हाल बताया निज उस सारा ।
विष्णु ने तब दीन आदेश, ब्रह्मा के तुम जाओ देश ।
ब्रह्म लोक से हम थे लाये, शिव को पुष्प थे जो दे पाये ।
गया ब्रह्मा के तब वह पास, कीनी जा कर उस अरदास ।
ब्रह्मा ने उस को समझाया, इन्द्र से था पुष्प वह पाया ।
इन्द्र लोक में यदि जा पाओ, वहां से ले पुष्प को आओ ।
मानी कुमुद ने ब्रह्मा वाणी, पहुँचा आ स्वर्ग में ज्ञानी ।
इन्द्र देव कीना सत्कार, कहा कुमुद ने निज वीचार ।

दो० इन्द्र ने वह श्रवण कर, देखा ला फिर ध्यान ।
वह पुष्प तुम पाओगे, जाकर उस उद्यान ॥ ९७३

इन्द्र ने इक बाग दिखाया, दिव्य भवन जिस में मन भाया ।
कुमुद गया जब उस के पास, बेला बैठी पायी उदास ।
देख पति को स्वर्ग में आये, स्वागत हित उस कदम बढ़ाये ।

देखा कुमुद ने सारा साज, तोष भया उस को तब आज ।
दिव्य ठाठ बाठ वहां भारा, कथनी में न आवे सारा ।
संपति बेला की वह देख, कुमुद ने मुख से कीन उल्लेख ।
निज कुशल की बात बतावो, सुख से तो तुम यहां रह पावो ।
बेला ने सुन पति की वाणी, बोली हे भगवान कल्याणी ।
दो० तव चरणन के दर्श कर, पूर्ण है सुख आज ।
है तो बंधन लागता, सुख का यह सब साज ॥ ९७४ क
स्वर्ग में केवल साज है, सुख यहां है नाहिं ।
राग द्वेष नित मन बसत, भय मन रहत समांहि ॥ ९७४ ख
निज से जब हम बड़े को देखें, पड़ें द्वेष की मन पै रेखें ।
स्थिर नहीं है यहां का वास, यह भी भय का कारण खास ।
अब तो आप यहां रह पाओ, शून्य जीवन मम सुखी बनाओ ।
बेला के जब सुने वीचार, कुमुद कहे तब वचन उदार ।
जहां पर न चित्त शांति गोये, ऐसा स्वर्ग न भाये मोये ।
माता हित मैं यहां हूँ आया, जिस ने यहां से पुष्प मंगाया ।
पुष्प सहित दीजो वीदायी, रहो सुखी तुम सुन्दर जायी ।
पुष्प बेला ने ला कर दीना, प्रीत सहित कुमुद कर लीना ।
दो० स्वर्ग से लौटा कुमुद तब, प्रविष्टा निज शरीर ।
पुष्प झोली में था पड़ा, उठा वह योगी वीर ॥ ९७५ क
निज आसन को छोड़ कर, पहुंचा गुरु के पास ।
चरणी पुष्प चढ़ाया, सहित परम विश्वास ॥ ९७५ ख

सद्गुरु दीना तब आदेश, शिष्य तुम जाओ अपने देश ।
कृत कृत्य तुम तो हो पाये, मातृ सेव में चित्त लगाये ।
जग में इस से बड़ा न धर्म, सेवा मात पिता जो कर्म ।
सकल सिद्धि उस की अनुयायी, मात पिता जिस सेव कमायी ।
मात पिता जो चरण आराधे, कर्म गति न उस को बाधे ।
मात पिता को माने देव, भाग्य भी उस की करता सेव ।
मात पिता की सेवा करता, सहज में सागर भव वह तरता ।
मात पिता शिव गौरी रूपा, सेवा कर फल पाये अनूपा ।

दो० मात पिता को छोड़ कर, देव आराधे अन्य ।
ऐसा नर सुख सिद्धि से, वंचित रहे अधन्य ॥ ९७६

हे बालक अब घर को जावो, योग समाधी में चित्त लावो ।
योगी बालक कुल को तारे, बन्धन से निज पितर उबारे ।
गुरु कुमुद को शिक्षा दीनी, तब विदायी उस ने लीनी ।
अपने घर फिर चल कर आया, ज्वाहर माता चरण चढ़ाया ।
माता ने पा कर वह लाल, चूम लिया निज कुमुद का भाल ।
कुछ दिन वह घर में रह पाया, साधन योग में चित्त लगाया ।
वन जाने की आज्ञा मांगी, वृत्ती घर में थी न लागी ।
मात पिता ने बहु समझाया, टस से मस न कुमुद को पाया ।

दो० मात कहा तब कुमुद को, मिला पूत बहु भाग ।
जीवित किस विध से रहूं, जो तुम जाओ त्याग ॥ ९७७

प्राण हमारे तव आधीना, पुत्र बिन हमें जानों दीना ।

बूढ़ी आयु अब हो आयी, किस की आस जीयेंगे भाई ।
कुमुद ने समझी जब लाचारी, मात पिता को गिरा उचारी ।
देवें पूत तुम्हें जगदीश, कुमुद ने दीनी शुभ आशीश ।
सुन कुमुद की सहज यह वाणी, माता के मन खुशी समानी ।
कही पिता ने मन की बात, नहीं जाये सुत तव सा तात ।
जो सुत तुम सा भी पा जायें, फिर भी तुम्हें न त्याग दिखायें ।
तुम हो पूरण ईश्वर रूप, मैं दशरथ तुम राम स्वरूप ।
हम तो हैं तुमरे आधीन, श्रवण के मात पिता जिमि दीन ।

दो० इक पल भी न सह सकें, विरह तुम्हारा तात ।
सुख से घर में ही रहो, मान हमारी बात ॥ ९७८

विवश पिता ने बहु जब कीना, मान कुमुद ने कहना लीना ।
एक वर्ष तब वहीं बिताया, उन के घर फिर पुत्र जाया ।
हर्ष की दौड़ पड़ी थी लहर, बजे शहनायी आठों पहर ।
मात पिता का पूत दुलारा, सब की आंखों का वह तारा ।
चन्द्र कला वत बढ़ने लागा, मात पिता का चित्त अनुरागा ।
देख पिता को कुमुद सुखारी, चलने की उस कीन त्यारी ।
वियोग कुमुद से न वे मानें, देव तुल्य वे उस को ज़ानें ।
देख कुमुद ने नेम बनाया, बंद भवन में रह दिखलाया ।
समाधि में वह समय बिताता, निज आसन को त्याग न पाता ।

दो० रहे कुमुद निज भवन में, मात पिता संतुष्ट ।
सुख का घर में साज था, माना दैव जो रुष्ट ॥ ९७९

रुष्ट दैव ने मानी बात, भये सुखी थे कुमुद के तात ।
देख कुमुद ने मन अब धारा, चलने का निर्णय कर डारा ।
इक दिन फिर उस लीन विदायी, हिमाचल को उस कीन चढ़ायी ।
कीना सूक्षम देह निर्माण, पहुँच हिमालय लाया ध्यान ।
योगी ले जब इच्छा धार, उस का कौन करे प्रतिकार ।
प्रभु जी ने जब कथा सुनायी, रहस्यमयी सब बात जतायी ।
समझ पिता की तब यह आया, राम गोपाल शुभ मग अपनाया ।
भाग्य महान मिला गुरु पूरा, रहे न योग में सुत अधूरा ।
दो० पूरण योगी सुत बने, कुल उद्धारक होय ।
योग मार्ग से वर्जना, कहे भला न कोय ॥ ६८०
गोविन्द राम निज अनुमति दीनी, राम गोपाल साधु वृत्ति लीनी ।
प्रभु जी ने तब दीक्षित कीना, गोपालानन्द नाम रख दीना ।
गोपालानन्द भया विख्यात, तप की मूर्ति वह साक्षात ।
प्रभु का भक्त परम वैरागी, कामना जग न उस ढिग लागी ।
दिव्य ध्यान में रहता लीन, दिव्य कृपा प्रभु उस पै कीन ।
प्रभु प्रेम का पुतला जापे, कीर्तन रस में जब वह व्यापे ।
घाम शीत में रहत समान, नगन वेश वह निर्मल ध्यान ।
होय मस्त कीर्तन में लागे, घोर शीत तन स्वेद में पागे ।
दो० माघ पोह की रात में, विचरे नगन सुजान ।
तन की तो सुधी न रहे, मस्त प्रभु के ध्यान ॥ ६८१क
मस्त प्रभु के ध्यान में, निशिदिन रह जो पाय ।
जगत व्यापे न उसे, भोर न जग वह आय ।६८१ख

गोपालानन्द घर बार त्याग, रहन लगा प्रभु चरणी लाग ।
अमृतसर जो नगरी भारी, प्रभु की कीर्ति वहां विस्तारी ।
चल कर जनता दूर से आती, प्रभु का दर्शन वह कर पाती ।

१६. महंत बाल कृष्ण का श्री प्रभु जी के चरणों में आना

ईश्वर रूप प्रभु को मान, करते प्रभु का सब जन मान ।
ईर्षा वश कुछ जन थे ऐसे, सकें न सुन प्रभु कीर्ति जैसे ।
प्रभु की कीर्ति सूर्य समान, दुःखी होवे उल्लूक महान† ।
सज्जन कमल प्रफुल्लित देख, कुमुद जाये मुरझा वह पेख ।
करें असज्जन विरोध महान, प्रभु जी शांत समुद्र समान ।

दो० शांत प्रभु को देखकर, झुकें विरोधी आन ।
गहर गंभीर समुद्र में, वस्तु सकल डुबान ॥ ९८२

इक दिन कुछ विरोधी आए, संग में साधु कोई लाए ।
अहंमानी वह साधु भारी, पहुँच प्रभु से की तकरारी ।
जो कुछ उस के मुंह में आया, सब कुछ ही वह वहां बक पाया ।
लेखनी लिखे न वह कुवाणी, जो थी कही साधु अभिमानी ।
प्रभु जी श्रवण करें सब बात, सहे हस्ती जिमि पुष्पाघात ।
भैरव सिद्ध था उस कर पाया, गर्व तभी था माथ समाया ।

† जिस प्रकार सूर्य के दर्शन से कमल खिलते है परन्तु उल्लू दुःख मानते हैं वा कुमुदनियां मुरझा जाती हैं। उसी प्रकार श्री प्रभु जी की कीर्ति सज्जनों को सुखदायी और असज्जनों को दुखदायी लगी।

रक्त तरेरे उस के नयन, क्रोध भरे बोले वह बयन ।
भस्म करे जिमि सृष्टि सारी, ऐसी दुर्मति उस की भारी ।
दो० निज दुर्मत की शरण ले, प्रकट किया अज्ञान ।
गोपालानन्द न सह सका, प्रभु जी का अपमान ॥ ९८३

गोपालानन्द साध संबोधा, योध को जिमि ललकारत योधा ।
साध को भैरव का अभिमान, गोपालानन्द निज प्रभु का मान ।
दिव्य दृष्टि से साध को देख, दुःसाहस का कारण पेख ।
शक्ति छीन उस लीनी सारी, मुख से तब उस बात उचारी ।
"रे दुर्मत ! क्यों बात बढ़ावे, समझ में तेरी लेश न आवे ।
देख प्रभु के चरण में देख, बैठी कौन, हे दुर्मत ! पेख" ।
नन्ही बालिका इक आसीना, साध ने दिव्य रूप वह चीन्हा ।
वह तो महाकाली का रूप, भैरव बैठा चरणी गूप ।
दो० निज भैरव को देख कर, प्रभु चरणी आसीन ।
पांव तले से साध के, माटी भयी विलीन ॥ ९८४

हक्का बक्का साध खड़ा था, वचन मुंह का मुंहि अड़ा था ।
भैरव रुष्ट भया था उस से, रूठे देव न क्रोधी किस से‡ ।
भैरवी शक्ति कीन किनारा, मानी को अभिमान ने मारा ।
शक्ति शून्य देख उस निज को, और समझ योगेश प्रभु को ।
कीनी उस ने विनय विनीत, प्रकटायी प्रभु चरणि प्रीत ।

‡ क्रोधी पर देवता प्रसन्न नहीं रह सकते । अपितु रुष्ट हो कर उस का संग छोड़ देते हैं, कारण यह है कि क्रोध आसुरी वृत्ति है न कि दैवी ।

कहन लगा "देवों के देव, दास को दीजो चरण की सेव ।
तव माया वश जग भरमाये, भेद तुम्हारा समझ न आये ।
लोकप भी तुम्हें जान न पायें, जीव जन्तु किस लेखे लायें ।

दो० भैरव जी को साध कर, गर्व कीन मन मांहि ।
भूल दास की बखिशये, शक्ति-मान गोसांहि ॥ ९८५

मुझ से हुई है भूल महान, बखशन हार बखिशये दान ।
मेरी शक्ति मुझे लौटाओ, यही साध को भिक्षा पाओ ।
जो भी दण्ड हो दीजो और, ~~इष्ट~~ इष्ट मुझे लौटावो मोर" ।
इस विध विनय बहुत उस कीनी, प्रभु जी ने तब आज्ञा दीनी ।
अमृतसर को छोड़ के जावो, शक्ति प्रदर्शन न कर पावो ।
इस शक्ति का कर प्रसार, व्यर्थ बढ़ावो निज अहंकार ।
इस से तुम परलोक विगारो, जीवन में भी कुछ न सारो ।
साध वही जो साधे योग, त्याग सके सब जग के भोग ।

दो० भोग सकल जो छोड़ कर, राखे इष्ट आराध ।
लक्ष्य योग का धार कर, उसे मैं जानूं साध ॥ ९८६

प्रभु जी ने मति उस को दीनी, भैरव शक्ति वापिस कीनी ।
साध गया तब कर प्रणाम, जन विरोधी भये बदनाम ।
एक बात प्रभु मन न भायी, गोपालानन्द जो शक्ति दिखायी ।
मुख से प्रभु ने तब फरमाया, अपने मन का रोष जताया ।
जो कीना तू शक्ति प्रयोग, इस निमित्त नहीं सीखा योग ।
साधु मेरा क्या कर पाता, बोल बाल वह हट कर जाता ।

लौकिक कार्य साधें कर योग, आवागमन पड़ें वे लोग ।
ऐसा भूल न मग अपनाना, योग की शक्ति को दर्शाना ।
इस विध शक्ति का अपव्यय, करता परमार्थ का क्षय ।

दो० किया बहुत अपराध तुम, किस विध हो प्रतिकार ।
मेरे संग न रह सको, कर के ऐसी कार ॥ ९८७

त्याग के आश्रम को अब जाओ, रह एकान्त योग कर पाओ ।
सुन कर प्रभु जी की यह वाणी, गोपालानन्द मन भयी ग्लानी ।
कहन लगा "हे वेधन देव, भूलन हार हूं मैं गुरुदेव ।
क्षमा करो प्रभु मम अपराध, बिछुड़ पाऊं मैं दुःख अगाध ।
तव दर छोड़ मैं किस दर जाऊं, और कहीं न सुख मैं पाऊं ।
हम बालक तुम पिता हमारे, करो न हम को चरण से न्यारे ।
भले बुरे हम तेरे दास, दोष निवारो रख के पास ।
और न बोल सका कुछ बात, गिरा चरण में उस का गात ।

दो० प्रभु चरणों में गिर पड़ा, तन की सुध वह खोय ।
भक्त अनन्य किस विध सहे, प्रभु से बिछुड़न जोय ॥ ९८८क
प्रभु चरणों में गिर पड़ा, बेसुध होय शरीर ।
भक्त प्रेमी ही लखे, बिछुड़न की जो पीर ॥ ९८८ख

लख प्रभु जी उस का हाल, होश में लाया तब तत्काल ।
कहन लगे "अब तो तुम जाओ, शीघ्र बेशक मुड़ कर आओ ।
प्रभु की इच्छा है यह भाई, चित्त में मानो न कलुशाई" ।
माथ गोपालानन्द झुकाया, "जो आज्ञा" मुख से कह पाया ।

शिष्य वही जो आज्ञा पाले, चित्त में गुरु का रूप संभाले ।
चल कर बाहिर नगर से आया, प्रभु के ध्यान में चित्त लगाया ।
मस्त अवस्था उस की ऐसी, उपमा मिले न जिस की जैसी ।
साधुन का था तंह इक डेरा, उस का धनी महन्त घनेरा ।

दो० वाल कृष्ण वह महन्त था, महन्तों का भी महंत ।
देख गोपालानन्द को, चकित भया वह सन्त ॥ ९८९

गोपालानन्द को उस जब देखा, प्रिय लगा और मनहिं उलेखा ।
लाखों साधु मैंने देखे, इस जैसे न कहीं भी पेखे ।
अद्भुत मस्ती इस मुख छायी, दैवी किरपा है उतरायी ।
दृष्टि ऊपर नाहीं उठाये, रज कण में जिमि प्रभु लखाये, ।
अति आकर्षक इस का रूप, साधु है यह तेज स्वरूप ।
गुरु कृपा का पात्र जानूं, इस के गुरु को पूर्ण मानूं ।
गुरु कृपा के फल स्वरूप, साध बना यह परम अनूप ।
इस विध मन में वह अनुमान, कहा महन्त ने सह अभिमान ।

दो० महंत उसे संबोध कर, कहे "इधर को आओ ।
गुरु किस के तुम शिष्य हो, आ हमें बतलाओ" ॥ ९९०

गोपालानन्द उस को देखा, महन्त बड़ा इक सन्मुख पेखा ।
पास जा उस कहा, "महाराज, गुरु मेरे हैं योगी राज ।
महिमा उन की क्या बतलाऊं, शब्द नहीं जो मुख पे लाऊं ।
निज शिष्यन को करें निहाल, शरणागत के वे प्रतिपाल ।
राम लाल उन का शुभ नाम, कलि में प्रगट भये फिर राम ।

तपस्या कीनी वन में घोर, योग साध आये इस ओर ।
उन की शरणी जो चलि आवे, प्रभु किरपा को वह नर पावे ।
देवें दिव्य दृष्टि का दान, मुख से किमि हो सकत बखान ।

दो० दिव्य दृष्टि के दान से, दिव्य समाधि पाय ।
जग में प्रभु के भक्त का, भाग्य सदा विकसाय" ॥ ६६१

महन्त सुनी जब उस की बात, कहन लगा "हे प्रिय मम तात ।
मुझे कराओ उन के दर्शन, उपज भया मम मन आकर्षण ।
योग की मुझ को भी जिज्ञासा, योगिराज से मिटे पिपासा" ।
गोपालानन्द कुछ सोचन लागा, महन्त ने पर निज हठ न त्यागा ।
संग महन्त को ले कर आया, प्रभु दर उस को आन दिखाया ।
भक्तन मांझ थे प्रभु विराजे, उडुगण मध्य जिमि शशधर साजे ।
नमो नारायण महंत ने कीना, साध जान प्रभु आसन दीना ।
उस ने फिर निज परिचय कराया, नाम धाम अपना बतलाया ।

दो० बाल कृष्ण मम नाम है, मैं वैष्णव महाराज ।
राम नाम की साधना, नित्य हमारा काज ॥ ६६२क
तुम योगी महाराज हो, हमें बताओ बात ।
क्या राम भगवान का, हो सके साक्षात ॥ ६६२ख

सुना है हम ने हे महाराज, नाम जाप ही कलि में काज ।
केवल नाम कलि में तारे, और न साधन जीव उबारे ।
यज्ञ दान तप कलि में नाहिं, केवल नाम ही जीव तराहीं ।
यदि है नाम तराने योग, छोड़ नाम क्यों करते योग ।

योग कलि में क्या हो पावे, दर्श राम क्या योग करावे ।
यह नाथ मम संशय भारी, इस से मम किमि हो निस्तारी ।
इतनी आयु बीतन आई, शान्ती न चित्त अब तक पायी ।
तव उपमा सुन कर चलि आया, निज मन का मैं हाल बताया ।

दो० योगी के दर आय कर, अवश्य होय मन शांत ।
ऐसा जग में सब कहें, दूर करो मम भ्रांत ॥ ९९३

प्रभु जी सुन कर उस की वाणी, मुस्काये फिर जन कल्याणी ।
करो साधन हे साध प्रवीण, साधन से हो मन भी लीन ।
मन न लीन यदि हो पावे, नाम जाप किस काम में आवे ।
कर का मनका जो नर फेरे, और न मन को जग से फेरे ।
नाम सुधारे न कुछ काम, मन के मीत ही जानों राम ।
जपिये नाम राम का भाई, और रहो मन से लिव लाई ।
कलियुग में भी साधे योग, त्यागे जो नर मन से भोग ।
सभी युगों में संभव योग, भोग से मन यदि करे वियोग ।

दो० विषयों से मन काढ़ कर, ले जो प्रभु का नाम ।
प्रीत गुरु के चरण में, मिल जायें फिर राम ॥ ९९४

राम मिलेंगे तुम को भाई, बैठो मम सन्मुख मन लाई ।
मन के भीतर राम हैं रहते, जीवन का सब भार जो वहते ।
ब्रह्मा विष्णु वही महेश, राजत सद्गुरु रूप परेश ।
भेद भाव को दो तुम त्याग, अखण्ड ज्योति से हो अनुराग ।
वहीं मिलेगा अपना रूप, सब रूपों में राम है गूप ।

जिस रूप में भक्त पुकारे, प्रकटें प्रभु उस रूप को धारे ।
आशीर्वाद प्रभु ने दीन, बाल कृष्ण भया ध्यानासीन ।
कई घंटे जब भये व्यतीत, उठा ध्यान से खुश था चीत ।

दो० ध्यान से उत्थान कर, प्रभु चरण सिर नाई ।
बाल कृष्ण कहने लगा, "हे प्रभो सुखदायी ॥ ९९५ क
इसी काल से नाथ जी, दीन महंती छोड़ ।
निज चरणों में शरण दो, लूं जग से मुख मोड़ ॥ ९९५ ख

जो है ध्यान में मैंने देखा, उस का किमि कर सकूं उल्लेखा ।
राम सीय वा लक्ष्मण देखे, बाल्मीकि के आश्रम पेखे ।
उन का रूप मैं किमि बखानूं, निज जीवन की पूंजी मानूं ।
तब किरपा का यह प्रताप, सद्गुरु का मुझे भया मिलाप ।
कौन गुरु बिन राम मिलावे, राम नज़र न गुरु बिन आवे ।
मुझे मिले अब यही आसीस, तव चरणों में रहे यह सीस ।
प्रभु चरणों में सीस टिकाया, ध्यान पुनः उस का लग पाया ।
देहाध्यास सभी विसराया, अखण्ड समाधि को उस पाया ।

दो० अखण्ड समाधि पाय कर, लीन प्रभु में चीत ।
रात दिवस का बीतना, होत न उसे प्रतीत ॥ ९९६

बहु दिवस उस समाधि बिताये, अद्भुत दर्शन उस ने पाये ।
प्रभु जी का कुछ ग्यान भी पाया, जिस योग्य था समझ में आया ।
प्रभु जी पारब्रह्म भगवान, समझना उन को नहीं असान ।
पूरण निर्मल मन जो होय, एकाग्रता को फिर जब गोय ।

माया का आवरण भी टूटे, धार प्रेम की चित्त में फूटे ।
उसी धार जब जीव नहाये, संस्कारों का मल धुल जाये ।
प्रभु ज्ञान का बने अधिकारी, महिमा प्रभु की प्रकटे भारी ।
मानव तन में प्रभु जब आये, मूर्ख नर कुछ भेद न पाये ।

दो० प्रभु को जाने जन वही, जिसे जनावें आप ।
प्रभु कृपा बिन को लखे, प्रभु जी का प्रताप ॥ ९९७

बाल कृष्ण तब महंती छोड़, प्रभु चरणों में चित्त को जोड़ ।
प्रभु सेवा में रहने लागा, भया वह साधन का अनुरागा ।
एक बार की कथा बतावें, प्रभु माया का बल दिखलावें ।
प्रभु माया निज शक्ति दिखावे, ज्ञानी भी मग से विचलावे ।
इस के मिलें प्रमाण अनेक, नारद आदि बचे न एक ।
अवसर कुंभ का जब चलि आया, भक्तों को प्रभु जी फरमाया ।
प्रयाग राज जो तीर्थ भारी, इच्छा वहां की भयी हमारी ।
शीघ्र ही हम वहां अब जावें, स्नान पर्व के कर के आवें ।

१७. भक्त मैण्डू मल्लाह का प्रसंग, प्रयाग राज के तीर्थ में

दो० सुन प्रभु की बात को, भक्तों के मन चाव ।
संग प्रभु के हम चलें, उदय भया यह भाव ॥ ९९८

मन में उन के भाव यह जागे, प्रभु चरणों के जो अनुरागे ।

संग चलें यह विनय सुनायी, प्रभु जी से तब आज्ञा पायी ।
रेल में लीना निज इस्थान, अमृतसर से किया प्रस्थान ।
भजन करें वा ध्यान लगावें, गुण प्रभु के गाते जावें ।
यात्रा लांबी प्रभु थे संग, इस से उत्तम क्या प्रसंग ।
किरपा होवे सद्गुरु जब, प्रसंग मिले गा ऐसा तब ।
अगले दिन प्रयाग पधारे, रेल से उतरे प्रभु संग सारे ।
धर्मशाला इक सुन्दर भारी, जा ठहरी वहां मण्डली सारी ।

दो० धर्मशाला में ठहर कर, करते गंग स्नान ।
मन की शुद्धी के लिए, करते प्रभु का ध्यान ॥ ९९९

भक्तों को प्रभु संग ले जाते, तीर्थ राज के दर्श कराते ।
देवालयों में प्रभु पधारें, संग भक्त श्रद्धा को धारें ।
दान पुण्य सब वहां कर पाते, देवों को भी भेंट चढ़ाते ।
मर्यादापुरुषोत्तम देवा, मर्यादावश करते सेवा ।
उन से शिक्षा जो जन पाय, धर्म कर्म में चित्त लगाय ।
जो आदर्श प्रभु दिखलावें, भक्त उसी पर ही चल पावें ।
भक्त वही जो शिक्षा पाले, प्रभु मार्ग को चित्त संभाले ।
योग भक्ति का शुद्ध स्वरूप, प्रभु दिखाया उस का रूप ।

दो० योग भक्ति के रूप को, प्रभु दिखाया आप ।
रामलाल के रूप से, मेटे जग संताप ॥ १०००

प्रयाग राज में प्रभु जब आये, प्रभु भक्तों के मन सुख छाये ।
वहां पर जो को भक्त विराजत, साचे मन से प्रभु अराधत ।

प्रभु जी उस को दर्शन दीना, निज भक्ती का फल उस लीना ।
एक भक्त का हाल सुनावें, मैण्डू जिस का नाम बतावें ।
नाविक था उस का व्यवसाये, केवट प्रकटा कलियुग आये ।
नित्य सदा मन में कह पावे, राम नाव पर मम कभी आवे ।
नाव पे उन को कर इसवार, विहार करावूं गंग की धार ।
इस जन्म की यही कमाई, थी केवट जो प्रभु से पाई ।
शुभ अवसर मैं भी पा जाऊँ, केवट सम निज साध पुजाऊँ ।

दो० तन केवट का धन्य था, मिले राम खुद आय ।
पांव धुलाये भक्त से, चढ़े नाव में जाय ॥ १००१

मुझे मिले क्या अवसर ऐसा, केवट ने था पाया जैसा ।
मैं तो बैठा राह को देखूँ, मन में संशय बहुत उल्लेखूँ ।
निज पापों को कर के याद, संशय मन में लाऊँ अगाध ।
प्रभु कृपा के भक्त अधिकारी, मैं तो हूं इक पापी भारी ।
भाग अल्प व चाह बहु भारी, जानूं मेरी मति है मारी ।
केवट तो था त्रेता जाया, मैं पापी कलियुग उपजाया ।
पाप की गठरी सिर पर लाद, प्रभु कृपा मैं चाहूँ अगाद ।
जन्म अनेकों तप में जायें, तभी प्रभु के दर्शन पायें ।
मैं तो भाड़े में ही चाहूं, प्रभु आयें और नाव चढ़ाऊँ ।

दो० इस विध मन में सोचता, बैठा था निज नाव ।
अर्न्तयामी नाथ ने, जान भक्त के भाव ॥ १००२ क
मन में उस के प्रकट हो, कीना यह आदेश ।

साध तुम्हारी पूजने, हम आए इस देश ॥ १००२ ख
इस विध दर्शन देय कर, हुए वे अन्तर्धान ।
मैण्डू के आश्चर्य का, रहा न कोइ ठिकान ॥ १००२ ग
जो दर्शन मैण्डू ने पाये, मन में उस के रहे समाये ।
प्रति पल उस के सन्मुख आता, प्रभु जी का दिव्य रूप सुहाता ।
धोती कुर्ता मन को मोहे, सर पर श्वेत पाग भी सोहे ।
गल में दिव्य माल जो धारें, मैण्डू दर्शन कर चित वारें ।
होठों पर मुस्काहट भारी, पुष्पन की जिमी खिड़ी क्यारी ।
भक्तनयन भँवर मतवारे, प्रभु जी ऊपर उमड़े सारे ।
निरन्तर दर्शन जन कर पावे, तृप्त होय पर तृप्ति न आवे ।
मैण्डू काम न कुछ कर पाता, प्रतीक्षा में ही समय बिताता ।
दो० प्रतीक्षा में रहने लगा, मैण्डू दिन व रात ।
संग भक्तन के प्रभु, आए तब इक प्रात ॥ १००३
प्रभु जी भक्तों को फरमाये, नाव चढ़ें यह चित्त में आये ।
नाव किसी पर हो अस्वार, ले चलें वह विच गंगधार ।
मध्य त्रिवेणी जा हम सारे, देखें पर्व के सकल नज़ारे ।
भक्तजनों ने सुन यह वाणी, नाव चढ़ेंगे जग कल्याणी ।
नाविक कई लिए हुँकार, प्रभु को भया न को स्वीकार ।
कहें भक्त हे प्रभु जी प्यारे, निराश भये हैं नाविक सारे ।
कैसी नाव होय स्वीकार, हमें बताओ बस इक बार ।

उसी नाव को हम ले आवें, और प्रभु को सैर करावें ।

दो० उन की वाणी श्रवण कर, मुस्काये प्रभु राम ।
भक्तन संग आगे बढ़े, बिन बोले सुख धाम ॥ १००४

एक नाव पै जा रुक पाये, नाविक बैठा ध्यान लगाये ।
नाविक को प्रभु स्वयं बुलाया, पा दर्शन उस भाग्य सराहया ।
मंण्डू ने जो रूप ध्याया, उसी रूप को सन्मुख पाया ।
कर बांध उस विनय उचारी, क्षमा करो मम भूल जो भारी ।
लेने को मैं आगे जाता, पता यदि कुछ मैं पा जाता ।
कीनी कृपा स्वयं पधार, नाव चढ़ाऊँ चरण पखार ।
कठवे में तब जल ले आया, गंगा जल से चरण धुलाया ।
सभी भक्त मन में अनुरागे, उस का भाग्य सराहन लागे ।

दो० प्रभु के चरण पखार कर, लाया वह निज नाव ।
सवार किया तब नाथ को, मन में उस के चाव ॥ १००५

मन में उस के चाव था भारी, नाथ करें मम नाव अस्वारी ।
गंगा पार मैं बहुत कराये, मुझे प्रभु भव पार लगाये ।
सारे भक्त हुये इसवार, नाव ठेली उस गंग को धार ।
सुख सागर जिमी सुख को पावें, उस विध मुझ से नाव चलावें ।
किस कारज मैं प्रभु के आऊँ, तुच्छ सेवा मैं इमि कमाऊँ ।
अन्तर्यामी नाथ प्यारे, घट-घट की जो जानन हारे ।
देख भक्त की भक्ति न्यारी, कीनी उस पर किरपा भारी ।

दो० उसकी भक्ति देख कर, अन्तर्यामी नाथ ।
निज चरणी चित लाया, नाव चलावें हाथ ॥ १००६

कई घंटे उस नाव चलायी, भक्तों को गंग सैर करायी ।
पाया प्रभु का जब संकेत, घाट लगायी नाव बरेत ।
तट पर सभी भक्त उतराये, प्रभु जी के संग सभी सिधाये ।
नाविक को उन दीनि विदायी, और न कुछ दीनी उतरायी ।
बाल कृष्ण मन सोचन लागा, अहंभाव था उस मन जागा ।
भूल भई है प्रभु से भारी, नाव की कीनी मुफ्त सवारी ।
कई घंटे उस नाव चलायी, मिली न उस को कुछ उतरायी ।
प्रभु को मानव जो जन जानें, भरम वही मन ऐसे आनें ।

दो० प्रभु को मानव जानता, अहं भाव में आय ।
भूल प्रभु की मान कर, रहता मन भरमाय ॥ १००७

बाल कृष्ण का मन भरमाया, जान प्रभु को मानव पाया ।
निकले उस की भ्रांति जैसे, उपाय प्रभु तब कीना तैसे ।
बाल कृष्ण को कहा संबोध, भूल भई हम से निर्बोध ।
मैण्डू ने हमें सैर कराया, हम से न कुछ उसने पाया ।
यह लो भाई दस का नोट, उस को देकर आओ लौट ।
उस को मेरी भूल जतानी, जो कहे वह आ बतलानी ।
बालकृष्ण ने नोट को लीना, प्रभु की महिमा को न चीना ।
अहंकार न मन जिस आवे, प्रभु को जान वही नर पावे ।

दो० नोट प्रभु से लेय कर, पहुँचा मैण्डू पास ।
आभार जताय दीना, भर मन गर्व उल्लास ॥ १००८

नोट देख मैण्डू मन आया, प्रभु ने मुझ में दोष है पाया ।
दोषी को निज भक्ति न देते, माया में उस को रंग लेते ।
नाथ भई जो मुझ से भूल, उस को दूर करो जिमी शूल ।
धन दौलत मैं कुछ न चाहूँ, तव चरणों की भक्ति पाऊँ ।
इस विध पश्चाताप उस कीना, तब उस को मुख से कह दीना ।
हे साधु तुम क्यों हो आये, ईश्वर से माया को लाये ।
केवट थी क्या ली उतरायी, जिस ने प्रभु की कृपा पायी ।
तुम ने मुझ से कीन द्रोह, मम मन भया देख यह मोह ।
क्यों कुष्ट ने हाथ न गाला, जिस हाथ ने नोट सम्भाला ।

दो० तुम लाये इस नोट को, देन हित उतरायी ।
मैं मानूँ इस नोट से, पूँजी सकल गँवायी ॥ १००९ क
प्रसाद प्रभु का जान कर, लूँ नोट स्वीकार ।
अपने मन की पर विथा, वर्णूं किस प्रकार ॥ १००९ ख

मैण्डू ने दीना जो शाप, अमोघ वचन कीना प्रभु आप ।
बालकृष्ण महन्त जो भारी, उसे लगी तब कुष्ट बीमारी ।
आयु भर तब रहा वह कुष्टी, भक्त वचन में प्रभु की पुष्टी ।
सागर भले शुष्क हो पाये, सन्त वचन न मिथ्या जाए ।
समझो सन्त वचन प्रभु वाणी, महिमा उस की जगत बखानी ।
लौट प्रभु के पास वह आया, बाल कृष्ण जो महन्त कहाया ।
मैण्डू का सब हाल बताया, प्रभु जी सुन मुख से फरमाया ।

मुझ से करे जो निश्चल प्यार, उस की मैं लूँ सार संभार ।
इस रहस्य को तुम लो जान, कुष्ट करे न फिर परेशान ।
भक्त से मिला हुआ यह शाप, करावे वह भी प्रभु मिलाप ।

दो० प्रभु के वचन श्रवण कर, पड़ा सोच में साध ।
समझ सके क्या भाव को, जिस का अर्थ अगाध ॥ १०१० क

प्रभु वैद्य भव रोग के, औषध देत अमोग ।
कड़वी औषध बिन पिये, जाय न जीर्ण रोग ॥ १०१० ख

प्रयाग राज में प्रभु जी प्यारे, कर्म किये उन जग से न्यारे ।
तीर्थ राज में भक्त जो आवें, निज पापों को गंग बहावें ।
गंगा पापों को ले धार, स्नान करें फिर जगदाधार ।
गंगा का तन तब शुद्ध होवे, गंग माता प्रभु कृपा गोवे ।
मां गंगा सद यही मनावे, प्रभु चरणों को वह धो पावे ।
शंका की नहीं लेश है बात, योगी भक्त करे साक्षात ।
योग बिना कुछ दृष्टि न आवे, सृष्टि सूक्ष्म गुप्त रह पावे ।
सूक्ष्म सृष्टि अपार है मानो, स्थूल उस का अंश ही जानो ।

दो० सूक्ष्म सृष्टि अपार है, मिले स्थूल का पार ।
सूक्ष्म और स्थूल का, प्रभु जानो आधार ॥ १०११ क

स्थूल जगत का पार है, सूक्ष्म जान अपार ।
दोनों भीतर जो रमे, वह है विश्वाधार ॥ १०११ ख

भक्त अनेक प्रभु जी तारे, तीर्थ राज के दोष निवारे ।
स्नान पर्व कर के सुख दाता, लौट पड़े तब भव के त्राता ।

दिव्य रूप गंग माता धारा, विदा पै लीन अशीष अपारा ।
सिद्ध योगी जो कुम्भ पधारे, ध्यान में ही उन प्रभु सत्कारे ।
पश्चिम को फिर रेल पधारी, देव लगावन पुष्पन झारी ।
करें भक्त प्रभु का गुण गान, कितना उन का भाग्य महान ।
जहां भी रेल रुकत मग माहीं, भक्त अनेक दर्शन हित आहीं ।
रात दिवस न जाने कोई, दर्शन हित आएं सब लोई ।

दो० अमृतसर में रेल से, पहुँचे जगदाधार ।
धन्य प्रभु का वह नगर, अमृत का जो सार ॥ १०१२

अमृतसर में प्रभु जी आये, भक्त जनों के चित्त हर्षाये ।
उमड़-२ सब आने लागे, प्रभु दर्शन के जो अनुरागे ।
बीति शीत बसन्त ऋतु आई, पृथ्वी ताप से थी अकुलायी ।
छाया को सब प्राणी चाहें, लू चाले जिमी दिक ले आहें ।
शीतल वात रात को चाले, तप्त देहों पर अमृत घाले ।

१८. श्री प्रभु जो की काश्मीर यात्रा

शीतल वात व शीतल पानी, ग्रीष्म में हर चाहत प्राणी ।
पर्वत ओर पधारे जोई, सुलभ होंय उसको यह दोई ।
पर्वत में न ताप सताता, झर-२ शीतल जल झर पाता ।

दो० पर्वत में जो जा बसें, मुक्त ग्रीष्म सोय ।
हींग लगे न फटकड़ी, सुखमय जीवन होय ॥ १०१३

इक दिन प्रभु जी मन अनुमाना, सोच लिया पर्वत पर जाना ।

सुभद्रा को भी संग ले जावें, ग्रीष्म के दिन काट के आवें ।
भक्तों को निज भाव बताया, मुलखराज के मन तब आया ।
प्राणनाथ प्रभु जी जब जावें, प्राण किमी तब यहां रह पावें ।
नम्र निवेदन प्रभु को कीना, अपना भाव प्रकट कर दीना ।
"तव चरणों में प्रभु लिपटाय, आज्ञा हो सेवक संग जाय" ।
इतना ही मुख से कह पाया, प्रभु चरणों में देह लिपटाया ।
देख मुलख की यह लाचारी, प्रभु जी मुख से गिरा उचारी ।

दो० चिरंजीव घर जाय कर, आज्ञा ले कर आओ ।
मात पिता बिन पूछे, संग किमी तुम जाओ ॥ १०१४क

प्रभु की आज्ञा श्रवण कर, भया मुलख मन चाव ।
पिता को जा कर कह दिया, अन्तर का सब भाव ॥ १०१४ख

इच्छा मुलख की पिता ने जानी, आज्ञा प्रभु जी की सन्मानी ।
कहन लगा तब देवी दास, प्रिय पुत्र मत होवो उदास ।
जितना खर्च चाहो तुम लेवो, सत्गुरु के चरणों में देवो ।
जाओ कुछ दिन हो कर आओ, ग्रीष्म का तुम काल बिताओ ।
स्वास्थ्य रहे पर्वत में ठीक, गुरु चरणों में रह निर्भीक ।
एक बात मेरी सुन पाओ, पत्नी को भी संग ले जाओ ।
वह भी पर्वत देख के आवे, ग्रीष्म की वहां ऋतु बितावे ।
दुख सुख में वह होगी संग, इस के मन भी यही उमंग ।

दो० तात बात को श्रवण कर, गया मुलख प्रभु पास ।
पूज्य पिता के भाव को, किया चरण अरदास ॥ १०१५क

बात मुलख की श्रवण कर, सोचन लागे नाथ ।
फिर मुख से उन कह दिया, वरद उठाय हाथ ॥ १०१५ ख

हे तात तुम सुख से चालो, शिष्य धर्म को संग रह पालो ।
सेवा में पर बाधा पाओ, पत्नी संग यदि ले जाओ ।
तुम तो मग्न ध्यान में रहते, निज तन की भी सुधि न वहते ।
पत्नी को यदि दुख कुछ होवे, उसकी कौन सुधि को गोवे ।
मेरा तो बस यही आदेश, भार न लेवो संग कुछ लेश ।
सेवा धर्म तभी निभ पावे, छोड़ आसक्ति जन जब आवे ।
प्रभु की आज्ञा मुलख पहचानी, बोल सका न वह कुछ वाणी ।
शिष्य वही जो आज्ञा माने, "सत्य वचन" ही बस कह जाने ।

दो० सुन प्रभु की वात को, मुलख गया निज वास ।
स्पष्ट बात उसने कही, जाय पिता के पास ॥ १०१६

पूज्य पिता मैं प्रभु संग जाई, सकल बात उन को बतलाई ।
आज्ञा उनसे है यह पाई, चलूं अकेला लेय विदाई ।
बहुत पिता ने तब समझाया, विदेश वास का भय दिखलाया ।
मात पिता का मोह बताय, पत्नी का बहु प्रेम जताय ।
नीती की भी बात बताई, अकेले में सौ व्याधि जताई ।
निज मन की जो शंका भारी, कीनी प्रकट पिता ने सारी ।
मुलख मानी तब एक न बात, मात कहा फिर "सुन मम तात ।
वारी मात पूत पर जावे, सद आंखों में तुझे बसावे ।

दो० आंखों से ओझल तुझे, सके न कर यह मात ।
मुलख राज तुम्हीं कहो, विरह सहूँ किमि तात ॥ १०१७

तुम कहते मैं गुरु संग जाऊँ, मैं मन की किस विध बतलाऊँ ।
माता का मन माता जाने, जग में न को उसे पहचाने ।
दिल का टुकड़ा होवे पूत, बिछुड़े जब तब निकले हूँक ।
आंखों की वह पुतली जानो, बिन उसके अन्धेरा मानो ।
रहते पुत्तर में हैं प्राण, माता की है पुत्तर जान ।
सर्प मणि को जिमी संभाले, माता पुत्तर को तिमि पाले ।
पुत्र पे ना आंच भी आवे, निज प्राणों को मात गंवावे ।
छोड़ हमें न गुरु संग जावो, मात पिता संग तुम रह पावो ।

दो० भ्रमण करने का है यदि, तेरे मन में चाव ।
पत्नी को संग ले चलो, मत एकाकी जाव ॥ १०१८क
मत एकाकी जाव तुम, मान हमारी बात ।
परदेश में जायकर, विघ्न अनेकों तात ॥ १०१८ख

माता पिता जो दें उपदेश, माने उसको पूत हमेश ।
उल्लंघन करे न हुकम कदापि, सुखी रहे वह पूत सदापि" ।
श्रवण किया जननी उपदेश, उपजी सोच मुलख मन लेश ।
एक तरफ गुरु का आदेश, दूसर ओर मात उपदेश ।
किस को पाले किस को टाले, चित्त मुलख का दुविधा घाले ।
गुरु आज्ञा को जो नर टाले, और न गुरु के नेम को पाले ।
जग में उसका न कोई ठउर, मानव तन भी मिले न बहुर ।
मात पिता भी जन्म के दाता, इस तन के तो वही विधाता ।
किस विध उनकी आज्ञा टाले, पूत वही जो बात संभाले ।

दो० इस विध दुविधा में पड़े, मुलखराज महाराज ।
पति अपने को सोच में, देखा पत्नी आज ॥ १०१६

मोहन कौर ने पति को देखा, धर्म संकट में उस को पेखा ।
मन में तब उन कीन विचार, क्यों न लूँ मैं बात सुधार ।
धर्म कर्म की मैं हूँ संगी, पति की पत्नी हो अर्धंगी ।
गुरू सेवा में जब पति लागे, मम चित्त सास ससुर अनुरागे ।
परदेश जभी पति मम जायें, मात पिता न दुख को पायें ।
घर में रह करूं सेवकाई, यही बने मम धर्म कमाई ।
सास ससुर को ईश्वर जानूं, स्वर्गधाम का द्वार यह मानूं ।
मेरी सास न दुख जिमीं पाये, वही करूं मैं सकल उपाये ।

दो० निज पुत्र की याद में, खो जाये जब मात ।
वही उपाय मैं करूं, ठरे जो उस की गात ॥ १०२०

पुत्र की जब याद में भारी, डूब रही हो मात बिचारी ।
धर्म पिता मम दुख न पावें, बिन भोजन न काम पै जावें ।
मैं सँभालूं सारा भार, घर की करूं मैं पूरी कार ।
प्रात उठूं मैं जब भिन्नसार, घर में करूं मैं झाड़ बुहार ।
फिर जाऊँ मैं जल को लाने, राखूं उस को ससुर नहाने ।
फिर मैं जल को भर कर लाऊं, माता को मैं खुद नहलाऊँ ।
उन की पूजा पाठ के हेत, राखूं आसन ध्यान समेत ।
गो घर की तब सेवा कर लूँ, दोह दूध चूल्हे पर धर लूं ।
इतने में मैं छाछ विलेऊं, लस्सी मक्खन सब को देऊं ।

दो० माखन लस्सी ग्रहण कर, विदा ससुर जब होय ।
काम करूंगी मैं सकल, सास कहेगी जोय ॥ १०२१क
दिन बिताऊं काज में, रात चली जब आय ।
चरण सास के दाब कर, लेटूं सास सुलाय ॥ १०२१ख
मास दो के बीतते, लागे न कुछ देर ।
लौट पति तब आयेंगे, पर्वत की कर सेर ॥ १०२१ग

मोहन कौर जो वीर थी नारी, उसने सारी बात संभारी ।
निज मुख से तब वचन उचारा, सुन कर लगा जो सब को प्यारा ।
प्राण नाथ मम गुरु संग जावें, गुरु की सेव में चित्त लगावें ।
सास ससुर हैं मेरे देव, मैं करूंगी उन की सेव ।
उन की सेवा से फल पावूं, निशिदिन मन में यही मनावूं ।
इतना कह कर भयी वह मौन, उस के मन की जाने कौन ।
पति बिछोड़ा था दुःखदायी, धर्म पालन हित दीन विदायी ।
मुलख विदायी घर से लीनी, प्रभु चरणी जा दण्डवत कीनी ।

दो० सुभद्रा को संग लेय कर, मुलखराज भी साथ ।
श्री नगर की ओर को, प्रभु चले इक साथ ॥ १०२२

रेल स्टेशन पर वे आये, भक्त अनेकों सँग सिधाये ।
प्रभु का विरह वे किमी सहारें, सोच २ मन में वे हारें ।
फ्रंटीयर की मेल थी आई, गुदगुदी मन सबन समाई ।
अब तो बस मिन्टों की देर, प्रभु बिछोड़ा करे अंधेर ।
पूर्व से वह रेल थी आई, पश्चिम की अब ओर सिधाई ।

भक्त कहें तब "प्रभु जी आप, मेटें जल्द पधार संताप ।
जो क्षण आप बिना यहां बीतें, वे ही जीवन के पल रीतें" ।
इतनी बात ही उन कर पाई, स्टेशन से थी रेल सिधाई ।
बाहिर खड़े उन कीन प्रणाम, मन में गूंजत प्रभु का नाम ।

दो० प्रभु विदायी देय कर, लौटे सब हतप्रभ† ।
मुलख राज के भाग्य को, भक्त सराहवें सब ॥ १०२३ क
मुलख राज की सेव को, कीना प्रभु स्वीकार ।
मात तात को छोड़ जिस, लिया सेव व्रत धार ॥ १०२३ ख

अमृतसर से चल कर गाड़ी, लवपुर आय काल कुछ ठाड़ी ।
लवपुर जैसा नगर न होई, ढूंढन से भी मिले न कोई ।
शिक्षा का वह केन्द्र जानो, सब धर्मों का गढ़ भी मानो ।
पूर्व राजों की राजधानी, नर पतियों की बनी निशानी ।
ऐसा सुना था बहुत उल्लेखा, जन्मा न जिस लाहौर न देखा ।
दर्शन हित कई नर वहां आएं, प्रभु जी को आ शीष झुकाएँ ।
दिव्य आशीष प्रभु का पाया, निज जीवन उन सफल बनाया ।
आगे चल लाहौर से गाड़ी, आ बज़ीरा बाद में ठाड़ी ।
मुलख को प्रभु जी ने बतलाया, मार्ग का उन ज्ञान कराया ।

दो० यहां से मार्ग दोय हैं, श्री नगर की ओर ।
स्याल कोट यहां से चलें, पहुँचें जम्मू ठोर ॥ १०२४ क
जम्मू से फिर श्री नगर, मार्ग सोधा जान ।

†हतप्रभ — उदास

हमरा मार्ग दूसरा, पिंडी से पहचान ॥ १०२४

बजीरा बाद से चल कर गाड़ी, लाला मूस्सा आ कर ठाड़ी ।
वह तो जंकशन था इक भारा, पर्याप्त काल उस वहां गुज़ारा ।
लाला मूस्सा से चल आगे, जेहलम आदि नगर थे लागे ।
जेहलम नद फिर कीना पार, पोठोहार का मानो द्वार ।
पोठोहार सुन्दर प्रदेश, पुरातन आर्यों का यह देश ।
सिद्धों ने यहां सिद्धि पायी, ज्ञान की ज्योति यहां जगायी ।
विद्यापीठ उत्तम बनवाये, तक्षशिला आदि मन भाये ।
इस देश की शोभा न्यारी, उच्चसम भूमि अति ही प्यारी ।
रावलपिंडि स्टेशन आया, देख मुलख का मन हर्षाया ।

दो० मुलख राज की मावसी, आयी प्रभु को लेन ।
स्टेशन पर थी वह खड़ी, उतरे सुख के ऐन ॥ १०२५

प्रभु जी को उस शीष झुकाया, गुरूमाता ने गले लगाया ।
मुलख राज जी टेका माथ, सर पर फेरा उसने हाथ ।
टांगा एक था खड़ा त्यार, प्रभु जी भये उस पर अस्वार ।
मासी जी तब राह दिखाया, टांगा घर की ओर सिधाया ।
घर में पहुँचे सुख के धाम, मासी लगी सेवा के काम ।
प्रेम भक्ति जो उस दर्शायी, प्रभु जी के मन वह अति भायी ।
कराकर प्रभु जी को जलपान, चरणों में तब बैठी आन ।
प्रेम सहित विनय उस कीनी, निज अनुभूति सकल कह दीनी ।

दो० प्रेम सहित कर बांध कर, कहन लगी यह बात ।

सन्मुख देखूं रूप जो, भया स्वप्न साक्षात ॥ १०२६

दर्शन प्रभु तुम स्वप्न में दीना, दासी को कृतारथ कीना ।
तेजोमय प्रभु रूप दिखाया, अपने मुख से था फरमाया ।
जब ही आवें हम तव पास, भक्ति योग मिले तब खास ।
स्वप्न किया प्रभु जी तुम पूरा, वरदान रहे फिर क्यों अधूरा ।
हो पूरी मम प्रभु जी साध, दो दीक्षा कर दया अगाध ।
यों कह उसने चरण ग्राहये, प्रभु जी तब मुख से फरमाये ।
जन्म - २ से जीव जो लागे, जिन के मन भक्ति रस पागे ।
उन पर कृपा करने हेतू, स्वयं बनें प्रभु भव जल सेतू ।
हम जानें शुभ भाग तुम्हारा, प्रभु दीना यह अवसर न्यारा ।

दो० श्री नगर हम जा रहे, मुलख राज ले संग ।
हे देवी फिर लौट के, दें दीक्षा पति संग ॥ १०२७

मासी ने तब अर्ज़ गुज़ारी, विनय सुनो मम हे पापारी ।
श्री नगर भी घर है मेरा, पति वहीं जो आप का चेरा ।
संग मुझे भी प्रभु ले जावें, भवन हमारे आसन लावें ।
हमारा क्यों वह तोरा नाथ, ले चालें मुझ को निज साथ ।
प्रभु चरणों वहां रह कर नाथ, दीक्षा लूँगी पति के साथ ।
हुए हैं पुण्य उदय मम देव, मिल पायी तव चरण की सेव ।
पुनः उसने प्रभु चरण ग्राहे, अश्रु जल से वहीं धुलाये ।
देखी प्रभु जी उसकी भक्ति, परमारथ में अति आसक्ति ।
कहन लागे खुश हो महाराज, संग चलो परमारथ काज ।

दो० प्रातः हम यहां से चलें, श्री नगर की ओर।
चल वहां बतलायेंगे, ठहरेंगे किस ठोर ॥ १०२८

प्रभु जी आज्ञा जब दे पायी, मासी मन न फूली समायी।
पति को उसने तार दिलायी, प्रभु की किरपा लिख भिजवाई।
बस का समय उस में बतलाया, स्वागत हित आना जतलाया।
लोनी कर फिर उस ने त्यारी, प्रात काल चलती थी लारी।
रात प्रभु वहां कर विश्राम, काल बिता सुख से सुखधाम।
प्रातकर्म तब सब उठ कीना, मार्ग बस का फिर प्रभु लीना।
गुरु माता को कर अस्वार, लारी चढ़े प्रभु जगदाधार।
मासी और मुलख तब राज, प्रभु के पीछे भये विराज।

दो० रावल पिंडी से चली, प्रभु को कर अस्वार।
उस बस का हम क्या कहें, भाग्य जो परम अपार ॥ १०२९क

रावल पिंडी से चली, चढ़ी चढ़ाई ओर।
कोहमरी प्रसिद्ध है, हिमाचल का इक ठौर ॥ १०२९ख

पर्वत के थे दृश्य बहु प्यारे, जन मन को सब हरने हारे।
सुन्दर - २ झरने बहते, बात रहस्य की वे थे कहते।
ऋषि मुनियों ने उन्हें पढ़ाया, ओमकार का जाप सिखाया।
इक भी श्वास जाये न खाली, ऋषियों की उन आज्ञा पाली।
नाद गगन मैं इमि गुंजाया, लोक लोकान्तर तक पहुँचाया।
नव साधक को शिक्षा देते, तट पै उनके आ जो लेते।
"मन में ऐसी गूंज गुंजाओ, नभ मण्डल में उसे पहुँचाओ।

पतित पावन जो नाम प्रभु का, ताप हरेगा सब वह मन का" ।
श्रवण किया वह मुलख ने नाद, कल – २ झरणों का आगाध ।

दो० मुलख राज ने देख कर, मनहर सारा साज ।
प्रकृति ने जो था रचा, कहा "प्रभु जी आज ॥ १०३०

जो कुछ सन्मुख है यह आया, ध्यान में पूर्व था दिखलाया ।
यह लीला कुछ समझ न आई, आप की कृपा ने दिखलायी" ।
कर के श्रवण मुलख की वाणी, बोले नाथ जगत कल्याणी ।
राजा जी ! हम तुझे बतावें, योगी गूढ़ बात लख पावें ।
मन योगी का निर्मल दर्पण, भूत भविष्यत होय समर्पण ।
पाछल बात योगी ले देख, आगे को भी ले वह पेख ।
वर्तमान वत सब हो जापे, काल की गति न उस को व्यापे ।
विस्मय की नहीं है यह बात, भया पूर्व जो दृश्य साक्षात ।

दो० प्रभु कृपा से है भया, भावी का यह ज्ञान ।
तव मौसी को जिस विध, भया हमारा भान । १०३१क
भया हमारा भान था, चलने से ही पूर्व ।
देखा मौसी ने यही, योगी मिले अपूर्व ॥ १०३१ख
"सत्य वचन" तब मुलख ने, कह कर प्रभु के पास ।
देखन में वह रम गया, लीला प्रभु की खास ।

दृश्य एक दूसर से न्यारा, पर्वत का वह खास नज़ारा ।
हांफ हांफ कर बस थी चलती, कोहमरी की ओर जो बढ़ती ।
घूम - २ कर शिखर पै जावे, ऐसा मार्ग वहां मिल पावे ।

बस्तियां कई मार्ग में आईं, हाट बाट भी थी लख पाईं ।
पर्वत शिखर आया जब पास, पहुँचे कोहमरी वे खास ।
शीतल सुन्दर शान्त प्रदेश, अमृतसर से भिन्न इक देश ।
पर्वत बस्ती में लख पावें, भीतर घर बादल घुस आवें ।
इटे - छिटें दीखें आवास, को नीचे को चोटी पास ।

दो० दूर दूर ये थे सभी, बैठे हों जिमि रूठ ।
ऐसा हिम प्रदेश वह, जिस का रूप अनूठ ॥ १०३२

कोहमरी को कर के पार, उतरे बस्ती में इक बार ।
आयी कोहाले जब वह लारी, काश्मीर राज की हद पधारी ।
फिर आया दोमेल ग्राम, मुजफराबाद निकट वह धाम ।
जेहलम नदी का रूप अपार, छन - छन करत बहे वह धार ।
वहां से चली बस पूर्व ओर, कहीं बस्ती कहीं वन के छोर ।
मुलख राज उत्सुक हो देखे, प्रथम ध्यान में दृश्य थे पेखे ।
प्रभु कृपा ने सब दिखलाया, मुलख राज प्रभु चरण ध्याया ।
गुरु माता को प्रभु बतलायें, उस बस्ती का हाल सुनायें ।
काश्मीर राज है बड़ा विशाल, हिमगिरि पर्वत ऊँचा भाल ।

दो० भू - स्वर्ग कहते जिसे, अति सुन्दर प्रदेश ।
ऋषि मुनियों की भूमि है, प्रसिद्ध विश्व में देश ॥ १०३३

जग का सुन्दरतम प्रदेश, बसाया कश्यप मुनि यह देश ।
भारत की यह सीमा जानो, सब से उत्तर मांहि पहचानो ।
इस के उत्तर बसे विदेश, चीन रूस व तिब्बत देश ।

नदियों झीलों का यह आंगन, पुष्पों से भरपूर प्रांगन ।
सिन्धु जेहलम और चिनाब, बहते इस में सुन्दर आब ।
मधुर फलों की यहां बहुतात, सेब खुरमानी व नाशपात ।
मिशरी आलुबखारा मानो, सभी फलों से मीठा जानो ।
आड़ू और खुमानी ऐसे, टपके रस जो अमृत जैसे ।
स्ट्रावैरी (Strawberry) वा चैरी जानो, छुई – मुई के फूल ही मानो ।
हाथ लगे तो वे कुमलायें, दातों से न उन्हें चबायें ।
इक फल का क्या करूं बखान, शाहतूत जिस का अभिधान ।

दो० शाह तूत की क्या कहें, बात निराली जान ।
जहां पर भी उसको धरो, रस से भरता स्थान ॥ १०३४

अमरी सेब का न कोइ सानी, इस वादी की परम निशानी ।
चैत्र मास जभी चली आवें, कुसुम बदामों के खिल पावें ।
गुलाबी रंग बस्ती में छाये, बहार शगूफे* की मन भाये ।
नर नारी सब देखन जावें, बाग बादामी मेले भावें ।
अखरोटों का भी यह है देश, टूटें वे बिन ज़ोर जो लेश ।
यहां संघाड़े हैं मशहूर, बही फल लेकर खायें ज़रूर ।
कमल डोड की क्या बतलावें, उस को ले कर सब ही खावें ।
गुरु माता सुन कर सुख माना, सफल परिश्रम अपना जाना ।
अखिलेश्वर प्रभु सर्व ज्ञानी, अपनी रचना आप बखानी ।
प्रभु जी ने तब और बताया, वर्णन कर के सब समझाया ।

* वृक्षों पर लगे फूल

दो० वह वृक्ष जो दीखता, उस को कहें चीनार ।
वृक्षों में वह देवता, जीता वर्ष हज़ार ॥ १०३५क

जीता वर्ष हज़ार वह, ठण्डी उसकी छांव ।
उस के पत्ते जब जलें, दें कोयले का कांव ॥ १०३५ख

कार्तिक* मग्गर जब चलि आवें, इन के पात सभी झड़ जावें ।
रुंड मुंड सब इन को पेखें, जिन को हरे भरे हम देखें ।
इन के नीचे स्वर्णिम पात, दिखें ढेर पड़े साक्षात ।
उन पत्तों को लोग जलाते, झीना कोयला सभी बनाते ।
वह कोयला अति काम में आवे, सर्दी से नर नार बचावे ।
†कांगड़ी उस से भर कर लेवें, एक चिंगारी भी रख देवें ।
सुलग - २ दे मध्यम सेक, यही सेकें नर नार अनेक ।
घूमें फिरें उस को ले साथ, डाल फिरण§ में अपना हाथ ।
देख सुभद्रे कुदरत भारी, प्रभु की किरपा कितनी न्यारी ।
निज प्रजा से कितना प्यार, छोड़े पात जो वृक्ष चिनार ।
दरिद्र जन का चले गुजारा, बने सर्दी में वही सहारा ।

दो० दीन जनों पर कर दया, प्रभु हैं दीन दयाल ।
भये दरिद्र नारायण, दरिद्र जनों को पाल ॥ १०३६

गुरु माता ने तब फरमाया, स्वामी मैं सुन सुख को पाया ।
बस्ती कौन बड़ी यह आयी, हमारी यात्रा क्या सुक‡ पायी ।
प्रभु जी ने उन को बतलाया, अभी श्री नगर नहीं आया ।

*अग्रायन मास †तिनकों से मढ़ी काश्मीरी अंगीठी §एक प्रकार का काश्मीरी पहरावा ‡समाप्त

बारा - मूला यह कहलावे, सब के मन यह नगरी भावे ।
यहां से बुलर झील है पास, लघु सागर ही मानो खास ।
वह तो एक तपो है भूमि, जन जाने जिसने यह घूमी ।
उस का क्या करें बखान, कण - कण उस का दिव्य महान ।
पशु पक्षी जो तट पर भारे, निर्भय हो कर विचरें सारे ।
जलचर भूचर नभचर प्राणी, डर नहीं उन को हो कुछ हानी ।

दो० ऋषियों की उस भूमि में, बार एक जो जाए ।
उस का मन इमि वहां रमे, चित्त न लौटन चाए ॥ १०३७

इक थल तुम को और बताऊं, निकट यहां से जो मैं पाऊं ।
गुलेमर्ग उस का अभिधान, प्रसिद्ध विश्व में जो है स्थान ।
प्रकृति की वह क्रीड़ा भूमि, आ कुदरत ने स्वयं जो चूमि ।
क्रीड़ा क्षेतर वह इस भू पर, गद्दे मखमली जिस ऊपर ।
इतने ऊँचे वे मैदान, ग्रीष्म जहां हेमन्त समान ।
सुन्दर बंगले हैं बहुतेरे, सैलानी यहां रहत घनेरे ।
गुलेमर्ग से ऊपर जायें, खिलन मर्ग पहुंच तब पायें ।
उस से भी ऊपर जो जाए, अल पत्थर में नर तब आये ।
ये हैं सारे रम्य स्थान, कुदरत की यह रचन महान ।
ईश्वर सुन्दर रूप बनाए, मानो वहां पर रास रचाए ।

दो० हो अछूता देखना, प्रकृति का जो रूप ।
खिलन मर्ग में देख लो, बैठ अकेले गूप ॥ १०३८ क

हो ईश्वर का देखना, मांझ प्रकृति खेल ।

खिलन मर्ग में दर्श हित, बैठे शान्त अकेल ॥ १०३८ख

सुभद्रे लारी अब हमारी, है पटन में आए पधारी ।
श्री नगर अब पास ही जानो, नगर बड़ा सब से यह मानो ।
काश्मीर राज की यह राजधानी, ग्रीष्म में यहां आएं सैलानी ।
शीत काल में सब चलि जावें, यहां पर बर्फ - बर्फ ही पावें ।
इस विध प्रभु जी ने बतलाया, श्री नगर इतने में आया ।
लारी नगर में आन पधारी, अड्डे पर जांय उतर सवारी ।
मासी ने तब "मुलख" पुकारा, "तेरा मासड़" कीन इशारा ।
मुलख राज ने नीचे आकर, निज मासड़ को शीश झुकाकर ।
प्रभु जी का उन को बतलाया, मासड़ जी तब शीश झुकाया ।
नाथ हमें कृतारथ कीनो, सदन हमारे दर्शन दीनो ।
हम हैं आप को लेने आये, प्रतीक्षा में कल से रह पाये ।
कृपा नाथ तब कृपा कीनी, विनती उस की मान ही लीनी ।
लारी से प्रभु जी उतराये, टांगे वाले चलि कर आये ।

दो० लारी से तब उतर कर, चढ़ टांगे पर नाथ ।
विश्व नियन्ता राम प्रभु, चले मासड़ के साथ ॥ १०३९क

*कदल - अमीरा पास ही, था मासड़ का वास ।
प्रभु जी के सत्कार हित, सुन्दर बना आवास ॥ १०३९ख

प्रभु हित सब ने नयन बिछाये, सुख सागर सुख से रह पाये ।
गुरु माता कुछ परिश्रम माना, यात्रा से था देह थकाना ।

*जेहलम नदी के प्रथम पुल के आसपास दोनों ओर की आबादी

मासी चरण दबाने लागी, गुरु सेवा की वह अनुरागी ।
भक्ति भाव जिस के मन जागे, तन तब खुद ही सेव में लागे ।
रहता तन मन के आधीना, मन वश किया जिन तन वश कीना ।
मुलख राज भी सेव में लागे, प्रभु चरणों के वे अनुरागे ।
शयन प्रभु को उन करवाया, तब एकान्त जा ध्यान लगाया ।
अर्ध रात ध्यान में बीती, ऐसी योग से उन की प्रीति ।

दो० सतत योग में युक्त हो, बैठ अकेले स्थान ।
साधन योगी जब करे, निश्चय हो कल्याण ॥ १०४०

रात के बीते जब दो पहर, सोय मुलख तब निद्रा गहर ।
उठे प्रात वह सब से आगे, आंख सेवक की न बहु लागे ।
सेवा व्रत खाण्डे की धार, दृढ रहत सो उतरत पार ।
मुलख राज जी नियम दृढ़ाया, सेवक का सब धर्म निभाया ।
मासी मासड़ देख के नेम, प्रशंसें मुलख राज का प्रेम ।
मन में दोनों यही मनावें, ऐसी भक्ति हम भी पावें ।
नहा धोय जब प्रभु विराजे, सुन्दर आसन पर वे साजे ।
प्रभु चरणों में दोनों आ कर, श्रद्धा से फिर शीश झुकाकर ।

दो० भाव भक्ति से मासि ने, की विनय प्रभु पास ।
कृपा नाथ कृपा करो, जान हमें भी दास ॥ १०४१ क
मन्त्र हमको दीजिए, जिस विध हो कल्याण ।
मिले न सत्गुरु जब तलक, आयु व्यर्थ खुटान ॥ १०४१ ख

मासड़ ने भी विनती कीनी, सत्य बात मन की कह दीनी ।

भाग अपने हम किमि सराहवें, सद्गुरु चल जिस घर में आवें ।
रसना छोटी बात महान, किस विध करूं मैं नाथ बखान ।
बस इतना ही मैं कह पावूं, पाय कृपा तव चरण ध्यावूं ।
इस विध विनती कर प्रभुशरणं, ग्रहण किए उसने प्रभुचरणं ।
प्रभु ने देखा उस को दीन, मान रहित अभिमान से हीन ।
करुणासागर बोले वचना, जीव जगत सब ईश की रचना ।
ईश्वर का जो करत ध्यान, प्रभु का प्राप्त करत वह ज्ञान ।

दो० करो प्रभु का ध्यान तुम, छोड़ जगत से प्रीत ।
बढ़े प्रभु से प्रेम नित, यही भक्ति की रीत । १०४२

गुरु का मुख्य मन्त्र यह जानो, नित्य मनन में जो तुम आनो ।
प्रभु से प्रीत बढ़े नित ऐसे, शुक्ल पक्ष में चन्द्र जैसे ।
ऐसा उस नर में हो पावे, निर्मल मन जिस तनहिं समावे ।
शुक्ल पक्ष निर्मल मन जानो, कृष्ण पक्ष कपटी मन मानो ।
कृष्ण पक्ष नित भक्ति घाटे, प्रभु कृपा से दूर वह हाटे ।
चित्त शुद्धि पर जो बल देवे, गुरु कृपा को वही नर लेवे ।
निर्मल मन में ज्ञान प्रकासा, निर्मल मन में प्रभु का वासा ।
निर्मल मन में सुख समाया, निर्मल मन में बसे न माया ।

दो० निर्मल मन जो नर करे, रहे पाप से दूर ।
गुरु कृपा उस में बढ़े, रण भीतर† जिमि शूर ॥ १०४३

†जिस प्रकार रण क्षेत्र में बढ़ता हुआ शूरवीर पुरुष शत्रुओं का संहार करता है । उसी प्रकार गुरु कृपा भक्त के अन्तः करण के पापों का नाश करती है ।

इस विध शिक्षा प्रभु जी दीनी, गुरु दीक्षा उन प्रभु से लीनी ।
उन को भया परम सन्तोष, मिटा उन के मन का सब रोष ।
भक्ति रंग रहें रंग राते, सेवा प्रभु की में मदमाते ।

१९. लाला कर्म चन्द दारोगा जेल का प्रसंग

तीर्थ बना उन का आवास, प्रभु कृपा का वहां था वास ।
भक्त निरन्तर चल कर आते, दर्शन प्रभु के कर के जाते ।
कर्मचन्द इक भक्त भी आता, जेल दारोगा जो विख्याता ।
ध्यान समाधि को वहां देख, उस मन भयी जिज्ञास विशेष ।
साध संगत उस बहु थी कीनी, ऐसी कृपा न कहीं चीनी ।

दो० ऐसी कृपा कहां मिले, जो प्रभु से होय ।
कृपा दृष्टि जिस पै पड़े, लहे समाधि सोय ॥ १०४४

"हमरे वास चलो प्रभु साईं, चरण धरो हमरे घर माहिं" ।
कई बार उस विनती कीनी, प्रभु जी टाल सदा ही दीनी ।
फिर भी उसने धीर न त्यागी, प्रभु के मन दया तब लागी ।
कहा चलें हम अवसर पाय, ध्यान करो प्रभु का चित्त लाय ।
सुन कर प्रभु जी की उस वाणी, मन में धीरज उस ने आनी ।
एक भक्त वहां और भी आता, ध्यान की मस्ती में रंगराता ।
बैंक में था वह इक अधिकारी, और भक्त भी वह संस्कारी ।
उस की भक्ति को जब देखा, कर्मचन्द ने मनहिं उल्लेखा ।

दो० मन में कीन विचार उस, करूं मैं इसका संग ।
ज्ञान मिले मुझ को जरा, किमी चढ़ा प्रभु रंग ॥ १०४५ क

ऐसा मन में धार कर, पकड़ भक्त का हाथ।
आओ मित्र हम चलें, कह कर लीना साथ ॥ १०४५

दारोगा की पदवी भारी, वहां खड़ी थी उस की स्वारी।
गाड़ी में दोनों चढ़ पाये, कोचवान ने अश्व चलाये।
बातें करते थे वें जाते, प्रभु की शक्ति के गुण गाते।
मील डेढ़ जब वाट विहायी, दारोगा को सुध तब आयी।
तुरत गाड़ी को उस रुकवाया, और भक्त को वहीं उतराया।
जागृत भया भक्त मन खेद, जाना जिसका प्रभु जी भेद।
दूर बहुत मुझ को ले आया, आधे मार्ग में उतराया।
बड़प्पन का इस को अभिमान, इस ने किया न मेरा मान।
अपने कारण मुझ को लाया, भया स्वारथ सिद्ध उतराया।
भक्त के मन में उपजा रोष, काफूर भया उस का सन्तोष।

दो० काम क्रोध मद लोभ जो, बड़े हैं भारी चोर।
योगी का भी धन लुटे, बढ़ें जो उसकी ओर ॥ १०४६

क्रोध भक्त के मन जब आया, अन्तस्तेज तभी धुंधलाया।
हृदाकाश उस का विचलाया, बृहदाकाश भी तब क्षुब्धाया।
हाहाकार नभ में था भारी, देख प्रभु निज शक्ति संहारी।
भया भक्त का हृदय सूना, योग शक्ति से हुआ वह ऊना।
चल कर प्रभु पास वह आया, मुख उसका था कुछ कुमलाया।
उसका वदन भया बिन ओज, वस्तु गुमी जिमि रहा हो खोज।
देख अवस्था उस की ऐसी, मणि हीन हो सर्प की जैसी।

कीना प्रश्न मुलख "महाराज, क्यों दुःखी यह सज्जन आज" ।

दो० निज मुख से तब नाथ जी, कहन लगे सुन तात ।
मन ही मन का है रिपु, संशय की न बात ॥ १०४७क
इसी भक्त से पूछ कर, जानो इस का हाल ।
जीव मीन को फांदने, भ्रांत रचे मन जाल ॥ १०४७ख

रहस्य भरी प्रभु जी की वाणी, उत्सुकता उस ने उकसानी ।
मुलख जी पूछा तब उस तांहि, अपना हाल कहो हम पांहि ।
तभी भक्त ने बात बतायी, दरोगा की करतूत जतायी ।
कृतघ्नता की ऐसी रीत, अहंकारी में हो मम मीत ।
संग घमंडी का न करिए, विषधर पर न पांव को धरिए ।
धन की मस्ती वा अधिकार, करते जीव की बुद्ध खवार ।
प्रभु की संगत में नित आवे, फिर भी मद न उस का जावे ।
रंग माया का पुखता भाई, होती उस की कठिन कटाई ।

दो० भूल न संग फिर मैं करूं, अभिमानी का मीत ।
अपनी इज्जत से सखा, होत न किस को प्रीत ॥ १०४८क
इस विध बीति बताय कर, माथ प्रभु को टेक ।
निज घर को वह चल दिया, शांत न मन था नेक ॥ १०४८ख

प्रभु से विनय मुलख तब कीनी, नाथ अनोखी बात यह चीनी ।
मन इस का है भया दुखारी, दारोगा की गलती सारी ।
इस का ध्यान भया जो लुप्त, कौन कर्म जो इसका गुप्त ।
प्रभु जी मुख से तब फरमाया, राजा जी ! तुम भेद न पाया ।

दरोगा की तो बात है और, यह तो योग करे इस ठौर ।
इस के कर्मन के हम वाली, गति इसकी है प्रभु संभाली ।
इस के मन उपजा जब रोष, उठी अन्धेरी, मन में जोश ।
गाड़ी उसकी उल्ट ही जाती, दुःख जनों को वह पहुँचाती ।
उस का लगता किस को दोष, उसे, जहां उपजा वह रोष ।

दो० उसी रोष के कारने, पाप जो होत महत ।
भक्त भोगता नरक को, क्यों योग करे दुर्गत ॥ १०४९क

अवस्था ऐसी देख कर, प्रभु न लाई देर ।
ध्यान भक्त का लोप कर, दूर किया अंधेर ॥ १०४९ख

ऐसा योग व्यर्थ हो जावे, जनता को जो कष्ट पहुंचावे ।
योगी क्या जो समता त्यागे, योगी क्या जो मोह में पागे ।
योगी क्या जो रोष में आवे, योगी क्या जो होष दुरावे ।
योगी क्या जो धारे काम, योगी क्या जो चाहे नाम ।
योगी क्यों लोभ वश होवे, मन विषयों में क्यों वह खोवे ।
क्षमाशील मैं योगी मानूं, दयावान को योगी मानूं ।
प्रभु भक्ति में लाये जो चित्त, उत्तम योगी वह मम मित्त ।
इस घटना से धारो सीख, आत्म संयम योग परीख ।

दो० आत्म संयमी नर बने, करे प्रभु से प्रीत ।
देव प्रिय हो नर वही, होय जगत में जीत ॥ १०५०

मुलखराज मन भया सन्तोष, जाना उसने रोष का दोष ।
कृपा प्रभु की मुलख पे भारी, जग में उस सम न अधिकारी ।

प्रभु चरणि जिस जीवन अर्पा, रिश्ता नाता सकल समर्पा ।
प्रभु माता प्रभु पिता हमारे, मित्तर बन्धु नाते सारे ।
धन दौलत व विद्या भारी, सब कुछ है यह दया तुमारी ।
ऐसा जिसने था व्रत धारा, उसका पा सके को पारा ।
सुन कर प्रभु का दिव्य उपदेश, ग्रहण किया मन में आदेश ।
प्रभु चरणी फिर शीश झुकाया, बैठ प्रभु मूरत मन लाया ।

दो० प्रभु की मूर्त जो भजे, त्याग सकल संकल्प ।
भव बन्धन उस मुलख को, व्याप सके न अल्प ॥ १०५१क

मुलख राज सा मुलख में, मानुख मिले न मूल ।
मन मन्थन कर जिन किये, भव बन्धन निर्मूल ॥ १०५१ख

उधर दारोगा की भी भक्ति, सुन कर प्रभु की सारी शक्ति ।
नित्य उन्नत वह होने लागी, प्रभु में वृत्ति भयी अनुरागी ।
आकर हर दिन प्रभु के पास, कहे प्रभो पुरवो मम आस ।
धारो चरण हमरे आवास, बख्शिये मुझे भक्ति विश्वास ।
इक दिन प्रभु जी ने मन आनी, उस की बात कृपा कर मानी ।
लेकर सभी भक्तों को साथ, पहुंचे उस के घर में नाथ ।
स्वागत हित उस नयन बिछाये, प्रीती भाव प्रभु मन भाये ।
भक्ति भाव जब भक्त दिखावे, प्रभु के मन वह क्यों न भावे ।

दो० सदा प्रीति की रीत को, प्रभु निभावें आप ।
प्रेम भक्ति जिस मन बसे, दूर करें सन्ताप ॥ १०५२

व्यासासन पर प्रभु विराजे, संगत में बहु जन आ साजे ।

दिव्य रूप प्रभु जी का देख, परस्पर करते सभी उल्लेख ।
यह तो दिव्य पुरुष है कोई, गुरू रूप में ईश्वर होई ।
इन के दर्शन मातर से ही, ताप नशें मानस के सब ही ।
हृदय में सद भाव ये माखें, इनके चरणों पर सिर राखें ।
ऐसे भाव सभी मन माहिं, की कृपा प्रभु जनता ताहिं ।
मुखारविन्द निज नाथ जी खोल, अमृतमय प्रभु बोले बोल ।

दो० अमृतवाणी बोल कर, कीना जन संबोध ।
भूल गये जिस ज्ञान को, सबन कराया बोध ॥ १०५३क

२०. उपदेश

दो० हे ऋषियों के आत्मजन, क्या कभी मन लाये ।
थे कौन क्या हो गये, अधः पतन में आय ॥ १०५३ख

क्या विदित है तुम को भाई, ऋषि जनों की शुद्ध कमाई ।
ईश्वर की भक्ति की रीति, और प्रभु से करन प्रीति ।
हम ने जग को थी सिखलाई, और धर्म की लीक चलाई ।
रीति नीति और आचार, जग मर्यादा और व्यवहार ।
मानसिक आत्मिक शुद्ध विकास, उज्जवल कर्मों का प्रकास ।
यह सब जग को जो दे पाये, ऋषि मुनी थे वही कहलाये ।
दैवी शक्ति का आकर्षण, बिन्दू में सागर का दर्शन ।
जिस ने जग को करन सिखाया, वह भारत जग गुरु कहलाया ।
जड़ चेतन के प्रभु आधारा, सकल विश्व है इक परिवारा ।

क्षमा दया और शांती भारी, शिक्षा जग को यह हमारी ।
दो० इक दिन शिक्षक जो रहे, सकल जगत के मीत ।
क्यों कर उन की हो रही, विषयों से अब प्रीत ॥ १०५४

अष्ट सिद्धि नव रिद्धि भारी, जिस की दास रहीं ये सारी ।
हृदय अपना कर से पकड़े, परतन्त्रता की कड़ियों जकड़े ।
दुःखी रोगी वा दलित महान, कौन है तेरे आज समान ।
उठो जागो अब करो विचार, विषयों का क्यों लिया आधार ।
ईश्वर भक्ति मन से त्यागी, दुराग्रही क्यों बने अभागी ।
आओ करो फिर प्रभु से मेल, त्यागो विषय भोगों का खेल ।
मन विषयों का बना गुलाम, लोभ क्रोध वा इस में काम ।
मोह और अभिमान है भारी, इस से पुरुष की भयी खवारी ।

दो० कामी नर कैसे बने, और बढ़े कब क्रोध ।
क्यों कर नर लोभी बने, बात सुनो अब शोध ॥ १०५५

विषयों की मन करत गुलामी, बनता पुरुष तभी वह कामी ।
ईश्वर का वह त्याग ध्यान, करता विषयों का सन्मान ।
तीव्र चाह उस की यह होवे, इच्छित वस्तु शीघर गोवे ।
विघ्न पड़े यदि उस में लेश, मन में उपजे अतीव क्लेश ।
क्लेश ही धारे क्रोध का रूप, क्रोधी नर का यही स्वरूप ।
इच्छा पूरण होती जावे, कामाग्नी भी बढ़ती जावे ।
लाभ बढ़ावे लोभ को और, लोभी नर का न कोई ठौर ।
जिमि अग्नि में आहुती पड़ती, और उसी से ज्वाला बढ़ती ।

तिमि लाभ से बढ़ता लोभ, लोभ बढ़ावे मानस क्षोभ ।

दो० काम क्रोध व लोभ से, रिपु न बढ़कर और ।
निज रक्षा के हेत नर, गहे गुरु पग ठौर ॥ १०५६क

गहे गुरु पग ठौर नर, त्राण मोह से होय ।
बिना गुरु से ज्ञान के, धृती मति सब खोय ॥ १०५६ख

मोह की जानो अब तुम रीती, लब्ध पदारथ से जो प्रीति ।
आसक्ति का वह रूप धरावे, वह आसक्ति मोह कहलावे ।
धर्म कर्म सब मोह से बिसरें, मोह में पड़ नर भूले विचरें ।
केवल धुन सर यही समावे, इष्ट पदारथ किमी जुटावे ।
विद्या मान वा धन पदारथ, पाय करत नर सिद्ध स्वारथ ।
सिद्धी से जब बढ़ता मान, उपजत नर में तब अभिमान ।
सब पापों का मूल अभिमान, वैरी और नहीं इस समान ।
प्रसिद्ध बात यह जग के बीच, अभिमानी का सिर होय नीच ।

दो० काम क्रोध व लोभ जो, और मोह अभिमान ।
इन के नर जब वश भये, नशे सकल सन्मान ॥ १०५७क

पांचों ये जो चोर हैं, रहें छिपे मन माहिं ।
विषयन की झंखाड में, दृष्टि बीच न आहिं ॥ १०५७ख

धर्म कर्म जब नर लगे, करते आ ये घात ।
परमारथ धन लूट लें, इन की परम बसात ॥ १०५७ग

इस विध प्रभु जी ने बतलाया, जनता ने उपदेश सराहया ।
काम क्रोध व लोभ अभिमान, मोह आदि की भयी पहचान ।

काम के वश में सब संसार, बचा वही जिसे गुरु से प्यार ।
गुरु का रहस प्रभु बतलाया, मन्त्र का भी भेद जताया ।
कहा प्रभु जी "संगत प्यारी, नर जिज्ञासु जो संस्कारी ।
जग जंजाल से मान के खेद, खोजन हित आनंद का भेद ।
गुरु योगी की शरणी जावे, सेवा भाव से उसे रिझावे ।
हो प्रसन्न गुरु दें वरदान, उस के मन की कर पहचान ।

दो० अन्तर्यामी सद्गुरू, मन का जानें रूप ।
मन के ही अनुरूप दें, मन्त्र सहित स्वरूप ॥ १०५८

पूर्व जन्म के पढ़ संस्कार, ध्यान में ला मन का आकार ।
जान विचारों की भी बात, मन्त्रित करते शिष्य का गात ।
मन को करन मन्त्र वत जानें, उन को ही हम गुरु पहचानें ।
गुरु योगी ही यह कर पाये, योग बिना नर मुंह की खाये ।
चंचलता मन की सब जानें, औषध इस की न पहचानें ।
गुरु योगी जानत है औषध, मन्त्र देत जो परम महौषध ।
नाम रूप की औषध आनी, योग शक्ति के रस से सानी ।
उस औषध का करत जो पान, रसानन्द का होता भान ।

दो० प्रकट भये आनन्द जब, चंचलता भये दूर ।
जब तक मन चंचल रहे, आनन्द मिले न पूर ॥ १०५९क
नाम रूप जब दें गुरु, संस्कार अनुकूल ।
ज्योति घट में प्रकट भये, सर्व सुखों की मूल ॥ १०५९ख

सद्गुरु नाम देत हैं जिसको, और लगावें रूप में उस को ।

शक्तिपात संग में कर देते, चित्त 'साधक का वश कर लेते ।
चंचल मन हो स्थिर जब जावे, आतम रस को तब वह पावे ।
नाम रूप को कुंजी जानो, दिव्य खजाना आतम मानो ।
गुरु योगी भण्डारी होते, खोल कपाट कृपा कर देते ।
दिव्य भण्डारे में प्रवेश, होवे शिष्य का देर न लेश ।
माया से हो जन की मुक्ति, योगी जाने योग की युक्ति ।
योगी गुरु ही परम महान, योग बिना न हो कल्याण ।

दो० असंभव है बिन योग के, करना भव को पार ।
बिन नौका के तैरना, जिमी सागर दुश्वार" ॥ १०६०

प्रभु जी ने इस विध समझाया, नाम रूप का भेद बताया ।
शक्ती गुरु की भी जतलायी, योग की महिमा भी समझायी ।
उस के आगे वर्णे नाथ, दिव्य ज्ञान दे करें सनाथ ।
ला कर ध्यान सुनो मम मीत, योगी सके किमि मन को जीत, ।
प्राण सवारी मन आरोही†, प्राण शक्ति मन त्रिपुर-द्रोही* ।
मन प्राण जब होवें युक्त, दुर्बलता से मन हो मुक्त ।
दृढ़ शक्ती तब मन में आवे, इच्छित वस्तु को नर पावे ।

दो० जैसे मन के भाव हों, प्राण शक्ति तस होय ।
मन हो संशय युक्त जब, दुर्बल प्राण भी होय ॥ १०६१क

दुर्बल प्राण न कर सकें, महान कर्म अस नेम ।
परम सिद्धि के हेतु हो, दृढ़ लक्ष्य, मन प्रेम ॥ १०६१ख

†आरोही—सवार *त्रिपुर-द्रोही—शिवजी

श्रद्धा अथवा प्रेम से, मन जब ध्यावे लक्ष्य ।
उसे उपासन कहत हैं, होवे इष्ट समक्ष ॥ १०६१ ग

इष्ट का करता मन जब ध्यान, दिव्य मिले तब शक्ति महान ।
शक्तिमान प्राण तब होवे, उच्च लक्ष्य को वह नर गोवे ।
गुरु से पाकर नाम व रूप, चित्त एकागर होवे गूप ।
उच्च विचार सहित तब प्राण, ले कर खींचें श्वास घ्राण ।
दिव्य शक्ति का तब कुछ रूप, झलकत मन में आप अनूप ।
आनन्द की तभी हो प्रतीत, श्रद्धा उपजत इस ही रीत ।
श्रद्धा से आगे बढ़ पाये, और सफल वह नर हो जाये ।
अशुद्ध विचारों का संहार, दिव्य विचारों का प्रचार ।
मन में होवे श्वास के संग, ईश्वर का जन बनता अंग ।

दो० देवासुर संग्राम यह, जानो मेरे मीत ।
प्रतिपल अन्तर में चले, करो योग से प्रीत ॥ १०६२ क

करो योग से प्रीत तुम, सात्विक जीवन हेत ।
राजस तामस दोष जो, नशें वे पाप समेत ॥ १०६२ ख

सात्विक जीवन जन का होवे, संचित पापों को वह धोवे ।
यज्ञ दान तप कर्म जो भारे, निष्काम भाव से होवें सारे ।
कर्ता होत अकर्ता होय, आवागमन को जन वह खोय ।
अपना कुछ ना जन वह देखे, अपने रूप में गुरु को पेखे ।
मन को निज न मन वह जाने, प्राण को अपने प्राण न माने ।

*निज बुद्धि नहीं बुद्धि गोवे, गुरु ही प्रेरक उस का होवे ।
मन प्राण और बुद्धि उसके, महान बनें विकसित हो तिसके ।
देह न क्षुद्र बिन्दु रह पावे, ब्रह्माण्ड का वह अंग हो जावे ।
विश्व का चित्त उस में आये, सर्वव्यापक बुद्ध हो पाये ।
सर्वव्यापक निज को देखे, घट घट में निज घट ही पेखे ।

दो० ऐसी बुद्धि जब मिले, बदले नर का सार ।
जीव जन्तु सब विश्व के, दीखें निज परिवार ॥ १०६३क

ऐसा नर जंह बसत है, उस का शुभ प्रभाव ।
दान करे सब जगत को, सुख रूप सद्भाव ॥ १०६३ख

यह अवस्था जब कभी आवे, ऋतंभरा प्रज्ञा तब नर पावे ।
सर्व ज्ञाता वह हो जावे, वेदों का वह सार ग्राहवे ।
ऋद्धि सिद्धि का हो वो स्वामी, रहस्यों का भी अन्तर्यामी ।
कौन वस्तु है ऐसी जग में, आवे न जो उस के मग में ।
आनन्द रूप वह हो विराजे, इच्छा ना उस के मन राजे ।
निष्काम भाव उस का स्वभाव, आत्मानन्द का ही बस चाव ।
आत्मरति ही उस का काम, बीते योग में समय तमाम ।
समाधि में बहु काल बितावे, शुद्ध चैतन्य के दर्शन पावे ।
सूर्यों के जो सूरज नाथ, उस में लीन रहे इक साथ ।
मन प्राण व बुद्धि जिसकी, लीन भयी शुद्ध तत में जिसकी ।
नित्य शुद्ध वह योगी होवे, मल विक्षेप को दूर बिगोवे ।

*अर्थात उस को अपने बुद्धिमान होने का अहंकार नहीं होता ।

दो० ऐसे योगी का कहें, दूर भया आवरण ।
ईश्वर का वह रूप जन, उस का सत आचरण ॥ १०६४

नित्य मुक्त तुम उस को जानो, जगत बीज क्षीण ही मानो ।
सोता उठता चलता चाहे, काम काज में लगा हो चाहे ।
उस की तार न टूटे भाई, सागर में जिमि मीन समाई ।
अमृत भोगी वह हो जावे, जग में फिर न लौट के आवे ।
इस विध प्रभु जी ने समझाया, सुन भक्तों ने सुख को पाया ।
दत चित्त हो सुनें वे ऐसे, समाधि में स्थित योगी जैसे ।
प्रभु जी ने तब और बताया, अन्त में जनता को समझाया ।
आत्म स्थिति को जब जन पाये, चंचलता सब मन की जाये ।
काम की वासना होवे शांत, सकल मिटे तब मन की भ्रांत ।

दो० भूत काम का जो लगा, जन्म जन्म का मीत ।
आत्म रूप पछान कर, मुक्त भया अब चीत ॥ १०६५क

वश काम के होय कर, करता था जो क्रोध ।
इन्द्रिय संयम से सभी, भया क्रोध का शोध ॥ १०६५ख

नश्वर सुख में वह रमा, करता था जो लोभ ।
परमानन्द को पाय कर, मिटा सभी अब क्षोभ ॥ १०६५ग

विषयों के सुख कारणे, उपजा था अज्ञान ।
मोह अंधेरा नाशा, आत्म रूप जग जान ॥ १०६५घ

विद्या धन व मान मद, सर पर था जो सवार ।
अब उस मद से हो गया, ज्ञान पाय निस्तार ॥ १०६५ङ

ऐसा योगी जो भये, शत शत हो प्रणाम ।
उपजे वह जिस देश में, जगद्वंद्य वह धाम ॥ १०६५
प्रभु जी के उपदेश को, सुन कर सारे लोग ।
कृतकृत्य सभी हो गये, भया दिव्य संयोग ॥ १०६५

२१. श्री मुलख राज जी को जेल देखने के लिए भेजना

प्रभु जी का उपदेश महान, भया जनता का बहु कल्याण ।
धन्य धन्य सब कहें नर नार, जो भी आये थे उस द्वार ।
दरोगा ने स्वभाग्य सराहया, घर में सब ने बहु सुख पाया ।
दरोगा ने फिर विनय उचारी, नाथ जेल जो है सरकारी ।
चलें भीतर मैं चल दिखलाऊँ, अपना कारज सब दरशाऊँ ।
उत्तर में प्रभु जी फरमाया, रहस्यमय उन वचन सुनाया ।
चिरञ्जीव क्या जेल को देखूँ, मैं अपराधिन को क्या पेखूँ ।
यदि मानो तुम मेरी बात, चलूँ मैं संग तुम्हारे तात ।
दो० जिस किसी को मैं कहूं, छोड़ सको जो मीत ।
संग में तेरे तब चलूं, देखन जेल के भीत ॥ १०६६
सुन कर प्रभु जी का आदेश, समझ सका न भाव विशेष ।
गूढ़ बात इस में जो आई, उस की वहां तक न रसाई ।
विनय कीनी उस निज कर जोड़, राजाज्ञा प्रभो सकूँ न तोड़ ।
मुक्त करना न मम आधीन, क्षुद्र कर्मचारी मैं दीन ।
उस की सुन कर प्रभु जी बात, लागे कहन मुलख को "तात ।

इस के संग तुम्हीं हो आओ, देख सकल जेल को पाओ" ।
शिष्यों पर प्रभु जी की प्रीती, देखन हित भेजन यह रीती ।
दरोगा संग मुलख जी चाले, प्रभु चरणों को चित संभाले ।

दो० प्रभु चरणों के ध्यान में, सदा मुलख जी लीन ।
मुलखराज का मन भया, प्रभु सागर में मीन ॥ १०६७क
मुलखराज जब चल दिये, संग दरोगा लेय ।
कीन प्रभु को बेनती, गुरु माता जी देय ॥ १०६७ख

स्वामी मैं तो अज्ञ हूँ नारी, लीला समझ न सकूं तुम्हारी ।
आप ने जो थी शरत लगायी, मेरी सुन बुद्धि चकरायी ।
कैदी को क्यों आप छुड़ावें, क्यों ऐसी यह शरत लगावें ।
इस से योग का क्या संबंध, यह तो राज्य का है प्रबन्ध ।
सुन कर प्रभु जी दे मुस्काय, सुभद्रा को मुख से फरमाय ।
तुम तो अज्ञ नहीं हो नारी, बात पते की पूछी सारी ।
अपने मन की तुम्हें बताऊँ, भेद किसी को न प्रकटाऊँ ।
देख दशा निज देश की सारी, होती ग्लानी मुझ को भारी ।

दो० मन में होता खेद है, देख राज्य के काम ।
न्याय मिले न ठीक से, दुःख में प्रजा तमाम ॥ १०६८

दीन प्रजा न न्याय को पावे, यहां पर न्याय भी मोल बिकावे ।
कोर्ट फीस वकील की उजरत, और अनेकों रिश्वत उशरत ।
जो न सके यह सब कुछ दे, मोल सके किमि न्याय को ले ।

धनी अपराधी मौज मनावें, निरपराधी जेल में जावें ।
जेल की वायु निर्धन खावे, अत्याचार भी वह सह पावे ।
उस की बात न पूछे कोई, अपनी दुर्गत जाने सोई ।
होता धन यदि मेरे पास, मैं भी लड़ता केस को खास ।
इस विध मर्नाहं मनावे दीन, कोसे भाग्य को दुःख में लीन ।

दो० दुर्लभ हो जिस देश में, दीन जनों को न्याय ।
उसी देश पर आ पड़ें, लाखों लाख बलाय ॥ १०६९

देख अनीती मैं घबराऊँ, भविष्य देश का धूमिल पाऊँ ।
आह दुखियों की देश जलावे, घोर विपत्ति सब पर आवे ।
दैविक भौतिक सारे ताप, और अनेकों अन्य संताप ।
उस देश पै आयें ससाज†, होत जहां अन्याय का राज ।
जेल को देखन मैं न जाऊँ, निरपराधी कैद में पाऊँ ।
मेरा अन्तकरण घबरावे, देख अनीती दुःख को पावे ।
बात रहसमयी प्रभु सुनाई, सुभद्रा के तब मन में आयी ।
मेरे स्वामी दीना नाथ, है चित्त दीन जनों के साथ ।

दो० दीन जनों के नाथ ये, दयामय इन का रूप ।
दीन जनों के हेत ही, प्रीत है मन में गूप ॥ १०७०

सुभद्रा प्रश्न कीना फिर और, पाऊं अनीती मैं सब ठौर ।
नाथ बताओ कुछ उपचार, दूर हो जिस विध अत्याचार ।
प्रभु जी कर कुछ मुख मलान, और फिर उस पर ला मुस्कान ।

†ससाज-उमड़ कर

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज की जगवन्द्या धर्मपत्नी पूज्य माता सुभद्रा जी

प्रश्न - माता सुभद्रा — "नाथ बताओ कुछ उपचार,
दूर हो जिस विध अत्याचार"।
उत्तर - श्री प्रभु जी - "जभी चलेगा न्याय पै देश,
तभी मिलेगा सुख का लेश"॥

(देखें दोहा १०७० के आगे)

कही सुभद्रा से यह वाणी, नार हो तुम तो जन कल्याणी ।
मैं जानूं शुभ प्रश्न तुम्हारा, थोड़े में दूं उत्तर सारा ।
जभी चलेगा न्याय पै देश, तभी मिलेगा सुख का लेश ।
सुख में प्रजा तभी रह पावे, राजा नीती जब अपनावे ।
जब न्याय को परखे आप, स्वयं करे न भूल वह पाप ।

दो० राजा त्यागे पाप को, राखे शुद्ध आचार ।
उस राजा की जो प्रजा, कभी न हो बदकार ॥ १०७१

राजा के ही अंग कहावें, कर्मचारी जो नाम धरावें ।
राजा आप करे जो काम, कर्मचारी भी करें तमाम ।
जहां न्याय का होता घात, राजा पाप रूप साक्षात ।
यथा राजा तथा प्रजा जानो, यह सिद्धांत अटल कर मानो ।
बस संक्षेप से कह दूं बात, राजा धर्मी सुख साक्षात ।
पाप रूप जब राजा आवे, देश दुःखी बन दुःख को पावे ।
प्रभु की सुन कर शुभ यह वाणी, गुरु माता जी जगत भवानी ।
कहन लगी "मैं उत्तर पाया, मन का संशय सकल नशाया ।
चित्त आप का पावन धाम, सहन करे न पाप के काम ।

दो० मुलखराज जब चल दिए, दारोगा के साथ ।
गेट जेल का पार कर, देखा उन इक हाथ ॥ १०७२

कैदी बैठा एक अलमस्त*, प्रभु के ध्यान में जो था मस्त ।
मुसलमान वह एक मनस्वी, उस का रूप महान तेजस्वी ।

*अल्लाह की मस्ती में, भगवान की याद में

सूक्ष्म उस का देह निराला, प्रभु जी ने जो गोद संभाला ।
दिव्य दृष्टि से मुलख ने देखा, प्रिय जान वह रूप विशेषा ।
उस के सन्मुख जाय विराजे, उस के अन्तकरण में साजे ।
कही वहां उन उस से बात, जाय करो प्रभु का साक्षात ।
जगदाधार की चरणि जाओ, स्थूल देह से जा लिपटाओ ।
उत्तर मिला हे प्रभु के प्यारे, खुश किसमत न हम हैं सारे ।
तुम आज़ाद बंधन में हम हैं, हैं जिस हाल उसी में खुश हैं ।

दो० प्रभु हमारे पास हैं, हम प्रभु के पास ।
इन कड़ियों का लेश भी, हमें न हो एहसास ॥ १०७३

मुलखराज बस उस को देख, देख न जेल फिर और विशेष ।
लौट आये वह प्रभु के पास, भया था उन का चित्त उदास ।
आ कर प्रभु के लिपटे चरणि, जीव जन्तु जिन की सब शरणी ।
जेल पड़ा भी जिन का प्यारा, जेल के दुख से रहें न्यारा ।
दरोगा ने फिर विनय उचारी, अब मानें प्रभु बात हमारी ।
महल आदि जो सुन्दर स्थान, चल कर देखें वे भगवान ।
गुरु माता भी कही तब गाथ, हमें भी ले चलें निज साथ ।
स्वामिन हम भी देख के आयें, नूतन थल जो चित्त को भायें ।

दो० नूतन थल को देखकर, मिलता नूतन ज्ञान ।
चित्त निश्चय कर पाता, रचना ईश महान ॥ १०७४

प्रभु जी ने विनय स्वीकारी, चल देखें बहु थल सरकारी ।
कुदरत की भी महिमा भारी, चल फिर कर देखी उन सारी ।

मुलख राज का दिव्य ज्ञान, परखत पीर जो मिलता आन ।
पाता पीर जो प्रभु का बोध, आ कर मिलता निज चित्त शोध ।
दूर से देख वह शीश झुका, सजदा करत वह हाथ मिला ।
सब कुछ देख प्रभु घर आये, मासी मासड़ शीश झुकाये ।
दोनों के मन अति था चाव, प्रभु जी जानें उन के भाव ।
प्रभु जी था उन को अपनाया, कर कृपा वहां आसन लाया ।
इस से बड़ी क्या मिले बढ़ाई, घर आवें जग-स्वामी भाई ।

दो० जिस घर में जब आय कर, स्वयं करें प्रभु वास ।
वृन्दावन सम धाम वह, सभी कहें वह खास ॥ १०७५

उस घर के तो सब नर नारी, प्रभु कृपा के हों अधिकारी ।
भौतिक दैविक आत्मिक ताप, शांत करें प्रभु उन के आप ।
दैविक आर्ष वा पैत्रिक ऋण, इन से भी उन्हें करें उऋण ।
प्रभु किरपा में परम सामर्थ*, झूठा जानों जग का अर्थ† ।
जग की माया संग त्यागे, प्रभु की दया सदा संग लागे ।
ऐसी दौलत मिले न भाई, मूर्त प्रभु की जो मन आई ।
रूप प्रभु जो मनहिं समावे, उस से बड़ी न दौलत पावे ।
धन जग का सब नश्वर जान, रूप अनश्वर प्रभु मन आन ।

दो० रूप प्रभु का मन बसे, कल्प वृक्ष सम जान ।
कल्प वृक्ष से वह बड़ा, इस को ले पहचान ॥ १०७६क

*सामर्थ्य, वल, शक्ति †अर्थ-धन, वैभव

कल्प वृक्ष से धन मिले, यहां मिलत भी ज्ञान ।
धन दौलत सब ज्ञान के, प्रभु भण्डारी मान ॥ १०७६ख
प्रभु भण्डारा है भरा, लेने को नर होय ।
रूप प्रभु का स्मरण कर, मिले जो इच्छा सोय ॥ १०७६ग

मासी मासड़ विनती कीनी, "कृपा अतीव प्रभु तव चीनी ।
दीन जनों पर कीनी दाया, क्षुद्र जीव हम को अपनाया ।
हम कहां हैं प्रभु इस लायक, सेव करें तुमरी सुखदायक ।
दर्शन होवें नित्य तुम्हारे, उदय भये शुभ पुण्य हमारे ।
प्रभु जी जो शुभ वचन तुम्हारे, वेद वाक्य मानें हम सारे ।
करो कृपा सामर्थ्य यह पावें, तव वचनों पर चल दिखलावें ।
हे नाथ कुछ दो उपदेश, सुखी जीवन हो हमरा शेष ।
तव वचनों पर चलेंगे नाथ, आप ने कीना हमें सनाथ ।
दो० गुरू वचन गठ बांध कर, जीवन करे व्यतीत ।
ऐसा जन दुःख से बचे, सेवक मन प्रतीत" ॥ १०७७

२२. मदिर-यज्ञ, निषिद्ध कर्म, उपाख्यान

प्रभु जी जाना उन का भाव, गुरू शिक्षा का जिन को चाव ।
शिक्षा हेतु उन को बतलाया, दे दृष्टांत सुन्दर समझाया ।
सुख का पूछा तुम ने मूल, ग्रहण करो बस धर्म असूल ।
चले धर्म पर जो नर नार, सुख से करे भवसागर पार ।
उसे न भव के ग्राह से भय, उस के सभी दुःखों का क्षय ।

धर्म को जानो सुख का मूल, खिलें धर्मी मन सुख के फूल ।
अधर्मी की संपत दुःखदायी, नाश-कारी अधर्म कमायी ।
इक दृष्टांत तुम्हें सुनावें, भेद सकल जिस से पा जावें ।

दो० एक समय की वारता, किसी ग्राम के मांझ ।
ब्राह्मण बैठा हवन पर, करने को इक सांझ ॥ १०७८क
तमोगुणी वह विप्र था, विजया कीनी पान ।
मादकता में मस्त था, उखड़ा उसका ध्यान ॥ १०७८ख

इक कुकर्मी वहां चलि आया, आसन उस ने भी वहां लाया ।
मद्य की शीशी थी उस पास, ब्राह्मण हित लाया था खास ।
ब्राह्मण का जब देखा हाल, मद्य को चरू* में दीना डाल ।
मस्ती में उस जान न पाया, उसी चरू से हवन चलाया ।
पूर्ण आहुती तब उस दीनी, रात व्यतीत नशे में कीनी ।
भयी प्रातः पत्नी जागी, यज्ञ शाला बुहारण लागी ।
स्वर्ण डली यज्ञ कुण्ड में पायी, निज पती को लाय दिखलायी ।
देख ब्राह्मण भया अचंभित, कही बात उस होय स्तंभित ।
यज्ञ देव ने कीनी दाया, स्वर्ण डला जो है यह पाया ।

दो० स्वर्ण डला यह देय कर, देव बखानी बात ।
हम तुम से संतुष्ट हैं, यज्ञ किया जो रात ॥ १०७९

ब्राह्मणी ने सुन कर यह वाणी, ब्राह्मण को तब बात बखानी ।
यज्ञ देव ने कीनी दाया, तुम ने सत्य यह है बतलाया ।

*चरू—हवन सामग्री

आज पुनः यज्ञ को कर देवें, स्वर्ण डला इक और भी लेवें ।
सकल सामग्री पुनः जुटायी, यज्ञ देव को विनय सुनायी ।
यज्ञ देव तुम विनय स्वीकारो, स्वर्ण डला अब भी दे डारो ।
भक्तों के तुम काज सवारो, स्वर्ण डला इक और दे डारो ।
यज्ञ देव तुम जग को पालो, स्वर्ण डला इक और दे डालो ।

दो० इस विध मिनत मनात हैं, ब्राह्मण ब्राह्मणी दोय ।
माया जिन के मन बसत, भजन करें इमि सोय ॥ १०८०क

दिन भर मिनत मनाय कर, यज्ञ किया उन शाम ।
रात्री भर चिन्तन किया, बने हमारा काम ॥ १०८०ख

प्रातः काल कुछ नेत्र लागे, हड़बड़ा कर पुनः वे जागे ।
भाग गये सीधे यज्ञशाल, लेवें जा कर स्वर्ण संभाल ।
ब्राह्मणी ने सब राख निकाली, ब्राह्मण ने वह सब पड़ताली ।
इक इक कोयला कर के देखा, हवन कुण्ड टटोल के पेखा ।
आस पास भी नजर दौड़ायी, स्वर्ण डली कहीं भी न पायी ।
राख को छननी में फिर छाना, कोयला जल में धो कर आना ।
स्वर्ण मिला न कहीं भी उस में, आस लगी थी फिर भी मन में ।
इतने में वही मित्र आया, जो था कल मदिरा को लाया ।

दो० मित्र ने तब देख कर, ब्राह्मण ब्राह्मणी दोय ।
हवन कुण्ड के पास वे, हाथ मुंह बिन धोय ॥ १०८१

देख मित्र ने बात चलायी, उदास क्यों हो मेरे भाई ।
प्रातःकाल हो बैठे ऐसे, कुछ गंवाया तुम हो जैसे ।

ब्राह्मण ने सब हाल सुनाया, यज्ञ देव को जिमि रिझाया ।
एक बार उस कीनी दाया, पुनः स्वर्ण न दे वह पाया ।
देवों का भी क्या विश्वास, व्यर्थ राखें हम उन पै आस ।
देव नरन के स्वयं अधीना, यज्ञ न हो तो होवें दीना ।
अब की बार मैं शिक्षा पाई, किसी न मानूं देव को भाई ।
यज्ञ हवन सब दूंगा त्याग, मिले सोई जो हो मम भाग ।

दो० इतनी कथा सुनाय कर, प्रभु दीना उपदेश ।
माया में जो मन रमे, पाये न सुख का लेश ॥ १०८२क
पाये न सुख का लेश वह, तृष्णा जिस मन वास ।
अन्तर्यामी देव गण, क्यों करें विश्वास ॥ १०८२ख

आशा पूजे जभी हमारी, देवों पर तब हों बलिहारी ।
जिस बार न पूजे आस, देवों से उठता विश्वास ।
कहें कौन इस को है भक्ति, यह तो स्वारथ से अनुरक्ति ।
ऐसे भक्त जग में बहुतेरे, स्वारथ रत जो परम घनेरे ।
उन की भक्तों में इमि गणना, रत्नों में जिमि कांच की मनना ।
मीरा तुलसी सूर को जानो, साचे भक्त उन्हें पहचानो ।
माया का जो त्याग आधार, करते हैं निज इष्ट से प्यार ।
माया चाहे आये न आये, प्यार इष्ट से कभी न जाये ।
इस विध दे कर प्रभु उपदेश, कथी जो आगे कथा अवशेष ।

दो० वर्णन कीनी नाथ ने, कथा जो आगे शेष ।
भक्त पायें उपदेश को, नशे जो संशय लेश ॥ १०८३

सुन कर ब्राह्मण की वह बात, कहा मित्र ने सुनो जी तात ।
यज्ञ देव न सुवर्ण बनाया, स्वर्ण मदिरा से था उपजाया ।
मदिरा डाली चरू के मांझ, यज्ञ किया तुम उस से सांझ ।
मदिरा की वह भयी करामात, निकली स्वर्ण डली साक्षात ।
मदिरा काम जो कर दिखलावे, दैव भी उस को न कर पावे ।
असुरों और सुरों की भाई, सुरा सम उन की न प्रभुताई ।
सुरा की बोतल को जो लाये, लक्ष्मी कर बद्ध हो के आये ।
राजा रंक सभी मम मीत, करते मदिरा से हैं प्रीत ।

दो० लक्ष्मी चाहो तुम यदी, और चाहो जग नाम ।
शरण सुरा की तुम गहो, त्याग धर्म के काम ॥ १०८४क

कुकर्मी का उपदेश सुन, उपजा मन विश्वास ।
पड़े अचंभे में तभी, विप्र विप्री वे खास ॥ १०८४ख

विप्री ने तब गिरा उचारी, पूर्ण करो तुम आस हमारी ।
बैठे हैं हम होय हतास, स्वर्ण डली की ला कर आस ।
मदिरा की तुम बोतल लाओ, विप्र ! जाय सामग्री लाओ ।
बाकी काम करूँ मैं शेष, देखो देर न करनी लेश ।
स्वयं उठी वा उन्हें उठाया, कुकर्मी ने था लोभ बढ़ाया ।
एक भी क्षण वह टिक न पायी, देखो तृष्णा की प्रभुताई ।
यज्ञ की लीनो कर त्यारी, विप्र सामग्री लायी सारी ।
कुकर्मी बोतल ले कर आया, मदिरा को चरू मध्य मिलाया ।

दो० स्वर्ण डली हित तब किया, विप्र विप्री ने याज ।
उन के चित्त का चाव जो, देखा जाय न आज ॥ १०८५क
पूर्ण आहुती देय कर, कीन विप्र अर्दास ।
विप्री भी संग में खड़ी, पति अपने के पास ॥ १०८५ख

कहा विप्र ने देवी मदिरे, किमि वर्णू गुण तेरे सबिरे ।
शेष शारदा की भी वाणी, कर तव सकत न गुण बखानी ।
चमत्कार जो तू कर पावे, योगी भी न कर दिखलावे ।
तेरे सन्मुख सब की हार, स्वीकार करे जो तव उपहार ।
निज शक्ति से होता हीन, त्याग बड़प्पन बनता दीन ।
जैसे चाहो नाच नचाओ, कठ पुतली सम उसे घुमाओ ।
तेरे आगे नहीं बसात, तुम देवी मम हो साक्षात ।
कर बांधे मम यह अरदास, आज करो मम पूरण आस ।

दो० ऐसी कर अरदास उस, कीना फिर प्रणाम ।
उठ कर दोनों चल दिये, भयी थी अब तो शाम ॥ १०८६क
रात विहायी आस में, उठ देखा जब प्रात ।
स्वर्ण डली थी चमकती, कुण्ड मध्य साक्षात ॥ १०८६ख

स्वर्ण डली को लपक ग्राहया, चमत्कार मदिरा दिखलाया ।
गुरू मन्त्र मानो उन पाया, ब्राह्मण जा कर मदिरा लाया ।
ढेर चरू में मदिरा डाली, "मदिर यज्ञ" की रीती चाली ।
नित्य नवीन स्वर्ण मिल पावे, ब्राह्मण बना सेठ दिखलावे ।
ब्राह्मणी ने निज भाग्य की बात, पड़ोसिन को खोली इक प्रात ।

स्त्री का स्वभाव ही तात, पचे न उस के मन में बात ।
पड़ोसिन ने निज पति को बोला, उस का मन भी लोभ से डोला ।
धन का लोभ न किसे लुभावे, ओच्छे कर्म भी लोभ करावे ।
पड़ोसी ने भी मदिरा लायी, "मदिर यज्ञ" की रीत बढ़ायी ।

दो० "मदिर यज्ञ" की रीत यह, फैल गयी तत्काल ।
मांग मदिर की बढ़ गई, ऐसा भया हवाल ॥ १०८७

खूब मदिरा फिर बनने लागी, जनता मदिरा की अनुरागी ।
मदिरा से सब स्वर्ण बनायें, मदिर मांस का भोग लगायें ।
महल अटारी वहां बन पाये, जहां थे टूटे छप्पर छाये ।
हालत बदली वहां की ऐसी, स्वर्ण की लंका बनी हो जैसी ।
धन का नशा चढ़ा सब ऊपर, धन के मद से बड़ा क्या भूपर ।
धन के मद में आ कर आप, करते वे न कौन से पाप ।
मोह के बश में हो कर सारे, गिनें न कुछ भी पाप जो भारे ।
धन मद संग मदिर मद आवे, पाप से नर तब बच न पावे ।

दो० क्रोध मोह वा लोभ जो, और काम का माद ।
नष्ट करें नर बुद्ध को, उपजायें प्रमाद ॥ १०८८

धनाढ्य भया वह सकल ग्राम, अधार्मिक कृत्यों का भी धाम ।
उसी ग्राम में रहता एक, जिस को साची प्रभु की टेक ।
योगाभ्यासी पुरुष वह भारी, पतिव्रता थी उस की नारी ।
पति को पत्नी ने बतलाया, जनता ने जो चक्र चलाया ।
पत्नी ने कहा "हे मम नाथ, बीत रहा क्या हमरे साथ ।

सभी पड़ोसी भये अमीर, फटे पुराने हमरे चीर ।
रंग रलियां हैं लोग मनाते, चने चबेने हैं हम खाते ।
प्रातः मिले शाम को नाहीं, भोजन बिन ही हम सो जाहीं ।
टूटा फूटा छप्पर हमारा, पड़ोसी डाला नया चबारा ।
क्या दुनियां में हमीं अभागे, दरिद्रता जिन पीछे लागे ।

दो० दरिद्रता निज देख कर, रहत न मन में धीर ।
केवल हम को छोड़ कर, सब जन भये अमीर ॥ १०८९

हवन यज्ञ घर-घर में होता, कीर्तन का है बहता स्रोता ।
आराध्य न जानूं उन का कौन, वर्षा करत स्वर्ण की जौन ।
स्वामी तुम भी करो उपाय, दरिद्रता जिस विध यह जाय ।
मैं तो जाऊँ शर्म की मारी, देख धनी यह जनता सारी" ।
इस विध पत्नी जब हठ कीना, बैठ ध्यान तब योगी चीना ।
कर्मों को जनता के देखा, "मदिर यज्ञ" को भी उस पेखा ।
मन में भयी गलानी भारी, पापी जनता भयी थी सारी ।
यज्ञ कीर्तन न हमें बचावें, पाप कर्म जब सन्मुख आवें ।
ध्यान में तभी दृश्य यह आया, जिस ने वास्तव ज्ञान कराया ।
पृथ्वी पाप से दबी थी सारी, शेष नाग दुःखी था भारी ।

दो० पृथ्वी दबी थी भार से, दबा भार से शेष ।
दिग्गज थे चिंघाड़ते, चिन्तित देव विशेष ॥ १०९०

इन्द्र ने भी सभा बुलायी, एकत्र देवों की समुदायी ।
सभी के मन में यही विचार, पृथ्वी का किमि उतरे भार ।

बृहस्पति ने वचन उचारा, कथा ग्राम का सकल नज़ारा ।
मदिरा बहे नगर में ऐसे, पेय पानी के चश्मे जैसे ।
मदिरा से जो भयी कमायी, लंका सम नगरी बन पायी ।
आय का साधन मदिरा भारी, मदिर यज्ञ करते नर नारी ।
मदिरा से हो भाव अशुद्ध, हो मदिरा से ध्यान अशुद्ध ।
अशुद्ध भाव विषयों को ध्यावें, संग तभी उन का कर पावें ।
संग से काम को जन्मा जानों, काम से क्रोध भये पहचानों ।
क्रोध से भये संमोहन भारी, संमोह से स्मृति नष्टे सारी ।
स्मृति जन की नाशे जब ही, धोवें हाथ बुद्धि से तब ही ।
बुद्धि का जब नाश हो जावे, सर्व नाश तब देखन आवे ।

दो० सर्वनाश का है बना, ऐसा यह प्रसंग ।
मद्ययाग को देखना, कैसा लाता रंग ॥ १०९१

बृहस्पति की सुन कर वाणी, नारद ने तब गिरा बखानी ।
नगरी लंका सम यह सारी, दहन होयगा इस का भारी ।
परन्तु देव करें क्या नाथ, रहत योगी इक पत्नी साथ ।
उस का हठ बहुत है भारी, वही बचाता नगरी सारी ।
जभी त्याग नगरी वह जाये, तभी नाश इस का हो पाये ।
योगी को पर कौन बतावे, वह तो सद्गुरु को ही ध्यावे ।
परम स्वतन्त्र योगी जानो, उस पर वश न और का मानो ।
इच्छा उस की जब हो पावे, नगर त्याग कर तब ही जावे ।
देव करत हैं न्याय की बात, योगी के मन दया समात ।

दो० दया योगिजन करत हैं, पापी को भी देख ।
उस की इच्छा रहत यह, सब सुख पांय विशेष ॥ १०९२क

सुन नारद की बात को, बोला तब इक देव ।
इस योगी के कारणे, हम दुःखी हैं देव ॥ १०९२ख

देव योगी से हैं परेशान, त्यागे योगी यदि वह स्थान ।
होय शीघ्र उस देश का नाश, सुखी भये फिर शेष हताश ।
उतरे पृथ्वी का सब भार, सुखी भी होवें दिग्गज चार ।
इस योगी के कारण नाथ, चिन्ता लागी हमरे हाथ ।
विभीषण लंका को जिमि त्यागा, छोड़े नगरी योगी सुभागा ।
देवों की फिर चिन्ता जाये, भू पर राज धर्म का छाये ।
उस देव की सुन कर वाणी, शारदा बोली निज सुवाणी ।
मुझे भी लगती बात सुहानी, हठ त्यागे अब योगी मानी ।
देख ध्यान में दिव्य नजारा, उठ योगी ने चित्त में धारा ।
विचार किया योगी मन मांहि, वास करूं न अब इस थांहि ।

दो० ऐसा मन में धार कर, प्रकट जताई बात ।
हे सुभगे इस नगर में, काटें न अब रात ॥ १०९३क

लेना है सो ले चलो, बाकी सब कुछ त्याग ।
तुरन्त चलें इस नगर से, दोनों जन हम भाग ॥ १०९३ख

पतिव्रता ने मान ली, बात पति बिन सवाल ।
निकले जब वह नगर से, आया एक भूचाल ॥ १०९३ग

दो० इक झटके से हो गया, सकल नगर वह ढेर ।
धरा में ऐसे दब गया, निकला कोई न फेर ॥ १०९३घ

प्रभु जी ने यह कथा सुनायी, इस से शिक्षा सब ने पाई ।
जैसा कर्म मनुष्य कर पावे, वैसा ही फल सन्मुख आवे ।
अन्त पाप का नाश है कारी, लंका रावण की जिस जारी ।
पाप ने कौरव इमि विनाशे, सौ में बचा एक ना पाछे ।
सदा पाप से भय को खाओ, भ्रांति में न लेश भी आओ ।
क्षण के सुख में मत उलझाओ, दृष्टि दूर की तुम अपनाओ ।
देखो आरंभ को न तुम मीत, राखिए परिणाम से प्रीत ।
आरंभ में दुःख भी लो सहार, अन्त में मिले जो सुख अपार ।

दो० अन्त पाप का दुःख है, मिलत धर्म से सुख ।
यह अपेल सिद्धान्त जो, रहे सदा सन्मुख ॥ १०९४

जगदाधार जगत कल्याणी, जिन के आश्रित हैं सब प्राणी ।
ग्रहण किया जग में अवतार, तारे पापी नर और नार ।
अमृत वाणी उन की प्यारी, मधुर वचन थे अति मन हारी ।
नित्य श्रवण नर जो कर पाते, पाप ताप धुल उन के जाते ।
गंगा में जिमि कर के स्नान, जन होता है सुखी महान ।
प्रभु उपदेश की गंग नहाया, परमानन्द जन गण ने पाया ।

२३. जल मार्ग द्वारा बाग निशात को जाना

इक दिन मासड़ विनय उचारी, रविवार है कल पापारी ।
रविवार को बहु जन जायें, बाग निशात देख के आयें ।

दो० बाग निशात की क्या कहूं, शोभा मेरे नाथ ।
सकल जगत ही नाथ जी, गाता उस की गाथ ॥ १०६५

बाग निशात डल झील किनारे, सैलानी जायें चढ़ शिकारे† ।
मोटर गाड़ी में जन जावें, कई जन टांगे में जा पावें ।
आज्ञा नाथ करें यदि मेरे, करें शिकारा हम भी सवेरे ।
सुन मासड़ की बात यह सारी, कृपानाथ ने वह स्वीकारी ।
गुरू माता के मन भी भायी, मुलखराज प्रभु आज्ञा पायी ।
राजा जी तुम लेवो जान, कल चल देखें सुन्दर स्थान ।
मुलखराज कीनी अरदास, जन तव चरणों का ही दास ।
निज चरणों के संग लिपटाय, ले चालें जंह वहां यह जाय ।

दो० दासन को तो हे प्रभो, सर्वोत्तम वह थान ।
चरण आप के जंह पड़ें, लागे वही महान ॥ १०६६क

मुलखराज यों कर विनय, भया ध्यान में लीन ।
प्रभु प्रेम रस मन सना, उत्तर इतना दीन ॥ १०६६ख

बीती रात्री प्रातः जागे, भक्त प्रभु के रस अनुरागे ।
मन से वे थे प्रभु को ध्याते, वाणो से उन के गुण गाते
"राम राम" ही मुख पै लाते, तन से सेवा में मदमाते ।
जिन भक्तों की ऐसी रीती, समझो उन की प्रभु से प्रीती ।
साची भक्ति की यह टेक, मन वच कर्म से होवे एक ।
मासी मासड़ सुध विसरायी, वृत्ति प्रभु सेवा में लायी ।

†नाव

यह पर उन की नहीं कमायी, इस में भी प्रभु की प्रभुतायी ।
प्रभु तराने जग को आते, योग भक्ति की नौका लाते ।
खेवन हार बनें वे आप, उन का ही बस सब प्रताप ।
लोहा स्वयं न तर दिखलावे, बेड़ी ही उसे पार लगावे ।
बेड़ी भी जल में बह जावे, यदि न नावक उसे चलावे ।
यही समझो भक्ति की रीति, प्रभु कृपा से प्रभु पग प्रीति ।

दो० स्वयं भक्त के मन बसें, स्वयं जपावें नाम ।
स्वयं लगावें सेव में, स्वयं सवारें काम ॥ १०९७

जिस भक्त के मन अहं आवे, वह भक्ति नहीं कर दिखलावे ।
भक्ति से वह रहता दूर, पहुँचे न वह दरे हजूर* ।
अहंभाव भक्ति विप्रीत, रहता अहं है जिस के चीत ।
प्रभु के लिए न उस चित्त थांव, मुख से चाहें जपत वह नांव ।
उस नांव में प्रीती नाहीं, सेवा में भी रति न आहीं ।
निष्प्राण भक्ति वह होवे, और न उस से जन सुख गोवे ।
साची भक्ति बने तब मीत, प्रभु कृपा से प्रभु आवें चीत ।
बाहर भीतर वही दिखावें, जैसे संग मुलख रह पावें ।
मुलख की उपमा मुलख ही जान, या राधा संग कृष्ण पहचान ।
चिन्मय भक्त चिन्मय ही नाथ, हर दम रहें भक्त के साथ ।

दो० साथ भक्त के नाथ हों, भक्त नाथ के संग ।
ऐसा जब प्रसंग हो, चढ़े भक्ति का रंग ॥ १०९८क

* ईश्वर के दरबार में

दो० भक्ति का तब रंग चढ़े, जो मजीठ सम होय ।
घट छीजे वा पट फटे, फीका रंग न सोय ॥ १०९८ख

ब्रह्म मुहूर्त नाथ भी जागे, निज स्वरूपि भये अनुरागे ।
फिर उठ प्रात कर्म उन कीने, आ कर सब ने आशिष लीने ।
†प्रातराश कीना तब नाथ, प्रसाद दिया भक्तन निज हाथ ।
तांगे चल कर तब वहां आये, मासड़ जी ने जो मंगवाये ।
सभी जने तांगों में साजे, गुरु माता संग नाथ विराजे ।
घाट नदी का जब चलि आया, मासड़ तांगा वहीं रुकाया ।
मांझी कई भाग कर आयें, 'साहब शिकारा' की रट लायें ।
नाव एक मासड़ जी देखी, सजी धजी हर विध जो पेखी ।

दो० सजी धजी वह नाव थी, गद्दे साफ सलोने ।
मोती झालर की लड़ी, से भरे सब कोने ॥ १०९९क
पर्दों से थी वह ढकी, सुन्दर परी समान ।
जल की रानी दीखती, प्रभु विराजे आन ॥ १०९९ख

गुरू माता संग प्रभु विराजे, मासी मासड़ चरणी साजे ।
मुलखराज भी बैठा चरणी, मांझी युगल धकेली तरणी
मंझधार जब नाव थी आयी, धारा संग तब वह बह पायी ।
बीच नगर के है जो बहती, जेहलम है वह नदी कहाती ।
इस का आर्य 'वितस्ता' नाम, जिस तट बने ऋषियों के धाम ।
बीचों बीच नाव चल पायी, नगरी सिगरी दृष्टि आयी ।

†प्रातः का जलपान आदि

कहीं मस्जिद कहीं मन्दिर भारी, मानें धर्म को जनता सारी ।
घाट अनेकों तट पै आये, स्नान ध्यान हित जो बनवाये ।
देख नदी की सुन्दरतायी, गुरु माता के मन बहु भायी ।

दो० घाट बाट सब देख कर, और शिवालय पेख ।
स्नान पूज में निरख जन, माता कीन उलेख ॥ ११००

स्वामी मैं तो यही पहचानूँ, धर्म की नगरी इस को जानूँ ।
ईश्वर भक्त दीखे हर एक, पूजा पाठ में रत प्रत्येक ।
तिलक धारी बहु पण्डित भारी, सूत्र और शिखा विस्तारी ।
देव तुल्य आकार सभी का, मेरे मन यह भाव कभी का ।
गीत ध्वनी जो कुछ सुन पावे, वेद पाठ सम वही लखावे ।
नाथ बतावो सह विस्तार, यहां के धर्म कर्म का सार ।
किन देवों को जन ये मानें, किसमत को यह सभी पहचानें ।
धर्म कर्म इन का है कैसा, पर्व बताइये इन का जैसा ।

दो० किस देव की नाथ जी, करते सभी उपास ।
मम जिज्ञासा है भयी, यह वर्णें मम पास । ११०१

सुन कर गुरु माता की वाणी, निज मुख से प्रभु गिरा बखानी ।
हे सुभद्रे ! जग कल्याणी, जो जिज्ञासा मन यह आनी ।
ये तो परम शुद्ध है भाव, सात्विक होय जिस का स्वभाव ।
ऐसी बात उसी मन आवे, पूछ गुरू से ज्ञान को पावे ।
इस से सभी का हो कल्याण, श्रवण करे जो ला कर ध्यान ।
काश्मीर देश बहुत महान, पश्चिमोत्तर भारत के जान ।

विद्या की यह पीठ प्रसिद्ध, हुए यहां पर योगी सिद्ध ।
जिमि पूर्व में काशी जानो, पश्चिम में तुम इस को मानो ।
शिवजी के पुनीत प्रदेश, इन सम होय कौन सा देश ।

दो० इन लोगों का इष्ट जो, पूछा तुम मन लाय ।
शिव शंकर को जानिए, देव इन्हें मन भाय । ११०२

इतने में इक थल चलि आया, जहां शिकारा था रुक पाया ।
मासड़ बोल उठा तत्काल, "प्रभो लगे गा यहां कुछ काल ।
यहां से डल के भीतर जावें, यही द्वार जो डल का पावें ।
झील, नदी का संगम जानो, अद्भुत रचना यह पहचानो ।
नाव द्वार में बंद हो पावे, निकले जब जल समतल आवे ।
सभी नाव हैं यहां रुक पायीं, छूट यहां से झील में जाहिं ।
इस विध मासड़ जी समझाया, द्वार झील का तब खुल पाया ।
नाविक ने तव नाव चलायी, डल के जल में तव वह आयी ।

दो० डल का दृश्य अनूप था, जल का विशद पसार ।
वह इक निर्मल आईना, कुदरत करत शृंगार ॥ ११०३क
उस कुदरत का वर्णन, करना है दुश्वार ।
चुप्पी ही को साध कर, कवि यह माने हार । ११०३ख

दाईं ओर उन पर्वत देखे, सन्मुख भी थे शैल ही पेखे ।
बायें हाथ खेती दिख पायी, डग मग करत उस की हरियायी ।
मासड़ ने तब गिरा उचारी, "नाथ देखो यह खेती प्यारी ।

कृत्रिम भूमि कृषक बनावें, पानी ऊपर खेत लगावें ।
चलती फिरती भूमि सुहाती, चोरी भी इस की हो जाती ।
जल पर रहत सदा यह तैर, लागे हों जिमि इस को पैर ।
इसे धकेले लाय जो ज़ोर, चलती है यह उस की ओर" ।
शिकारा तब आगे चल पाया, कमलों का इक उपवन आया ।
विकसे सकल कमल जल ऊपर, योगी जैसे रहते भू पर ।

दो० डल के भीतर विस्तृत, लाल कमल का बाग ।
हरे पातों के जाल से, ढका सभी वह भाग ॥ ११०४क

जिमि माया आवरण से, मिले न आत्म ज्ञान ।
कमल-पात विस्तार से, तिमि न होय जल भान ॥ ११०४ख

२४. शंकराचल मन्दिर और अमरनाथ तीर्थ का वर्णन

पर्वत पर इक मन्दिर देखा, मधुर वचन गुरु-मात उलेखा ।
स्वामी वह मन्दिर हैं कौन, शैल शिखर पर बना है जौन ।
इतना ऊँचा इस को पाऊँ, मन चाहे अभी उड़ के जाऊँ ।
मन्दिर देख प्रीत उपजावे, कह न सकूँ मन भाव जो आवे ।
प्रभु जी ने फिर बात चलायी, सुभद्रे तुम को थी बतलायी ।
प्रश्न थे तुम ने जो कर पाये, कुछ थे मैंने तब समझाये ।
काश्मीर देश शिव जी का देश, शिव के मन्दिर यहां विशेष ।
शैल शिखर पर मन्दिर देखो, मन्दिर शंकर का वह पेखो ।
शंकर का यह पर्वत माना, "शंकराचल" इस का अभिधाना ।

सारी जनता इस को माने, राजा भी इस को सन्माने ।
सुन्दर मार्ग जिस बनवाया, विद्युत को भी वहां पहुँचाया ।
दो० शिव शंकर के कारणे, तंह विद्युत पहुँचायी ।
रात्रि मांझ प्रकाश को, देखें लोग लुगायी ॥ ११०५
प्रेमी जन दर्शन हित जावें, पर्वत पर चढ़ कर वे आवें ।
संग में जल घट भर के लावें, परिश्रम कर ऊपर पहुँचावें ।
शिव जी को जल बहुत प्यारा, पूर्ण घाट रहे उस का सारा ।
आदि नाथ योगी महाराज, उन की पूजा होती आज ।
अनन्त नाम अनन्त हैं रूप, अनन्त गुण अनन्त स्वरूप ।
अनन्त शक्ति अनन्त पसार, अनन्त कृपा अनन्त भंडार ।
अनन्त गाथा अनन्त पुराण, अनन्त वर्णन अनन्त ज्ञान ।
अनन्त काल अनन्त स्थान, है शिव शंकर अतीव महान ।
अनन्त भक्त जो योगी सिद्ध, अनन्त ज्ञानी जो जग प्रसिद्ध ।
दो० शिव के नाम अनन्त हैं, शिव के रूप अनन्त ।
शिव के गुण अनन्त हैं, जानें योगी संत ॥ ११०६
कहीं वह भोले नाथ कहावे, कहीं वह ताण्डव नृत्य दिखावे ।
कहीं पै रुण्ड मुण्ड की माला, कहीं पै हस्ती चर्म की छाला ।
कहीं पै समाधी में आसीना, कहीं सती के संग वह लीना ।
कहीं पै काम देव भस्माये, पार्वती कहीं पाणि ग्राहे ।
कहीं पै गंगा शिर से आये, कहीं पै चन्द्र चमक दिखाये ।
कहीं पै एक मुख हो जाते, कहीं पै मुख बहुत दिखलाते ।

कहीं पै सर्प गले लिपटावें, कहीं पै हलाहल वे खावें ।
कहीं पै त्रिपुर दहन कर पाते, कहीं कैलाशवासि कहलाते ।
कहीं पै गौर वर्ण स्वरूप, कहीं पै महा भयंकर रूप ।
कहीं श्मशान के भीतर रहते, देवों का कहीं अर्चन वहते ।

दो० अनेक रूप शिव शंकर, एक न उन का रूप ।
लिंग रूप में जान लो, निराकार स्वरूप ॥ ११०७

लिंग रूप में शिव स्वरूप, निराकार का वह प्रतिरूप ।
निराकार का चिन्ह बनाया, इस कारण वह लिंग† कहाया ।
रूप उभय बिन आदि अन्त, अपाणिपाद वह इक भगवन्त ।
इसी रूप की पूजा मानों, शंकराचल मन्दिर में जानों ।
पूजा हेतु भक्त बहु आवें, शिव शंकर से आशिष पावें ।
एक पर्व का वर्णन आवे, श्रावण पूर्णिमा जो कहावे ।
रक्षा बन्धन उसी का नाम, आयें नारी नर शिव के धाम ।
इतने जन तब चल यहां आवें, तिल धरने की थां न पावें ।
शिव पर्वत जन कीर्ण देखें, जय शंकर नर नार उलेखें ।
शिव का ऐसा यहां प्रताप, विश्व में सूरज का जिमि ताप ।
एक स्थान हम और बतावें, इस से भी प्रसिद्ध दिखावें ।

दो० जग प्रसिद्ध वह धाम हैं, शिव का परम स्थान ।
'अमर नाथ' जिस को कहें, पण्डित साधु सुजान ॥ ११०८

सुन कर प्रभु जी की शुभ वाणी, गुरु माता जी अति प्रिय जानी ।
पूछ लिया उन "हे मम स्वामी, किधर धाम है वह शुभ नामी" ।

† लिंग-चिन्ह

प्रभु जी ने जिज्ञासा जान, तब उस धाम का कीन बखान ।
हे सुभद्रे अमर जो नाथ, भक्त जनों को करत सनाथ ।
देश विदेश के जन वहां जावें, हिमानी शिव के दर्शन पावें ।
यहां से पहल ग्राम हैं जाते, वहां से फिर हैं मार्ग पाते ।
तीन दिवस वहां से लग जावें, पैदल का ही मार्ग पावें ।
अति ऊँचा जानो वह धाम, जहां पर बस्ती का न नाम ।
वहां* तो वनस्पति भी नाहीं, रुण्ड मुण्ड ही पर्वत आहिं ।

दो० ऐसे शून्य प्रदेश में, शिव का जानों वास ।
शून्य ही शमशान[1] होत, बात समझ यह खास ॥ ११०ईक
वह तो ऐसा शून्य है, पशु पक्षी भी नाहीं ।
कोसों तक न देख सको, जीव जन्तु उस थाहीं । ११०ईख

उस धाम में बहु जन जावें, वर्ष में एक ही दर्शन पावें ।
शंकराचल से यात्रा चाले, अपने संग "शिव छड़ी"[2] संभाले ।
पूर्ण-मासी का दिन जो आवे, छड़ी पहुँच धाम में पावे ।
हिम का शिव दर्शन तव देवे, उस के बाद लोप वह होवे ।
सुन कर पति की अद्भुत वाणी, गुरु-माता जी जग कल्याणी ।
पूछन लागी मम प्रिय नाथ, श्री मुख से क्या कह दी गाथ ।

---

* केवल एक कबूतरों के जोड़े के अतिरिक्त वहां कोई पक्षी भी नहीं दृष्टिगोचर होता। भक्त कबूतरों के इस जोड़ों को शिव पावती का रूप मानते हैं।

1. यह बात कि शिव उस स्थान पर रहते हैं जहां मुर्दे फूंके जाते हैं ठीक नहीं। श्मशान का वास्तविक अर्थ शून्य है।
2. शिव छड़ी :—पवित्र दण्ड, जो यात्रा के आगे आगे ले जाया जाता है। इसे साधुओं की मण्डली ले चलती है और उसके पीछे हजारों की संख्या में यात्री चलते हैं।

मूरत लोप किमि हो जावे, ऐसा जग में दीख न पावे ।
भ्रांती मम मन में है आयी, स्पष्ट करें जो बात बतायी ।

दो० स्पष्ट करें मम नाथ जी, शिव शंकर की बात ।
इक दिन जिन का होत है, जनता को साक्षात ॥ १११०

प्रभु जी ने सुन कर वह वाणी, अति प्रेम से बात बखानी ।
हे सुभद्रे मैं बतलाऊँ, शिव शंकर की शक्ति जताऊँ ।
महा प्रभु जो शिव अवतारी, उन की महिमा परम न्यारी ।
अनेक रूप मैं उन के देखे, अमर नाथ कैलाश में पेखे ।
क्षण में रूप बदल था जाता, युवा बाल वा वृद्ध हो पाता ।
एक काल बहु रूप बनाते, कभी लुप्त भी वे हो जाते ।
योग शक्ति पूर्ण शिव मांहि, लेश न इस में संशय आंहि ।
उच्च हिमालय उनका वासा, अमरनाथ या हो कैलासा ।
दर्शन जिन को देना चाहें, वे ही उन के दर्शन पाहें ।
दास पै उन की प्रीती भारी, राखा पास था वेला सारी ।

दो० इस प्रीत में जान लो, परम रहस की बात ।
शिव का तो ना सकत कर, इस विध को साक्षात ॥ १११९

अमर नाथ की बात बताऊँ, शिव की महिमा को समझाऊँ ।
शिव-लिंग वहां हिम का जानो, दिन पंदरह में निर्मित मानो ।
चन्द्र कला संग बढ़ता जावे, पूर्ण-मासी को पूर्ण हो पावे ।
उस के बाद वह घटने लागे, पक्ष बाद वह नज़र न पागे ।
रक्षा बंधन को सब जावें, दर्शन शिव के पा कर आवें ।

वह यात्रा है बड़ी कठोर, चढ़ें सदैव आकाश की ओर ।
सर्दी वर्षा हिम का पात, कई जनों का करता घात ।
लौट वहां से जो जन आवें, बदला निज रंग शीत से पावें ।
दो० ऐसे दुर्गम धाम में, शंकर का है वास ।
भक्त दर्शन हित जायें, यात्रा जानो खास ॥ १११२

२५. क्षीर भवानी तीर्थ

पति अपने की सुन कर वाणी, गुरु माता जी बात बखानी ।
शिव का नाथ श्रवण कर वर्णन, मम माना मन अति आकर्षण ।
पर इक भाव मन मेरे आवे, समाधान जो आप से पावे ।
शिव शक्ति दो इक हैं रूपा, ये दोनों जिमि छाया धूपा ।
शिव की पूजा नाथ बतायी, शक्ति की न मैं सुन पायी ।
क्या ना शक्ति को यहां मानें, और न उस की पूजा जानें ।
सुन कर प्रभु जी दे मुस्काये, भाव अनूपम थे प्रकटाये ।
उत्तर में प्रभु जी फरमाये, सत्य बात तेरी मन भाये ।
शिव शक्ति दोनों इक रूपा, प्रतिमा प्रकट शक्ति है गूपा ।
दो० शिव की प्रतिमा में रहे, गुप्त शक्ति का रूप ।
इस रहस्य को जानते, जिन की भक्ति अनूप ॥ १११३

सुभद्रे तुम हो परम सुजानी, मैं भूला था बात बतानी ।
प्रसिद्ध तीर्थ है इक कल्याणी, जिस का नाम है क्षीर भवानी ।
शक्ति का वह तीर्थ मानो, पार्वती की प्रतिमा जानो ।
उस तीर्थ का अतीव प्रताप, हरता भक्तन का संताप ।

राजा रंक सभी वहां जायें, भवानी जी के दर्शन पायें ।
वह तीर्थ न यहां से दूर, टांगा गाड़ी जाये ज़रूर ।
लगता क्षीर भवानी मेला, उमड़ें भक्त हो रेला पेला ।
भक्त जनों के पूजें काम, "इच्छा कामीं"* ऐसा धाम ।

दो० क्षीर भवानी धाम में, धारे जा जो काम ।
नर अथवा वह नार हों, साधे काम तमाम ॥ १११४क

साधे काम तमाम वह, जिस मन होय प्रीत ।
नेम धारी नर नार जो, जान धाम की रीत ॥ १११४ख

२६. श्री प्रभु जी का बाग निशात में पदार्पण

इतना प्रभु जी जब बतलाया, डल का तीर निकट तब आया ।
भीड़ शिकारों की थी भारी, खड़ी थी तट पै मोटर लारी ।
मांझी ने निज मार्ग निकाला, कमलों मध्य नाव को घाला ।
ला कर खड़ा किया इक घाट, पास थी जिस के चलती बाट ।
मासड़ उतरा सब से आगे, शिकारे को हिचकोले लागे ।
थामा उसने उतर शिकारा, सब को तब उस घाट उतारा ।
घाट प्रभु जी पग जब धारे, बजे गगन में दिव्य नगारे ।
थे प्रकृति के स्वामी आये, बैठी थी जो आस लगाये ।

दो० बैठ प्रकृति ताकती, कब आयेंगे नाथ ।
मधुर रूप को देख कर, निज को करूँ सनाथ ॥ १११५

*इच्छाओं को पूरा करने वाला

अन्तर्यामी मन की जानें, प्रकृति के वे भाव पहचानें ।
प्रभु ने दृष्टि जभी दौड़ायी, कुदरत फूली नहीं समायी ।
निज कमलों को चरणी वारे, भौरों के जहां बजें नगारे ।
डल भी उछल उछल कर आवे, चरणों को वह छू कर जावे ।
पंखा मधुर समीर डोलावे, डोल चिनार चंवर कर पावे ।
नन्हें बालक दौड़े आते, धर पत्तों में फल वे लाते ।
प्रभु जी देख उन्हें मुस्काते, दोना ले पैसे दे पाते ।
बैठा बाग उड़ीक लगाये, अपने अंक में पुष्प थमाये ।
जाननहार जान यह पाये, बाग ओर उन चरण बढ़ाये ।

दो० पार सड़क के जाय कर, और गेट कर पार ।
निशात बाग के आंगन, दिया प्रभु पग धार ॥ १११६क
बैठा मग था ताकता, जब से बना निशात ।
प्रभु चरणों के दर्श कर, वारा निज उस गात ॥ १११६ख
सुन्दर सुन्दर गुल खिले, सभी प्रभु के हेत ।
वारे बाग निशात ने, माधुर फलों समेत ॥ १११६ग

देख गुलों ने प्रभु का रूप, प्रकट किया निज भाव अनूप ।
शीर्ष हिलावें प्रभु रिझावें, निज आसन किमि त्याग के जावें ।
देख प्रभु ने उन का नाज़, और समस्त बाग का साज ।
बीचों बीच नहर को देखा, मखमली से घास को पेखा ।
फुहारों की खिलवाड़ निहारी, देखी यास्मिन* की फुलवाड़ी ।

*एक पुष्प का नाम

भिन्न भिन्न से पक्षी देखे, पौधों पर चहचहाते पेखे ।
कुदरत रंग रलियां थी माने, प्रभु दर्शन की खुशियां माने ।
प्यारी कुदरत प्रभु सत्कारी, बैठे देख वे इक फुलवारी ।

दो० फुलवाड़ी में बैठ कर, गुरु – माता के साथ ।
सुनाई मुलखराज को, सकल पुरानी गाथ ॥ १११७क

आर्यों का प्रदेश वह, शिव का पावन धाम ।
किस विध पीछे आ गया, वहां धर्म इस्लाम ॥ १११७ख

परजा राजा की अनुयायी, पुरातन रीती चलती आयी ।
मुस्लिम राज इस्लाम फैलाया, मुस्लिम धर्म तभी यहां आया ।
सम्राट मुगल ने बाग बनाये, भव्य भवन भी संग सजाये ।
शाही चश्मा और निशात, शालीमार सुन्दर सौगात ।
ये सब पास पास ही जानों, मुगलों के करिश्मे मानों ।
शिव का भी यहां इक अस्थान, उस को सब से सुन्दर मान ।
हर का वन उस का है नाम, पुरातन हर का जो है धाम ।
हर का वहां इक सुन्दर ताल, शैल माला से घिरा विशाल ।

दो० शैल माला से है घिरा, सुन्दर हर का ताल ।
जहां पर विचरत हैं बहु, वन प्राणी सब काल ॥ १११८क

ऐसा वन तुम जान लो, "हर-वन" जो कहलाय ।
श्री नगर को पेय जल, इसी ताल से जाये ॥ १११८ख

इस विध प्रभु जी ने समझाया, शिव का गौरव सब बतलाया ।
शिवरात्री का पर्व जो भारी, यहां मनावे जनता सारी ।

उत्तम वे इस पर्व को मानें, शिव को महादेव सब जानें ।
सकल बाग तब प्रभु जी देखा, सभी दृश्य भी वहां का पेखा ।
मासड़ ने तब विनय उचारी, नाथ चलने की करें त्यारी ।
शालामार* भी देखन जायें, वहां से श्री नगर मुड़ पायें ।
इतने में मांझी भी आये, चलने की विनती कर पाये ।
शिकारे में तब प्रभु पधारे, और विराजे जन भी सारे ।

२७. शालामार में पदार्पण

दो० शालामार की ओर तब, मांझी नाव चलायी ।
कमल हस्त को मेल कर, दी निशात विदायी† ॥ १११९

शालामार मार की शाल, सुन्दर उपवन बड़ा विशाल ।
सदा बहारी वृक्ष वहां ऐसे, रहत बसंत सदा ही जैसे ।
डल के तट पर बाग सुहावे, गोद हिमालय की में भावे ।
हर वन के सानिध्य में जानों, काम पड़ोसी शिव का मानों ।
मित्रता फिर किमि हो भाई, पड़ोसी भिन्नमति दिखलाई ।
शिव तो योग युक्ति को मानें, काम रति को ही सन्माने ।
काम था निज शक्ति अभिमानी, योग की शक्ति न उस जानी ।
मूर्खता उस ने कर पायी, शिव पर भी निज शक्ति चलायी‡ ।

---

* शालामार का अर्थ है काम देव का घर ।

† कमल हो मानो हाथ थे । उन हाथों को जोड़ कर निशात ने प्रभु जी को भाव भीनी विदायी दी । सायंकाल हो चला था । अतः कमलों की पंखुड़ियां जुड़ रही थीं ।

‡ हर वन और शालामार में बहुत कम अन्तर है इसलिये यहां शिव और कामदेव को पड़ोसी बतलाया है । पड़ोसियों के यदि विचार न मिलते हों तो लड़ाई होने की संभावना रहती है अतः कामदेव और शिव की ठन गई । शिवजी द्वारा कामदेव का भस्म होना प्रसिद्ध है ।

दो० तीर लगाया काम ने, हो गर्व में चूर ।
शिव उघाड़ा नयन तब, कीना भस्म गरूर ॥ ११२०

काम के रहत सभी आधीन, शिव ने कीना उस को दीन ।
शिव त्रयंबक[1] जग विख्याता, उस दर चले न काम बसाता ।
दो नयन सब जनता पावे, तीजा शिव ही खोल दिखावे ।
शिव नेत्र सब तीजा जानें, भस्म काम उसी से मानें ।
शिव में योग की शक्ति भारी, बने तभी तो वे कामारी[2] ।
काम को वश योगी कर पावे, कुयोगी काम के वश हो जावे ।
ऊर्ध्वरेता[3] ही योगी जानो, शिव को उसी कोटि में मानो ।
ऊर्ध्वरेता जब योगी होवे, ईश कृपा भी संग संजोवे ।
वृत्तियों का भी करे निरोध, हो षट् चक्रों का उद्बोध ।
दिव्य शक्ति का हो प्रकाश, असुर भाव का सर्व विनाश ।
सद्गुरु कृपा देवे साथ, सिद्धी लागे तब ही हाथ ।

दो० सिद्धी लागे हाथ फिर, होवे पूर्ण ज्ञान ।
नेत्र तीजा खुल पड़े, होय काम का हान ॥ ११२१

शिकारा शालामार फिर आया, डल किनारे उसे ठहराया ।
उतरे नाथ सभी के संगा, देखन चाले बाग-अनंगा[4] ।
प्रभु घूम फिर बाग वह देखा, भस्मी भूत काम भी पेखा ।

1 तीन नेत्रों वाला ।
2 योग शक्ति से ही उन्होंने काम को परास्त किया ।
3 वीर्य को मस्तिष्क की ओर ले जाने वाला ।
4 कामदेव का बाग ।

विषयी जनों पर वह प्रहारी, जो जन मद्य मांस आहारी ।
अथवा जो नित करते ध्यान, विषयों को ही उत्तम मान ।
काम के वश में शीघ्र आवें, कामी नर वे सदा कहावें ।
विषय न जिन पर हैं प्रभावी, उन पर काम न होवे हावी ।
विषयन का न करें जो संग, प्रभावी उन पर नहीं अनंग ।
विषयों का जो करता ध्यान, होता संग फिर उन से आन ।
संग से उपजत काम बताया, गीता में क्रम यह फरमाया ।

दो० संग ध्यान से उपजे, संग से उपजे काम ।
क्रम इसी को जान कर, संग छोड़ भज राम ॥ ११२२क

शालामार को देख कर, लौट पड़े तब राम ।
चरण राम के निरख कर, धन्य भया था काम ॥ ११२२ख

शिकारा डल मध्य जब आया, वायु ने प्रकोप दिखाया ।
काली आंधी उमड़ के आयी, मांझी मन धुक धुकी थी छायी ।
ओर छोर न कहीं लखावे, तट को मीलों दूर वह पावे ।
नाव लघु सी उड़ उड़ जावे, मांझी लाखों यत्न लगावे ।
पहुँच पायें वे किसी किनारे, यत्न करे मन आस यह धारे ।
चले न उस की पर कुछ पेश, घूमे नाव न बढ़ती लेश ।
उछल उछल जल नाव में आवे, न जाने कब उसे डुबावे ।
भीग गये थे वस्त्र सारे, सभी मनावें "लगें किनारे" ।
मासी मासड़ भये हैरान, कहें "बचाओ हे भगवान !
क्षमा करो अपराध हमारे, रक्षक अब बस चरण तुम्हारे ।

भक्तों के तुम सदा सहायी, द्रुपद सुता की लाज बचायी"
गुरु माता जी कहें "जगदीश, किस विपदा में डाला ईश
दो० इस विपदा में देख कर, हमें पड़ा जगदीश।
दया करो तुम दया निधि, आओ बचाओ ईश" ॥ ११२३

भय से भीत सभी को देखा, मांझी को भी हारे पेखा
आंधी अति भयंकर पायी, देख उफान झील में आयी
लहरों का उत्पात निहारा, डोलत देख शिकारा सारा
दृश्य प्रलय का देख के भारी, दया दयानिधि मन में धारी
दो मिन्ट प्रभु ध्यान लगाया, महाप्रभु का रूप ध्याया
दृष्टि एक आकाश पै डाली, निज शक्ति से होनी टाली
आंधी का प्रभु वेग थमाया, झीना झीना बादल छाया
पुष्प वृष्टि जिमि देवन कीनी, रिम झिम रिम झिम वृष्टि चीनी

दो० दिव्य वर्षा के मध्य में, तट पै पहुँचे नाथ।
वरुण क्षमा था मांगता, बांधे निज वह हाथ ॥ ११२४

हे सर्वेश, दोष यह भारी, भया है मुझ से हे असुरारी
आप के भक्तों को सुखधाम, दुखद भया है मेरा काम
क्षमा करें अपराध यह मेरा, मैं सेवक हूँ ईश्वर तेरा
पश्चाताप में वरुण को देख, नाथ ने उस को कहा विशेष
"तुम हो देव महा बलशाली, सकल जगत की सुधी संभाली
प्राणी तुम से जीवन पायें, दोषी पाश में बांधे जायें
राखो पर यह सदैव ध्यान, महाप्रभु का धरे जो ध्यान

उस नर को न कभी सताना, अपना पाश न वहां चलाना ।
महाप्रभु का भक्त उपासक, उस का है कोई देव न शासक ।

दो० महाप्रभु की महानता, है यह न नई बात ।
सृष्टि के है आदि से, देवों को साक्षात" ॥ ११२५

प्रभु जी शासन इस विध दीना, स्वीकार वरुण देव ने कीना ।
प्रभु चरणों में कर प्रणाम, वरुण गया तब अपने धाम ।
टांगा मासड़ जी इक लाये, लौट नाथ जी घर को आये ।
मुलखराज सेवा में लागा, प्रभु सेवा का वह अनुरागा ।
बीती रात भोर हो पाया, मुलख प्रभु को शीश झुकाया ।
मुलखराज की मस्ती न्यारी, रात दिवस की नाम खुमारी ।
बैठा प्रभु चरणी चित्त लाये, मन में थे कुछ भाव समाये ।
गुरु माता से कहे थे सारे, माता ने दे तर्क निवारे ।
चाहे प्रभु को करे अरदास, हो न पर उस को तब साहस ।

२८. श्री मुलखराज जी की धर्मपत्नी का बैकुण्ठ गमन

दो० मन की मन में धार कर, था मुलख चित्त लायी ।
मासड़ जी तब आय कर, सूचन दुःखद सुनायी ॥ ११२६

शीघ्र चलता मासड़ आया, पत्र था इक हाथ में लाया ।
कहा प्रभु से दुःख इक भारी, मुलख की पत्नी स्वर्ग सिधारी ।
यह है तार अभी जो आयी, दुःख भरी यह सूचन लायी ।
भये हैं शोक मग्न हम सारे, अल्प आयु वे स्वर्ग सिधारे ।

जाननहार प्रभु सब जानें, मर्यादा को फिर भी मानें।
दुःखी भये प्रभु सुन कर भारी, मुलख राज को गिरा उचारी।
चिरञ्जीव अब तुम घर जाओ, उचित कर्म सभी कर पाओ।
अति दुःखी जो चित्त हमारा, मात पिता को कहना सारा।
हम भी लौट शीघ्र ही जावें, निज अफसोस जाय प्रकटावें।

दो० तुमरे संग न जा सकें, जावो तुम तो आज।
शोक मग्न परिवार को, धैर्य बधावो राज† ॥ ११२७

माता जी भी दुःख प्रकटाया, फिर मुलख को धैर्य बंधाया।
जगत की पुत्र ऐसी रीती, असार जीवन की न प्रतीती।
बुद बुद रूप यह है संसारा, निकले वायु मनुख* निसारा।
धीरज धारण कर तू रहना, आयी विपद को धैर्य से सहना।
कर्म पूर्व के न कोई जाने, लेन देन के रिश्ते माने।
स्थिर नहीं है जग में कुछ भी, माना नाशवान है सब ही।
जग सुपना है इक बतलाया, झूठा सारा साज फैलाया।
मोह ममता का जगत पसारा, छूटे वह जिसे नाम अधारा।

दो० ममता झूठी जान कर, राखो मन में धीर।
गुरु कृपा से ऊबरें, नहीं पड़ें भव भीर ॥ ११२८

इस विध गुरु माता समझाया, मन मुलख को धैर्य बंधाया।
मुलख के मन पर मोह लखाना, सूरज में है तम को पाना।
जहां पर प्रभु चरणों का वास, सद्गुरु का जहां दिव्य प्रकास।

† श्री प्रभु जी श्री मुलखराज को 'राजा जी' कह कर बुलाते थे।
* मनुष्य।

जहां पर निराकार की जोत, जहां पर कोट सूरज उद्योत ।
जहां पर द्वैत का न प्रवेश, माया का जहां मिले न लेश ।
जहां पर ज्ञान अखण्ड लखावे, जहां अज्ञान न टिकने पावे ।
जहां अहंकार का न है नाम, जो चित्त प्रभु का है दृढ़ धाम ।
जहां पर जग के रिश्ते नाते, भिन्न भिन्न आत्म रूप लखाते ।

दो० चित्त उसी में मानना, ममता का कुछ लेश ।
यह न संगत बात है, समझें भक्त हमेश ॥ ११२९

मासी मासड़ दोनों बैठे, गहरे शोक में वे थे पैठे ।
समाचार क्या वज्रपाता, जीवन सुख पर घोर आघाता ।
कहा मासी "हे प्राणाधार, कौन विधाता अत्याचार ।
निज मन का किमि शोक बखानूँ, विधुना का अन्याय यह जानूँ ।
मुलखराज न इस दुःख योग, पुत्र वधू थी बहुत सुयोग ।
घर की थी वह शान निराली, सकल गृहस्थी उस संभाली ।
बहन मेरी को सुख था भारी, उस की सेवा करती सारी ।
नन्हीं कन्यां दो बेचारी, त्याग गई अब है लाचारी ।
विद्या वा प्रकाश बेचारी, इनकी जिंदगी होय खवारी ।

दो० नन्हीं सी खुद बालिका, नन्हें उस के बाल ।
छोड़ गई वह बिलखते, कौन करे संभाल ॥ ११३०क
कौन करे संभाल अब, लुट गये हम नाथ ।
रोने लगी यों कह कर, पटक माथ पर हाथ ॥ ११३०ख

प्रभु जी धीरज तब बंधवाया, उचित कर्म उन्हें जतलाया ।

मुलखराज को करो त्यार, देर न लावो किसी प्रकार ।
समस्त कर्म जाय कर पावे, मात पिता को धैर्य बंधावे ।
मात पिता दुःखी जो भारे, प्रतीक्षा इस की में हैं सारे ।
उठो मुलख अब होवो त्यार, शीघ्र चलो प्रभु को चित्त धार ।
कहा मुलख तब अपन विचार, "आज्ञा लूँ मैं निज सिर धार ।
बात मेरी प्रभु यदि लो मान, अपने चरणों का दो दान ।
इन चरणों से नहीं बिछोड़ो, सदा सेव में सेवक जोड़ो ।

दो० तव चरण हैं नाथ जी, सर्व सुखों के मूल ।
जग के नाते त्याग दूँ, जगत दुःखों का मूल ॥ ११३१क

क्यों हो मुझे बिछोड़ते, इन चरणों से नाथ ।
जो होना सो हो गया, घर वालों के साथ ॥ ११३१ख

मेरे तो प्रभु आप हैं, मात पिता वा मीत ।
छोड़ आप के चरण को, करूँ मैं किस से प्रीत ॥ ११३१ग

मैं अब जा के क्या कर लूंगा, बिछुड़ आप से पीड़ सहूँगा" ।
सुन प्रभु जी मुलख की युक्ती, बोले नाथ अमृत सम सुक्ती ।
"राजा जी प्रभु तेरे संगा, योगी तो प्रभु का ही अंगा ।
बिछुड़न का न भाव यह लावो, तुम तो सदा संग रह पावो ।
वस्ती में है वास हमारा, घर गृहस्थी सकल पसारा ।
जग मर्यादा सकल निभानी, है यह धर्म की बड़ी निशानी ।
कर्म जो तेरे लेखे आये, अन्य न कोई वह कर पाये ।
त्याग कर्म को जो नर जाये, अपयश जग में वह नर पाये ।

भले पुरुष का अपयश पाना, मृत्यु से भी हीन है माना ।
दो० धर्म समझ कर आपना, कर्म करे नर धीर ।
जग मर्यादा पालनी, जब तक रहे शरीर" ॥ ११३२क
गुरु आज्ञा की पालना, मुख्य मुलख का काम ।
चरण प्रभु के स्पर्श कर, चला त्याग वह धाम ॥ ११३२ख
गुरु माता की लीन आशीष, मासी ने भी दीन आशीष ।
नेत्र उन के थे भर आये, विदा शोक में थे कर पाये ।
मासड़ बस चढ़ाने आया, उस का मन भी था भर्राया ।
बस में मुलखराज बिठलाये, नयन मासड़ के छम छमाये ।
पीड़ से जब हृदय पिस जाये, नयनों के मग नीर बह आये ।
ऐसा विरला को जग मांहि, भव की पीड़ न जिसे सतांहि ।
मुलखराज इक प्रभु का प्यारा, जल पंकज सम जग से न्यारा ।
प्रभु चरणों से चित्त लिपटाय, बैठा था वह बस में आय ।

२९. उपदेश—मृत्यु का रहस्य

दो० बस में बैठा था मुलख, प्रभु चरणी चित्त लाय ।
बस वहां से चल पड़ी, मासड़ मन दुःख पाय ॥ ११३३
मासड़ लौट प्रभु ढिंग आया, शोक मग्न बैठ वहां पाया ।
प्रभु जी ने उस का चित्त जान, देन लगे उस को कुछ ज्ञान ।
प्रश्न किया मासड़ ने प्रभु से, "नाथ बना है जग यह कब से ।
किस का है यह सकल पसारा, मृत्यु का क्या रहस्य है सारा ।

वह ज्ञान मैं आप से पाऊँ, जिस से मन की भ्रांति मिटाऊँ"।
सुन कर प्रभु जी ने बतलाया, गूढ़ ज्ञान मुख से फरमाया।
चिरञ्जीव वह शाश्वत वाणी, ऋषियों ने जो पूर्व बखानी।
वह आज मैं तुम्हें सुनाऊँ, तेरे मन की भ्रांति मिटाऊँ।

दो० तेरे मन की भ्रांति यह, मिट पाय पा ज्ञान।
दृढ़ निश्चय कर जानिये, ईश्वर रचा जहान ॥ ११३४

ईश्वर की यह रचन महान, जो माने सोई पावे ज्ञान।
जो माने वह ज्ञान को पावे, बिन माने न भ्रांति जावे।
वृक्ष जगत का ईश लगाया, ऊपर जड़ नीचे फैलाया।
शाखा फैलीं पीछे आगे, विषयों के हैं पत्ते लागे।
तीन गुणों का रूप जो सारा, इस से बढ़ता बट यह न्यारा।
इस की छाया बहुत घनेरी, इस के नीचे रात अंधेरी।
प्रकाश को पाना जो नर चाहे, काटन हेत वह शस्त्र लाये।
असंग का शस्त्र दृढ़ जो पावे, तभी वृक्ष को काट दिखावे।
वृक्ष काटे फिर जड़ को देखे, रोपन वाले को तब पेखे।

दो० रोपन वाले ईश को, जो नर देखन चाहे।
असंग शस्त्र के ग्रहणहित, योग की शिक्षा पाये ॥ ११३५

योग से पावे परम स्थान, वह पद जो है श्रेष्ठ महान।
उस पद का हो वह अधिकारी, संग वा मोह से जो अविकारी।
होवे काम से वह निवृत्त, अध्यात्म बसे जिस के नित्त चित्त।
द्वन्द्वों पै जो हो बलकारी, अव्यय पद का वह अधिकारी।

ईश्वर का पद वह तुम जानो, जहां पहुँच नर मुक्त ही मानो ।
जहां पर अद्भुत दिव्य प्रकाश, बिन सूरज वा चांद आकाश ।
अब तुम जानो जग की रचना, जैसे पूछा तुम निज बचना ।
ईश्वर का इक अंश ही आवे, देह धारे जग काज चलावे ।
ईश के अंश अनेकों जानो, असंख्य असंख्य असंख्य पहचानो ।

दो० असंख्य ईश के अंश हैं, नाम धरावें जीव ।
तर्क से वह तो बाहिरा, जग की जो है नीव ॥ ११३६क
जीव सनातन अंश ही, ईश्वर का लो जान ।
प्रकृति में से खींचता, अपना वास स्थान ॥ ११३६ख
मन वा इन्द्री पांच जो, जीव का यही स्थान ।
इन को निज संग ले चले, निकलें जभी प्राण ॥ ११३६ग

जिस देह में जीव है जाता, अथवा जहां से वह है आता ।
इन को सदा संग वह राखे, इस ज्ञान को गीता भाखे ।
इन संग रह करता उपभोग, ज्ञान पाये नर कर के योग ।
ज्ञानी योगी निज को देखे, मूढ़ मति किमि लाये लेखे ।
चिरञ्जीव तुम लो यह जान, तीन पदारथ लो पहचान ।
प्रकृति पुरुष और भगवान, इन्हीं की रचना सकल जहान ।
अनादि अनन्त यह सृष्टि जानो, मन में लेश न संशय आनो ।
जो सवाल था तुम ने कीना, संक्षेप से उत्तर मैंने दीना ।
क्या मिटी तव चित्त की भ्रांति, क्या मिली है मन को शांति ।
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, भ्रांति रहे न मन में लेश ।

दो० प्रभु जी का उपदेश सुन, मासड़ शीश झुकाय ।
कहन लगा "हे नाथ जी, सभी समझ में आय ॥ ११३७
आप की कृपा से हे नाथ, लगी है शांति मेरे हाथ" ।

३०. श्री मुलखराज जी की धर्मपत्नी का दिव्य रूप में प्रकट होना

दूजा दिन जब ढलने आया, रावलपिंडी मुलख आ पाया ।
वहां पै भया गाड़ी असवार, आ पहुँचा फिर अपने द्वार ।
देख मुलख को घर के लोग, प्रकट करें निज मन का सोग ।
मोहन कौर का करें बखान, कथें सभी उस का गुण गान ।
उस की सेवा सभी सराहवें, गिन गिन कर सब कर्म बतावें ।
मुलखराज सब सुनता जाये, सेवा उस की चित्त में लाये ।
पति परायण वह थी नारी, वारी पति पर जिन्दड़ी सारी ।
खुशी खुशी था पति भिजवाया, गुरु सेवा में उसे लगाया ।
उस सेवा का क्या फल पाया, मुलखराज के मन यह आया ।
विदायी जब मुलख को दीनी, जो बात थी उस तब कीनी ।
रह रह कर ही याद वह आवे, मन मुलख का भर भर जावे ।
"प्राणनाथ मम गुरु संग जावें, गुरु की सेव में चित्त लगावें" ।

दो० इन वचनों को स्मरण कर, मोहन-पति जो धीर ।
मुलखराज के नयन से, भी उमड़ा इक नीर ॥ ११३८क
मुलखराज का मन भरा, ईश माया बलवान ।
राजयोगी भी न बचा, लेखे किस जहान ॥ ११३८ख

पण्डित जी तब चल कर आये, कुछ कर्म उन आ करवाये ।
मुलखराज सन्मुख बिठलाया, तर्पण हित उस को कह पाया ।
मुलखराज का मन डोलाया, आंख भर्राई आंसू आया ।
जय जय कार पड़ी तब कर्णी, देखा दृश्य जो जाय न वर्णी ।
उतरा था इक दिव्य सिंहासन, मोहन कौर बैठी ला आसन ।
जगमग जगमग उस का रूपा, हर एक वस्तु परम अनूपा ।
दिव्य परियां करती थीं सेव, कितने ही थे सन्मुख देव ।
आसन था वह उतरा जिस मग, कोटी सूरज सम वह जगमग ।
जहां तक ऊपर दृष्टि जाती, दिव्य छटा ही थी दिख पाती ।

दो० दिव्य मार्ग को देख कर, भया मुलख मन चाव ।
मोहन कौर सन्मुख खड़ी, प्रकटाया निज भाव ॥ ११३६

"पूज्य नाथ मन कौन उदास, ठेस लगी मम चित्त यह खास ।
दिव्य लोक से नीचे आऊँ, कुशल क्षेम अपना कह पाऊँ ।
आप की भक्ति का फल पाया, नाथ मुझे बैकुण्ठ भिजाया ।
स्वामी मुझ को जानो सुख में, चित्त न अपना लावो दुःख में ।
आंसू एक तेरा खिंच लाया, आसन मेरा जिस डोलाया ।
नाथ न करिये मन अधीर, दासी के मन होती पीर ।
यदि चाहें मेरा कल्याण, दीजो आशीष का इक दान" ।
यों कह चरणी शीश झुकाया, आसन फिर वह गगन सिधाया ।
"जय मुलख जय जय प्रभु राम", दिव्य ध्वनि तब भयी अभिराम ।
जय जय जय जय जय प्रभु राम, मुलख के मन भी गूंजा नाम ।

जय जय जय जय जय रामलाल, मुलख उचारा भया निहाल ।
पण्डित तर्पण को कह पावे, मुलख हाथ न लेश हिलावे ।

दो० देख मुलख के शोक को, पण्डित देवे धीर ।
लाला जी अब संभलिये, करो न चित्त अधीर ॥ ११४०क

पण्डित को क्या ज्ञान था, दिखाया प्रभु जो आज ।
मुलखराज करने लगा, व्यवहारिक तव काज ॥ ११४०ख

कीने मुलख ने सारे कर्म, जान लोक का यह भी धर्म ।
उधर प्रभु जी जानन हार, वेख रहे निज शिष्य की कार ।
उन की शक्ति के फल रूप, मोहन कौर भयी दिव स्वरूप ।
प्रभु जी मासड़ को फरमायें, लौटन का विचार बतायें ।
हम ने भी संग आप के जाना, जा कर शोक अपना प्रकटाना ।
मासी ने निज भाव बताया, गुरु माता के मन को भाया ।
चलने की तब भयी तैयारी, जा पकड़ी फिर प्रातः लारी ।
अमृतसर में नाथ पधारे, मिल आये तब भक्त जो सारे ।
मुलखराज भी चरणि आया, सेव भक्ति में चित्त लगाया ।

दो० मुलखराज की सेव अब, धारा रूप विशेष ।
अलौकिक वह प्रसंग है, किस विध करें उल्लेख ॥ ११४१

३१. योग साधन आश्रम की स्थापना

अमृतसर की जनता सारी, प्रभु जी की प्रशंसक भारी ।
ईश्वर सम कोई उन को मानें, कोई गुरु के रूप पहचानें ।
कोई था योगी माने सिद्ध, ज्योतिषी माने कोई प्रसिद्ध ।

माने कोई पण्डित विद्वान, माने कोई उन को भगवान ।
कोई वैद्य के रूप में जानें, कोई महापुरुष कर मानें ।
जितने जन उतने थे भाव, प्रभु के प्रति सब का सद्भाव ।
इतने जन दर्शन को आवें, घर की बैठक नाहिं समावें ।
कोठी बाहर प्रभु ले लीनी, भक्तों को सुविधा कर दीनी ।

दो० भक्त कहें फिर नाथ से, प्रभु आश्रम बनवांय ।
इन मकानों में प्रभु, आप न हमें सुहांय ॥ ११४२क

भक्त कहें सब नाथ से, आश्रम बने जरूर ।
उस आश्रम का नाम जो, नाथ करें मंजूर । ११४२ख

प्रभु जी ने इक दिन फरमाया, "आप नित्य जो है कह पाया ।
तुम्हीं सुझावो हम को भाई, आश्रम बनेगा जो सुखदाई ।
उस का नाम क्या तुम चाहते, जो जो नाम स्मृति में आते ।
बताओ स्वयं आप ही हम को, हम चुनेंगे उन में इक को ।
सोचन सभी भक्त तब लागे, अपनी अपनी सोच में पागे ।
कई नाम उन लीने मुख से, बात भी करते थे इक इक से ।
भक्त तो निर्णय कर न पाये, मुख से नाथ सोच फरमाये ।
तो लो नाम हम से सुन पाओ, "योग साधन आश्रम" बनवाओ ।
ज्यों ही नाम यह नाथ उचारा, दिव्य पुष्पों की भयी बोछारा ।
जगत नियन्ता जो अवतारी, करें स्थापित संस्था भारी ।
जग में योग का हो प्रचार, रक्षा पावे सब संसार ।
कलियुग का जब पूरण कोप, यहीं से होगा पाप का लोप ।

दो० पाप लोप के कारणे, और धर्म के हेत ।
स्थापित प्रभु की संस्था, साधन योग समेत ॥ ११४३

तब सब लोगों के मुख वचना, धर्म हेतु प्रभु की यह रचना ।
धर्म स्थापन हित प्रभु आवें, दिव्य कर्म ही वे कर पावें ।
युग युग में प्रभु ले अवतार, योग का ही आ करें उद्धार ।
राम रूप जब ईश्वर आये, 'योग-वसिष्ठ' संग वे लाये ।
कृष्ण रूप में जभी पधारे, योगेश्वर के नाम को धारे ।
कर्म योग की 'गीता' लीनी, जग विख्यात वही कर दीनी ।
रामलाल के रूप अवतारे, योग के साधन अब उन धारे ।
योग साधन आश्रम बनवाया, धर्म रूप योग फैलाया ।

दो० धर्म रूप ही योग है, समझें समझन हार ।
योग हीन जो कर्म है, तहं न धर्म का सार ॥ ११४४

भक्त आये फिर प्रभु के पास, कहें नाथ यह नाम है खास ।
कर कृपा जो आप बताया, जन गण ने है इसे सराहया ।
योगी वन से योग हैं लाये, आश्रम में अब आन सिखाये ।
इस आश्रम की चर्चा भारी, सकल नगर में है विस्तारी ।
नाथ एक विनय कर पावें, इस आश्रम के नियम बतावें ।
साधन हित जो शरणी आवें, किन नियमों को पाल दिखावें ।
हम तो प्रभु कुछ कह न जानें, इस विषय में आप बखानें ।
जनता में तब होय प्रचार करें मुद्रित जो हो स्वीकार ।

दो० आप जो नियम बनायें, धरें भक्त वे माथ ।
जन गण को सब विदित हों, पाल दिखावें नाथ ॥ ११४५

प्रभु जी के मन भायी बात, कथा नाथ जी सुन लो तात ।
हमीं बतावें तुम को भाई, नियम जो आश्रम के सुखदाई ।
जिन नियमों को पालें साधक, योगी हों जिन के आराधक ।
हम वे नियम तुम्हें बतलायें, आप उन्हें लिपिबद्ध कर पायें ।
जो नियम हम अब लिखवावें, उन में न परिवर्तन लावें ।
सदा रहें सन्मुख ही सोई, कभी न बदले उन को कोई ।
मन-मानी जो करेगा उन से, भ्रष्ट भयेगा मग से तब से ।
इन नियमों का पालनहार, जग में पायेगा वह सत्कार ।

दो० योग साधन यह आश्रम, और जो उस के नेम ।
प्रभु की वस्तु जानिये, भक्त करेंगे प्रेम ॥ ११४६क
भक्त करेंगे प्रेम जो, मिलेगा उन को योग ।
ध्यान समाधी भी मिले, और मिटें सब रोग ॥ ११४६ख

प्रभु जी ने सब नेम लिखाये, भक्तों ने लिपि बद्ध कर पाये ।
मिलते हैं वे छपे छपाये, पढ़ सुन कर नर शिक्षा पाये ।
उन का वर्णन हम कर पावें, प्रभु चरणों में प्रीत बढ़ावें ।
प्रथम उद्देश्य प्रभु लिखवाये, आश्रम के जो हैं चलि आये ।

३२. योग-साधन आश्रम के उद्देश्य

प्रथम उद्देश्य–योग की शिक्षा

सत्पात्र को योग सिखाना, उन के तन को लाभ पहुँचाना ।
मन एकाग्र करने वारे, योग के हैं जो साधन सारे ।
उन सभी को है सिखलाना, मानवता के ध्येय को पाना ।

द्वितीय उद्देश्य–चिकित्सा

आस्तिक नर जो चल कर आवें, चाहें भयंकर रोगी आवें।
साध्य असाध्य रोग में प्राणी, योग चिकित्सा है कर पानी।
दो० देह के मन के रोग जो, करने हैं सब ठीक।
श्रद्धा जिस के मन बसे, प्रभु करें निर्भीक॥ ११४७

तृतीय उद्देश्य–प्रकृति पर विजय

प्रकृति का जो दास प्राणी, कामी क्रोधी वा अभिमानी।
लोलुपता के वश रह पावे, शोक में अपना काल बितावे।
उस का जब चल कर हो आना, विषय वशता से मुक्त कराना।

चतुर्थ उद्देश्य–तेजस्वी सन्तान

तेजोमय बलवान संतान, पाना जो भी चाहे पुमान।
साधन उस को वही करावें, उच्च रुहें आकृष्ट हो आवें।

पांचवां उद्देश्य–गूढ़ ज्ञान को योग शक्ति से अनुभव कराना

ध्यान समाधी का अभ्यास, मन एकाग्र होय जो खास।
लोक लोकान्तर का सब ज्ञान, गुप्त विद्या जो गूढ़ महान।
सीख आचार्य से सब पावें, कभी उद्देश्य न भूल यह जावें।
दो० सृष्टि के जो भेद हैं, और गुप्त विज्ञान।
योगी योग से जानकर, बन पायें विद्वान॥ ११४८क
ज्ञान और विज्ञान का, साक्षी योगी होय।
आश्रम ऐसा यह बने, निराश न जाय कोय॥ ११४८ख

छटा उद्देश्य–चिकित्सक वा प्रचारक बनाना

आये योग का परम प्यारा, संस्कारी जो जग से न्यारा।

उस को परम अधिकारी मान, पूर्ण योग का देना ज्ञान ।
योग चिकित्सक वह बन पावे, देश देशान्तर योग सिखावे ।

सप्तम उद्देश्य–सादा जीवन व दीर्घ आयु

खान पान के नेम सुधारो, देह के इस विध रोग निवारो ।
कच्चा आहार वनस्पति खाना, दीरघ आयु को है पाना ।
जीवनतत के जो हैं साधन, कच्चाहार करावें पाचन ।
जनता को वे सभी सिखाना, इस उद्देश्य को भूल न जाना ।

अष्टम उद्देश्य–अधिकारी पात्र कौन ?

योग के जानो सब अधिकारी, बाल युवा और नर वा नारी ।
वृद्ध से वृद्ध भी क्यों न होवे, साधन योग से सुख संजोवे ।
जिज्ञासा से ही पात्र जानो, और सुपात्र उस को मानो ।
सुपात्र को ही योग सिखाना, बिन जिज्ञासु नहीं अपनाना ।

दो० आश्रम के उद्देश्य जो, प्रभु जी किये बखान ।
भक्तों ने सब लिख लिये, होयें सदा प्रवान ॥ ११४६क

३३. योग साधन–आश्रम के नियम

आश्रम के फिर नेम जो, प्रभु जी ने लिखवाये ।
सर्व प्रथम सदस्यों के, नियम उन बतलाये ॥ ११४६ख

तीन प्रकार के सदस्य

आश्रम के सदस्य जो, त्रय हो उन के भाग ।
साधारण और अंतरंग, संरक्षक तीजा भाग ॥ ११४६ग

साधारण सदस्य

सदस्य साधारण वे कहावें, आश्रम को आदर्श जो पावें ।
हर इक तरह से बनें सहायी, तन मन धन से कर सेवकायी ।

अंतरंग सदस्य

अंतरंग मैंबर उन को जानो, दीक्षित हो जो जन पहचानो ।
ध्यान भजन से काल बितावें, सेवा भक्ति में जुट जावें ।

संरक्षक सदस्य

संरक्षक मैंबर वे हों भाई, जिन की सेवा बने स्थायी ।
मैंम्बरों का यह त्रय प्रकार, स्पष्ट किया प्रभु इस का सार ।

सदस्यों के अधिकार

अधिकारों की फिर चर्चा कीनी, सभी सदस्यों की जो चीनी ।

साधारण सदस्यों का अधिकार

सदस्य साधारण का अधिकार, प्रस्तावित करे वह निज वीचार ।
कमेटी जब करे वह पास, उस पर अमल होय तब खास ।

अंतरंग सदस्यों का अधिकार

अंतरंग मैम्बर हो जो कारी, बन सके वह पदाधिकारी ।
पारित करे मिल सब के संग, कमेटी में जो आय प्रसंग ।

संरक्षक सदस्यों का अधिकार

संरक्षक मैम्बर का अधिकार, करे सम्पत्ति विषय वीचार ।
कर्मचारियों का राखे ध्यान, संस्था का रहे पूर्ण ज्ञान ।

दो० सदस्यों के अधिकार ये, हैं आचार्य अधीन ।
अनाचारी सदस्य जो, सदसता से हो हीन ॥ ११५०

इस विध प्रभु जी ने लिखवाया, सदस्यों का अधिकार बताया ।
जो हो योगाचार्य प्रवीन, सदस्य सभी हों उसी अधीन ।

आचार्य के नियम वा अधिकार

आश्रम का जो होत आचार्य, नियुक्त करे उसे प्रधानाचार्य ।
आचार्य के तब कर्म बताये, प्रभु जी ने अधिकार लिखाये ।
आश्रम का जो हो आचार्य, स्वतन्त्रता से करे वह कार्य ।
प्रधानाचार्य के रह अधीन, कर्म करे वह सभी अदीन ।
दीक्षा का न उसे अधिकार, प्रधानाचार्य करे यह कार ।
आश्रम में ही रोगी आवें, साधन को वे वहां कर पावें ।
ऐसा नियम न प्रभु बनावें, रोगी के जो घर में जावें, ।
इक बात प्रभु और बतायी, देवी आश्रम की जतलायी ।
देवी आश्रम होयें अलग, पुरुष पावें नहीं उन में पग ।
नव वर्ष का बालक आवे, वह भी जाना वहां न पावे ।

दो० पारब्रह्म भगवान जी, राखें इस का ध्यान ।
जग मर्यादा में रहे, करे नीति का मान ॥ ११५१

आश्रम की कमेटी

इक कमेटी आचार्य बनावें, कारज में सहायता पावें ।
आश्रम का वह करे संचालन, और समस्त नियमों का पालन ।
आश्रम का वह खर्च चलावे, आय व्यय का व्योर बनावे ।

केन्द्र से भी राखे सम्बन्ध, मासिक भेजे इक निबंध ।
दशमांश जो आय का होवे, केन्द्र उस का भागी होवे ।

प्रधानाचार्य के अधिकार

प्रधानाचार्य मुख्यधिष्ठाता, संचालन का वह सर्व विधाता ।
दीक्षा का उस को अधिकार, सभी आचार्य करें सत्कार ।
वही नियुक्त करे आचार्य, निरीक्षण का भी करे वह कार्य ।
ऐसे प्रभु जी नेम बताये, भक्तों ने जो सब लिखपाये ।

दो० इन नियमों के साथ ही, फिर प्रभु लिखवायी ।
साधकों की नियमावली, जनता को सुखदायी ॥ ११५२

साधकों की नियमावली

सर्व प्रथम यह प्रभु लिखायें, साधक जो आश्रम में आयें ।
योग बिन फीस सिखाया जाये, शुल्क न कुछ भी पाया जाये ।
ऋषियों की यह विद्या भाई, इस से करे न कोई कमाई ।
फिर प्रभु जी स्वयं लिखायें, देवियों को न नर सिखलायें ।
पुरुष ही पुरुषों को करवायें, स्त्रियां स्त्रियों को सिखलायें ।
साधकों के फिर भेद बताये, तीन श्रेणी में बंटवाये ।
प्रथम जो आश्रम में रह पावें, स्वयं करें ओर संग सिखावें ।
दूसरे ऐसे साधक जानो, समय मिले तो आया मानो ।
अपने देश जब वे रह पायें, जनता को साधन करवायें ।
तीसरे वे लोग हैं भाई, स्वयं करें आ योग कमाई ।
साधक जो भी बाहर से आवे, अपना खर्च स्वयं कर पावे ।

दो० खर्च साधक का आपना, फीस नहीं है कोई ।
श्रद्धा भक्ति से करे, निपुण होयगा सोई ॥ ११५३

रोगी रोग ग्रस्त हो आवे, और सफा योग से चाहवे ।
एक मास से कम न आवे, अपना खर्च संग में लावे ।
मन की शांति को जो आवे, करे तिमि जिमि आज्ञा पावे ।
साधक को यह आज्ञा होई, मनमानी लेश करे न कोई ।
दिनचर्या वा रात्रीचर्या, पा करे आदेश गुरुवर्या ।
चिकित्सा आ कर जो करवावे, डाक्टर वैद्य की दवा न खावे ।
साधन करे न देखा देखी, इमि आशंका भय की लेखी ।
ऐसी भूल करे नर नार; उस का स्वयं वह भोगनहार ।
अनुशासन का वह होवे भागी, सचेत रहे साधक अनुरागी ।
बीस वर्ष से कम जो बालक, संग में लाये वह निजपालक ।
अथवा सम्मति ला दिखलाये, आश्रम में प्रवेश वह पाये ।
देवी संग संबन्धी आये, वृद्ध संरक्षक साथ में लाये ।

दो० साधन और उपासना, आचार्य बताय जो ।
नित्य नियम से जन करे, लाभ पायेगा सो ॥ ११५४क

मनमानी जो साधना, मनमाने जो कर्म ।
उन का यहां निषेध है, सब जानें यह मर्म ॥ ११५४ख

इस विध प्रभु जी ने बतलाये, उद्देश्य वा नियम सकल लिखाये ।
धन्य धन्य सब जन कर पाये, सब ने नेम उद्देश्य सराहे ।
ब्रह्मादि ने पुष्प चढ़ाये, देवों ने अमृत बरसाये ।

भक्तों का तब बढ़ा उत्साह, सेवा की उन मन बहु चाह ।
कमेटी नियम अनुसार बनाई, आश्रम की जिस कार चलाई ।
नगर डगर तब फैला नाम, योग का आश्रम सुख का धाम ।
कीर्ति प्रभु जी की विस्तारी, आने लागी जनता भारी ।
योग साधन को सीखें आकर, भाग्य सराहवें सुख को पाकर ।
गृहस्थी साधु सब थे आते, प्रभु जी से वे शिक्षा पाते ।

दो० शिक्षा प्रभु से पायकर, नित्य करें वे योग ।
कलयुग में सतयुग भया, ऐसा बना सुयोग ॥ ११५५क
यम नियम सब पालते, करें आसन मन लाय ।
प्राणों को वे साधते, प्रत्याहार हो पाये ॥ ११५५ख
प्रभु धरावें धारणा, ध्यान करावें नाथ ।
समाधि में भी लीन हों, भक्त प्रभु के साथ ॥ ११५५ग

३४. योग के साधन

षट् कर्म प्रभु सभी करावें, नेती धौती सकल सिखावें ।
बस्ती त्राटक जन कर पाते, नौलि भी वे सीख के जाते ।
कपाल का शोधन प्रभु करावें, कपाल भाति भी वे सिखलावे ।
बहु विध आसन वे सिखलाते, संग में मुद्रा भी लगवाते ।
साधन सब वहां होते देखे, शास्त्र में जिस विधी उल्लेखे ।
साधक को प्रभु देवें ज्ञान, शास्त्रा में जिमि होत बखान ।
प्रश्न प्रभु से जो कर पावें, समाधान वे स्वयं करावें ।
साधु एक था भक्तन साथ, पूछा उस "बताइये नाथ ।

आसन का मैं ज्ञान है पाना, हठ योग में जिमि बखाना ।
आसन किस ने नाथ बनाये, कितने आसन जग में आये ।

दो० योग साधन का भेद जो, खोलें कृपा नाथ ।
ऐसे गूढ़ रहस्य को, पा कर बनें सनाथ ।। ११५६

प्रभु जी ने यह सुन फरमाया, "हे साधो तव मन जो आया ।
उत्तम है जिज्ञास पुछायी, सकल जगत को जो सुखदायी ।
आसन का तुम प्रश्न उठाया, योग का है यह मुख्य उपाया ।
इस को जान लेवें नर नार, देह के सुख का परम जो सार ।
शिव की है यह आसन रचना, लाख चौरासी शास्त्र कथना ।
उन में मुख्य चौरासी जानो, चालीस उन में वर्णित मानो ।
जिन के नाम तुम्हें बतलाऊँ, धीरे धीरे सभी सिखाऊँ ।
चालीस आसन सिद्ध जो करता, देह के रोग सकल वह हरता ।

दो० *चालीस आसन मैं कहूँ, ला सुनो तुम ध्यान ।
उन के नाम स्मरण रख, सीख लेने फिर आन ।। ११५७

---

* चालीस आसनों के क्रम से नाम :-

१. सिद्धासन २. पद्मासन ३. भद्रासन ४. मुक्तासन ५. वज्रासन ६. स्वस्तिकासन ७. सिंहासन ८. गोमुखासन ९. वीरासन १०. धनुरासन ११. मृत (शव) आसन १२. गुप्तासन १३. मत्स्यासन १४. मत्स्येन्द्रासन १५. गोरक्षासन १६. पश्चिमोत्तनासन १७. उत्कटासन १८. संकटासन १९. मयूरासन २०. कुक्कुटासन २१. कूर्मासन २२. उत्तानपादासन २३. उत्तानमण्डूकासन २४. वृक्षासन २५. मंडूकासन २६. गरुडासन २७. वृषभासन २८. शलभासन २९. मकरासन ३०. उष्ट्रासन ३१. भुजंगासन ३२. योगासन ३३. महावीर या कोण ३४. चक्र ३५. उत्तानपाद ३६. वातायन ३७. पादहस्त ३८. सर्वांग ३९. हस्तपादांगुष्ठ ४०. हलासन ।

'सिद्ध'[1] 'पद्म'[2] और 'भद्र'[3] जानो, 'मुक्त'[4] 'वज्र'[5] वा 'स्वस्तिक'[6] मानो।
और नाम तुम सुन लो भाई, सिंह[7], गोमुख[8], वीर[9], कहलाई ।

१. सिद्धासन :-जितेन्द्रिय साधक बायें पांव की ऐडी योनि स्थान अंडकोश के नीचे रखें और दूसरी ऐडी योनी के ऊपर रखें। ठोड़ी को छाती से लगावें। दृष्टि को निश्चल रख कर भौंह के बीच में देखें।

२. पद्मासन :-दहने पांव को बाईं जांघ पर रख और दाहिने जांघ पर बायां पैर रख कर पीछे की ओर से दायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को और बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को दृढ़ता से पकड़े, ठोडी छाती पर धर कर नाक के अग्रभाग को देखे। (घेरण्ड)

३. भद्रासन :-दोनों ऐड़ी अंडकोश के नीचे से उलट कर धरें। फिर पीठ की ओर से दोनों हाथों से दोनों पांव के अंगूठों को पकड़ें और जालंधर बंध कर के (बंधों में वर्णन करेंगे) नाक के अग्रभाग को ध्यान से देखें। (घेरण्ड)

४. मुक्तासन :-बाईं ऐड़ी गुदा की जड़ में लगावे। उसी के ऊपर दाईं ऐड़ी रखें। कण्ठ शिर समान भाव से रखें। बिल्कुल हिलने न पावे।

५. वज्रासन :-दोनों जांघों को वज्र के आकार सा बना कर पीछे गुदा के दोनों तरफ पांव मिला कर रखें। (घेरण्ड)

६. स्वस्तिकासन :-दोनों पींडुरी दोनों जांघों के बीच कर के और दोनों पाओं के तल भी उसी के बीच में धरें। सरल भाव से सीधा शरीर कर के बैठें।

७. सिंहासन :-दोनों एड़ी अण्डकोश के नीचे उलट कर आपस में मिला कर धरें और ऊपर की ओर बाहर कर लें। दोनों पिंडुरी भूमि से लगा दें। मुख को खोल कर ऊंचा कर के जालंधर बंध के आश्रय से नासिका के अग्र भाग को देखें। (घेरण्ड)

८. गोमुखासन :-दोनों पांओं को भूमि में जमा कर पीठ की बगलों में लगावें। और शरीर को स्थिर कर के बैठें। यह गोमुख के आकार का आसन दीख पड़ेगा। (घेरण्ड)

९. वीरासन :-एक जंघा के ऊपर एक पांव धर कर दूसरा पांव पीछे की ओर धरें। (घेरण्ड)

धनुरासन[10] तुम सुगम ही जानो, मृत,[11] गुप्त,[12] और मत्स्य[13] पहचानो।
मत्स्येन्द्रासन[14] भी इक जानो, गोरक्ष[15] पश्चिमोत्तान[16] पहचानो ।
उत्कट[17], संकट[18] और मयूर[19], कुक्कुट[20], कूर्म,[21] करायें जरूर ।

१०. धनुरासन :-उलटें लेटें। दोनों हाथ पीठ की ओर ला कर दोनों पांओं को पकड़ें और देह को धनुष के आकार का करें। (घेरण्ड)

११. मृत (शव) आसन :-मरे हुए मनुष्य की तरह भूमि पर शयन करने से ही मृतासन होता है। इस को शवासन भी कहते हैं। यह आसन श्रम को दूर करता है। और चित्त को विश्राम देता है। (घेरण्ड)

१२. गुप्तासन :-दोनों घुटनों के बीच में दोनों पाओं को गुप्त भाव से रखो और दोनों पाओं पर गुदा को धरो। (घेरण्ड)

१३. मत्स्यासन :-युक्त पद्मासन लगा कर दोनों हाथ घुटनों पर रखें। और चित्त हो कर लेट जाओ। (घेरण्ड)

१४. मत्स्येन्द्रासन :-दायें पांव को बांई जांघ मूल पर रखें। बायें पांव को दाहिने घुटने के समीप रखें। दायें हाथ को बायें घुटने के ऊपर से ले जा कर बायें पैर को पकड़ें। पेट को दाईं ओर से पीठ की तरफ घुमाना। मुख को दायें कन्धे पर धर कर भ्रूओं पर दृष्टि जमानी। दायां हाथ पीठ पर रखना।

१५. गोरक्षासन :-दोनों जांघों और पीडुरियों के बीच में दोनों पांव उत्तान कर के गुप्त भाव से रखें। फिर दोनों हाथों से दोनों एड़ी पकड़ लें। फिर कण्ठ को सुकोड़ कर नाक के आगे के भाग को देखें। (घरेण्ड)

१६. पश्चिमोत्तानासन :-दोनों पांव धरती पर लकड़ियों की तरह फैला कर यत्न सहित दोनों पांव हाथों से पकड़ें। और दोनों जांघों के बीच अपने शिर को धरें। (घेरण्ड)

१७. उत्कटासन :-पांवों के दोनों अगूठों के बल से भूमि पर स्थिर हो दोनों एड़ियों को उठा दें और उन्हीं एड़ियों पर गुदा को रखें।

१८. संकटासन :-बांया पांव भूमि पर टिका दें। दायें पांव से बांया पांव लपेट लें। दोनों जांघों पर दोनों हाथ धरें।

१९. मयूरासन :-हाथ के दोनों तलों से भूमि को धारण करें। दोनों कुहनियों को नाभि के दोनों बगलों में रखें। दोनों पांवों को फैला कर ऊंचे आसन से लकड़ियों की तरह आकाश में देह को उठावें। (घेरण्ड)

२०. कुक्कुटासन :-पद्मासन में बैठ कर दोनों जांघ और पिडुरियों के बीच में हाथों को घसेर कर दोनों हाथों की कुहनियों पर मंच की तरह उठ कर बैठें। (घेरण्ड)

२१. कूर्मासन :-दोनों एड़ियों को अण्डकोश के नीचे उलट कर धरें। और शिर ग्रीवा और शरीर को सीधा कर के बैठें। (घेरण्ड)

उत्तान-कूर्म[22] और उत्तान मण्डूक[23], आसन वृक्ष[24] और मण्डूक[25] गरुड़,[26] वृषभ[27] और शलभासन[28], मकर,[29] उष्ट्र,[30] भुजंग,[31] योगासन[32]

२२. उत्तान कूर्म :-पहले कुक्कुट आसन (नं. २०) बांध लें। फिर दोनों हाथों से कन्धा पकड़ के कछुआ की तरह उत्तान हो जायें।

२३. उत्तान मण्डूक :-मण्डूकासन में (नं. २५) बैठ कर हथेलियों से माथा धारण कर के उत्तान हो जावें। (घेरण्ड संहिता)

२४. वृक्षासन :-दायां पांव बाईं जांघ की जड़ में धरें और समान भाव से वृक्ष की भांति खड़ा रहें।

२५. मण्डूकासन :-दोनों पांव पीठ की तरफ कर के उन के दोनों अंगूठे परस्पर एक से एक मिलायें। तथा दोनों जांघें सामने की ओर धरें।

२६. गरुड़ासन :-दोनों जांघों से तथा दोनों उरुओं से धरती को दबावें और दोनों घुटनों पर दोनों हाथ धरें।

या

बाईं टांग पर खड़े हो कर दाईं टांग उस पर लपेट दें। इसी प्रकार दोनों बाजू भी लपेट कर ऊपर उठाएं और स्थिर खड़ा रहें।

२७. वृषभासन :-गुदा के द्वार को दक्षिण एड़ी के ऊपर धर के उसी के बायें भाग में बायें पांव को उलट कर के धरें और धरती को छूवें।

२८. शलभासन :-नीचे मुख कर के लेट जायें और वक्षस्थल में दोनों हाथ धर के दोनों करतलों से भूमि पकड़ कर दोनों पांव शून्य भाग में बालिश्त भर ऊंचे रखे। (घेरण्ड)

२९. मकरासन :-धरती पर पेट रख लेट जायें। नीचे मुख कर के छाती को धरती से लगा कर दोनों पांव फैला दें। दोनों हाथों से माथा पकड़ें।

३०. उष्ट्रासन :-अधोवदन शयन कर के दोनों पांव उलट के पीठ की ओर लावें। पीछे दोनों हाथों से इन्हीं पैरों को धर के मुख और पेट दृढ़ भाव से सकोड़ लेवें।

३१. भुजंगासन :—पांव के अंगूठे से ले कर नाभि पर्यंत देह को धरातल में अच्छी तरह स्थापन कर हाथों के पंजों को धरती पर टिकायें और सांप के फन की तरह शिर के भाग को उठायें।

३२. योगासन :—दोनों पाओं को दोनों जांघों के ऊपर स्थापित कर के दोनों हाथ उत्तान भाव से आसन के ऊपर रखें। पीछे पूरक कर के कुंभक करें और नाक के अग्रभाग को देखें।

महावीर,[33] चक्र,[34] आसन जानो, उत्तान[35] पाद वातायन[36] मानो ।
पादहस्त,[37] सर्वांग[38] पहचानो, हस्तपादांगुष्ट,[39] हल[40] मानो ।
ये हैं चालीस नाम बखाने, जग में सिद्धि दायक माने ।

दो० ये चालीस हैं आसन, जो करें चित लाय ।
करत करत अभ्यास ते, जन सिद्धि को पाय ॥ ११५८

जा आचार्य पास यह सीखे, हो हानि जो करत बिन सीखे ।
सब नेम जो आचार्य बतावें, उन को साधक पाल दिखावें ।
सुन साधु ने कही यह बात, "आप योगेश्वर हैं साक्षात ।
आप से ही सब विद्या पावें, कर किरपा दासन अपनावें ।
प्रभो बात इक और बतावें, योग मुद्रा किस को कह पावें ।
उन से लाभ जो होवे नाथ, उन का ज्ञान भी देवें साथ ।
मुद्रा कितनी योग में आईं, ऋषियों ने जो कथन में लाईं ।
बहुत काल की यह जिज्ञासा, तृप्त करो मम नाथ पिपासा ।

दो० नाथ मुझे करवाइये, मुद्रा का सब ज्ञान ।
मैं सेवक नादान हूँ, गुरू न आप समान ॥ ११५९

३५. योग की मुद्राएं

साध की सुन कर प्रभु जी वाणी, बात कही उन अमृत सानी ।
हो तुम सचमुच साध प्रवीन, पूछी योग की बात नवीन ।
मुद्रा देह के साधन जानो, प्राण सधे भी उन से मानो ।

३३. ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९ और चालीसवें आसन का वर्णन योग साधन आश्रम द्वारा छपी 'योग आसन' पुस्तक में देखें ।

मुद्रा पच्चीस† शास्त्र बखानीं, योगियों ने भी हैं सन्मानीं ।
प्रथम सुनो तुम उन के नाम, पाछें करें बखान तमाम ।
प्रथम 'महामुद्रा' है आयी, दूजी 'नभोमुद्रा' कहलायी ।
'उड्डीयान' 'जलंधर' भी हैं आये, 'मूल बंध' 'महाबंध' कहाये ।
'महाबेध' वा 'खेचरी' जानो, 'विपरीतकरी' योनि 'पहचानो' ।
'वज्रोणी' 'शक्तिचालनी' आयी, 'ताडागी' 'माण्डूकी' लिखायी ।
आगे एक 'शांभवी' जानो, 'पंच धारणा' फिर पहचानो ।

दो० तत्वों की जो धारणा, का मन में प्रकाश ।
पृथ्वी जल वा वायु का, अग्नी और आकाश । ११६०क
पांच तरह की धारणा, इस विध कीन बखान ।
एक एक को सिद्ध कर, योगी बने महान ॥ ११६०ख

आगे 'अश्विनी' मुद्रा आयी, 'पाशिनी' भी उन संग लिखायी ।
'काकी' और 'मातंगी' आगे, संग 'भुजंगिनी' भी हो लागे ।
नाम सभी जब प्रभु बखाने, भक्त जनों ने अचरज माने ।
भयी जिज्ञासा मन में भारी, पूछें बात प्रभु से सारी ।
किया साध ने नम्र निवेदन, "प्रभो आप के रचे हैं वेदन ।
कौन विद्या जो आप न जानें, शारद आप के गुण बखाने ।

†२५ मुद्राओं के क्रमशः नाम :—

१. महामुद्रा २. नभोमुद्रा ३. उड्डीयान ४. जलंधर ५. मूलबंध ६. महाबन्ध ७. महावेध ८. खेचरी ९. विपरीतकरी १०. योनि ११. वज्रोणी १२. शक्तिचालनी १३. ताडागी १४. मांडूकी १५. शांभवी १६. पृथ्वीधारणा १७. जलधारणा १८. वायुधारणा १९. आग्निधारणा २०. आकाशधारणा २१. अश्विनी २२. पाशिनी २३. काकी २४. मातंगी २५. भुजंगी ।

सकल विद्या के आप स्रोत, कण कण में आप ओत प्रोत ।
मुद्रा आप बखानी न्यारी, वर्णन करिये प्रभु जी सारी ।

दो० सकल विद्या जो नाथ जी, कर कृपा बतलाई ।
इक इक का वर्णन करें, निज शिष्यन गोसाईं ॥ ११६१क
रहस योग के आप त्रिन, हमें बतावे कौन ।
सद्गुरु के जो रूप में, सकल ज्ञान के भौन ॥ ११६१ख

प्रभु जी ने तब उन्हें बताया, मुद्रा का सब भेद जताया ।
प्रति मुद्रा के गुण बतलाये, विधी विधान सकल समझाये ।
मुद्रा प्रथम वर्णन में आयी, महामुद्रा[1] जो हम कह पायी ।
उस की विधी हम करें बखान, उस के फल का भी हो ज्ञान ।
क्षय रोग वा खांसी भारी, बवासीर की जो बीमारी ।
तिली जिगर का हो जो दोष, जीरण ज्वर का भी जो रोष ।
महामुद्रा कर गुरु के पास, सर्व रोगों का होवे नास ।
विधि इस की तुम लो यों जान, ऋषियों ने जिमि कीन बखान ।

दो० वाम एड़ी गुद मूल पर, दृढ़ कर लावे साध ।
दांयीं टांग फैलाय कर, पग पकड़े निर्बाध ॥ ११६२क
गर्दन को संकोच कर, मध्य भवों को देख ।
महामुद्रा अभिधान है, योगी करें उल्लेख ॥ ११६२ख

१. महामुद्रा—गुदा मूल को बाईं एड़ी से बहुत ताकत से दबावें और दायें पांव को फैला कर उस की अंगुलियों को हाथों से पकड़ें । फिर कंठ को सिकोड़ कर भौओं के मध्य में ध्यान लगावें ।
उपरोक्त महामुद्रा का अधिक सेवन करने से क्षय से हुई खांसी, गुदावर्त, तापतिल्ली (घेरण्ड) और पुराना ज्वर आदि नाश होते हैं ।

बाकी गूढ़ विधान जो, होगा तभी बखान ।
मुद्रा का अभ्यास जब, आप करोगे आन ॥ ११६२ग

दूजी मुद्रा अभी बखानें, नभो मुद्रा[2] जो योगी जानें ।
जहां कहीं भी योगी होवे, सर्वदैव वह इस को गोवे ।
जिह्वा ऊर्ध्व उठा कर राखे, संग तालु के उस को माखे ।
अमृत रस करे वह पान, रोगों से होय मुक्त निदान ।
यह अभ्यास निरन्तर चाहिए, चलते फिरते भी कर पाइए ।
प्रभु जी की सुन कर के बात, मुद्रा सब ने की साक्षात ।
मधुर और शीतल रस को पा, सभी ने प्रभु को धन्य कहा ।
फिर मुद्रा उड्डीयान[3] बतायी, सर्व जनों को जो अति भायी ।
सब बन्धों में उत्तम माना, इस की करे न और समाना ।
रोगों से वह मुक्ती पावे, नित जो इस को कर दिखलावे ।
मृत्यु को यह इमि पछारे, सिंह जिमी गज को दे मारे ।

दो० पीछे ताने पेट को, नाभि ऊपर खींच ।
इस स्थिति में जो रहे, जीते नर वह मीच ॥ ११६३क

भक्त जनों ने बैठ कर, यह मुद्रा कर पायी ।
कुछ एक ने हो खड़े, प्रभु जी को दिखलायी ॥ ११६३ख

प्रभु जी ने मुद्रा को देखा, भक्तों के उत्साह को पेखा ।

२. नभोमुद्रा—जब जब योगी किसी काम में लगे तब सर्वदा ही ऊपर की ओर जीभ कर के स्थिर हो कर पवन को धारण करे। यह अभ्यास सदा रखने से योगी समस्त रोगों से निवृत्त होता है।

३. उड्डीयान—उदर के मध्य भागस्थ गुह्यादि चक्रस्थित नाड़ी समूह को नाभी के ऊपर सिकोड़ के उठावें। इस बंध से आप ही आप रोगों से मुक्ति हो जाती है। (घेरण्ड)

जहां त्रुटी थी वह दिखलायी, मुद्रा सब की शुद्ध करायी ।
जगत पिता बन योगी आवें, जन गण को वे योग सिखावें ।
योग तभी जग में विस्तारें, जग की आधि व्याधि निवारें ।
अगली मुद्रा प्रभु बतलायी, जालन्धर बन्ध की विधि सिखायी ।
जालन्धर[4] की तुम महिमा जानो, बन्धों में प्रधान यह मानो ।
छः मास तक करे निरन्तर, ढील पड़े न लेश न अन्तर ।
बिन संशय वह सिद्धि पावे, उत्तम योगी वही कहलावे ।

दो० कण्ठ देश संकोच कर, हृदय चिबुक लगाय ।
मन एकाग्र कण्ठ में, फिर योगी कर पाय ॥ ११६४क

षोडष दल जो कमल है, विशुद्ध चक्र कहलाय ।
इमि विकसत वह होत जब, युक्त योगी बन जाय ॥ ११६४ख

इस मुद्रा को जान कर, भक्तन कीन ध्यान ।
कई जनों के मन बसा, आतम सुख महान ॥ ११६४ग

बन्धों का गुण साफ पहचाना, धन्य योग को सब ने जाना ।
प्रभु जी ने तब और बताया, अगला बन्ध मूल समझाया ।
मूल बन्ध[5] को जानो सारे, इस के गुण प्राणी को भारे ।
भव सागर जो तरना चाहे, जा एकान्त वह बन्ध लगाये ।
प्राण की सिद्धि इस से होवे, वायु से जन दुःख न गोवे ।

---

4. जालन्धर बन्ध—कण्ठ को सिकोड़ कर छाती पर ठोड़ी धरने को जालन्धर बन्ध कहते हैं।

5. मूलबन्ध - बांये पांव की एडी से गुदा प्रदेश को सिकोड़ें। और नाभि को मेरुदण्ड की ओर दबावें। उपस्थ को दायीं एड़ी से मजबूती से दबा के रखें। यह मुद्रा बुढ़ापे को दूर करती है।

रह मौनी आलस को त्यागे, इस की सिद्धि में नर लागे ।
इस की विधि लेवो तुम जान, और करो हो कर सावधान ।
आलसी नर न कर यह पावे, और वह जो मन को भटकावे ।

दो० वाम एड़ी से दाब कर, निज योनि प्रदेश ।
दक्षिण पग को मेंढ पर, राखे साध हमेश ॥ ११६५क

नाभि को भी खींच कर, संग मेरु के लाय ।
अपान को ऊर्ध्व खीचें, गुदा देश सकुचाय ॥ ११६५ख

ऐसा यह अभ्यास जो, मूल बंध कहलाय ।
जरा बिनाशिनी मुद्रा, महा प्रसिद्धि पाय ॥ ११६५ग

बैठ एकान्त इसे कर पाना, मूलाधार में चित्त लगाना ।
आ कर फिर हम को बतलाना, साधन सकल समझ के जाना ।
अगला बन्ध अब करें बखान, महाबन्ध[6] जिस का अभिधान ।
गुदयोनि संकोच कराये, अपान जिमि ऊर्ध्व उठ पाये ।
मिले अपान समान के मांहि, योगी प्राण अधोमुख लांहि ।
प्राण अपान समान जो तीन, एकत्र करे योगी तल्लीन ।
महाबंध यह बन्ध कहावे, ऊर्ध्वरेता योगी बन पावे ।

6. महाबंध—मूल बन्ध की स्थिति में बैठ गुदा और योनि को आकुंचन कर के अपान वायु को ऊपर उठा समान वायु के साथ सम्बन्धित करे। और प्राण वायु को अधोमुख करे। योगी लोगों का नाड़ी समूह का रस इस बंध से ऊपर को गमन करता है और मस्तिष्क में जाता है। (शिव संहिता)

अब हम महावेध[7] बतलावें, योगी साध सिद्ध कहलावें ।
महाबंध में स्थित हो साध, संग उड्डीयान बंध आराध ।
कुंभक द्वारा रोके प्राण, महावेध होवे तब आन ।
मूलबन्ध महाबंध लगाये, महावेध उन संग कर पाये ।
नित्य करे अभ्यास प्रवीण, हो ब्रह्म में कुण्डलिनी लीन ।

दो० साधो तुम यह समझ लो, पाय स्थान एकान्त ।
बंध द्वय इस वेध संग, नित्य करो हो शान्त ॥ ११६६

खेचरी[8] मुद्रा अब बखानें, सब साधन से उत्तम मानें ।
मूर्छा उस के निकट न आये, भूख प्यास भी नहीं सताये ।
इस मुद्रा को जो कर पाये, शरण गुरु की में जन जाये ।

---

7. महावेध – प्रथम महाबंध मुद्रा करें। फिर उड्डीयान बन्ध मुद्रा करके कुंभक प्राणायाम से वायु का निरोध करने से महावेध मुद्रा कही जाती है। जो साधक प्रतिदिन इस वेध के सहित महाबंध और मूलबन्ध के साधन करते हैं वे ही योगियों में उत्तम योग विद्या के जानने वाले कहे जाते हैं। योगी इस वेध को कर के सुषुम्ना रन्ध्र द्वारा ब्रह्म ग्रन्थि का भेदन करता है। इस के अभ्यास से महामाया कुण्डलिनी देवी ब्रह्म स्थान में लय होती।

(शिव संहिता, घेरण्ड संहिता)

8. खेचरी मुद्रा—जीभ के नीचे जीभ की जड़ और जीभ इन दोनों को नाड़ी जोड़े रहती है। उस को काट देवें और नित्य ही जिह्वा के अग्रभाग और जिह्वा के नीचे भाग को चलाया करें। और जीभ को नवनीत से दुहा करें। तथा लोहे के चिमटे से खींचें। इस प्रकार रोज करने से जीभ लम्बी हो जाती है। क्रम से अभ्यास करते करते जीभ को इस प्रकार लम्बी कर दें कि वह दोनों भौहों के बीच पहुंच जाये। फिर उस जीभ को तालु के बीच तक ले जायें। तालु देश मध्यस्थ गड्ढा को कपाल कुहर कहते हैं। जीभ को उसी तालु के गड्ढा में ऊपर की ओर उलट के प्रवेशित करें। और दोनों भौहों के मध्य भाग को देखें। यही खेचरी मुद्रा है।

जो मनुष्य इस खेचरी मुद्रा का साधन करते हैं। उन को मूर्छा, भूख, प्यास और आलस्य नहीं होते। रोग व बुढ़ापा पास नहीं आते। आयु दीर्घ होती है।

(घेरण्ड संहिता)

आलस नर का संग ही त्यागे, रोग जरा भी निकट न लागे ।
देह तो दिव्य रूप हो जावे, यह मुद्रा जो साध दिखावे ।
इस से ऐसा अमृत पावे, विष का जो प्रभाव मिटावे ।
त्रिदोषों से नर मुक्ति पाता, वात पित्त कफ कोप नसाता ।
इस मुद्रा को ले वही साध, जिस पर हो गुरु दया अबाध ।

दो० विधि अब इस की जान लो, सभी लाय निज ध्यान ।
सारी बात बखान दूं, हो जाय जो ज्ञान ॥ ११६७क

जिह्वा नीचे तन्तु जो, काट दिखावे साध ।
कर मर्दन नवनीत से, हो दोहन निर्बाध ॥ ११६७ख

सदा जिह्वा को साध चलाये, चिमटे से कर्षण कर पाये ।
इस विध नित्य जो कर दिखलाये, दीर्घता को जिह्वा पाये ।
इतनी लांबी होवे जीभ, पहुँच भओं के जाय करीब ।
कपाल कुहर में उसे टिकाये, भ्रूमध्य निज दृष्टि जमाये ।
आज्ञा चक्र में लावे ध्यान, दिव्य रूप का होवे ज्ञान ।
समाधी दीर्घ भी हो जावे, भूख प्यास न योगी सतावे ।
अमृत तत्व जब जीभ समाता, तन कभी न क्षीण हो पाता ।
खेचरी मुद्रा अति उपयोगी, साधे इसे सदा दृढ़ योगी ।

दो० खेचरी मुद्रा बिन सधे, बाधें विघ्न अनेक ।
इस मुद्रा को साधता, अतः योगी हर एक ॥ ११६८

इस के आगे प्रभु बतलायी, विपरीत[9] करी मुद्रा समझायी ।
इस मुद्रा को साध दिखावे, अन्त काल भी दुःख न पावे ।
बात सिद्धान्त फिर जतलायी, भक्तन के जो मन अति भायी ।
"नाभि मध्य सूरज का वासा, तालु मध्य चन्द्र प्रकासा ।
चन्द्र जो अमृत सरसावे, नाभि में गिर क्षय हो पावे ।
सूरज को ऊपर ले जाओ, चन्द्रमा नीचे कर पाओ ।
नसों में अमृत रस समावे, नर अजरत्व को फिर पावे ।
भूमि पर तुम सिर टिकावो, दोनों हाथों में रख पावो ।
टांगों को ऊपर ले जावो, इस विध सिर पर खड़ हो पावो ।
यही विपरीत करी है मुद्र, कथी महान जो है शिव रुद्र ।

दो० विपरीत करी यह मुद्रा, नित्य करे जो साध ।
कफ वात के रोग से, हो जाये निर्बाध । ११६९

आयु दीरघ नर जो चाहवे, नित्य विपरीत करी कर पावे ।
प्रभु जी ने फिर और बताया, अगली मुद्रा को समझाया ।
योनि मुद्रा प्रभु बतलायी, योगी जनों को सिद्धी दायी ।

---

9. विपरीत करी मुद्रा :—

नाभि की जड़ में सूर्य का (सूर्य नाड़ी का) वास है और मुख के तालु की जड़ में चन्द्रमा (चन्द्र नाड़ी) का वास है। सूर्य अपने तेज से शरीर के अमृत को खींच कर ग्रास कर लेता है। और मनुष्य मौत के वश होता है। अमृत की रक्षा के लिए ऊपर की ओर सूर्य का उठाना और नीचे की ओर चन्द्रमा को ले जाना ही विपरीत करी मुद्रा है। इस की विधि इस तरह है कि धरती पर शिर को हथेलियों पर टिका, पाओं को ऊपर उठायें। और सिर के बल सीधे खड़े रहें। जो मनुष्य इस मुद्रा का रोज साधन करता है वह बुढ़ापे से बचा रहता है।

(घेरण्ड संहिता)

मुझ से लो तुम साधो जान, 'योनी[10] मुद्रा' गुप्त पहचान ।
जन्म जन्म के पाप जो भारे, योनि मुद्रा सकल नीवारे ।
अतः मुक्ति को जो जन चाहवे, योनि मुद्रा साध दिखावे ।
इस मुद्रा की सिद्धी गोवे, समाधि स्थित योगी वह होवे ।
सुनिये अब सब कर चित्त शांत, और करो फिर पाय एकान्त ।

दो० सिद्धासन में बैठ कर, लेवे योगी साध ।
इस मुद्रा को इस विधि, जिस विध आये न बाध ॥ ११७०

दाब अंगूठों से निज कान, मध्यमा से तब अपने प्राण ।
तर्जनी से निज नयन दबावे, अंगुल अन्य मुख पर रह पावे ।
दोनों हाथ हों एक समान, इस मुद्रा का यही विधान ।
प्रभु जी ने कर के दिखलायी, तब भक्तों की समझ में आयी ।
षण्मुखी मुद्रा भी कह पाते, योनि मुद्रा कोई बताते ।
इस से आगे समझिये बात, जिस विध होवे दिव्य साक्षात ।
काकी मुद्रा से खींच प्राण, उसे मिलावे संग अपान ।

10. योनि मुद्रा– प्रथम सिद्धासन में बैठे। फिर कान, आंख, नाक और मुख, ये चारों द्वार अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन अंगुलियों से ढाक लें अर्थात् कान के दोनों छेदों को दोनों अंगूठों से, दोनों आंखों को दोनों तर्जनियों से, दोनों नाक के छेदों को दोनों मध्यमाओं से, मुख को दोनों अनामिकाओं से दबावे। फिर प्राण पवन को खीचें और फिर उसे अपान पवन में मिला दें। उस के बाद शरीर में छः चक्र है उन का ध्यान करें। उसी समय में 'हुँ' और 'हंस' इन दो मन्त्रों से भुजंगिनी रूप कुण्डलिनी देवी को जगावें। तथा जीवात्मा सहित कुण्डलिनी को सहस्र कमल में उठा कर ले जायें। और साधक इस प्रकार चिन्तन करे कि मानों मैं शक्तिमय हो कर शिव के साथ आनन्द भोग रहा हूँ। इस मुद्रा द्वारा बहुत ही शीघ्र समाधि प्राप्त होती है। और घोर पापों से भी मुक्ति मिलती है।
(घेरण्ड संहिता)

षट् चक्रन का क्रम से ध्यान, योगी करे मन श्रद्धा आन ।
गुरू मन्त्र से शक्ति जगावे, सुप्त कुण्डलिनी जो कहावे ।
दो० सुप्त शक्ति प्रबोध कर, सहस्त्रार ले जाय ।
पर ब्रह्म का ध्यान कर, शिव से शक्ति मिलाय ॥ ११७१
शक्ति को निज रूप ही जाने, सदा शिव में स्वयं समाने ।
यथामति वह करे विहार, शिव संग माने सुख अपार ।
शिव शक्ति का योग कहावे, रह एकान्त जग में कर पावे ।
आनन्द विभोर ब्रह्म प्रतीति, इस योग की जानिये रीति ।
जब तक चाहे रहे शिव संग, काल न करता योग यह भंग ।
सुना भक्तों ने यह उपदेश, उमड़ा मन में जोश विशेष ।
प्रभु जी का जयकार बोलाया, परब्रह्म गुरु रूप जो पाया ।
ब्रह्मा विष्णु और महेश, त्रय मूरत जो एक निशेष ।
दो० इस मुद्रा का कर कथन, नेत्र मूंद के लेश ।
कुछ काल चिन्तन किया, प्रसंग चलाया शेष ॥ ११७२क

वज्रोणि मुद्रा[11] :–

इस से आगे प्रभु कही, इक मुद्रा बलदाय ।
वज्रोणि नाम बखानी, करे वज्र सम काय ॥ ११७२ख

हाथों पर नर देह टिकावे, पावों को ऊपर कर पावे ।
शीर्ष मध्य में ऐसे लटके, जैसे बेल से फल इक सटके ।

11. वज्रोणि मुद्रा—दोनों हथेलियों से धरती के तल को पकड़ कर दोनों पाँओं को ऊपर उठा दे। सिर को आकाश की ओर उठा दे। केवल हाथों के बल खड़ा रहे। इस मुद्रा से शरीर में शक्ति आती है। तथा वीर्य की रक्षा होती है।

वज्रोणि मुद्रा यही कहावे, वीर्य रक्षा नर की कर पावे ।
जीवन वृद्धि इस से होवे, महान शक्ति नर इस से गोवे ।
सुन प्रभु की बात उस काल, उठ पाया इक नर तत्काल ।
उस ने भू पर पटके हाथ, उठाया समस्त देह इक साथ ।
हाथों पर वह चलने लागा, देख उसे प्रभु मन अनुरागा ।
आ फिर प्रभु को शीश झुकाया, आशीर्वाद प्रभु से पाया ।

दो० गुरु से शिक्षा पाय कर, जो आचरणी लाय ।
प्रसन्न गुरु को वह करें, उत्तम शिष्य कहाय ॥ ११७३

इस से आगे प्रभु बताया, सब भक्तों को चेत कराया ।
"अब हम तुम से करें बखान, सब गुह्यों से गुह्य जो ज्ञान ।
कुण्डली शक्ति का यह ज्ञान, शक्ति चालनी[12] है अभिधान ।

12. शक्ति चालनी मुद्रा—मूलाधार में आत्म शक्ति देवता कुण्डलिनी सर्प के आकार साढे तीन लपेटा की गुंडरी बाधे सो रही है। जब तक वह देह में सोती रहे तब तक जीव पशु की तरह अज्ञान में रहता है। सत्य और असत्य कुछ जान नहीं पड़ता। तब तक चाहे करोड़ों अभ्यास करे सत्य का ज्ञान नहीं होगा। इस लिए कहा है कि जैसे ताले से बन्द किवाड़ ताली से झटपट खोल कर भीतर प्रवेश पायें, उसी प्रकार कुण्डलिनी के जगने पर ब्रह्म द्वार को खोला जा सके जिस से सत्य असत्य का ज्ञान होता है।

इस मुद्रा का अभ्यास किसी बन्द स्थान पर किया जाये। सिद्धासन में बैठें। नाक के दोनों छेदों से प्राण वायु को खींच कर बल के सहित अपान वायु के साथ मिलायें। जब तक वायु सुषुम्ना नाड़ी के भीतर जा कर प्रकाशित न हो। तब तक अश्विनी मुद्रा के द्वारा धीरे २ गुह्य प्रदेश (गुदा) को सिकोड़े।

इस प्रकार निश्वास रोककर कुंभक प्राणायाम धारण करने से भुजंगिनी भुजंगाकार कुंडलिनी शक्ति जाग कर ऊपर की ओर उठती है। बिना शक्ति चालनी मुद्रा के योनि मुद्रा सिद्ध नहीं हो सकती। अतः पहले शक्ति चालनी मुद्रा का अभ्यास कर लें। फिर योनि मुद्रा का।

जो इस का नित्य अभ्यास करे उसी को सिद्धि होती है। इस के अभ्यास से जरा मृत्यु का नाश होता है। (घेरण्ड संहिता)

इस मुद्रा को जो कर पाये, योनि मुद्रा सिद्ध कराये ।
इस के बिना न शक्ति जागे, अंधकार में नर मन पागे ।
शक्ति को तुम जोती जानो, कोटी सूरज सम पहचानो ।
कुण्डली का जब होत उत्थान, सूर्योदय भये अन्तर मान ।
चेतन भी चैतन्यता पावे, परम कुशाग्र बुद्ध हो जावे ।

दो० हे भक्तो तुम जान लो, जब तक कुण्डली सुप्त ।
मानव से शुद्ध मानवता, रह पायेगी लुप्त ॥ ११७४क
मानव तन को पाय कर, नर करे जब योग ।
देह मिला जिस हेत है, सार्थक वह तब होग ॥ ११७४ख

मूलाधार में कुण्डली जानो, आत्म शक्ति उस को मानो ।
वह इक परम देवी है साधो, उसे ध्यान से तुम आराधो ।
साढ़े तीन कुण्डल वह लाये, सर्प समान सुप्त दिखलाये ।
जब तक सुप्त रहेगी ऐसे, जानो नर को पशु हो जैसे ।
तब तक होगा न कुछ ज्ञान, लाख करो तुम योग ध्यान ।
यत्न करो कुण्डली उद्बोधो, शक्ति चालनी मुद्रा शोधो ।
कुञ्जी से जिमि द्वार चपाट, कुण्डली खोले ब्रह्म कपाट ।
इस मुद्रा को जो लेवे साध, वह ले कुण्डली को आराध ।

दो० कुण्डली का प्रवेश जब, ब्रह्म द्वार में होय ।
योगी पाय ज्ञान को, सकल मनो मल धोय ॥ ११७५

अब हम इस की विधि बतलायें, शक्ति चालनी मुद्र करायें ।
आसन सिद्ध में बैठ दिखावो, संग प्राण अपान मिलावो ।

अश्विनी मुद्रा भी कर संग, सिकोडो अपने गुह्य जो अंग ।
दीर्घ काल अभ्यास चलावे, सुषुम्ना में फिर वायु जावे ।
नित्य निरन्तर होय अभ्यास, चित्त में राखे पूरण आस ।
सुषुम्ना नाड़ी होय सचेत, उस में प्राण उठ पाय अचेत ।
कुण्डली जुड़ी सुषुम्ना संगा, चेतन उस के भी हों अंगा ।
पड़े प्राण का उस पै दाब, जगावे उस को यह प्रभाव ।

दो० कुण्डली जाग्रत होय कर, चढ़े ऊर्ध्व की ओर ।
मार्ग सुषुम्ना का गहे, पहुँचे मस्तक ठोर ॥ ११७६

ब्रह्म-द्वार ब्रह्म इस्थान, कुण्डली पहुंचे जब उस थान ।
तेजोमय का दर्शन होवे, जीव ब्रह्म में लीनता गोवे ।
सुन यह प्रभु जी का उपदेश, शक्ति चालनी का निर्देश ।
सभी भक्त कृतकृत्य हो पाये, तन मन की कुछ सुध विसराये ।
कहा साधु ने प्रभो प्यारे, वचन आप के परम न्यारे ।
मुद्रा का यह ज्ञान कराया, रहस्य योग का हम ने पाया ।
अगली मुद्रा भी हे नाथ, वर्णन कर हमें करें सनाथ ।
मुद्रा सकल हमें समझावें, तन प्राण मन सुख को पावें ।

दो० तन प्राण मन सकल जो, रहें जगत में लिप्त ।
मुद्रा के अभ्यास से, हो पायें निर्लिप्त ॥ ११७७

प्रभु जी ने तब होय प्रसन्न, देख भक्तों का तत्पर मन ।
अगली मुद्रा उन्हें जतायी, जो तड़ागी कथन में आयी ।

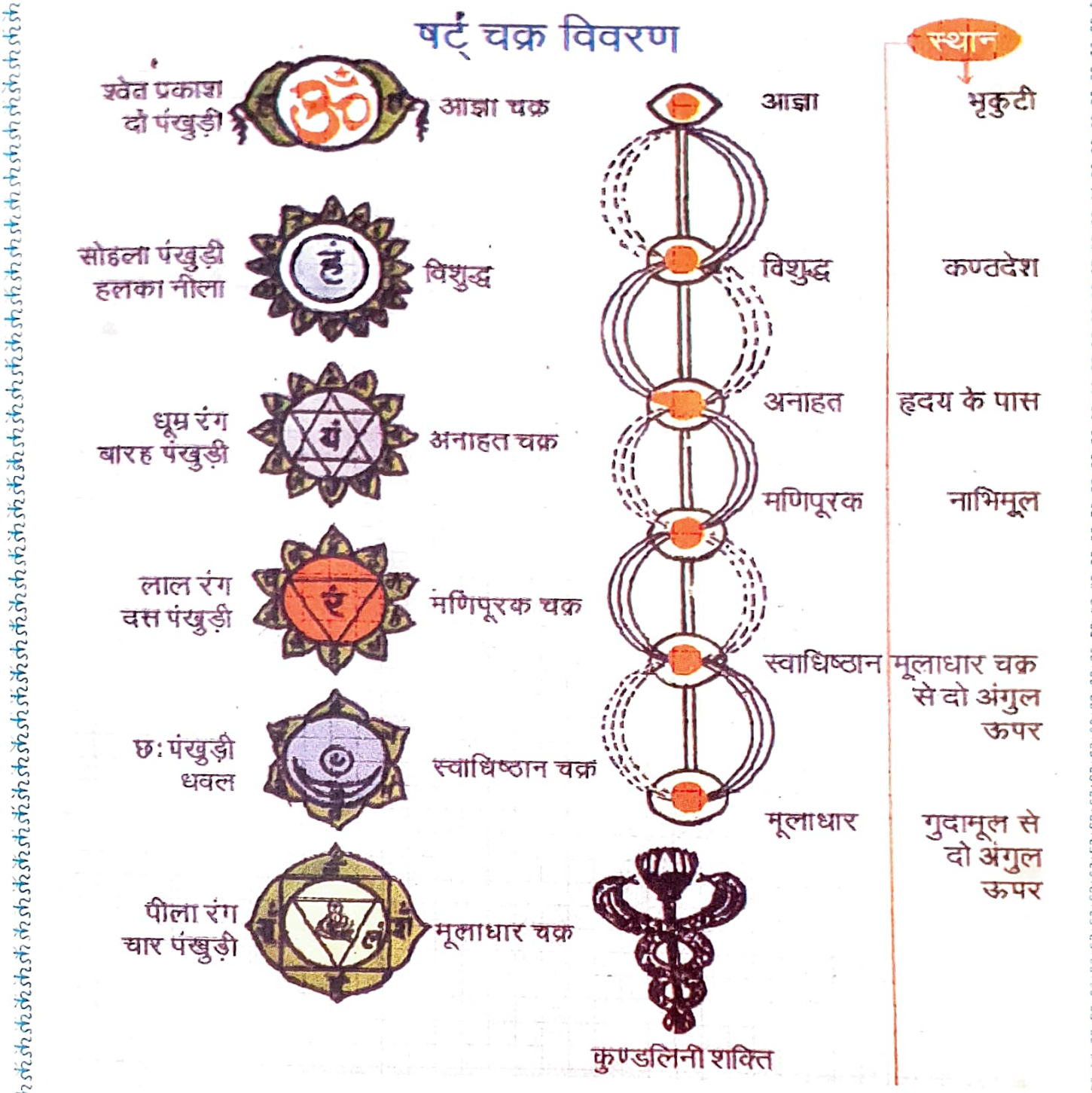

पट् चक्रन का क्रम से ध्यान, योगी करे मन श्रद्धा आन।
सुप्त शक्ति प्रबोध कर, सहस्त्रार ले जाय।
पर ब्रह्म का ध्यान कर, शिव से शक्ति मिलाय॥ दोहा ११७५

कुण्डली जाग्रत होय कर, चढ़े ऊर्ध्व की ओर।
मार्ग सुषुम्ना का गहे, पहुँचे मस्तक ठोर॥ दोहा ११७६

तड़ागी मुद्रा[13] ऐसी जानो, जरा मरण की शत्रु मानो ।
बुढ़ापे को यह मुद्रा टाले, दीर्घायु नर को कर डाले ।
इस की विधि समझो तुम ऐसे, बनावो पेट ताल हो जैसे ।
पेट पीठ की ओर सिकोड़ो, निज श्वास बाहिर ही छोड़ो ।
उदर पीठ के संग लगावो, और गढ़ा सा इक बनावो ।
मुद्रा परम इस को लो जान, और करो सब हो सावधान ।

दो० पाया जब निर्देश यह, लीना भक्तन मान ।
यह मुद्रा उन साध कर, सबन दिखायी आन ॥ ११७८क
प्रभु जी ने प्रसन्न होय, कहा सहित मुस्कान ।
अगली मुद्रा अब कहें, सब जन लेवो जान ॥ ११७८ख

मांडूकी मुद्रा[14] :–

अगली मुद्रा अभी बखानें, जो मांडूकी योगी जानें ।
सकल रसों की घट में खान, मुद्रा से करें योगी पान ।
मुद्रा बिन न होवे प्रापत, मरु में स्वाति जिमि हो तापत ।
मांडूकी मुद्रा ऐसी जानो, धार अमृत की प्राप्त मानो ।
अमृत पान करें नित योगी, बलित पलित से रहत वियोगी ।
काञ्चन सम देह को कर पावे, मुक्त रोगों से वह हो जावे ।

13. तड़ागी मुद्रा—पेट को भीतर की ओर सिकोड़ कर तड़ाग की तरह गहरा करें। श्वास बाहिर निकाल कर ही रोक रखें। इस मुद्रा के अभ्यास से जरा और रोगों से निवृत्ति प्राप्त होती है। (घेरण्ड संहिता)

14. मांडूकी मुद्रा—मुख को मूंद के जीभ की जड़ को तालुवे के ऊपर की ओर चलावे। धीरे-धीरे सहस्रार कमल से निर्गत अमृत पान करें। (घेरण्ड)

इस की विधि सरल ही जानो, सुगम साधन बहु लाभ पहचानो ।
मुख को राखे मूंद के साध, जिह्वा - मूल घुमाय निर्बाध ।
अमृत सहस्त्रार से आवे, जिह्वा मध्य वह टपक समावे ।
उस का नित्य करे जो पान, वृद्ध भी होवे युवा समान ।

दो० माण्डूकी मुद्रा जो करे, और करे गुरु ध्यान ।
रोग नशें उस साध के, होवे सुखी महान ॥ ११७९

प्रभु की वाणी जब सुन पायी, भक्त जनो ने जीभ हिलायी ।
ध्यान किया प्रभु का मन माहीं, नूतन अनुभव चित्त समाहीं ।
ज्ञान भया जब सब को देखा, मुख से नाथ ने तब उल्लेखा ।
"अब लो अगली मुद्रा जान, शांभवी[15] मुद्रा करो पहचान ।
शंभू की यह मुद्रा खास, सुनो सकल तुम कर विश्वास ।
इस मुद्रा को जो अपनावे, ब्रह्मा विष्णु शिव हो जावे ।
अती गुप्त यह मुद्रा जानो, विशेष-कृति शंभु की मानो ।
नयन स्वयं नयनन को देखें, आत्म-राम उन्हीं में पेखें ।
खुले नेतर ध्यान लगावे, शांभव मुद्रा यही कहावे ।

दो० नयन खुले तो हों सही, जगत न दीखे लेश ।
अन्तर के पट पै लिखा, दीखे ईश हमेश" ॥ ११८०क
प्रभु जी ने यह कथन कर, आगे बात चलाई ।
अगली मुद्रा अब कहें, धारण पांच कहाई ॥ ११८०ख

15. शांभवी मुद्रा—दोनों भौहों के बीच में या दोनों भौहों को ही स्थिर दृष्टि से अवलोकन कर के और मन को एक रस कर के वहीं आत्म राम को देखें ।

पंच धारणा मुद्रायें–

पंच धारणा मुद्रा जानो, ध्यान में सब इन को ले आनो ।
समाधि का यह प्रथम सोपान, इन्हीं से बनता जन का ध्यान ।
धारणा से जन ध्यान बनावे, आगे चल समाधी लगावे ।
जानो इस के पांच जो भेद, प्रत्येक मिटावे मन का खेद ।
पांच तत्व जो जग विख्यात, उन की धारणा यह साक्षात ।
पृथ्वी धारणा प्रथम बखानें, जल की उस के बाद ले आने ।
वायु धारणा तीजी जानो, चौथी अग्नि धारणा मानो ।
पंचम है आकाश की भाई, सिद्ध करे जन चित्त लिव लाई ।

दो० पंच धारणा जो करे, मन एकाग्र होय ।
करत करत अभ्यास ते, चंचलता को खोय ॥ ११८१क

पृथ्वी धारणा मुद्रा[16]

दो० पृथ्वी धारणा सिद्ध कर, मृत्युञ्ज्यो नर होय ।
विधि उसकी जिमि है कथी, कथन करें हम सोय ॥ ११८१ख

पृथ्वी धारणा नर कर पाये, अधोधारणा भी कहलाये ।
पांच घड़ी तक चित्त टिकाये, प्राणों को भी रोक दिखाये ।
गुरु से समझे सकल विधान, होवे इस का तभी ज्ञान ।

16. पृथ्वी धारणा मुद्रा – धरती तत्व का वर्ण हरि ताल के समान पीला है। इस धरती का बीज लकार है। इस का आकार चौकोन है। ब्रह्मा अथवा गणपति यहां के देवता हैं। योग के प्रभाव से उक्त बीज के सहित हृदय में (अथवा मूलाधार में) ध्यान कर स्थापित करे। उस समय प्राण वायु को खींच कर के कुंभक के द्वारा पांच घड़ी (दो घन्टा) मन न डिगने पावे। इस की धारणा करने से धारक को कुछ भी विघ्न नहीं होता।

आसन पीत वर्ण चौकोन, धरती सम ही रंग है जोन ।
वहां देवता ब्रह्मा† जानो, मन्त्र बीज लकार को मानो ।
इस विध पार्थिव धारणा भाई, शास्त्रा के जो कथन में आई ।
इस धारणा की कर प्रतीत, पृथ्वी तत को ले जन जीत ।
पृथ्वी तत को जीत जो पावे, मृत्यु उस के वश में आवे ।

दो० शरण गुरु की ग्रहण कर, नित्य करे अभ्यास ।
पांच घड़ी स्थिर मन करे, मन में हो विश्वास ॥ ११८२क

मन में हो विश्वास जब, मिले सिद्धि फिर आन ।
बिन श्रद्धा नर जो रहे, किस विध हो कल्याण ॥ ११८२ख

जल धारणा मुद्रा[17]

पार्थिव धारणा सब ने जानी, आगे प्रभु जी बात बखानी ।
अब सुनो तुम सब चित्त लाय, जल की धारणा जो कहलाय ।
पांच घड़ी इस का जो ध्यान, करता जन का अति कल्याण ।
पांच घड़ी कर श्वास निरोध, करे जो नित्य जन इस का शोध ।
पाप उस के सब क्षय हो पावें, दुःसह ताप भी सकल नसावें ।
अमृत का इक सागर देखे, निर्मल चांद समान जो पेखे ।

† यहां गणपति का भी ध्यान करते हैं ।

17. जल धारणा मुद्रा—जल तत्व का वर्ण शंख तथा चन्द्रमा की तुल्य विमल और कुन्दपुष्प की तरह उज्जवल है और शोभन है। इस की अमृत संज्ञा है वकार यहां का बीज है। विष्णु और ब्रह्मा यहां का देवता है योग के प्रभाव से हृदय के बीच उक्त जल तत्व के समुदाय का ध्यान करें। और उसी समय प्राण पवन को खींच कर पांच घड़ी स्थिर कर के कुंभक प्राणायाम में स्थिर रहे। यह मुद्रा बड़े २ दुःसह ताप (त्रय) तथा पाप को नाश करे। (घेरण्ड)

अथवा शंख की आभा जैसी, उस सागर की छटा हो वैसी ।
उस के मध्य विष्णु का ध्यान, मन्त्र बीज वकार प्रमान ।

दो० "व" मन्तर के सहित जो, कर मुद्रा मन लाइ ।
पांच घड़ी नित रह स्थिर, होवे ईश सहाइ ॥ ११८३

अग्नि धारणा मुद्रा[18]

अग्नि मुद्रा अब बतलावें, धारणा उस की जिमि कर पावें ।
वैश्वानरी धारणा जानो, सिद्धिदायक परम यह मानो ।
नाभी इस का मुख्य स्थान, साधक स्थिर करे वहां ध्यान ।
इन्द्र बहुटी सम रक्त आकार, ध्यान जमाय नर इस प्रकार ।
'रं' मन्त्र को वहां पर ध्यावे, रुद्र देव† में चित्त लगावे ।
काल के भय से वह नर छूटे, अग्नी प्राण न उस के लूटे ।
अग्नी में गिर सिद्ध प्राणी, निकल अछूता आये मानी ।
पांच घड़ी कर नित्य अभ्यास, योगी रोक के निज श्वास ।

दो० निज श्वास को रोक कर, अग्नि का कर ध्यान ।
योगी मुद्रा युक्त हो, पूरण पावे ज्ञान ॥ ११८४क

18. अग्नि धारणा मुद्रा—अग्नि तत्व का स्थान नाभि स्थल है। इस का रंग इन्द्र गोप (वीर बहुटी) की तरह लाल है। रकार यहां का बीज है। आकार त्रिकोण और रुद्र अथवा विष्णु यहां के देवता हैं यह तत्व तेज का समूह है। यह दीप्तमान (प्रकाशमान) और सिद्धिदायक है! योग बल से इस अग्नितत्व को उदय करा कर एकाग्र चित्त हो, पांच घड़ी तक कुंभक प्राणायाम से प्राणवायु को धारण करे। इस के अभ्यास से संसार का भय दूर हो जाता है। और अग्नि के द्वारा साधक की मृत्यु कभी नहीं हो सकेगी। (घेरण्ड)

† यहां पर विष्णु की धारणा भी की जाती है।

ठहर गुरु के पास जन, नित्य करे अभ्यास ।
पूरण योगी जब मिले, तभी करे विश्वास ॥ ११८४ख

प्रभु के भक्त मुग्ध आसीना, ध्यान से सुनते ज्ञान नवीना ।
हृदय में सब यही मनावें, योगि-गुरु से ज्ञान यह पावें ।
पूर्ण सद्गुरु भाग्य से पाया, बस्ती में आ योग सिखाया ।
हम कहां माया रत लीना, कहां प्रभु जिन ज्ञान यह दीना ।
यह सब ईश्वर की है दाया, ऐसा सद्गुरु जिन मिलाया ।
देख भक्तों का चित्त सलगना, प्रभु जी आगे का तव वरणा ।

वायवयी धारणा मुद्रा[19]

अगली मुद्रा जानो भाई, वायु धारणा जो कहलाई ।
इस मुद्रा का लक्ष्य महान, पांच घड़ी जो रोक प्राण ।
गुरु के चरणों में रह योगी, करत धारणा जगत वियोगी ।
वायु कोप न उसे सतावे, खे गमन की शक्ति पावे ।

दो० यह मुद्रा जिस की सधे, साधक योगी होय ।
गमन आकाशी वह करे, देह गुरुत्व खोय ॥ ११८५

जरा मृत्यु का होवे नाश, गमन करे जो नर आकाश ।
उस की सिद्ध मुद्रा यह मीत, साची होवे योग से प्रीत ।

19. वायवी धारणा मुद्रा—वायु तत्व का रंग घिसे हुए अंजन (सुर्मा) तथा धुंए की तरह है। यकार इस का बीज है। ईश्वर इस का देवता है। यह तत्व सत्वगुणमय है। योग के प्रभाव से वायु को खेंच कर कुंभक प्राणायाम के द्वारा पांच घड़ी तक धारण करें। इस मुद्रा के साधन करने से वायु से कभी मृत्यु नहीं हो सकती। साधक की सामर्थ्य आकाश में आने जाने की हो जाती है। साधक वायु के किसी प्रकार के कोप से नहीं मर सकता। (घेरण्ड)

इस की विधि है यों बतलाई, शास्त्र के जो कथन में आई ।
ध्यान में ला वायु का रूप, धूम्र का जिमि होत स्वरूप ।
*अथवा अंजन का जो रंजन, योगी के मन वही निरंजन ।
ईश्वर का कर इस विध ध्यान, रोके पांच घड़ी निज प्राण ।
यं मन्त्र का प्रकट हो नाद, गुरु का पावे वह प्रसाद ।
इस मुद्रा का रूप बखाना, योग माहात्म्य सब ने जाना ।
अब सुनो तुम ला चित्त भाई, मुद्रा आकाशी कथन में आई ।

"आकाशी धारणा मुद्रा"[20]

दो० धारणा है यह पांचवीं, है उत्तम प्रभाव ।
आकाशी धारण मुद्रा, सब मन इस का चाव ॥ ११८६

इस से खुलत मोक्ष का द्वारा, निश्चित है यही मत हमारा ।
योगी ऐसा युक्त हो जावे, प्रलय काल भी खेद न पावे ।
पांच घड़ी नित्त चित्त लगावे, प्राणों को भी रोक दिखावे ।
सदा शिव का धार के ध्यान, हं को बीज मन्त्र यहां मान ।
नभ को चित्त में अपने लावे, महा सागर के रंग समावे ।
शांत भाव जो सागर होवे, नील वर्ण में चित्त भी खोवे ।

*सुरमे का जो रंग होता है ।

२०. आकाशी धारणा—आकाश तत्व का रंग समुन्द्र के विशुद्ध जल की तरह प्रकाशित होता है। सदाशिव इस के देवता हैं। हकार इस का बीज है। इसी आकाश तत्व को सदाशिव के सहित योग प्रभाव से उदित एकाग्र मन हो कर ध्यान करें और उस समय प्राणवायु को खेंच कर कुंभक प्राणायाम से पांच घड़ी धारण किये रहें। यह मुद्रा मोक्ष (मुक्ति) के किवाड़ (घेरण्ड) को खोल देती है।

पांचों धारणा हम बखानी, योगिजनों ने प्रिय जो जानी।
इस से जन जो करत प्रीत, जीवन सफल उसी का मीत।

दो० पंच धारिणी का कथन, कर पाया सम्पूर्ण।
इक भी नर की जब सधे, हो वह योगी पूर्ण। ११८७

भक्तों को तब प्रभु पुछाया, क्या सब की यह समझ में आया।
क्या सब ने है इस को जाना, पञ्चधारिणी को पहचाना।

"अश्विनी मुद्रा"[२१]

अब हम आगे करें बखान, अश्विनी मुद्रा इक अभिधान।
अकाल मृत्यु को देती टार, आंतों के बहु रोग निवार।
जोय गुदा के रोग गिनाये, नर नारी जिन से दुःख पाय।
होत सभी का तुरत अभाव, इस मुद्रा का यह प्रभाव।
इस की विधि को लो तुम जान, कर अभ्यास हो जावे ज्ञान।
सिकोड़े फिर फिर मुख गुदा का, और फैलावे पुनः उसी का।
आन्त्र शुद्धि इस से हो जावे, और शक्ति को यही बढ़ावे।
अश्व से जानो इस का नाम, अश्व चलावे इस से काम।

दो० अश्व से मुद्र अश्विनी, जग में है विख्यात।
करत अश्व को देख कर, स्पष्ट बने यह बात॥ ११८८क
सुन कर इस उपदेश को, भया सभी को ज्ञान।
ऋषि हमारे विज्ञ थे, रखते कितना ध्यान॥ ११८८ख

२१. अश्विनी मुद्रा—साधक फिर फिर अपनी गुदा के मुख को सिकोड़े और फैलावे। यह मुद्रा शक्ति को बढ़ाती है। गुदा के सर्व रोगों का नाश करती है। अकाल मृत्यु का हरण करती है। (घेरण्ड)

पशुओं से भी शिक्षा पाते, बात सीख अभ्यास में लाते ।
भक्तों को तब प्रभु बतायी, इक मुद्रा फिर उन समझायी ।

"पाशिनी मुद्रा"[22]

पाशिनी मुद्रा हम बतावें, इस मुद्रा को कर दिखलावें ।
होवें इस से अंग निरोग, नस नस का सब नासे रोग ।
अंगन की शक्ति बढ़ जाती, पुष्ट देह इस से हो पाती ।
प्रभु जी ने निज टांग उठायी, गर्दन की वह पृष्ट टिकायी ।
दूजा पांव भी उन उठाया, गर्दन पर वह भी रख पाया ।
जिमि पाश से देह बंधावे, निज टांगों से तिमि हो पावे ।

दो० भक्तों को यह देख कर, भया बहुत आश्चर्य ।
योगिन के सिरताज हैं, सद्गुरु प्रभु जी वर्य ॥ ११८६क
मुद्रा प्रभु जी खोल कर, आसन शव उन कीन ।
कहा सबन को करन हित, मुद्रा यही नवीन ॥ ११८६ख

कुछ कुछ सब ने कर दिखलायी, पूरण किसी से हो न पाई ।
प्रभु जी ने दीना आदेश, जानो कठिन न इस को लेश ।
करे इस का जो नित अभ्यास, सिद्ध होवे उस को यह खास ।

"काकी मुद्रा"[23]

इस से अगली मुद्रा जानो, मुद्रा काकी उसे पहचानो ।

---

२२. पाशिनी मुद्रा—दोनों पांव कण्ठ की पीठ में डाल कर जैसे पाश से बांधा जाता है वैसे ही दृढ़ बांधे। इस से शक्ति जागृत होती है। बल और पुष्ट में वृद्धि होती है।

२३. काकी मुद्रा—अपने मुख को कौए की चोंच की तरह बना कर धीरे धीरे वायु पीवे। यह अनेक रागों को दूर करती है। यह मुद्रा सब तन्त्रों में गुप्त है। मनुष्य को काक की तरह सब रोगों से मुक्त रखती है।

नर ने काक से है यह सीखी, रोग नाशक यह औषध तीखी ।
सब तन्त्रों ने इसे बखाना, गुप्त ज्ञान है इस को माना ।
जो नर इस को सेव में लावे, नीरुज† काक के सम हो जावे ।
होठों का वह रूप बनावो, जिमि काक की चोंज को पावो ।

दो० काक चोंच वत होंठ को, कर के नर वा नार ।
धीरे धीरे वह पिये, वायु जिमि जल धार ॥ ११६०

मुद्रा कर प्रभु जी दिखलायी, काकी मुद्रा सब मन भायी ।
भक्त जनों ने कीना वैसे, देखा प्रभु को करते जैसे ।
तब उस का उन गुण भी देखा, शांत भया चित्त अपना पेखा ।
देह का श्रम मन का भी खेद, नाशे मुद्रा काकी बिन भेद ।
भक्तों ने फिर मन अनुमाना, योग की महिमा को उन जाना ।
कौवा एक जो क्षुद्र प्राणी, योग ने उस की भी है मानी ।
योग विद्या गुण को ही ग्राहे, मिले जहां से ले अपनाये ।
प्रभु जगत में धार अवतार, अतः योग से करते प्यार ।
योग से बढ़ कर न जग माहीं, योग-योगेश्वर कृष्ण कहाहीं ।

दो० युग युग में जब ही प्रभु, धारें मानव देह ।
योग धर्म उन को प्रिय, इस में न सन्देह ॥ ११६१

अगली मुद्रा प्रभु बखानें, प्रभु के वचन भक्त सन्मानें ।

† निरोग

"मातंगिनी मुद्रा"[24]

मातंगिनी मुद्रा प्रभु बताई, भक्त जनों को कर दिखलायी ।
नाक से जल प्रभु जी लीना, और वह मुख से बाहर कीना ।
मुख में फिर कुछ जल उन डाल, नाक से उस को दीन निकाल ।
प्रभु जी फिर मुख से फरमाया, भक्तों को उपदेश सुनाया ।
मुद्रा यह है बहु गुणकारी, देह की हरती सकल बीमारी ।
शक्ति देह की यह बढ़ावे, रोग निकट न नर के आवे ।
गज से इस ने संज्ञा पायी, गजकरणी भी है कहलायी ।

दो० हाथी जिस विध करत है, नासा से जल पान ।
मनुज ने उस से सीखा, योग का यह विधान ॥ ११९२

जीवों में जो गुण हैं भारे, बुद्धिमान मानव स्वीकारे ।
शास्त्र देते शिक्षा सारे, ग्राहे गुण नर दोष निकारे ।
गुण ग्राही जब हो जावें, योग धर्म में सिद्धि पावें ।
दोष दृष्टि को जो अपनावे, अधोगति को नर वह पावे ।
कुठौर पड़े कांचन को लेवें, गुण मिले तो अधम को सेवें ।
गुण से ही गुरुत्व होवे, बुद्ध-मानव न अवसर खोवे ।
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, लायी न देरी भक्तन लेश ।
पात्रों में सब जल भर लाये, और वे मुद्रा को कर पाये ।

---

२४. मातंगिनी मुद्रा – कण्ठ तक जल में ठहर कर पहले नाक से जल को खींचे और मुख से निकाल देवे। फिर मुख से जल खींच कर नाक से निकाल देवे। इस प्रकार बार बार खींचे और बार बार निकालें। यह मुद्रा बुढ़ापे और मौत का नाश करती है। इस मुद्रा को करने वाला योगी जहां कहीं भी रहेगा सुखी रहेगा। (घेरण्ड)

देख प्रभु सन्तोष जताया, भक्तन का उत्साह बढ़ाया ।
कठिन कारज भी शिष्य ले साध, गुरु से मिले जो प्रीत अगाध ।

"भुजंगिनी मुद्रा"[25]

दो० देख सभी के चाव को, कही प्रभु जी बात ।
अगली मुद्रा सीख लो, चित्त लाय तुम तात ॥ ११९३

अन्तिम मुद्रा यह अब जानो, भुजंगिनी इस का नाम पहचानो ।
रोग पेट के जितने भाई, अजीर्णादि जो व्याधि कहाई ।
इस मुद्रा का कर अभ्यास, अवश्य रोग का होत विनास ।
इस मुद्रा की विधि लो जान, किञ्चित मुख को खोल लो आन ।
गले से पियो वायु बन धीर, उदर में पहुँचे जिमि समीर ।
प्रभु जी ने जिमि कर दिखलाया, भक्तों ने भी तिमि कर पाया ।
अन्त में प्रभु जी फिर समझाया, सब मुद्रा का गुण बतलाया ।
तीन ताप वा तीन जो दोष, मुद्रा करतीं उन का शोष ।

दो० नर तन के जो संग लगे, जन्म जन्म के दोष ।
कर के मुद्रा योग की, मेटें उन का रोष ॥ ११९४क
इस विध तुम सब सीख कर, नित्य करो अभ्यास ।
बिना योग अभ्यास के, व्यर्थ समय का नास ॥ ११९४ख

इस विध प्रभु जी थे समझाते, नित्य योग अभ्यास कराते ।
भक्त उमड़ उमड़ कर आते, प्रभु जी से सब शिक्षा पाते ।

२५. भुजंगिनी मुद्रा—मुख को थोड़ा फैला कर गले के द्वारा वायु पिया करें। यह मुद्रा बुढ़ापे और मौत को दूर करती है। जितने उदर में रोग हैं तथा अजीर्ण आदिकों को विशेष कर भुजंगिनी मुद्रा शीघ्र दूर करती है। (घेरण्ड)

साधु गृहस्थी वृद्ध और बार, आती कभी कभी कोई नार ।
प्रभु सभी को योग सिखाते, भेद भाव न चित्त में लाते ।

३५. महात्मा ऋषि देवी और माता द्रौपदी देवी का प्रभु चरणों में आना

मर्यादा पुरुष मर्याद निभावें, देवियों को जब योग सिखावें ।
सुभद्रा सदा संग रह पाती, और सब साधन वही कराती ।
देवियों मध्य भया उत्साह, उपजी योग सीखन की चाह ।
दो देवियों का नाम बखानें, जिन को सब माता सम मानें ।
उन्होंने अपना जीवन अर्पा, योगेश्वर को सकल समर्पा ।

दो० ऋषि देवी और दौपदी, ये दोनों के नाम ।
धन्य जन्म उन का भया, लीना प्रभु से नाम ॥ ११९५

उन का वर्णित होय चरित्रा, लेखनी जिस से भये पवित्र ।
दोनों सचमुच देवी रूपा, मानो ऋक् की ऋचा सरूपा ।
देव लोक की दोनों रूहें, आयीं "चरण प्रभु के छूहें" ।
सब रूहों के प्रभु जी स्वामी, घट की जानें अन्तर्यामी ।
अपने हित जिन को उतरायें*, मोह ममता से मुक्त करायें ।
देह के मात पिता वा नाती, प्रभु छुड़ावें इन की थाती ।
निज चरणों में देवें वास, समावे जोत में जोत प्रकास ।
ऐसी दो ये रूहें आयीं, शलभ दीप पै थीं मिट पायीं ।
प्रभु जी दीपक योग थी जोत, दोनों मिटीं उसी उद्योत ।

*अर्थात् जब प्रभु अवतार लेते हैं तो उस काल जिन रूहों को सहायक रूप संसार में लाते हैं।

दो० रूहें दो इक रूप थीं, आयीं प्रभु के पास ।
शक्ति रूप दोनों भयीं, योग मिला उन खास । ११९६

अमृतसर दोनों का वास, नगरी भू पर जो है खास ।
जहां प्रभु का भया अवतार, स्वर्ग से उतरीं वे देह धार ।
बाल विधवा सम इक इतिहास, श्रवण किया प्रभु का यश खास ।
जीवन दुखमय प्रभु दुख भंजन, अंधकार में मिला निरञ्जन ।
अलग अलग वे दोनों आईं, शिष्या रूप प्रभु अपनाईं ।
योग की दीक्षा प्रभु से पायी, गूढ़ ध्यान समाधि लगायी ।
अहर्निश गुण प्रभु के गावें, सत्संग में वे चित्त लगावें ।
सारे साधन प्रभु से पाये, आसन योग भी सिद्ध कराये ।
शिक्षा षट्कर्मन की पायी, योग मुद्रा भी प्रभु सिखायी ।

दो० योग साधन सब सीख कर, लीना सेवा नेम ।
सीखें उन से देवियां, नित्य बढ़े मन प्रेम ॥ ११९७

दोनों ने यह नेम निभाया, सेवा हो निज धर्म बनाया ।
सद्गुरु रूप प्रभु को पाया, जीवन का सब रोग नशाया ।
नित्य समय पर वे थी आतीं, सकल योग-सेवा कर पातीं ।
प्रभु किरपामय किरपा करते, शोकादि सब उन का हरते ।
जग से उन का मुख मुड़ पाया, प्रभु चरणी ही चित्त लगाया ।
ध्यान भजन में समय बितावें, पाठ ग्रंथों का कर पावें ।
लगन योग की उन मन लागी, आत्म जोत अन्तर की जागी ।
वैधव का सब शोक भुलाया, अद्भुत ज्ञान प्रभु से पाया ।

श्रीमती योगिनी माता द्रौपदी देवी जी
अपनी एक शिष्या सहित

योग साधन सब सीखकर, लीना सेवा नेम।
सीखें उनसें देवियां, नित्य बढ़े मन प्रेम॥ दोहा ११९७

योग योगेश्वर प्रभु अवतारी, शरण आयें जो नर वा नारी ।
रोग शोक संताप मिटावें, करुणा निधि करुणा कर पावें ।
दो० करुणा कीनी नाथ जो, कथनी में किमि आय ।
जगत कलंकित जीव को, देते दिव्य बनाय ॥ ११९८

ऋषि देवी का ध्यान बतावें, समाधि में जो प्रभु दिखलावें ।
है यह सकल प्रभु की दाया, आ शरणी जो कुछ उस पाया ।
ध्यान में लोक लोकान्तर देखे, सभी देव थे धट में पेखे ।
कई कई दिन समाधी लगाय, देह वा जग की सुध विसराय ।
रहत पड़ी जिमि हो बिन प्राण, पहुंचत वह किसी और जहान ।
दिव्य रूप वहां प्रभु का देखे, सकल देव पूजा में पेखे ।
प्रभु चरणों में आपा वार, ग्रहण करे आनन्द अपार ।
ध्यान के अनुभव क्या बतलावें, जो जो उस को प्रभु दिखलावें ।
दो० ऋषि देवी का ध्यान जो, वर्णन में किमि आय ।
ऋषि अवस्था दीन प्रभु, सत्पात्रा को पाय ॥ ११९९

ऋषि अवस्था ऋषि देवी पायी, अद्भुत उस की सकल कमायी ।
निज रूप में दिव्यता पाती, प्रभु चरणी फिर लय हो जाती ।
जटा रूप में प्रभु दिख पाते, धोती कुर्ता ही वे लाते ।
कभी उपदेश योग के देते, देवी देव सीख को लेते ।
जागृत कुण्डली फिर करवाते, शंख मृदंग नाद सुनवाते ।
कभी चतुर्भुज प्रभु हो जाते, शंख चक्र गदा ले पाते ।
लेते पद्म को भी वे धार, लीला प्रभु की मिले अपार ।

लीलाधारी लीला करते, आनन्द अपार भक्त मन भरते ।

दो० लीला प्रभु की देखती, विसर देह अध्यास ।
गुरु योगेश्वर मिल गये, पूजी मन की आस ॥ १२००

सब देवों के दर्शन पाये, विश्व देव दर्शन हित आये ।
सब वरदान थे दे कर जाते, अथवा वर हित वे थे आते ।
नित्य नवीन दर्शन कर पाती, प्रभु प्रेम में वह रंग राती ।
कभी देवों के दर्शन पावे, कभी स्वयं देव बन जावे ।
सदा प्रभु के दर्शन करती, चित्त में भक्ति प्रेम रस भरती ।
गणपति ब्रह्मा आदी देव, शंकर जटाधारी महादेव ।
सब उस के नित संग ही रहते, योग क्षेम सभी थे वहते ।
शंकर कभी थी वह बन जाती, निज को गौरी रूप भी पाती ।

दो० देख पलटा रूप निज, होय बड़ी हैरान ।
चन्द्र मस्तक में उगा, महिमा क्या भगवान् ॥ १२०१

जटाजूट निज सिर पै देखे, गंगाधार प्रवाहित पेखे ।
तन पै जिमि हो भस्म रमायी, देखे ऋषि देवी विस्मायी ।
निज तन की फिर सुध ले आवे, प्राकृत तन देखे मुस्कावे ।
कभी देखे वह निज को ऐसे, प्रभु के रूप बनी हो जैसे ।
पुरुष रूप ही अपना पावे, पगड़ी धोती सब पहरावे ।
ऋषि देवी अचंभित होती, प्रभु सिमरन में सुध बुध खोती ।
गीत प्रभु के हर दम गाती, रात दिवस में भेद न पाती ।
क्षण क्षण में प्रभु दर्श दिखाते, ऋषि देवी को चरणि लगाते ।

श्रीमती योगिनी महात्मा ऋषि देवी जी

गोपिन का जिमि मन भया, कृष्ण रूप में लीन।
मीरा को जिमि मिल गये, वन-माली प्रवीन॥ दोहा १२०२ ख

ऋषि देवी को तिमि मिले, दुःख भंजन भगवान।
लेखन में किमी आ सके, प्रभु जी का यह दान॥ दोहा १२०२ ग

दो० चरण पर्श को पाय कर, हो आनन्द विभोर ।
ऋषि देवी का मन भया, घन में जिमि वन मोर ॥ १२०२क

गोपिन का जिमि मन भया, कृष्ण रूप में लीन ।
मीरा को जिमि मिल गये, वन – माली प्रवीन ॥ १२०२ख

ऋषि देवी को तिमि मिले, दुःख भंजन भगवान ।
लेखन में किमि आ सके, प्रभु जी का यह दान ॥ १२०२ग

लेखन में किमि लिख दिखलायें, जो कृपा प्रभु जी कर पायें ।
गंवारिन गोपिन को अपनावें, मीरा हित विष सुधा बनावें ।
नरसी की जो हुंडी तारें, तुलसी दास हित धनुष को धारें ।
कूप गिरा अंध सूर निकारें, ऋषि देवी की सुध वे धारें ।
ऋषि देवी का दुःख सब टारा, माया का उन फंद निवारा ।
वैधव आया दुःख न लाया, यह समझो प्रभु की ही दाया ।
विधवा नारी योगिन कीनी, जग पूज्या देवी कर दीनी ।
ऐसी प्रभु की दिव्य जो दाया, जिस समझी उस सुख को पाया ।

हो० दया प्रभु की जान इमि, मन में ले जो धार ।
प्रभु चरणी तब मन रमे, पावे सुख अपार ॥ १२०३

ऋषि देवी भयी देवी रूपा, योग भक्ति मिली परम अनूपा ।
प्रभु की महिमा बहु विस्तारी, दुखिया नारी जिस थी तारी ।
नर नारीं सब चरणी आवें, दर्शन प्रभु के कर के जावें ।
प्रभु का आश्रम भया सुतीरथ, योग गंगा के प्रभु भगीरथ ।
उच्च हिमालय से जो लाये, बस्तिन के नर नार तराये ।

ऋषि देवी उसी गंग नहावे, जन्म जन्म के कर्म क्षय पावे ।
दर्शन हित बहु नारिन आतीं, धन्य धन्य गुरु देव कह पातीं ।
कलयुग में सतयुग उतराया, सब को यह प्रत्यक्ष हो पाया ।

दो० प्रत्यक्ष समाधि देख कर, श्रद्धा में हो लीन ।
भक्ति-मती जो देवियां, सीखें योग नवीन ॥ १२०४

देविन की जब बाढ़ ही लागी, गुरु माता जो परम सुभागी ।
शिक्षा सब को किमि दे पाये, साधन योग के किमि सिखाये ।
ऋषि देवी को प्रभु उठाया, सेवा कर्म में उसे लगाया ।
नारिन उस से शिक्षा पावें, योग से अपने रोग नशावें ।
मन के संशय भ्रम जो भारे, उन के सब ऋषि देवी निवारे ।
जीवन तत सब योग के साधन, प्रभु कृपा से मिला जो दिवधन ।
देविन में सब वितरण करती, सीख प्रभु की वह अनुसरती ।
कोई देवी जब रोग बताती, गुरु माता को वह कह पाती ।

दो० माता प्रभु से पूछती, साधन की तब बात ।
प्रभु की आज्ञा जो मिले, ऋषि देवी सिखलात ॥ १२०५

प्रभु जी की जिमि आज्ञा पाती, ऋषि देवी तिमि योग कराती ।
नारिन के बहु रोग नशाये, सुखी भयीं वे तन सुख पाये ।
देह सुखी मन भी सुख पावे, देह के संग ही मन भी जावे ।
प्रभु चरणों में चित्त तब लागे, प्रभु कृपा से दुःख जब भागे ।
देह के मन के रोग जो भारे, नारिन के ऋषि देवी निवारे ।
वचन मधुर व्यवहार भी मीठा, करुणा सागर प्रभु जी डीठा ।

उत्तम गुण ऋषि देवी में देख, कृपा नाथ ने कीन उल्लेख ।
"ऋषि देवी है ऋषि स्वरूपा, निष्ठा योग में मुनि अनुरूपा ।
दो० ऋषि देवी निज नाम को, सार्थक है कर दीन ।
मन तो अन्तर है मुखी, तन सेवा में लीन ॥ १२०६क
ऋषि देवी है महात्मा, महान करे यह काम ।
प्रभु कृपा से योग में, बीते काल तमाम" ॥ १२०६ख
सुन कर प्रभु के शुभ वचन, वेद वचन साक्षात ।
"महात्मा जी" इस नाम से, ऋषि भयी विख्यात ॥ १२०६ग

द्रौपदी देवी का प्रसंग, श्रवण करें हम इस के संग ।
उस ने था इक अचरज देखा, कलयुग में जो किसी न पेखा ।
इस देवी की गाथ पुनीत, गान करें हम मिल यह गीत ।
अमृतसर जो नगरी प्यारी, उस में जन्मी कन्या न्यारी ।
कला स्वर्ग की धर्त पै आयी, मात पिता के मन जो भायी ।
धर्म शिक्षा माता ने दीनी, शास्त्रों की उस शिक्षा लीनी ।
धर्म प्रसंग ही उसे सुहाय, ऐसी सीख माता से पाय ।
प्रौढ़ भयी माता मन आया, वर सुयोग्य से उसे विवाहया ।

दो० धर्म परायण द्रौपदी, धर्म रूप पति देव ।
धर्म रूप उस गृहस्थ में, हो मात पिता की सेव ॥ १२०७

तीन वर्ष सुख रूप बिताये, दिवस न सुख के जात लखाये ।
दिन पाछे फिर रात जो आयी, आयु तरुण भयी दुखदायी ।
इक विपदा घन घोर जो छायी, जीवन आश प्रकाश लुकायी ।

आंधी काल की ऐसी चाली, पति व्रता विधवा कर डाली ।
क्रौंची का संग क्रौंच से छूटा, बये बयी का नीड़ ही टूटा ।
उस पीड़ा को कौन बखाने, जिस तन लगी वही तन जाने ।
द्रौपदी का सुहाग नशाया, सब जग में अन्धेरा छाया ।
रही मौन की मौन बेचारी, ऐसी चोट विधाता मारी ।
विधाता ने जब दुःख में डाला, सद्गुरु ने तब आन संभाला ।
द्रौपदी† की जिन लाज बचायी, द्रौपदी के वही बने सहायी ।

दो० आय स्वपन में एक दिन, दिव्य दिखाया रूप ।
राम लाल भगवान ने, किरपा कीन अनूप ॥ १२०८

दिव्य रूप प्रभु जी प्रकटाया, द्रौपदी का उन शोक नशाया ।
प्रात उठी वह सोचन लागी, दिव्य रूप की जो अनुरागी ।
कहां मिलें मुझ को भगवान, जिन का देखा तेज महान ।
सोच यही उस मनहिं समायी, ममता जग की सब बिसरायी ।
ध्यान भजन में समय बितावे, ग्रन्थ पढ़े और सबन सुनावे ।
सत्संग में वह नित ही जाती, भजन प्रेम से प्रभु के गाती ।
उस के मन में लगन यह भारी, मिल पायें बस कृष्ण मुरारी ।
नूतन भक्ति का प्रवाह, नित्य बढ़े मन प्रेम अथाह ।

दो० अथाह प्रेम था मन बसा, लागी लगन गंभीर ।
भक्ति के रंग मे पगी, किसे जनावे पीर ॥ १२०९क

†पाण्डवों की पत्नी

प्रभु जानें उस की दशा, जिनका दीना दान ।
भक्ति के प्रसाद को, पाता भक्त सुजान ॥ १२०९ख
इक दिन थी वह जा रही, दुर्ग्याना की ओर ।
कर्म कौर, श्री मुलख जी, मिल पाये इक ठौर । १२०९ग
मुलख राज का दर्शन पाया, द्रौपदी मन अचंभा छाया ।
"नेत्र तीजा देखूं माई, यह कौन है सन्मुख भाई ।
शिव के ही त्रय नेत्र जानूं, और न किसी के मैं पहचानूं ।
ऐसा कौन कर्म मैं कीना, शिव ने मुझ को दर्शन दीना" ।
मन ही मन उस माथ झुकाया, भोले नाथ को मनहिं ध्याया ।
मधुर वचन तब मुख से बोली, श्रद्धा पूरण वाणी खोली ।
"कर्म कौर तुम बहन प्यारी, कीनी किधर की आज त्यारी ।
संग में दिव्य तेज को धारी, कौन पुरुष यह महा अवतारी ।
दो० महापुरुष यह कौन हैं, चलते तेरे संग ।
परम तेजस्वी रूप है, हारे देख अनंग" ॥ १२१०
कर्म कौर ने तब बतलाया, मुलख राज का परिचय कराया ।
"सद्गुरु राम लाल महाराज, उन के शिष्य मुलख ये राज ।
समाधि अवस्था प्रभु से पाय, रहें सदा यह ध्यान लगाय" ।
प्रभु का नाम सुना जब उस ने, मन अनुमान लिया तब तिसने ।
दिव्य तेजस्वी जिन के सेवक, क्यों न बनूं मैं उन की सेवक ।
कर्म कौर से परकट बोली, गुत्थी उस निज मन की खोली ।
"कर्म कौर तुम बहन सुभागी, प्रभु चरणी जिस प्रीति लागी ।
मुझ को भी तुम दर्श कराओ, सद्गुरु के मुझे द्वार ले जाओ ।

दो० सत्गुरु के मैं द्वार पर, चल कर तेरे संग।
साध संगत पग धूल ले, लावूं अपने अंग" । १२११

कर्म कौर के संग वह चाली, गुरु चरणों की सुधी संभाली ।
गुरु चरणों का दिव्य ध्यान, करता जन का दुख से त्रान ।
द्रौपदी के मन में उत्साह, होने की थी पूरण चाह ।
प्रभु जी के आश्रम में आयी, मिले न उस को वहां सुखदायी ।
मन्द भाग उस निज दुत्कारा, जिस से मिला न सद्गुरु प्यारा ।
दिवस सातवें प्रभु जी आवें, भक्तों को तब मिल वे पावें ।
ऋषिकेश थे प्रभु पधारे, देखें भक्त राह थे सारे ।
सात दिनों में लौट के आये, द्रौपदी ने तब दर्शन पाये ।
कर कृपा प्रभु दीक्षा दीनी, मनोकामना पूर्ण कीनी ।

दो० भयी पूर्ण थी कामना, द्रौपदी मन संतोष ।
प्रभु कृपा जब होत है, मिटत भक्त का रोष । १२१२क
ऋषि देवी और द्रौपदी, तारीं जिस भगवान ।
अखिलेश्वर उस नाथ को, कोटिश कोटि प्रणाम ॥ १२१२ख

३६. योग प्रचार का विस्तार तथा ऋषिकेश में आश्रम की स्थापना

आगे का इतिहास बखानें, प्रभु लीला मन में ले आनें ।
कई भक्त प्रभु चरणी आये, योग के कार्य में जुट पाये ।
प्रभु जी से निर्देश वे पाते, सेवा में थे सब लग जाते ।
कुछ के नाम का करें उल्लेख, अवसर मिला था जिन्हें विशेष ।

न्यामतराम वकील था भारी, सेवा में निज वेला हारी ।
लाला हुकुमचन्द जी आर्य, प्रभु आज्ञा पा करता कार्य ।
मानकचन्द कपूर भी जानो, प्रभु जी का अनुयायी मानो ।
दीनानाथ पराशर ज्ञानी, प्रभु जी की जिस नीती मानी ।
वेणी प्रसाद जैन अनुयायी, प्रभु जी की उस सेव कमायी ।

दो० सेवा प्रभु जी की मिली, योगभक्ति का काम ।
सफल किया निज जीवन, नाशे पाप तमाम ॥ १२१३

उन थी कीनी बहुत कमायी, वृत्ती सेवा में जो लायी ।
सेवा भये परम गुणकारी, गुरु मिलें जब योगी भारी ।
प्रभु जी ने फिर कीनी दाया, आश्रम ऋषिकेश खुलवाया ।
ऋषीकेश ऋषियों की भूमि, पाप ताप से जो है ऊनी ।
प्रभु जी ने वहां लीनी भूमि, देवगणों ने आय जो चूमी ।
अमृतमय खुदवाया कूप, आश्रम बना वह परम अनूप ।
दर्शन हेत भक्त जन आवें, साधन योग योगी कर पावें ।
देश विदेश के साधक आवें, प्रभु जी सब को योग करावें ।
रोगी भी जो शरण में आवें, योग से अपना रोग दुरावें ।

दो० योग साधन से करें, रोगों का उपचार ।
महाप्रभु की शक्ति का, भया वहां संचार ॥ १२१४

असाध्य रोगिजन वहां आये, मरणासन भी कुछ आ पाये ।
प्रभु शक्ति से भये निरोग, विस्तार किया प्रभु ऐसा योग ।
अमृतसर भी प्रभु जी जाते, ऋषिकेश वे फिर आ पाते ।

यू. पी. और पंजाब प्रदेश, इन पर कृपा भयी विशेष ।
प्रभु जी के फिर मन में आयी, †लवपुर में भी शाख चलायी ।
कृष्ण गली में लिया मकान, आश्रम खोल दिया उस स्थान ।
लवपुर के अब जागे भाग, योग साधन वहां होने लाग ।
मुलखराज वहां भये आचार्य, प्रभु आज्ञा पा करते कार्य ।

दो० आचार्य बने श्री मुलखजी, प्रभु का पा निर्देश ।
लवपुर कीन सुशोभित, कीर्ति मिली विशेष ॥ १२१५

देश विदेश की जनता आती, मुलखराज से योग को पाती ।
मुलखराज साधन सिखलाते, नेती धौती सकल कराते ।
प्राणायाम की देते सीख, सतपात्र की करें परीख ।
रोगी आय निरोग हो जाते, योग का जीवन तब अपनाते ।
त्याग तमोगुणखाने सारे, शुद्धाहार के बनते प्यारे ।
खान पान जब शुद्ध हो जाये, सन्मार्ग पर नर चल पाये ।
योग आसन को जो अपनावें, तन की सुस्ती सकल भगावें ।
तन को हो रखना जो ठीक, खोजो गुरु योगी निर्भीक ।
योगी गुरु की शरण जो आवे, सकल देह के रोग नशावे ।

दो० योगिराज श्री मुलख जी, योगेश्वर प्रभु राम ।
एक रूप ही जान लो, रूप परम अभिराम ॥ १२१६

बुद्धी वही परम हितकारी, रूप प्रभु का जानन हारी ।
आंख वही जो प्रभु को देखे, वाणी सो जो प्रभु गुण लेखे ।

†लवपुर (लाहौर) में आश्रम खुलने का विस्तार सहित वर्णन । दोहा १३३७ से आगे देखें ।

कान वही जो सुनें प्रभु नाम, माथ झुके प्रभु चरणि ललाम ।
चित्त वही प्रभु सिमरन करता, मन मानो प्रभु मूर्ति धरता ।
हाथ करें सद प्रभु सेवकायी, तन माने न प्रभु जुदायी ।
चरण जो चल कर आश्रम आवें, संत सदा उन के गुण गावें ।
मुलखराज में सब गुण ऐसे, अग्नि मध्य तेज हो जैसे ।
प्रभु की शक्ति मुलख समायी, मुलख राज को सदा सुहायी ।

दो० मुलखराज में प्रभु बसें, निर्मल शक्ति रूप ।
ध्वजा योग की धार ली, मुलख मुलख के भूप ॥ १२१७

३८. ग्रन्थ माला का प्रकाशन

अमृतसर में प्रभु विराजें, कारज कर्ता संग में साजें ।
योगाश्रम कार्यालय सजाया, लोहगढ़ भीतर जो मन भाया ।
कारज कर्ता वहां मिल पाते, सभी आगन्तुक सूचन पाते ।
ग्रन्थ माला का भया प्रकाशन, सुन्दर पुष्प थे जो मन भावन ।
प्रथम पुष्प का नाम यह जानो, "योग प्रेम वर्षा" पहचानो ।
दिव्य अलौकिक जिस में राग, बढ़ावें प्रभु चरणी अनुराग ।
सिद्ध पुरुष की रचना भाई, मुलखराज रची सुखदायी ।
योग भक्ति वैराग्य बढ़ावें, इन गीतों को जो जन गावें ।

दो० मुलखराज ने राग ये, रचे समाधि काल ।
श्रद्धा से जो नर पढ़े, भक्ति मिले तत्काल ॥ १२१८क

"योग भक्ति दर्पण" पढ़ो, दूजा पुष्प महान ।
जीवन में गुण धार कर, योगी बनो सुजान ॥ १२१८ख

इस पुस्तक का विषय महान, दीनबन्धु जो दीना ज्ञान ।
चंचल मन किमि वश में आवे, आनन्द प्राप्त किमि हो पावे ।
सत्गुरु किमि संचारे शक्ति, ईश्वर में किमि हो अनुरक्ति ।
ब्रह्म विद्या का कहां भण्डार, मुक्ति तत्व का क्या है सार ।
मार्ग कौन जो नर अपनावे, ब्रह्म विद्या वा मुक्ति पावे ।
इस पुस्तक में प्रभु रच दीना, श्रद्धावान भक्तों ने चीना ।
मन प्राण किमि होवें एक, दुविधा रहे न उन में नेक ।
ऊंकार की करें उपासन, कर के ग्रहण शुद्ध जन आसन ।
इस पुस्तक में सब लिखवाया, दूजा पुष्प जो प्रभु छपवाया ।

दो० दूजा पुष्प महान है, योग भक्ति का ग्रन्थ ।
अनुभव प्रभु जी ने लिखे, वेद शास्त्र कर मन्थ ॥ १२१९

पुष्प तीजा मुद्रित करवाया, "योग सिद्धि" जिस नाम धराया ।
इस में स्पष्ट कीना यह ज्ञान, योग पाय नर बने महान ।
योग से धर्म कर्म की सिद्धि, योग से पावे नर सब रिद्धि ।
देह का सुख योग से होवे, आत्मिक शांती योग से गोवे ।
सामाजिक उन्नति का आधार, योग है सब सुखों का सार ।
गुरु योगी से मिलता योग, कलेश मिटें वा नाशे रोग ।
बालक अथवा वृद्ध हो भाई, कर सकें सभी योग कमाई ।
योगी दर पर सब का मान, निर्धन अथवा हो धनवान ।

दो० भेद भाव न योग में, सब पर कृपा होय ।
शरण अनन्य जो नर गहे, खाली जाय न सोय ॥ १२२०

"नेत्र ज्योति प्रकाशिनी नेति", नेत्रों की किमि बढ़ती ज्योति ।
चौथा पुष्प यही बतलाये, योग के साधन वह समझाये ।
रोग आंख वा कान के सारे, नज़ला और ज़ुकाम जो भारे ।
पायोरिया और कण्ठ के रोग, अथवा दमा और क्षय रोग ।
पागलपन आदि बीमारी, योग की नेती हरती सारी ।
उर्दू हिन्दी में छपवायी, पुस्तक यह बहु जन सुखदायी ।
इस पुस्तक को पढ़ता जो जन, रमता उस का साधन में मन ।
जनता पर कीना उपकार, इस पुस्तक का कर प्रचार ।

दो० "नेत्र ज्योति प्रकाशिनी, नेती" जिस का नाम ।
आकार लघु पर ग्रन्थ है, योग साधन का धाम ॥ १२२१

३९. योग साधन आश्रम छेहरटा का निर्माण

इस विध चार पुष्प बनवाये, ग्रंथ माला में जो सज पाये ।
भक्तन ने फिर अर्ज़ गुजारी, "प्रभु जी है इक विनय हमारी ।
अपनी भूमि ले कर नाथ, आश्रम रच कर करें सनाथ ।
खुली जगह में आश्रम होवे, बाग बगीचा उस में होवे ।
पानी हेत कूप खुदवावें, गुफा बने जहां समाधि लावें ।
नाथ करें आश्रम निर्माण, ले कर अपना खुला स्थान ।
सुन कर बात भक्तन की सारी, शांत भाव से प्रभु वीचारी ।
कृपा नाथ मुख से फरमाये, वचन जो भक्तन के मन भाये ।

दो० भक्तन की सुन बात को, फरमाये भगवान ।
"करेंगे सद्गुरु आप की, चित्त इच्छा प्रवान ॥ १२२२

हम को सुन्दर स्थान बताना, जैसा तुम सब मन अनुमाना ।
प्रभु जी कृपा जभी कर पायें, आश्रम की रचना करवायें" ।
लागे भक्त विचारण स्थान, घूमी नगरी सकल महान ।
नगर से बाहिर भी जा देखे, बहुत स्थान उन्होंने पेखे ।
एक मती न सभी कर पाये, जहां निर्मित आश्रम हो जाये ।
प्रभु जी स्वयं निकले इक प्रात,[1] संग भक्त ले पांच वा सात ।
पश्चिम की वह ओर सिधारे, रेल की पटड़ी का मग धारे ।
लगभग पांच मील चल पाये, निकट छेहरटे के तब आये ।

दो० देख छेहरटा ग्राम को, और छेहरटा साहब[2] ।
मुख से फरमाये प्रभु, देखो यहां की छाब[3] ॥ १२२३

अति मनोहर खेत सुहावें, संग रेल जो चलते जावें ।
निकट में बस्ती है मन भायी, गुरुद्वार भी संग सुहायी ।
आश्रम रचना यहां करावें, यहीं भवन इक प्रभु बनावें ।
यहीं पर लेंगे भूमि भाई, यह स्थली हम को है भाई ।
भक्तों ने जब सुनी यह वाणी, उन के चित्त न खुशी समानी ।
जय जय कार सभी कर पाये, देवों ने भी नाद बजाये ।
खुशी खुशी तब नगर पधारे, मन के भाव कहे उन सारे ।
"आश्रम बने छेहरटे माहीं, सुनी बात है प्रभु मुख ताहीं ।
सुख का धाम छेहरटा ग्राम, आश्रम रचें प्रभु परम ललाम ।

1. या प्रभु स्वयं पधारे इक प्रात
2. छेहरटे का गुरुद्वारा
3. छवि, सुन्दरता

दो० परम पावन इक आश्रम, रचें प्रभु उस ग्राम ।
प्रभु मुख से हम ने सुनी, वाणी सच की धाम ॥" १२२४

सुन कर भक्तन मुख संदेश, शक की बात न जिस में लेश ।
सभी भक्त प्रभु चरणी आयें, आश्रम की आ बात चलायें ।
बने छेहरटे कब प्रभु धाम, हमें बतावें सुख के धाम ।
हमें प्रभो कुछ सेवा दीजो, कृपानाथ कृपा यह कीजो ।
सेवा में तन मन धन लागे, उसी सेव के हम अनुरागे ।
आश्रम का अविलंब निर्माण, करें प्रभो हो जग कल्याण ।
श्रवण करि प्रभु उन की बात, कहन लागे तब जग के त्रात ।
"भक्तन हेत प्रभु बनवावें, योगाश्रम निर्माण करावें ।

दो० योगाश्रम निर्माण हित, लेंगे अब हम भूम ।
हम ने जा कर देख ली, इधर उधर सब घूम ॥ १२२५क
गुरु द्वार के पास ही, सन्मुख माल गोदाम ।
खरीद करें प्रभु भूमि को, देकर उचित दाम ॥" १२२५ख

आदेश प्रभु का सब सुन पाया, भक्त जनों के मन को भाया ।
प्रभु सेवक सेवा अनुरागे, प्रभु की आज्ञा में सब पागे ।
विस्तृत भूमि खण्ड इक लीना, जिमि आदेश प्रभु था दीना ।
भक्त अनेकों देखन जावें, दर्शन भूमि के कर पावें ।
चार दीवारी वहां बनवाई, शुद्ध माटी की कीन लिपाई ।
कर कमलों से पेड़ लगाये, मौलसरी और बिल सुहाये ।
और कई प्रभु वृक्ष लगाये, सदा रहें जो छाया छाये ।

मिस्त्री और राज तब आये, निर्माण भवन का जो कर पाये।
सुन्दर कमरे और दालान, इस विध भवन का भया निर्माण।
एक गुफा की कीन खुदायी, समाधि हेत प्रभु बनवायी।

दो० आश्रम का निर्माण कर, रहें प्रभु उस ठोर।
नर नारी तब नगर से, आवें नित ही भोर॥ १२२६

रहें प्रभु आश्रम के माहीं, नित्य भक्त दर्शन हित आहीं।
साधन योग आकर कर पाते, रोगी रोग मुक्त हो जाते।
चिन्ता ग्रस्त आवें नर नारी, शांति मिले उन को यहां भारी।
सीख धर्म की प्रभु जी देते, नत मस्तक हो भक्त थे लेते।
कहते प्रभु सब को समझाय, सब के ध्यान में सीख जो आय।
गृहस्थधर्म का कर्म बताते, निज कर्तव्य सब को समझाते।
"सुख का मूल धर्म को जानो, छोड़ धर्म सुख कहीं न मानो।
मात पिता जो धर्म को जानें, आत्म रूप संतति को मानें।

दो० संतति को जो जानते, अपना ही स्वरूप।
लालन पालन सब करें, पड़ें न मोह के कूप॥ १२२७

पुत्र का कर्तव्य लो जान, जिस से हो सब का कल्याण।
मात पिता को दे सन्मान, गौरी शंकर सम उन मान।
पति पत्नी को इस विध जाने, रूप महालक्ष्मी का माने।
पत्नी पति को ईश्वर माने, बड़ा न उस से किसी को जाने।
भाइयों से नर करे प्यार, समझे उन को भुजा अपार।
मित्र को नर ऐसे देखे, अपना हृदय उस को पेखे।

गुरु को सर्वोत्तम सन्माने, पार ब्रह्म उस को ही माने ।
एक बात और लो जान, सांप समान शत्रू को मान ।
हृदय में निज शत्रू देखो, काम क्रोध हैं उन को पेखो ।
दो० काम क्रोध मद लोभ भी, और मोह लो जान ।
छिप कर अन्तर में रहें, करें जीव का हान ॥ १२२८
अनेक विध प्रभु जी समझाते, सीख धर्म की थे दे पाते ।
कुछ भक्त वहां चल कर आते, चरणों में ही कुछ रह पाते ।
रहें मुलख राज प्रभु चरणीं, गोपालानन्द रहत प्रभु शरणी ।
प्रभु जी की सब आज्ञा वहते, ध्यान समाधि में भी रहते ।
प्रभु चरणों से न होय वियोग, इस को समझें महान वे योग ।
एक भी क्षण न होयें न्यारे, ऐसे प्रेमी प्रभु के प्यारे ।

४०. कांगड़ा जाना

इक दिन प्रभु जी कही यह बात, कांगड़ा को हम चालें प्रात ।
मुलख राज भी भया तयार, गोपालानन्द ली आज्ञा धार ।
दो० दोनों को संग लेय कर, चल दिये प्रभु प्रात ।
पठानकोट की ओर से, मार्ग सब को ज्ञात ॥ १२२९
पठानकोट जब रेल पधारी, वहां पर प्रभु जी कीनी लारी ।
पठानकोट प्रसिद्ध प्रदेश, पर्वत संग सटा यह देश ।
अनेक दिशा से यहां को जावें, जम्मू चम्बा और सिधावें ।
कांगड़ा और कुलूत प्रदेश, यहीं से जाते लोग हमेश ।
कांगड़ा का इक ग्राम सुहाना, पालम्पुर था प्रभु जी जाना ।

लारी उसी ओर को चाली, सन्मुख हिमगिरि छवि निराली ।
ग्राम कई मग में फिर आये, नूरपुर शाहपुर सुहाये ।
मुलखराज को प्रभु बतलाया, चम्बा का भी मग दिखलाया ।
शैल श्रेणी वाम जो न्यारी, धारा चम्बा की यह सारी ।
सन्मुख पर्वत श्वेत जो सोहे, धौलाधार यह मन को मोहे ।

दो० पर्वत धौलाधार पै, रहत सदा हिम छाई ।
सन्त जनों के भाल में, ज्यों सत्व अधिकाई ॥ १२३०

कई नाले थे मग में आये, झर झर जिन में नीर सुहाये ।
हरे भरे बहु खेत भी देखे, नर नारी बहु कृषक भी पेखे ।
पशु खेतों मे चरते पाये, जिन के संग रहें चरवाहे ।
सीधी सड़क कहीं पै प्यारी, मुड़ी तुड़ी भी कहीं पै भारी ।
कहीं पै आती थी उतरायी, कहीं पै लारी चढ़त चढ़ाई ।
सुन्दर दृश्य कहीं मन भाये, कहीं भयंकर खाई खाए ।
पर्वत का इमि मार्ग जापे, ऊंच नीच जीवन की नापे ।
नगर कांगड़ा तब चलि आया, लारी यहां कुछ डेरा लाया ।

दो० कई मार्गन का संगम, नगर कांगड़ा जान ।
लारी यहां पै रुकत है, यात्री बदलें यान ॥ १२३१

गोपालानन्द पूछी तब बात, "अनन्त महिमा तव हे जगत्रात ।
अनेकानेक प्रदेश बनाये, दृश्य अनेकों जग में छाये ।
हारूं जभी निहारूं माया, तव रचना का अन्त न पाया ।
कौन नगर है प्रभु यह आया, पर्वत मध्य जो मन को भाया ।

श्री मुख से प्रभु जी बतलाया, गोपालानन्द को ज्ञान कराया ।
"तीरथ भूमी इस को जानो, विश्ववन्द्य है स्थल यह मानो ।
कांगड़ा इस का है अभिधान, राजवंशों का यह इस्थान ।
दुर्गा के यहां सभी उपासक, प्रजा होय या होवे शासक ।

दो० दुर्गामाता यहां बसे, इस दुर्गम प्रदेश ।
आय भक्त जो शरण में, मिटता सकल क्लेश ॥ १२३२क
इस नगर से दूर कुछ, ज्वाला जी का धाम ।
रूप ज्वाला में बसत, दुर्गा दिव्य ललाम ॥ १२३२ख

यह नगरी हम फिर दिखलावें, लौटत बार जभी यहां लावें ।
अब तो पालम्पुर को जावें, भक्त प्रतीक्षा में रह पावें" ।
वहां से लारी जब चल पायी, वादी अती मनोहर आयी ।
उस वादी को कर के पार, पालमपुर पहुंचे सुखसार ।
भक्त प्रतीक्षा में थे ठाड़े, पुष्पमाल ले आगे बाढ़े ।
चरण स्पर्श प्रभु के कीने, डाल पुष्प सुकण्ठ में दीने ।
आदर मुलखराज का कीना, गोपालानन्द को वन्दन कीना ।
इक बंगले में प्रभु ठहराये, दर्शन हित अनेकों आये ।

दो० दर्शन हित आय सभी, मिल कर नर वा नार ।
निरख प्रभु के रूप को, महिमा कथें अपार ॥ १२३३

दर्शन हित नर नारी आवें, शिक्षा प्रभु की सुन कर जावें ।
योग की महिमा प्रभु बतलाते, देय दृष्टांत सभी समझाते ।
धर्मों का आधार बतायें, "योग है सब का सार" जतायें ।

वर्णाश्रम के सारे धर्म, योगी जाने उन का मर्म ।
योग बिना सब कर्म अधूरे, मिलें न फल बिन योग से पूरे ।
योग बिना ब्रह्मचर्य व्यर्थ, गृहस्थ का न बिन योग के अर्थ ।
योग बिना वनप्रस्थ असार, योग बिना सन्यास निःसार ।
योग बिना ब्राह्मण न सोहे, क्षत्री का मन युद्ध में मोहे ।
माया वैश्य को नरक में डारे, योग बिना शूद्र अहंकारे ।

दो० सब धर्मों का मूल है, योग साधना नाम ।
साधे जब नर योग को, पूर्ण होवे काम ॥ १२३४

इक दिन प्रभु जी ने बतलाया, योगी का वृतांत सुनाया ।
योगी हो जब देश का राजा, सुखी प्रजा करे शुभ काजा ।

४१. राजा कुबुद्ध उपाख्यान

चन्द्रपुरी नगरी इक जानो, मध्यदेश के मध्यदेश पहचानो ।
नृप वहां का स्वर्ग सिधारा, शोक भया प्रजा मन भारा ।
मुख्य मन्त्री ने सभा बुलाई, एक मति सब यह प्रकटाई ।
राजासन पर उसे बिठायें, जीव जन्तु जिस से सुख पायें ।
शूरवीर होवे जो भारी, समझे प्रजा निज संतति सारी ।
शर्त सभी ने मिल यह लायी, नगर पास जो सिंह दुःखदायी ।
उसे मार कर जो नर लावे, वही नगर के राज को पावे ।

दो० वही वीर इस नगर का, राजा बने सुधीर ।
मार सिंह को नगर की, हर लेवे जो पीर ॥ १२३५क

उसी नगर में बसत था, क्षत्री एक कुबुद्ध ।
कूसंगत के कारणे, उलट भयी थी बुद्ध ॥ १२३५ख

बाल अवस्था में ही भाई, स्वर्ग सिधारे पिता व माई ।
कुसंगत में पड़ बालक बिगड़ा, कौन संवारे बिगड़ा तिगड़ा ।
आकर में पड़ी मणि हो जैसे, बिना संवारे संतति तैसे ।
उस का करिये जब संस्कार, तभी हो उस का मूल्य अपार ।
माता शत्रू पिता वह बैरी, दे शिक्षा न संतति सुधारी ।
कुबुद्ध बालक को कौन सुधारे, मात पिता थे स्वर्ग सिधारे ।
टेढ़ी चाल ही वह चल पाता, जिस किसी को गाली सुनाता ।
अस्तीक ऋषि योगिवर भारा, चन्द्रपुरी में आन पधारा ।

दो० चन्द्रपुरी में आनकर, ठहरा एक स्थान ।
दर्शन हित नर नार सब, सेवा में नित आन ॥ १२३६

कुबुद्ध भी एक दिवस चलि आया, उपद्रव उस के चित समाया ।
ऋषिवर ध्यान में था आसीन, कुबुद्ध ने उस को गाली दीन ।
ऋषि न कुछ भी बात उचारी, कुबुद्ध ने एक लात दे मारी ।
ऋषि ने जब निज आंख उघारी, वाणी मधुर यही कह डारी ।
"हे बालक तुम विपदा मारे, दैव तुम्हें राजा कर डारे" ।
यह वरदान ऋषि से पाया, लोगों को फिर आन सुनाया ।
लोग कहें "तुम धन्य हो भाई, वाणी सिद्ध की सच हो जाई" ।
वन में इक दिन उस जा देखा, सिंह मरा पड़ा वहां पेखा ।
न जाने किस ने था मारा, कुबुद्ध ने उस का सर उतारा ।

दो० सिर सिंह का लेय कर, पहुँचा मन्त्री पास ।
मन्त्री सभा बुलाई, मिले भेद जो खास ॥ १२३७क
तभी सभासद चल दिये, लेकर संग कुबुद्ध ।
दीख पड़ा शव सिंह का, मरा पड़ा जो शुद्ध ॥ १२३७ख

लौट सभी फिर नगर में आये, राज तिलक उस का कर पाये ।
कुबुद्ध बना देश का राजा, त्यागा न निज दूषित काजा ।
अत्याचार करे वह नित्त, भरे न फिर भी उस का चित्त ।
घोर अकाल देश में व्यापा, कुबुद्ध को फिर भी कुछ न जापा ।
रंग रलियां वह सदा मनावे, ध्यान प्रजा का चित्त न लावे ।
प्रजा दुखी ऋषि पास पधारी, कही योगी को विपदा भारी ।
अस्तीक ऋषि सुन लीनी बात, बोला "लौट चलो तुम तात ।
बदल जाए गा सारा हाल, भजो प्रभु जो करे संभाल ।

दो० योगी के आदेश से, पा पूर्ण संतोष ।
प्रजा नगर को आ गई, त्याग हृदय का रोष ॥ १२३८

तब अस्तीक समाधि संभाली, कुबुद्ध प्रति शक्ति निज घाली ।
स्वप्न में उस को खूब लताड़ा, प्रात उठा वह शोक में गाढ़ा ।
ऋषि अस्तीक ध्यान में आया, दर्शन हित वह तुरत सिधाया ।
जा कर उस के चरणी लागा, "क्षमा करो मैं देव अभागा" ।
अस्तीक ऋषि कहा "हे महाराज, उदण्ड भये तुम पा कर राज ।
प्रजा पीड़न ही तोरा काम, मदहोश रहत हो प्रातः शाम ।
ईश्वर भजन न तुम को भावे, साध संगत न तुम्हें सुहावे ।

नीती की कुछ बात न जानो, मन्त्रिन की तुम एक न मानो ।
गो ब्राह्मण की रक्षा भाई, तेरे चित्त न लेश समाई ।

दो० जिस राजा की नीति हो, प्रजा विरोधी भाई ।
रह न सकत उस राज की, चिर काल प्रभुताई ॥ १२३९

ऋषि ने बहु विध शिक्षा दीनी, नीती की सब बात थी कीनी ।
साम दान दण्ड भेद बताया, राजधर्म उस को समझाया ।
नीती पा कर बनो सुबुद्ध, त्यागो अपना नाम कुबुद्ध ।
यदी हमारी बात न मानो, सदैव दुखी रहोगे जानो ।
सुन कर ऋषि की बात यह सारी, कुबुद्ध राज ने मनहिं विचारी ।
बालपना उस दीना त्याग, धर्म कर्म में गया वह लाग ।
धर्मशाल क्षेत्र बनवाये, कुआं बाग तालाब खुदाये ।
वेद पाठ वा यज्ञ आरंभे, रोपे शिक्षा हेत स्तंभे ।

दो० धर्म कर्म वा यज्ञ से, ऋषि कीना संतुष्ट ।
देव सभी प्रसन्न भये, जो हुए थे रुष्ट ॥ १२४०क

अकाल भया सब दूर, वृष्टि भयी सुकाल ।
कुबुद्ध के सुराज्य में, प्रजा भयी खुशहाल ॥ १२४०ख

परजागण अस्तीक बुलाये, पूछ ऋषि फिर उन से पाये ।
"कष्ट भया क्या है अब दूर, बखान करो सब हाल जरूर" ।
सुन कर जनता कीन बखान, "स्वामी किरपा भयी महान ।
कुबुद्ध भया अब श्रेष्ठ आचारी, तुम ने टाली विपद हमारी ।
अत्याचार वह करे न अब, ब्राह्मण प्रसन्न रहत हैं सब ।

दूर भया आकाल का भय, नौकर करें न नय का क्षय ।
सुखी बसे अब प्रजा सारी, हे योगी यह दया तुम्हारी ।
दया यदि न तुम कर पाते, अत्याचार में हम पिस जाते ।

दो० तेरी कृपा से प्रभो, विपदा भयी विनाश ।
वाणी से किमि कह सकें, पूजी मन की आश" ॥ १२४१

योगी ने कुबुद्ध बुलाया, परजा का सब हाल सुनाया ।
योगी से दिव्य चक्षु पाये, दृश्य अलौकिक सन्मुख आये ।
समाधि में इक राजा देखा, अत्याचारी जोय विशेषा ।
उस की फिर उस मृत्यु देखी, भयंकरता की सीमा पेखी ।
कुत्ता उस को नोच के खाता, हाय हाय था वह चिल्लाता ।
फिर इक और राजा को देखा, वह भी था अन्यायी विशेषा ।
यम दूतों ने उस को पकड़ा, सीखों से था उस को जकड़ा ।
तैल कड़ाहों में तब डाल, नीचे दीनी अग्नि बाल ।

दो० दृश्य अनेकों देख कर, भया कुबुद्ध बेहाल ।
खुली आंख जब ध्यान से, पटका चरणों भाल ॥ १२४२क
योगी को कहने लगा, हे गुरु महाराज ।
राज्य से दुर्गत होत है, करूं न मैं अब राज ॥ १२४२ख
मुझे फकीरी दीजिये, करूं भजन वा पाठ ।
तप में जीवन बीतसी, त्याग राज का ठाठ ॥ १२४२ग

गुरु योगी ने तब समझाया, कर्मों का सब भेद बताया ।
"तेरा नाम कुबुद्ध न भाई, अब से हो सुबुद्ध सुखदाई ।

सत चित जानो अपना रूप, सत को समझो शुद्ध स्वरूप ।
चित्त को चेतनता लो जान, वृत्ति रूप करो पहचान ।
वृत्ति कलिष्ट अकलिष्ट हो भाई, कलिष्ट वृत्ति होती दुःखदाई ।
अकलिष्ट वृत्ति से सुख को पावे, योग मार्ग में वही लगावे ।
उस का भी जब होय निरोध, चित्त का होवे पूर्ण शोध ।
सत में सत तब जा समाये, जीव कैवल्य को पा जाये ।
होते कर्म उस के निर्मूल, वृत्तियां ही कर्मों का मूल ।

दो० वृत्तियों का निरोध कर, शुद्ध रूप हो जाय ।
सत का सत में वास हो, योग युक्त कहलाय" ॥ १२४३

सुबुद्ध ने सुनी योग की बात, और भया उस को साक्षात ।
गुरु चरणी तब कीना वास, जग से पूरण भया निराश ।
मन्त्री राज की करत संभाल, सुबुद्ध बिताता योग में काल ।
गुरु विदाई वहां से लीनी, पूरण शिक्षा उस को दीनी ।
सुबुद्ध समाधि नित्य लगावे, तीन काल का ज्ञान वह पावे ।
बैठ समाधि सब कुछ जाने, मित्र शत्रू सभी पहचाने ।
सुनो एक समय का हाल, एक वणिक था वहां उस काल ।
पड़ोसो राज्य से था वह आया, उस के मनहिं विचार समाया ।
"सुबुद्ध राज्य की सुध न लेत, योग में रहत सदैव अचेत ।
नृप हमारा यदी चढ़ आवे, इस के राज्य को वह हथियावे ।

दो० नृप हमारा शूर है, जाय सहज ही जीत ।
इस राज्य को वह गहे, उपजे मम मन प्रीत ॥ १२४४

एक पत्र मैं आज पहुंचाऊं, उस में वर्णन सब कर पाऊं ।
लश्कर लेय यदि चल आवे, युद्ध बिना ही राज्य को पावे" ।
ऐसा मन में उस ने धार, पत्र इक तब लिपि कर डार ।
भया सुबुद्ध को योग से ज्ञान, योग की महिमा कथी महान ।
वणिक को उस ने तुरत बुलाया, उस के कर्म को खोल जताया ।
कहा उस ने तुम गलत विचारा, अपराध सरासर है यह भारा ।
लो अब तुम को मैं बतलाऊं, योग की शक्ति तुम्हें दिखाऊं ।
देखो अब जिमि पावो ज्ञान, मिटे तुम्हारा सब अज्ञान ।

दो० दुर्ग तुम्हारे राज का, रहत जहां सब सैन ।
पश्चिम से वह गिर पड़े, आज रात को ऐन ॥ १२४५क
दूत भेज कर जान लो, सत्य क्या यह बात ।
योग शक्ति सब कर सके, उस की परम बसात ॥ १२४५ख

सुबुद्ध ने था जिमि बतलाया, योग शक्ति से किला गिराया ।
दूत संदेश भी ले कर आया, ठीक समय उस ने बतलाया ।
बताया सेठ को उस यह हाल, "स्वयं गिरा गढ़ रात्रि काल" ।
सुना सेठ ने जब वह हाल, सुबुद्ध के चरण गहे तत्काल ।
कहा "आप नहीं मानुष नाथ, आप ने कीनी धरत सनाथ ।
कौन देव हैं आप महाराज, प्रकटे यहां करने क्या काज" ।
कहे सुबुद्ध "मैं देव न भाई, योगि गुरु की कर सेवकाई ।
उस से है यह शक्ति पायी, प्रजा पालन करूं बन न्यायी ।
योग से बड़ा न कुछ मैं जानूं, योग की शक्ति उत्तम मानूं ।
योगी गुरु मिलें जब नर को, सब सामर्थ्य मिले उस तन को ।

दो० सामर्थ्यवान योगी गुरु, मिल पाये जब भाई ।
सब सिद्धी दासी बनें, गुरु की है प्रभुताई ॥ १२४६क
राज की रक्षा हम करें, बिना शस्त्र बिन सैन ।
योग से शक्ति है मिली, देखी तुम निज नैन" ॥ १२४६ख

सेठ सुनी राजा की बात, देखी योग की परम बसात ।
नत मस्तक हो वचन उचारा, "हे देव मैं दास तुम्हारा ।
योग की शिक्षा मुझ को दीजो, मोह माया मेरी हर लीजो ।
यदी मुझे अधिकारी पाओ, निज चरणों में मुझे लगाओ" ।
कहा सुबुद्ध "हे सेठ सयाने, हैं अधिकारी सब जन माने ।
चारों वर्णों के नर नार, योग का सब को है अधिकार ।
योग से वञ्चित जो है रहता, अथवा जो विपरीत है कहता ।
अपना जन्म व्यर्थ गंवावे, मानव तन का मूल्य न पावे ।
तुम को मैं अधिकारी जानूं, योग्य योग साधन के मानूं" ।

दो० इस विध उत्तर देय कर, सिखलाया तब योग ।
सेठ योग करने लगा, त्याग जगत के भोग ॥ १२४७क
सभी भक्त थे सुन रहे, लाकर पूर्ण ध्यान ।
अद्भुत इस प्रसंग को, विलक्षण जिस में ज्ञान ॥ १२४७ख

प्रभु जी ने तब वर्णन कीना, आगे का प्रसंग कह दीना ।
सुबुद्ध समाधी में रह पाता, राज्य का शासन भी कर पाता ।
कर्म प्रजा के सभी लखावे, भला बुरा सब सन्मुख आवे ।
पूर्ण न्याय तभी हो पावे, राजा योगी जब बन जावे ।

मन विश्वास प्रजा उपजावे, सत्य असत्य का भेद लखावे ।
एक दिवस था यों हो पाया, चोरों ने धन बहुत चुराया ।
धन सेठ का लूट के धाये, बहु ढूंढे पर मिल न पाये ।
मिले न चोर धन हरने हारे, मन्त्री आदि सब थक हारे ।
दो० मन्त्री आदी थक गये, साल बीत गये चार ।
राजा के दर आय तब, कीनी सेठ पुकार ॥ १२४८
"हे राजन तुम योगी भारी, तुष्ट प्रजा है तुम से सारी ।
ऐसा कौन अपराधी जग में, खोज सको न जिस को पलमें ।
चार वर्ष बीतन को आये, चोर मेरे हैं मिल न पाये" ।
दया दृष्टि तोरी हो जाये, राजन काम मेरा बन पाये ।
सुन कर सेठ की आओज़ारी, राजा ने मन बात विचारी ।
तब उस ने क्षण ध्यान लगाया, चोरी का दृश्य सन्मुख आया ।
मन्त्री को फिर लीन हुंकार, प्रकट किया उस को वह सार ।
"पश्चिम दिक में है जो मन्दिर, तुम ठहरो जा उस के अन्दर ।
दो० जाकर तुम वहां ठहरना, गुप्त रूप में मीत ।
रात्रि को वहां जन मिलें, चौर्य ही जिन की रीत ॥ १२४९
रात को तस्कर हैं वहां आते, चौर्य कर्म जो हैं कर पाते ।
सेना को दे दो आदेश, जा पहुंचे वह उस प्रदेश ।
चोरों को तुम पकड़ के लाना, सन्मुख मेरे पेश कराना ।
कोई वहां से भाग न पाये, ऐसे सब तुम करो उपाये" ।
राजाज्ञा को शिर पर धार, मन्त्री ने सब कीनी कार ।

तीन चोर उस पकड़ के लाये, राजा के जो पेश कराये ।
धूरत चोर एक हुश्यार, करन लगा वह दृढ़ तकरार ।
"मैं तो चोर नहीं महाराज, बात कहूं सब खोल के आज ।

दो० आज बताऊं खोल कर, मिला सुअवसर नाथ ।
मन्त्री यह महाराज का, झूठ बतावे गाथ ॥ १२५०क
पाछल इस की दुश्मनी, चाहे निकालन आज ।
पकड़ लिया इस घेर कर, क्षमा करें महाराज" ॥ १२५०ख

सुन राजा ने उस की वाणी, कहा डपट कर "ए अभिमानी ।
मैं जानूं सब तेरा हाल, सुनो बताऊं सब इस काल ।
दस चोर तुम नगर में आये, सात चोर वापस मुड़ पाये ।
बाकी बचे जो तुम यहां तीन, शस्त्र सब ने कूप से लीन ।
शस्त्रों से तुम लैस हो आये, सेठ के घर में फिर घुस पाये ।
सेठ का द्रव्य बहुत ले भागे, मन्दिर पीछे आ सब पागे ।
भूमि में फिर द्रव्य दबाया, मन्त्री पर अब दोष लगाया ।
तुम अपराधी पापी भारी, प्रजा कीनी आतंकित सारी ।

दो० प्रजा आतंकित है करी, नित्य करो अपराध ।
वह दण्ड अब पाओ तुम, भोगो कष्ट अगाध ॥ १२५१क
ऐसा दण्ड तुम को मिले, कर न सको फिर पाप ।
मानव तन को पाय कर, क्यों पावो अभिशाप" ॥ १२५१ख

राजा कहे "मन्त्री सुन पाओ, इन सब की तुम भुजा कटाओ" ।
"जो आदेश" मन्त्री कह पाया, उस ने तुरत जल्लाद बुलाया ।

जिस ने उन को आगे कीना, संग लेय कारज कर दीना ।
मन्त्री ने फिर विनय उचारी, "आप तो हो योगी पापारी ।
ऐसा घोर दण्ड क्यों दीना, पाप अल्प दण्ड बहु इन लीना ।
मेरा संशय नाथ निवारो, अज्ञानी को नीति सिखारो" ।
कहे राजा "हे सचिव सयाने, इन के कर्म सकल हम जाने ।
इन के भाग्य लिखा था ऐसा, जैसा कर्म मिले फल तैसा ।
पूर्व जन्म इन धेनु घाती, हाथ कटे जो हो गोघाती ।

दो० गो हत्या के कारणे, लिखा यही इन माथ ।
जन्म जन्म के कर्म जो, रहते नर के साथ" ॥ १२५२क

प्रभु जी का उपदेश सुन, और समझ दृष्टांत ।
बोध सबन मन ऊपजा, और मिटी विभ्रांत ॥ १२५२ख

आगे प्रभु जी ने फरमाया, योगी का प्रभाव बताया ।
योगी राजा जब हो आवे, प्रजा न्याय तब पूरण पावे ।
जो तथ्य कोई जान न पावे, योग समाधी ज्ञान करावे ।
एक दिवस की घटन सुनावें, न्याय शुद्ध का परिचय करावें ।
था सुबुद्ध समाधि आसीना, हित प्रजा के मन था लीना ।
विलप रही इक कन्या देखी, शूद्रों से अपहृत वह पेखी ।
शूद्र खींच खींच ले जाते, उस का रुदन न ध्यान में लाते ।
देख सुबुद्ध समाधि ली खोल, सेवक को फिर दीना बोल ।
अमुक स्थान पै जा निर्बाध, कन्या सहित ला शूद्र साध ।

दो० सेवक ने तब जाय कर, लीना सबन हुंकार ।
मुड़ कर अरज़ गुज़ार दी, "आ गए सरकार" ॥ १२५३

राजा के तब पेशी पायी, कन्या दुःखी रहे विलपायी ।
मन्त्री को नृप ने बुलवाया, अपने संग उसे बिठलाया ।
प्रश्न शूद्र से नृप ने कीना, "क्यों अपहरण इसका तुम कीना" ।
शूद्र कहे "हे जग के स्वामी, यह पत्नी मम लज्जा नामी ।
एक वर्ष से है मम साथ, इस का जनक न माने नाथ ।
इस कारण कन्या लाचार, सौंपो मुझ को हे सरकार ।
मैं अपराध नहीं कुछ कीना, मन्त्री ने है निर्णय दीना ।
मन्त्री से पूछें सरकार, इन का निर्णय हो स्वीकार" ।

दो० सुन शूद्र की बात को, राजा करे विचार ।
मन्त्री ने तब कह दिया, "सत्य यही सरकार ॥ १२५४क
यह कन्या इस विप्र की, रहत शूद्र के पास ।
निर्णय मेरा ठीक है, दीना कर विश्वास" ॥ १२५४ख

राजा ने तब विप्र बुलाया, उस ने निज सब हाल सुनाया ।
कहें कन्या को तब जन नाथ, "रहती तुम क्यों शूद्र साथ" ।
कन्या रो कर कीन पुकार, "झूठ बात यह है सरकार ।
मैं न इस का संग कर पाऊं, यह छेड़त मैं दुःख को पाऊं ।
मम पिता जब अरज़ गुजारी, मन्त्री ने आज्ञा कर डारी ।
पराधीन मुझ को ले जाते, यदि आप न यहां बुलवाते ।
आप जगत के स्वामी नाथ, मेरी लाज आप के हाथ ।
मैं अबला बन्धन में आई, पड़ी धेनु जिमि बश कसाई" ।

दो० इतनी बात बताय कर, सिसक पड़ी वह बाल।
राजा ने निर्णय दिया, जो जानत सब हाल ॥ १२५५क

जो जानत सब हाल था, बैठ समाधी बीच।
शूद्र को कहने लगा, "हे नराधम नीच ॥ १२५५ख

तुम सरासर झूठ हो कहते, शासन का भी भय न वहते।
यह कन्या निर्दोष विचारी, तुम अपराधी पापी भारी।
आठ रोज की बात बताऊं, तेरा कृत्य मैं खोल सुनाऊं।
तेरे संग थे साथी तीन, जबरन पकड़ी कन्या दीन।
दैव योग से नर इक आया, उस ने तुम को भय दिखलाया।
कन्या छूट के तुम से भागी, घर में आ वह रोने लागी।
मन्त्री पास पिता तब आया, और तुम्हें फिर वहां बुलाया।
बात बना तुम ऐसी कीनी, मन्त्री की भी मति हर लीनी।

दो० न्याय मिला न जब इसे, रो रो करत पुकार।
ध्यान समाधी में हमें, दीख पड़ी तव कार ॥ १२५६क

दूत भिजाये हम तभी, पकड़ तुम्हें ले आये।
राखी अबला घेर थी, चैन किमि वह पाये ॥ १२५६ख

तुम कन्या को बांधते, अब तुम्हीं बन्ध जाओ।
दश वर्ष तक जेल में, रह कर दुःख को पाओ" ॥ १२५६ग

सुन कर ऐसे न्याय को, धन्य कहें सब लोय।
योगी राजा जब भये, अन्याय कभी न होय ॥ १२५६घ

प्रभु जी यह दृष्टांत सुनाया, जनता को शुद्ध बोध कराया ।
महिमा योग की प्रभु जी थापी, दूर भयी जो भ्रांति व्यापी ।

४२. कांगड़ा में श्री मुलखराज जी और श्री गोपालानन्द की समाधि अवस्था

प्रभु चलने की कीन तैयारी, इक प्रात उन पकड़ी लारी ।
कुछ भक्त संग में ही आये, वियोग प्रभु का न सह पाये ।
कांगड़े में फिर आ रुक पाये, "विश्राम करें" प्रभु (जी) फरमाये ।
धर्मशाल इक सुन्दर प्यारी, रात सबन ने वहीं गुज़ारी ।
प्रात भयी सज्जन दो चार, अमृतसर का इक इत्तार ।
जो थे वहां यात्रा हित आये, प्रभु जी से आ कर मिल पाये ।

दो० प्रभु जी से उन ने कहा, हम चले हैं नाथ ।
सन्मुख पर्वत शिखर पर, चलो हमारे साथ ।। १२५७

प्रभु जी ने विनती स्वीकारी, भक्तन ने उठ कीन तयारी ।
गोपालानन्द मुलख जी राज, कर के अपना बंद सब साज ।
प्रभु जी के वे संग हो लीने, श्वास श्वास प्रभु रस भीने ।
धीरे धीरे सब जन चाले, पार किये कुछ छुट मुट नाले ।
एक खड्ड को कर फिर पार, चढ़ने को सब हुए तयार ।
ऊंचा मारग विकट महान, शीघ्र हांफ जायें थे प्राण ।
प्रभु जी तो न थे थक पाते, दूजे सज्जन रुक रुक जाते ।
प्राणों की जिस कीन कमाई, उसे न बाधे शिखर चढ़ाई ।

दो० प्राणों को जन साध कर, पावे शक्ति अनूप ।
भयें सुगम उस को कर्म, यह रहस्य है गूप ॥ १२५८

सभी शिखर पर जब चढ़ पाये, देखें मिल तब दृश्य सुहाये ।
नगर कांगड़ा सब दिख पाये, सुदूर शैल पर हिम लखाये ।
नीचे अति गहरी इक खाई, मन हर नदिया परम सुहाई ।
दृश्य निरख ऐसे मन भाये, चित्त उन्हीं में लय हो जाये ।
मुलख जी आसन तब बिछाया, प्रभु जी को उस पर बिठलाया ।
आसन पर जब नाथ विराजे, सब जन उन के सन्मुख साजे ।
इक सज्जन फिर शब्द उच्चारे, स्तोत्र माता के अति प्यारे ।
मधुर भेंटें वह गाने लागा, निज सुध को तब मुलख त्यागा ।
गुरु चरणों में वह खो पाया, तीव्र सांस उस का चल पाया ।

दो० सांस मुलख का जब चला, तेज गति से प्राण ।
व्याकुल तब सब जन भये, चिन्तित हुए महान ॥ १२५८क
अभी सभी थे ताकते, मुलख राज का हाल ।
देख गोपालानन्द को, सभी भये बेहाल ॥ १२५८ख

उन की भस्त्रिका* चल पाई, लें श्वास जिमि अजगर भाई ।
उछल उछल धरती से जावें, जैसे दादुर चल दिखलावें ।
सब जन चिन्तित भये महान, इन को क्या हुआ भगवान ।
प्रभु जी से पूछें सब लोग, क्या यह मिरगी का है रोग ।
आप क्यों इन्हें यहां लाये, कौन इन्हें अब घर ले जाये ।
डाक्टर वैद्य को कौन बुलाये, हम जंगल में हैं यहां आये ।

*तेज गति से श्वास

यह तो रोग बड़ा दुखदायी, नर की सब सुध बुध खो जायी ।
ऐसा नर न बाहर जाये, जिस को मिरगी पड़ दिखलाये ।
आप यदी हम को बतलाते, इन को हम न संग यहां लाते ।

दो० बेसुध मिरगी में पड़े, दो जने ये नाथ ।
दिन तेजी से ढल रहा, कष्ट पड़ा इक साथ ॥ १२६०क

कष्ट पड़ा इक साथ है, क्या अब करें उपाय ।
इन्हें यहां पर छोड़ कर, चला भी किस विध जाय ॥ १२६०ख

सुन कर उन की चिन्तित वाणी, मुस्काये तब जग कल्याणी ।
निज मुख से फिर वचन उचारे, नाशें जिस विध संशय भारे ।
"व्याकुल न तुम होवो भाई, उतर सकें सुख से उतराई ।
मिरगी के ये रोगी नाहीं, ध्यान में प्रभु के मस्त दिखाहीं ।
चित्त एकाग्र जब हो भाई, पलट श्वास की गति तब जाई" ।
सुन कर प्रभु की बात वे लोग, कहें नाथ हम न इस योग ।
समझ बात जो आप की पावें, कर कृपा इन को ले जावें ।
कहें आप हैं योगी भारी, प्रकट करो अब शक्ति सारी ।
ऐसी कुछ शक्ति प्रकटावें, शिष्य आप के जिमि घर जावें ।

दो० इस दुविधा को आप ही, दूर करें महाराज ।
हमें न यह तो विदित था, इस विध होगा आज ॥ १२६१क

पड़े नगर से दूर हैं, दुर्गम यह प्रदेश ।
बेसुध संगी दो भये, चैन मिले न लेश ॥ १२६१ख

उन की व्याकुलता को देख, प्रभु जी ने मन कीन उल्लेख ।
समाधी से अब करें उत्थान, जिमि चालें यह निज इस्थान ।
कर कमल तब सिरों पै राखा, संग में मुख से उन को भाखा ।
चिरञ्जीव अब सुधी संभालो, निज इस्थान लौट के चालो ।
दोनों जन तब उठ के ठाड़े, मग पर उन के पग भी बाढ़े ।
नीचे की तब ओर वे धाये, एक भी पल वे रुक न पाये ।
चट्टानों से वे बच के निकले, पग न उन के कहीं भी फिसले ।
सब जन शिखर से उन को देखें, क्या आश्चर्य यह आंखों पेखें ।
दृष्टि से फिर भये विलीन, कौन जाने किस ओट में लीन ।

दो० वन की झाड़ झंखाड़ियां, और अनेक शिलांय ।
प्रभु जी के दो लाडले, कहीं न अब दिख पांय ॥ १२६२

फिर पकड़ा सब ने उस मग को, संभल संभल वे राखें पग को ।
पर्वत की उतरायी जानो, कठिन चढ़ाई से भी मानो ।
देह का भार धकेले आगे, संभले न तो गिरने लागे ।
ध्यान यदि कुछ चूक ही जावे, ठोकर खा खड्ड में गिर पावे ।
पांव थकें छाले पड़ जावें, धन्य मुलख जो दौड़ दिखावें ।
गोपालानन्द धन्य है भाई, गुरु आज्ञा जिस पाल दिखाई ।
पर्वत से जब उतर के आये, अंधेरा था कुछ दिख न पाये ।
मुलखराज को ढूंढन लागे, खोज गोपालानन्द की पागे ।

दो० दोनों जन जब न मिले, उपजी चिन्ता खास ।
एक साथ सब ने कहा, आकर प्रभु के पास ॥ १२६३क

नाथ अंधेरे में अब, ढूंढा ना ही जाय ।
जिस विध वे मिल पायेंगे, कह दें वही उपाय ॥ १२६३ख

कहा प्रभु जी "सुन लो ला कान, हैं यह चल रहे किन के प्राण ।
यह ध्वनि जो है सुन पाती, उन के श्वासों की है आती" ।
सभी जनों ने कान लगाये, "सूं सूं" को तब वे सुन पाये ।
सभी जनों ने जा कर देखा, समाधि में दोनों को पेखा ।
प्रभु जी ने वे तभी उठाये, "धन्य धन्य" सब जन कह पाये ।
प्रभु की शक्ति को उन जाना, ध्यान समाधी को पहचाना ।
योग विद्या की महिमा जानी, प्रभु की शरण सुखद मन मानी ।
धर्मशाल में तब वे आये, करि प्रणाम सभी चल पाये ।
नित्य कर्म में प्रभु जी लागे, सेव कर्म में मुलख भी पागे ।

दो० मुलखराज को जान लो, सेवा का ही रूप ।
आठ पहर निरखत रहे, प्रभु का रूप अनूप ॥ १२६४क
नित्य कर्म से निपट कर, प्रभु जी लाया भोग[1] ।
दोनों तब पाने लगे, प्रभु का शीतल भोग[2] ॥ १२६४ख

जग-विश्राम विश्रामहिं पागे, दोनों जन पग दाबन लागे ।
कुछ रात्री जब भयी व्यतीत, प्रभु कहा "अब सोओ मीत" ।
दोनों जन जा ध्यान समाने, सोये कब ना कोई जाने ।
प्रभु से पूर्व प्रात वे जागे, नित्य कर्म में वे तब लागे ।

१ भोजन किया ।
२ सद्गुरु के भोजन कर लेने पर बाकी का बचा हुआ अन्न ।

जगदाधार शय्या जब त्यागी, कीन दण्डौत चरण अनुरागी ।
प्रभु जी को तब स्नान कराया, चन्दन घिस कर तिलक लगाया ।
इतने में वे भी जन आये, रात्री को थे जो जा पाये ।
चरण स्पर्श उन प्रभु के कीने, सन्मुख प्रभु के तब आसीने ।
इक ने उन में बात चलायी, चित्त में थी जो सबन समायी ।

दो० चित्त में उन के बात थी, देखी थी जो शाम ।
देह की सुधि विसार कर, किमि करे नर काम ॥ १२६५

प्रश्न प्रभु से उस ने कीना, "नाथ अचंभा था हम चीना ।
जिन को रोग ग्रस्त हम जाना, सुगम लगा उन्हें था आना ।
अवस्था क्या वह नाथ बतावें, जिस में ये सुध को विसरावें" ।
प्रभु जी तब उन को समझाया, योग भक्ति का रहस्य बताया ।
"भक्ति प्रभु की जिस मन पागे, दैहिक दुःख न उस को लागे ।
तन मन से वह रहे निरोग, लेश न व्यापे उस को रोग ।
प्रभु को सिमर भूले संसार, दूर हो उस का दुःख अपार ।
प्रभु से करत जो निःछल प्यार, उसे सके जग में को मार ।
रक्षक प्रभु सदैव हों संग, गिर कर भी नहीं टूटें अंग ।

दो० फैंका था प्रहलाद को, शिखर से नीचे तात ।
प्रभु ने अपनी गोद में, ग्रहण किया आ गात ॥ १२६६क

ऐसे ही यह भक्त भी, रहें प्रभु में लीन ।
चित्त प्रभु में वीचरे, जिमि सागर में मीन ॥ १२६६ख

इन के रक्षक हैं भगवान, प्रभु आश्रित हैं इन के प्राण ।
इन की रक्षा प्रभु कर पाते, संकट इन के निकट न आते ।
विघ्न यदि कोई चल कर आवे, प्रभु की शक्ति इन्हें बचावे ।
जड़ चेतन जो जग के प्राणी, इन की करें न कुछ वे हानी ।
नभचर थलचर जीव कहलावें, बाधक इन को न हो पावें ।
ऊबड़ खाबड़ मारग जग का, ठोकर खावे जहां पग सब का ।
वहां से भी प्रभु इन्हें बचावें, ठोकर खा कहीं गिर न पावें ।
ध्यान मस्त जब मग पै चालें, इन के तन को प्रभु संभालें ।
दुर्घटना न होवे लेश, प्रभु रक्षा में रहें अशेष ।

दो० प्रभु रक्षा में ये रहें, रहें सदा ही युक्त ।
मित्रो समझो योग की, युक्ति करे यह मुक्त" ॥ १२६७क
नत मस्तक सब जन भये, प्रभु से पाकर बोध ।
प्रभु के दोनों बाल वे, लीन प्रभु की गोद ॥ १२६७ख

प्रभु जी ने तब उन्हें उठाया, चलने का आदेश सुनाया ।
उठ कर दोनों भये तयार, चल कर बस पर भये सवार ।
उस प्रदेश को कर के पावन, मुड़े प्रभु जी शोक नशावन ।
पठानकोट तब बस में आये, सुधासर गाड़ी पकड़ सिधाये ।
गाड़ी जब अमृतसर आयी, निरख प्रभु नगरी हर्षायी ।
देवों ने तब की अगवानी, जय जयकार करे दिव्य वाणी ।
दिव्य पुष्प देवन बरसाये, देख मुलख मन में हर्षाये ।
स्टेशन से प्रभु बाहिर आये, टांगा लेकर देव सिधाये ।
भये प्रभु उस में इस्वार, आये छेहरटा जगदाधार ।

दो० आश्रम को फिर आन कर, कीना नाथ सनाथ।
सभी भक्त जन आ गए, टेका प्रभु को माथ ॥ १२६८

भक्तन मन उमंग थी भारी, प्रभु पधारे जन हितकारी।
फूले हर्ष में नहीं समावें, मुड़ मुड़ दर्शन को सब आवें।
पूछें यात्रा की वे बात, घर जावें जब हो बहु रात।
जापें दिन न कुछ भी जाते, प्रीत प्रभु में सब मदमाते।
शिक्षा प्रभु जी योग की देवें, चित्त एकाग्र जिमि कर लेवें।
यम नियम को जिमि जन पालें, ऐसी सीख प्रभु दे डालें।
खान पान को राखो शुद्ध, सुधरे शुद्ध कर्म से बुद्ध।
योग से ही हो मन की शुद्धि, ज्ञान मिले जब निर्मल बुद्धि।

दो० निर्मल बुद्धि होत जब, मिलता है तब ज्ञान।
सद्गुरु के उपदेश से, सेवक का कल्याण ॥ १२६९

४३. गृहस्थी योग साधकों की दिनचर्या

इक भक्त ने प्रश्न यह कीना, जीवन बोध प्रभु से चीना।
"नाथ कृपा कर अब बतलाइये, दिनचर्या हम को समझाइये।
हम गृहस्थी सेवक सारे, नेम बतावो पालन हारे।
प्रातः कब हम शय्या त्यागें, ध्यान भजन में किस पल लागें।
कौन भाव दिन भर मन धारें, चंचल मन को किस विध मारें।
नींद में कितना काल बितावें, कौन समय साधन कर पावें।
आश्रम में किस काल हो आना, दर्शन प्रभु चरणों का पाना।
खोल के बात प्रभु बतलायें, जो कुछ पूछा सब समझायें।

दो० सेवक गण की नाथ जी, दिन चर्या बनवायें ।
जो पूछा न होय प्रभु, वह भी सब समझायें ॥ १२७०

सुनी प्रभु जब भक्त की बात, कहन लागे सब को साक्षात ।
यह प्रश्न बहु उत्तम कीना, सब के काम की बात को चीना ।
प्रथम पुरुषों को हम समझावें, देवियों के हित फिर बतलावें ।
प्रातः चार बजे उठ जाना, शौच कर्म सब कर के आना ।
दातुन नेति कर के आओ, तभी बड़ों को शीश झुकाओ ।
निश्चय मन में फिर यह घालें, गुरु आज्ञा दिन भर हम पालें ।
जीव मात्र का हित कर पावें, विपरीत कर्म से बच दिखलावें ।
पांच बजे आश्रम में आवो, बैठ ध्यान में चित्त लगावो ।
दूर नगर में यदि रह पावो, स्थान शुद्ध में ध्यान लगावो ।

दो० सात बजे तक ध्यान में, नित्य बैठ दिखलाओ ।
मानव देह को धार तुम, लाभ समय का पाओ ॥ १२७१

निज कामों में तब रम जाओ, ठीक समय नित भोजन पाओ ।
सभी कर्म हो धर्म अनुसार, पर हित सदा मन में लो धार ।
दृष्टी नीचे रख कर चालो, दस कदम तक इसे संभालो ।
इस विध चंचल मन हो शांत, उपजे बुद्धी में नहीं भ्रांत ।
नारी जब कोई सन्मुख आवे, दृष्टी नर की तब झुक जावे ।
सिमरे मन में निज भगवान, गुरु मन्त्र में लावे ध्यान ।
राखो कान भी तुम संभाल, निन्दा सुनो न किसी भी काल ।
वासनिक बातों का कर त्याग, शुद्ध बातों में हो अनुराग ।

दो० आंख कान को साध कर, लो नाक भी साध।
गंध उत्तेजक जो कहें, त्यागो वह निर्बाध ॥ १२७२

गंध उत्तेजक को तुम त्यागो, वाणी संयम में भी लागो।
वाणी सत्य व प्यारी होवे, सुन कर शीतलता मन गोवे।
मन्द शब्द जो तुम से बोले, तुम्हारा मन न फिर भी डोले।
वाणी संयम बहु गुणकारी, हरे यह नर की दुविधा भारी।
स्पर्श का संयम भी कर पाओ, निषिद्ध स्पर्श से देह दुराओ।
पर नारी से रहना दूर, पालन करो यह नेम जरूर।
स्पर्श न वस्त्र भी कर पाओ, ऐसा नेम कठोर बनाओ।
अब तुम समझो अगली बात, योग के आसन कर लो प्रात।
सायं काल भी कर दिखलाओ, अथवा एक ही समय लगाओ।

दो० योग आसन से देह में, बल का हो संचार।
श्रम हर साधन योग के, करो सहित सत्कार ॥ १२७३

गृहस्थी योगी साधकों की दिनचर्या

१. प्रातः चार बजे उठ कर भजन उच्चारण करते हुए नित्य कर्म नेति आदि से निपट कर आदर पूर्वक बड़ों को प्रणाम कर मन वचन कर्म से गुरु आज्ञा को पालन करना तथा जीव मात्र से हित की प्रतिज्ञा करना।

२. पांच बजे से सात बजे तक आश्रम में आ कर ध्यान में बैठना। अन्य नगरों में शुद्ध वायु मण्डल वाले स्थान पर बैठना। तत्पश्चात् गृह कार्य में प्रसन्नचित्त प्रवृत्त होते हुए अपने मस्तिष्क से धर्मानुसार अपनी तथा दूसरे जीवों की भलाई के काम करना।

३. दृष्टि १० कदम आगे और नीचे रख कर चलना। दायें बायें देखने से मन की चंचलता बढ़ती है। अकस्मात किसी देवी के शरीर पर दृष्टि पड़ने से तुरन्त नीचे कर जाप आरम्भ करना।

एक नेम तुम यह भी पालो, छः घन्टे की नींद ले डालो ।
शेष काल सब कर्म में बीते, क्षण बीतें न तुमरे रीते ।
कभी ध्यान में तुम लग जाओ, सत्संग में भी समय लगाओ ।
ग्रंथों का कभी कर लो पाठ, इस विध बीतें पहर जो आठ ।
यम नियम का जो निर्देश, मिला हो गुरु से जो उपदेश ।
दीना गुरु ने जैसा ध्यान, उसी में जानो निज कल्याण ।
सायं को नित नेम यह पालो, अपनी दिनचर्या पड़तालो ।
अपनी त्रुटियों पर पछताये, गुरु को भी फिर जा बतलाये ।

---

४. श्रवणेन्द्रिय से निन्दा तथा विषय वासना उत्पन्न करने वाले शब्दों को न सुनना तथा नासिका से उत्तेजक गन्धादि पदार्थ को ग्रहण न करना और वाणी से सत्य तथा प्रिय बोलना। कदापि कटु वचन न बोलना। अन्य के कटु वचन सुन कर भी द्वेष भाव न लाना।

५. अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त किसी देवी शरीर तथा उस के वस्त्र से स्पर्श तक से बचना। रसना द्वारा शरीर रक्षार्थ धर्मानुसार मिताहार करना।

६. ऐसे ही प्रत्येक कर्मेन्द्रिय द्वारा धर्मानुकूल व्यवहार करना तथा सत्य मार्ग से भ्रष्ट करने वाले विपरीत कार्यों से बचना तथा खेल कौतुक से अनासक्त रहना।

७. थकावट दूर करने व बलसंचार के लिए यथायोग्य यौगिक व्यायाम नित्य करना। व्यवहार कार व छः घन्टे की निद्रा के अतिरिक्त शेष समय स्वाध्याय सत्संग ध्यानादि में लगाना और यत्र तत्र उपदेश के लिए न भटकना।

८. गुरु आज्ञा के विपरीत धारणा और ध्यान से बचना तथा यम नियम रूप में नियत दिनचर्या को पूर्णतया पालन करना।

९. शयन से पूर्व दिनचर्या की पड़ताल करना तथा अपनी त्रुटियों पर पश्चाताप करना व समय मिलने पर गुरु चरणों में निवेदन करना। नित्य नियमानुसार ध्यान में बैठना व अपनी अवस्था नोट कर प्रति सप्ताह गुरु चरणों में निवेदन करना।

१०. उपर्युक्त नियमों के पालन में सर्व कठिनाईयों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करना और हर समय प्रसन्न रह कर सर्व कार्य धर्मानुसार ईश्वरार्पण करना॥ इति॥

दो० गुरु के आगे जा कहे, जो नर अपने दोष।
वह नर शीघ्र ही बने, गुण सागर निर्दोष ॥ १२७४क
नित्य ध्यान में बैठ कर, जो कुछ हो प्रतीत।
गुरु को जा बतलाय जो, उत्तम शिष्य की रीत ॥ १२७४ख

कर्म करो सब ईश्वर अर्पण, मलीन करो न मन का दर्पण।
मार्ग में जो बाधा आवे, गति तुम्हारी रोक न पावे।
जो कठिनाई चल के आवे, तेरे सन्मुख टिक न पावे।
ऐसा मन को करो कठोर, हारे तुम से विपदा घोर।
ये जो नेम हैं हम बतलाये, गृहस्थी नर को हैं समझाये।
अब बतलावें हम वे नेम, नारिन पालें जो सप्रेम।
दयानाथ प्रभु दीन दयाल, उद्धारें भक्तन को सब काल।
धर्म की शिक्षा सबन सुनावें, नर अथवा हों नारिन आवें।

"देवी साधिकाओं के नियम"

१. प्रातः काल चार बजे उठ कर पतिदेव का दर्शन, नमस्कार, परिक्रमा करना और नित्य कर्म अर्थात् स्वयं शौच स्नानादि करना तथा पतिदेव को कराना।

२. ५ बजे मे छः बजे तक पति देव का चरणामृत पान कर ध्यान में बैठना, ध्यान से निवृत हो कर दिन भर पति आज्ञा में रहने, सत्य बोलने, अन्य पुरुष का दर्शन न करने की प्रतिज्ञा करना और पति देव से दैनिक सत्संग में जाने की आज्ञा मांगना।

३. ६ बजे से ७ बजे तक बालकों के हृदय में शक्ति संचार करने वाला सदुपदेश देना और यौगिक व्यायाम कराना।

४. सात बजे से बारह बजे तक बड़ों की सेवा करना तथा घर के कामों से निपटना।

५. १२ बजे से ३ बजे तक विश्राम स्वाध्याय तथा ध्यान में बैठना।

६. ३ से पांच बजे तक आवश्यक कार्यों से निपट कर सत्संग में जाना तथा पांच बजे तक लौट आना।

४४. देवी साधिकाओं के लिए नियम

दो० नारिन के जो धर्म हैं, मर्यादा अनुसार ।
दयानिधि कथने लगे, दया चित्त में धार ॥ १२७५

योग नेम को नारी धारे, प्रातः चार बजे उठ डारे ।
पति दर्शन हो पहला काम, झुक कर करे उस को प्रणाम ।
शौच आदि फिर करके आवे, आ कर पति को स्नान करावे ।
छः बजे तक ध्यान लगाना, योग भक्ति की गंग नहाना ।
दृढ़ प्रतिज्ञा फिर कर पाये, दिन भर सत्य को पाल दिखाये ।

---

७. पांच बजे से नौ बजे तक गृहकार्यों से निपट कर दिन भर के कामों की पड़ताल, किसी के अन्तःकरण को दुखाने, इर्षा, द्वेष, असत्य भाषणादि कार्यों को स्मरण कर पतिदेव से अपराध की क्षमा याचना तथा पश्चाताप करना।

८. ९ से १० बजे तक पति सेवा, हरि कथा, सत्संग, स्वाध्याय स्वयं और पति देव द्वारा करना, कराना और श्रवण करना।

"उपदेश"

९. निन्दाचुगली, तथा पथ भ्रष्ट करने वाले कर्मों से बचना और परस्पर मिलाप से प्रत्येक जीव के साथ "जी" शब्द से संबोधन करते हुए सत्य और प्रिय भाषण करना। शक्ति स्वरूपा कन्या और बालक का पालन पोषण करने में तथा सद्विद्या के देने में भेद भाव रखना महान पाप है।

१०. सर्व सत्कार्य धर्मानुसार ईश्वरार्पण करते हुए हर समय प्रसन्न रहना चाहिए। दृष्टि को आगे और नीचे रख कर चलना तथा वाणी पर संयम रखना ध्यान में सहायक होता है।

"योग साधक साधुओं की दिनचर्या"

१. प्रातः तीन बजे से उठ कर शौच स्नानादि से निपट कर ध्यानारूढ़ होने से पूर्व जल ले कर दृढ़ प्रतिज्ञा करना कि मन वचन कर्म से गुरु आज्ञा पालन कर काम क्रोधादि को जीत इन्द्रियों का दमन करूंगा। किसी से ईर्षा द्वेष न रखूंगा। यह प्रतिज्ञा कर सात बजे तक ध्यान में बैठना।

पति आज्ञा में दिन भर रहना, पर पुरुष का दर्श दुराना ।
मन में ऐसे धार संकल्प, पति से विनय करे यह अल्प ।
"दैनिक सत्संग में मैं जाऊं, नाथ की आज्ञा को जो पाऊं" ।

दो० पति की आज्ञा पाय कर, सभी करे वह काम ।
बच्चों को उपदेश देय, करे योग व्यायाम ॥ १२७६

बच्चों को भी योग कराये, उन के देह निरोग बनाये ।
सात बजे इस काम से निपटे, घर के कामों में फिर चिपटे ।
बारह बजे तक घर के काम, सेव बड़ों की कर अभिराम ।
भोजन से जब निपट के आये, विश्राम देह को तब दे पाये ।
पाठ करे फिर चित्त को लाकर, ध्यान धरे दृढ़ आसन ला कर ।
तीन बजे तो ध्यान से उठ कर, घर का काम करे चित्त लाकर ।

---

२. सात बजे से नौ बजे तक शारीरिक उन्नति के लिए साधन करना और करवाना।

३. नौ बजे से बारह बजे तक योग साधन सम्बन्धी अनुभव लिखना तथा योग भक्ति विषयक ग्रन्थों का गुरु आज्ञानुसार अध्ययन।

४. ११ से १२ बजे तक भोजन विश्रामादि।

५. १२ से ३ बजे तक सद्गुरु व ईश्वर भक्ति का गुणानुवाद कर ध्यानमग्न रहना।

६. तीन से चार बजे तक गुरु को ध्यान की स्थिति सुनाना और आगे बढ़ने का उपदेश ग्रहण करना।

७. चार से छः बजे तक शारीरिक साधन स्वयं करना और करवाना।

८. छः से सात बजे तक भोजन, भ्रमणादि।

९. सात से नौ बजे तक गुरु देव से उपदेश ग्रहण करना।

१०. नौ से तीन बजे तक ध्येय में वृत्ति स्थित कर सो जाना। और सोने से पूर्व अपने सारे दिन के कार्यों की पड़ताल करना तथा विपरीत आचरण के लिए धारणा द्वारा गुरु चरणों में क्षमा प्रार्थी होना, नोट कर लेना और मिलाप पर गुरु चरणों में निवेदन करना।

सत्संग की जब बेल हो आये, उस में जा कर बैठ दिखाये ।
सत्संग से जब हो निवृत्त, घर के काम में हो प्रवृत ।

दो० घर के कामों में रहे, नारी जो प्रवीण ।
सुख सदन तब घर बने, बरसे सुख नवीन ॥ १२७७क
नौ बजे तक सब करे, घर के काम जो होंय ।
फिर बैठ वह सोच करे, अपने दोष जो होंय ॥ १२७७ख

मन में सोचे सुघड़ वह नार, दोष युक्त क्या हैं मम कार ।
ईर्षा द्वेष कर्म क्या कीना, असत भाषण में क्या मन दीना ।
क्या मैं किसी का मन दुखाया, क्या कुछ पाप तो न कर पाया ।
निज कर्मों पै करे विचार, शुभ संकल्प वह ले मन धार ।

"विशेष नियम"

१. दृष्टि दस कदम आगे नीचे रख कर चलना। मातृशक्ति देवी शरीर के दर्शन स्पर्शादि से बचना तथा सहसा दर्शन होने पर दृष्टि लौटा प्रणाम कर मन में जाप करना और सर्व संसार को आत्म दृष्टि से देखना।

२. श्रोत्र को परनिन्दा से बचा गुरु जी के उपदेश तथा भगवद्भक्ति गुणानुवाद में देना तथा सांसारिक वार्तालाप के समय भी ध्यान मग्न रहना।

३. सर्वदा सत्य तथा प्रिय बोलना। मादक पदार्थों का त्याग कर सात्विक भोजन मात्रा रूप में लेना।

४. निषिद्ध और विषय वासना जनित स्पर्श तथा गन्ध से सर्वथा बचना।

५. योग मार्ग को एक मात्र लक्ष्य बनाये रखना।

६. ब्रह्मचर्य को पूर्णतया पालन करना तथा यम नियमों का पालन करते हुए बाहर भीतर से शुद्ध रहना और शृंगार, सुगंधादि से दूर रहना।

७. द्वन्दों को सहन कर स्वमार्ग पर दृढ़ रहना और गुरु आज्ञा पालन करना।

८. उपर्युक्त नियमों को प्रतिदिन प्रातः ध्यान में लाना।

"इति"

पास पति के उठ तब जावे, निज त्रुटियों को जा बखशावे ।
हरी कथा में तब मन लावे, अपने पति को पाठ सुनावे ।
सुघड़ सयानी वह है नार, रहती मुदिता मन जो धार ।
खिन्न वदन न कभी बनावे, लज्जा शील सदा रह पावे ।
दृष्टी नीचे रख के चाले, वाणी को वह खूब सम्भाले ।

दो० इन्हीं गुणों को धारतीं, योगिन हों जो नार ।
नारिन जब योगिन बनें, सुधर जांय सब कार ॥ १२७८

एक बात हम और बतायें, नारीजन के गुण समझायें ।
"जी" शब्द कह सब को बोले, भेद बुद्धि से चित्त न डोले ।
कन्या बाल में भेद न जान, पालन पोषण करे समान ।
दोनों को सम विद्या देवे, सद्विद्या दे यश को लेवे ।
और बात यह जान ले नार, पति का नेम पै है अधिकार ।
स्वामी बदले यदि कुछ नेम, स्वीकार करे पत्नी सप्रेम ।
भक्तन श्रवण करी प्रभु वाणी, बोल उठे "जय जय महादानी ।
ये नेम जो आप बतलाये, शास्त्रों ने भी हैं ये गाये ।

दो० शास्त्रन का जो कथन है, वही बताया आप ।
जग भूले जब धर्म को, ज्ञान देंय प्रभु आप" ॥ १२७९

४५. योग साधक साधुओं की दिनचर्या

नर नारिन के धर्म बताये, गृहस्थ धर्म के नेम जताये ।
यौगिक दिनचर्या समझायी, दया अपार प्रभु कर पायी ।

एक साध था वहां आसीन, उस ने नम्र विनय फिर कीन ।
"हे नाथ कुछ जानन चाहूँ, कौन नेम जो पाल दिखाऊं ।
दिनचर्या जो साधू पालें, हे प्रभो मुझ को कह डालें ।
सब शास्त्र के तुम हो ज्ञाता, विश्वबन्धु गुरु ज्ञान प्रदाता" ।
सुन कर प्रभु जी उस की बात, कहन लगे "सुन लो मम तात ।
दिनचर्या हम तुम्हें बतावें, साध - जीवन के नेम जतावें ।
दृढ़ता से तुम चल दिखलाना, अपना जीवन सफल बनाना ।

दो० जग से नाता तोड़ कर, जो बनता है साध ।
बस उस को यह चाहिए, रहे ईश आराध ॥ १२८०

आठों पहर ईश आराधे, योग युक्त हो मन को साधे ।
प्रातः तीन बजे उठ जाये, शौच कर्म से निपट के आये ।
मन में दृढ़ निश्चय ले धार, प्रण करे तज जल की धार* ।
गुरु आज्ञा का करूं मैं पालन, काम क्रोध से रोकूंगा मन ।
इन्द्रिय संयम करूं ज़रूर, छोड़ूं राग वा द्वेष गरूर ।
इस के बाद वह ध्यान लगावे, सात बजे तक बैठ दिखावे ।
सात बजे जब ध्यान त्यागे, योग आसन तब करने लागे ।
योग आसन वह करे करावे, देह को इस विध सबल बनावे ।

दो० रोग मुक्त जब देह हो, तभी सधे सब साध ।
रोगी देह तो नरक सम, डाले पग पग बाध ॥ १२८१

नौ बजे तक आसन साधे, शास्त्रों को तब वह आराधे ।

*अर्थात अंजली में जल ले और उस को नीचे गिराते हुए ।

शास्त्र अध्ययन महा हितकारी, व्याधि हरे जो मन की भारी।
निज अनुभव भी लेख में लाये, ग्यारह बजे फिर उठ के जाये।
भोजन कर और कर विश्राम, बारह बजे तक रह उपराम।
उठ कर पुनः भजन में लागे, गुरुगुण गान में वह अनुरागे।
ध्यान मग्न होवे आसीन, तीन बजे तक साध प्रवीण।
ध्यान खोल गुरु चरणी जावे, अपने ध्यान की बात बतावे।
गुरु से ग्रहण करे उपदेश, दत्त चित्त होय सुने आदेश।
चार बजे से छः बजे तक, करे वह साधन मन को लाकर।
योग साधन वह सबन करावे, गुरु की कृपा को जिमी पावे।

दो० गुरु किरपा को पात है, साधु वही सुजान।
जग को योग सिखावे, गुरु से पाकर ज्ञान॥ १२८२

एक घंटा फिर इमि बितावे, भोजन और भ्रमण कर पावे।
समय सात का जब हो आवे, गुरु चरणी जा शीश निवावे।
गुरु मुख से फिर सुन उपदेश, ध्यान मग्न हो साध हमेश।
नौ बजे तक ध्यान आसीन, मन को साधे साध प्रवीण।
दिनचर्या फिर निज पड़ताले, अपने दोषों को लिख डाले।
मन मन ही उन पर पछतावे, निद्रा में फिर साध वह जावे।
तीन बजे तक कर विश्राम, भोर भजे प्रभु का फिर नाम।
साधुन की दिनचर्या बतलाई, कुछ और नेम अब सुन लो भाई।

दो० और नेम जो हम कहें, लाकर सुन लो ध्यान।
दृष्टी नीचे ही रहे, मुख्य बात यह जान॥ १२८३क

मातृशक्ती से रहे, पृथक धार यह नेम ।
दृष्टी गत यदि नार हो, मन्त्र जपे सप्रेम ॥ १२८३ख

आत्म दृष्टि से सब जग देखे, रूप भेद न लावे लेखे ।
कान न निन्दा को सुन पावे, गुरु उपदेश ही उस को भावे ।
ज़ग की बात चीत में भाई, ध्यान मग्नता है सुखदाई ।
सत्य बात ही मुख पै लावे, मधुर वचन को बोल दिखावे ।
मादकता से रह कर दूर, सात्विक भोजन करे ज़रूर ।
निषिद्ध गंध से वह बच पाये, वासनिक पर्श सदैव दुराये ।
जीवन का यह ध्येय बनावे, योग मार्ग पर ही चल पावे ।
उस ही सत्संग में वह जावे, ग्रंथ उसी को ही पढ़ पावे ।
जिस में योग का हो आराधन, दृढ़ निश्चय हो योग आराधन ।

दो० साधू साधे योग को, उत्तम धारे ध्येय ।
दृढ़ निश्चय को धार कर, प्राप्त करे वह ज्ञेय ॥ १२८४

ब्रह्मचर्य के व्रत को पाले, दृढ़ता से यम नियम संभाले ।
मन वचन कर्म में शुद्धि लावे, विपरीत बात से चित्त दुरावे ।
शीत घाम को कर के सहन, सीखे द्वन्द्वातीत का रहन ।
गुरु आज्ञा का राखे ध्यान, गुरुमति जाने उत्तम ज्ञान ।
निन्द्रा त्याग करे जब धीर, सोचे नेम ये होय गंभीर ।
नेम बद्ध जब जीवन होवे, श्वास न एक व्यर्थ जो खोवे ।
ऐसा साध योग को पाता, ज्ञानी होय मोक्ष को जाता ।
साधुन के ये नेम बताये, जो कुछ तुम ने पूछ थे पाये" ।

दो० दिन चर्या के मिस दिया, प्रभु जी ने जब ज्ञान।
भक्त जनों का मन रमा, प्रभु चरणों के ध्यान ॥ १२८५

चरण प्रभु के मन में ध्याते, भक्त भक्ति के रस मदमाते।
एक भक्त तब वचन उचारा, "नाथ अलौकिक रूप तिहारा।
कर दर्शन न चित्त अघायें, नयन न चरणों से उठ पायें।
धरती पर हो तुम उतराये, अनन्त कला संग में हो लाये।
किस मुख से अस्तुती कर पायें, निज मन को किमि खोल दिखायें।
रूप तुम्हारा वचन तुम्हारा, चितवन तेरी कर्म तुम्हारा।
जीवन के सब घटन तुम्हारे, भक्त जनों के संबल सारे।
प्रभो कृपा कर हमें सुनायें, अपना जीवन चरित बतायें।

दो० अपने जीवन की कथा, वर्णन करिये नाथ।
श्रवण करें जो भक्त जन, बने अनाथ सनाथ ॥ १२८६

४६. अमृतसर के भक्तों सहित समाईं गमन

भक्तन हित तब प्रभु उचारा, जीवन निज का वृत्त इक भारा।
सवाईं गुफा का कहा प्रसंग, ग्रामीन रंगे जिमि भक्ति रंग।
गुफा बनाई ताल बनाया, प्रभु सेवा में तन मन लाया।
ध्यान में दर्शन जिस जिस पाये, भक्तन हित प्रभु जी बतलाये।
भक्त जनों ने सुन कर वाणी, प्रभु की महती कृपा जानी।
भक्तन के मन उपजी बात, चलो समाईं देखें तात।
भक्त एक तब लाग पुछान, "कहां पर प्रभुजी वह इस्थान"।
प्रभु जी ने तब बात बतायी, उस धाम की स्थिती जतलाई।

दो० आगरा से कुछ कोस पर, पुर इतमाद स्थान ।
बस उसी के निकट यह, ग्राम समाईं जान ॥ १२८७

अनुनय विनय तब भक्तन कीनी, "चलें समाईं नाथ" कह दीनी ।
दास जनों के प्रभु जी प्यारे, भक्तन की न टालन हारे ।
समाईं चलन उन लीना मान, प्रभु की बात का प्रभु को ज्ञान ।
ले भक्त संग प्रभु पधारे, गोपालानन्द मुलख जी प्यारे ।
आगरे में जब प्रभु जी आये, भक्तन संग तंह डेरे लाये ।
ठहरे भार्गव बैंक के पास, भक्तन मन दर्शन की आस ।
गोपालानन्द को प्रभु भिजाया, ग्राम समाईं वह चलि आया ।
मोटर गाड़ी में वे आये, एक वकील भी संग में लाये ।

दो० वासुदेव वकील की, गाड़ी रुकी समाईं ।
सन तीस की बात यह, मार्च मास अठाईं ॥ १२८८

तभी लोग सब चल कर आये, ब्रह्मचारी के दर्शन पाये ।
गुफा का दर्शन दोनों पाया, माटी चाटी माथ झुकाया ।
कुछ जनों से बात भी कीनी, राह नगर की उन फिर लीनी ।
प्रभु का आगम जनता जाना, दर्शन हित तब चित्त बिलखाना ।
अशर्फी लाल इक भक्त प्यारा, संग जनता ले नगर पधारा ।
वासुदेव वकील के आये, विनती उस से इमि कर पाये ।
"प्रभु का वास हमें बतलाइये, दयानिधि के दर्श कराइये ।
सवाईं से हम चल कर आये, इच्छा इक ही संग सब लाये ।

दो० केवल इच्छा एक है, मिले नाथ का दर्श।
श्रीमान बतलाइये, जिस विध उपजे हर्ष" ॥ १२८९

वासुदेव मन में हर्षाया, भक्ति भाव जब उन दिखलाया।
बात पते की उस कह दीनी, राह सबन तब बैंक की लीनी।
जाय बैंक में सब ने देखा, भक्तन मध्य प्रभु को पेखा।
जन गण को थे योग सिखाते, रोगिन के थे रोग नशाते।
ऐसा ज्ञान वे सबन सुनाते, भव वारिध से नर तर जाते।
ग्राम जनों ने चरण ग्राहे, आशिष प्रभु के सब ने पाये।
प्रभु जी से उन कीन निहोरा, नाथ चलें अब सवाईं ओरा।
दयानिधि प्रभु दीन दयाल, देख भक्तन के मन का हाल।
उठ बैठे बिन कीन प्रतीख, ग्रहन करें हम भी यह सीख।

दो० शुद्ध हृदय से जब करें, प्रभु से आर्त पुकार।
अन्तर्यामी करत हैं, क्षण में वह स्वीकार† ॥ १२९०

---

*विदित हो कि आनन्दकन्द श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेश में समाईं वासियों को यह प्रथम दर्शन नहीं था। इस से पूर्व जुलाई (श्रावण) मास सन् १९२८ को भी श्री प्रभु जी ने सवाईं में इस वेश में दर्शन दिये थे। केवल एक रात ठहरे और फिर कहां चले गये किसी को पता नहीं। सवाईं के भक्तों ने जैसे तैसे उस समय श्री प्रभु जी को पहचान लिया कि वे वही जटाधारी (बाबा) प्रभु इस वेश में अब पधारे हैं। श्री प्रभु जी का सवाईं में इस प्रकार सन् १९२८ में एक रात के लिए प्रकट होना उन की दिव्य लीला थी। इस रहस्य का बोध अमृतसर के भक्तों को भी नहीं हुआ। क्योंकि श्री प्रभु जी अमृतसर से कहीं गये ही न थे।

देखें—"सवाईं का अद्भुत चमत्कार" लेखक पं० इन्द्रमन सूतैल व लक्ष्मीनारायण श्री वास्तव, सवाईं परगना एतमादपुर जिला आगरा।

मुद्रित सन् १९४५ पृष्ठ २८ ॥देहरादून॥

मण्डली सकल प्रभु संग चाली, सवाईं गुफा में तब वह आली ।
नर नारिन ने दर्शन पाये, जन्म कृतार्थ सबन बनाये ।
अमृतसर के भक्त प्यारे, गुफा के दर्शन करते सारे ।
ग्राम की जनता उन को देखे, मुलखराज की मस्ती पेखे ।
गोपालानन्द को भी पहचानें, पूर्व दिवस जो वहां थे आनें ।
प्रभु जी का दिव्य रूप निहारें, श्वेत वेश में प्रभु सत्कारें ।
गांव गांव की जनता आती, प्रभु चरणी न्योछावर जाती ।
अनेकों रोगी भी चलि आवें, प्रभु जी उन के रोग नशावें ।

दो० रोगी जो भी पहुँचता, सद्गुरु के दरबार ।
प्रभु जी उस को देखते, बतलाते उपचार ॥ १२९१क

दो० प्रभु जी के उपचार में, थी यह बात महान ।
जीवन से नीराश भी, शफ़ा पाता था आन ॥ १२९१ख

प्रभु जी के ईलाज में, था कुछ ऐसा योग ।
मृत्यु शय्या पर पड़ा, भी था होत निरोग ॥ १२९१ग

प्रभु जी ने यह आज्ञा कीनी, अशर्फीलाल को थी कह दीनी ।
"गुफा हमारी ठीक कराओ, ताल बगीचा भी लख पाओ ।
हम स्वयं न यहां रह पावें, ब्रह्मचारी इक यहां ठहरावें ।
एक रात ही अब रह पायें, कानपुर हम प्रातः जायें ।
इक्कीस एप्रिल लौट के आना, कुछ काल तब यहां रुक पाना" ।
सुन कर भक्त यह भये अधीर, जिमि त्यागत हों प्राण शरीर ।

सब के प्रभु जी प्राणाधार, बिछुड़ रहे थे फिर इक बार ।
धैर्य धरें फिर किस विध प्राणी, परम थी इस में सब की हानी ।

दो० प्रभु चलने को जब कहा, सब के मन बहु पीर ।
नेत्रों से बहने लगा, विरह जनित बहु नीर ॥ १२९२

धैर्य प्रभु सब को दे पाये, हर इक भक्त आशीष ग्राहे ।
जाने कौन प्रभु की माया, जिस ने शतशः रूप बनाया ।
प्रात भयी प्रभु जी थे चाले, मुलखराज को संग संभाले* ।
अमृतसर के भक्त थे साथ, वाम चलें सब प्रभु के हाथ[1] ।
ग्राम जनों को प्रभु फरमावें, "दिन तइसवें यहां आ जावें ।
तभी सवाईं में रह पावें, सात दिवस हम यहीं बितावें[2] ।
ध्यान भजन में समय लगाओ, योग साधन सब मिल कर पाओ ।
मार्ग योग को तुम अपनाना, मिथ्या वाद में चित्त न लाना ।

दो० योग मार्ग श्री कृष्ण का, राम का मार्ग योग ।
शिव ने योग अपनाया, सन्मार्ग है योग ॥ १२९३

*श्री मुलखराज जी निरन्तर बंद आंखे, व ध्यान मग्न ही सब कार्य करते थे और इधर उधर भी चलते थे ।

१. श्री सद्गुरु के वायें ओर ही चलने की भक्ति रूप मर्यादा है ।
२. प्रस्थान ३० मार्च १९३०, लौटना २१ अप्रैल १९३० । देखें समाईं का अद्भुत चमत्कार पृष्ठ ३० ।

दो०— एक हजार नव शत अस्सी, संवत सात मिलाय ।
वैशाख सुदी तिथि चतुर्थी, स्वामी कहीं को जाय ॥

अर्थात्—वैशाख सुदी तिथि चतुर्थी संवत् १९८७ को श्री प्रभु जी का पुनः प्रस्थान समाईं से होगा । जब वे कानपुर से लौटकर यहां सात दिवस वास कर चुकेंगे ।

सवाईं से प्रभु लीन विदायी, यात्रा रेल की तब कर पायी ।
कानपुर के भक्त जो प्यारे, देख रहे थे राह वे सारे ।
प्रभु को लिये रेल जब आई, भक्तन की उमड़ी समुदायी ।
बाल युवा वा वृद्ध नर नार, करें वे प्रभु का सब सत्कार ।
प्रभु की जय था कोई पुकारे, जय जय सद्गुरु कोई उचारे ।
हाथ जोड़ कोई मस्तक टेके, धन्य बने कोई पग रज ले के ।
संग ताल कोई शब्द उचारे, प्रभु जी की जयकार पुकारे ।
भक्ति भाव कोई बहुत दिखावे, उछल उछल निज सुधी भुलावे ।

दो० प्रभु के दर्शन पाय कर, रंगे प्रभु के रंग ।
भूल सुधी सब देह की, चित्त प्रभु के संग ॥ १२९४क
जग बंधन विलगाय कर, भगत प्रभु की शरण ।
विसर सुधी सब देह की, गहें प्रभु के चरण ॥ १२९४ख
प्रभु रेल से उतर कर, चले भक्तन के संग ।
आय निश्चित वास में, सन्मुख जंह थी गंग ॥ १२९४ग

कानपुर बहु भक्त तराये, प्रभु की शरणी जो थे आये ।
योग सीखने बहु जन आते, रोग से मुक्ति भी कुछ चाहते ।
प्रभु कृपा को पाने आवें, जीवन में जो सुख थे चाहवें ।
रोगी बहु रोगी अति रोगी, जीवन से नीराश जो रोगी ।
डाक्टर वैद्यों से जो त्यक्त, आ कर बनते प्रभु के भक्त ।
प्रभु जी सभी को देत शफ़ा, जनता की प्रभु चरणी वफा ।
चिन्तातुर जो जन थे आते, शरण प्रभु की आन ग्राहते ।
अन्तर्यामी सब लख पावें, दुःख की अग्न तुरन्त बुझावें ।

दो० जगत रोग का मूल है, चिन्ता का वा धाम।
औषध प्रभु की चरण रज, ग्रह मन पग अभिराम ॥ १२६५

रोगी रोग मुक्ती हित आते, चिंतित दुख से मुक्ति चाहते।
सकामी कामना ले कर आवें, इच्छा अनेक संग वे लावें।
जिज्ञासु भी कुछ दर्शन हेत, आ शरणी उपदेश थे लेत।
शिष्य प्रभु के बहु चलि आते, दर्शन करि सब सुख थे पाते।
बीस दिवस प्रभु वहां बिताये, चलने का फिर चित में लाये।
भक्त जनों ने जब यह जाना, भया सबन का चित्त म्लाना।
बीस दिवस न बीतत जापे, एक निमेष ही सम व्यापे।
"नाथ अभी तो आप पधार, चलने को भी भये तयार।
कौन खता हम से हो पायी, कीनी लेश न है सेवकायी"।
मिल सभी यह कहने लागे, प्रभु चरणों के जन अनुरागे।

दो० चरण प्रभु के ग्रहण कर, कीनी विनय अपार।
"अनन्य भजन का दान दें, करिये भव से पार" ॥ १२६६

सब को दीन प्रभु उपदेश, "चित्त ग्लानि न लावो लेश।
भजन करो तुम ध्यान लगावो, योग करो प्रभु कृपा पावो"।
सब भक्तन को दे आश्वासन, ग्रहण किया प्रभु रेल में आसन।
रेल प्रभु को लेय पधारी, भक्तन ने जय ध्वनि उचारी।
आगरे में फिर रेल वह आयी, भक्त जनों ने की अगवायी।
स्वागत कर प्रभु को ठहराया, सुख सागर ने सुख को पाया।
उधर सवाईं में जन भारे, आंख बिछाये बैठे सारे।
अन्तर्यामी सब कुछ जानें, इकीस ऐप्रल चित्त मे आनें।

दो० आज बीस अप्रेल है, कल सवाई जांय ।
इक्कीस तिथि की आस में, हैं सभी चित्त लांय ॥ १२६७

आगरे में वह दिवस बिताया, प्रभु जी ने तब सबन बताया ।
"प्रातः सवाई को हम जायें, जो दीना सो वचन निभायें ।
प्रात भयी सब भये तयार, मोटर में प्रभु हुए सवार ।
सवाई में जब प्रभु पधारे, हर्षित भये भक्त जन सारे ।
वर्णन किमि कोई कर पावे, प्रेम अलख न मनहिं समावे ।
आनन्द विभोर भये नर नार, हर्ष का रहा न पारावार ।
या घर बार सबन को भूला, प्रभु के प्रेम में तन मन झूला ।
प्रभु जी भये आसन आसीन, सभी भक्त जन सेव में लीन ।

४७. समाईं में जवाहर पहलवान के घुटने की पीड़ा को दूर करना और उस द्वारा प्रभु लीला कथन

दो० सेवा में रत भक्त जन, प्रभु आसन आसीन ।
दिव्य प्रभु के रूप में, था सब का मन मीन ॥ १२६८

सकल दिवस सब जन रह पाये, शाम भयी तब घरहिं सिधाये ।
प्रात हुई फिर संगत आई, प्रभु चरणों में जो जुट पाई ।
दिव्य रूप प्रभु थे आसीन, मुलखराज प्रभु चरणी लीन ।
दर्शन का सब के मन चाव, कौन पहचाने भक्त का भाव ।
श्रवण करें प्रभु का उपदेश, एकाग्र मन न चंचल लेश ।
इतने में इक जन चलि आया, डील डौल जिस खूब बनाया ।

जवाहर पहलवान वह नामी, तब मुस्काये अन्तर्यामी ।
[1]मुलखराज मन भया कुतूहल, क्यों मुस्काये प्रभु जी इस पल ।
दो० क्यों मुस्काये हैं प्रभु, मुलखराज मन बात ।
प्रकट कीन उस नाथ से, नाथ कहा तब "तात ॥ १२९९
जीव अहंकारी दुख को पाता, अमृत का भी विष बन जाता" ।
मुलखराज बोले "हे स्वामी, कैसी बात है अन्तर्यामी ।
सब कुछ हम को आप बतायें, तज अहंकार न दुख को पायें" ।
प्रभु जी कहा "हम न बतलायें, जवाहर ही से सब सुन पायें" ।
जवाहर पड़ा प्रभु की चरणी, बोला "बख्शो मैं अब शरणी ।
[2]सतरह वर्ष कष्ट है पाया, अब तो आप करो जी दाया" ।
कहें प्रभु "क्या कहते भाई, तुम ने कीन है क्या खताई ।
जो भी मन में है बतलाओ, इन भक्तों को बीती सुनाओ ।
दो० जो कुछ तुमरे मन बसत, खोल बताओ मीत ।
किस अपराध के वास्ते, बख्शाने का चीत" ॥ १३००
जवाहर ने जब आज्ञा पाई, अपनी बीती सबन सुनाई ।
"मूर्खतावश मैं क्या जानूं, [3]बाबा को मैं मानव मानूं ।
मैं तो था इक मल्ल अभिमानी, जो अकड़े था पाता हानी ।
बाबा का इक शिष्य खिलाड़ी, उस के संग और भी आड़ी[4] ।

[1]इस आंखों देखी घटना का उल्लेख श्री स्वामी मुलखराज जी ने "सवाईं के अद्भुत चमत्कार" में पृष्ठ ४० आदि में किया है ।
[2]ई० सन १९१३-१४ से १९३० तक ।
[3]सवाईं वासी श्री प्रभु जी को 'बाबा' इस पूज्यतावाचक शब्द से पुकारते थे ।
[4]साथी

उन का बल न मुझ को भावे, उन का खेल न मुझे सुहावे ।
किस विध इन को मैं दिखलाऊँ, अपने बल का रोब जमाऊँ ।
ऐसा रहत सदा मन मेरे, ताक में रहता सांझ सवेरे ।
इक दिन अवसर मैंने पाया, आ कर मैंने रोब जमाया ।

दो० मैंने आकर रोब से, कहा सबन धमकाय ।
यदि किसी में शक्ति है, पग मम देय उठाय ॥ १३०१क
इसी तरह उच्चार कर, राखा मैंने पांव ।
बाबा के तब शिष्य ने, कहा रहे इस ठांव ॥ १३०१ख
पांव हिलाना कठिन था, यह क्या मेरे राम ।
सिद्ध पुरुष की शक्ति थी, यत्न मेरा किस काम ॥ १३०१ग

सतरह वर्ष बीतन को आये, टांग टेड़ी वा दर्द न जाये ।
लाख इलाज कीने मैं नाथ, बस अब जीवन तेरे हाथ ।
भूल भयी थी मुझ से स्वामी, मम मन जानें अन्तर्यामी ।
तुम से है क्या कोई दुराव, प्रकट किये मैं सत्य जो भाव ।
सतरह वर्ष मैं दुखी बिताये, शरणी आया बनो सहाये ।
निज अपराध का दण्ड मैं पाया, बस अब करिये अपनी दाया" ;
इतनी कह वह चरणों लागा, "क्षमा करो मैं परम अभागा" ।
दया सिन्धु तब दया में आये, तरंग दया की मुख पै लाये ।
"राजा जी ! अब करो वह काम, जिस विध इस को भये आराम ।

†श्री प्रभु जी ने श्री मुलखराज को संबोधित किया। वे उन्हें "राजा जी" इस प्यार भरे संबोधन से पुकारा करते थे।

दो० इस के घुटने को पकड़, दीनो ज़रा हिलाय।
जिमि टांग यह सीधी हो, और दर्द भी जाय" ॥ १३०२

यह वरदान प्रभु से पाया, जवाहर को तब मुलख सुनाया।
"प्रभु कृपा तुम पर हो पायी, शीघ्र स्वस्थ होवोगे भायी।
पर हम एक बात हैं कहते, सब जन जो प्रभु आश्रित रहते।
उन के मन बस यह ही भाव, प्रभु की लीला श्रवण का चाव।
प्रभु के चरित जो होत न्यारे, लगें वे भक्त जनों को प्यारे।
जो कुछ देखा सब बतलाओ, बस स्वस्थ फिर देह को पाओ"।
सुन मुलख की वाणी जवाहर, बखाना उस ने तब उस पहर।
सवाईं का उस चरित बताया, अद्भुत प्रभु इतिहास सुनाया।

दो० अद्भुत चरित जो नाथ ने, कीने सवाईं आन।
क्रम से जवाहर ने कहे, स्वारथ अपना जान ॥ १३०३

जवाहर ने तब सब बतलाया, स्मृति में जो उस की आया।
मेंड़ नदी पर प्रभु का आना, शिष जयराम संग में लाना।
बरहन में जिमि प्रभु पधारे, जनगण ने जिमि चरण पखारे।
द्विज सुत इक था वहां बीमार, औषध आये न कुछ भी कार।
निराश भये थे बन्धु भाई, रो रो विलपत उस की माई।
बरहन में तब प्रभु का वास, बन्धाई प्रभु जी ने तब आस।
प्रभु ने ऐसी औषध दीनी, उस की व्याधि सकल हर लीनी।
चमत्कार यह सब ने जाना, ईश्वर रूप प्रभु को माना।
जवाहर ने फिर और बताया, प्रभु आगमन सवाईं सुनाया।

दो० लाला प्यारे लाल का, कीना उस बखान ।
जिस विध सेवा करत था, प्रभु को सद्गुरु मान ।। १३०४

उस ने प्रभु को था ठहराया, स्वार्थी का इमि भाग्य जगाया ।
स्वार्थी भयी जगत विख्यात, जनता आवे दिन वा रात ।
रोगी दूर दूर से आते, बाबा से थे औषध पाते ।
बाबा पुडियां बैठ बंधावे, रोगिन में फिर वह बंटवावे ।
क्या जाने वह कौन दवाई, स्वस्थ भया जन जिस ने पाई ।
बीस सात दिन प्रभु का रहना, जवाहर ने सब कीन बखाना ।
भक्त जनों को त्याग के जाना, ग्राम जनों का बहु बिलखाना ।
वन से हो कर प्रभु फिर आये,† दर्शन पा सब जन हर्षाये ।
आनन्द भया सब जन मन भारी, प्रात भये जिमि उदय तमारी ।

दो० जनगणमन आनन्द था, हर्षित सकल समाज ।
तपवन से प्रभु लौट कर, अद्भुत कीने काज ।। १३०५

ग्राम ग्राम की जनता आवे, चरणामृत प्रभु का ले जावे ।
प्रभु जी भजन में रहते लीन, सेवा में रत भक्त थे दीन ।
जवाहर ने फिर बात बताई, अद्भुत लीला सबन सुनाई ।
भये बाग में सांप ही सांप, प्रभु के आस पास भी सांप ।
सांप सांप ही यहां दिख पावें, प्रभु के ऊपर नीचे धावें ।
जनता तब तो भयी भयभीत, देखे दूर से ला वह चीत ।

† जब बनों से लौट कर श्री प्रभु जी वर्षों पश्चात सवाई में पुनः पदार्पण करते हैं तो उस समय का वर्णन है कि जनता को तब परम हर्ष की प्राप्ति हुई जिस प्रकार कि सूर्योदय होने पर चराचर जीव हर्षित हो उठते हैं ।

प्यारे लाल को प्रभु बुलाया, मत डरो तुम यह बतलाया ।
ये सर्प नहीं काटन हारे, ये तो सभी प्रभु के प्यारे ।

दो० मत डरो तुम सांप से, करो कार्य चित्त लाय ।
योगिजन के मीत सभी, विषधर हों या गाय ॥ १३०६

प्रभु जी से यह शिक्षा पाई, लागा बाग सबन सुखदाई ।
प्रभु जी ने इक सर्प ग्राहया, नभ में उस को दीन उड़ाया ।
बच्चों में तब हिम्मत आई, सब ने कार तिमि कर पाई ।
इक इक कर के सर्प उड़ाये, अदभुत दृश्य थे दृष्टि आये ।
ज्वाहर ने तब कथा चलायी, जिस विध रची गुफा बतलायी ।
गुफा में प्रभु समाधि लगावें, सुख सागर सुख से रह पावें ।
प्रभु चरणी फिर कई जन आये, मन्त्र बाबा से ले पाये ।
जालम सिंह, भगवान भी आये, बाबू को भी संग में लाये ।
*प्रसाद ज्वाला, जय नारायण, मन्त्र लीना सब ने आन ।

दो० कई जन प्रभु के बन गये, दीक्षित भक्त सुजान ।
चरण प्रभु के ग्रहण कर, करते प्रभु का ध्यान ॥ १३०७

बाबा ने तब कीन विचार, जाने का लिया मन में धार ।
शिष्य कहें हे प्रभु जी प्यारे, क्या भये है दोष हमारे ।
आप बतावें ऐसी सेवा, सुखी भयें जिमि यहां पर देवा ।
आप का हो सदा यहां वास, इच्छा धारें मन सब दास ।

* ज्वाला प्रसाद ।

प्रभु जी ने तब सेव बतायी, ताल बनावो यहां इक भायी ।
स्नान का हो तब हमें आराम, कर लो तुम सब मिल यह काम ।
भक्त जनों ने ताल बनाया, बाबा के मन को वह भाया ।
बाबा का किमि कथें चरित्र, ताल की माटी भयी पवित्र ।
ताल की माटी जन जब चाटे, दैहिक दुख सब उस का नाटे ।
तन पर जब कोई उसे लगावे, कुष्ट रोग तक उस का जावे ।

दो० माटी पाने हेत तब, जन गण आने लाग ।
प्रभु बनाया ताल जब, खुला सभी का भाग ॥ १३०८

प्रभु की लीला कौन बतावे, शारद शेष भी कथ न पावे ।
जिस को देवें प्रभु सामर्थ, वही कथे कुछ खोल के अर्थ ।
प्रभु का चरित है सागर तुल्य, इस में रत्न हैं बहुत अमूल्य ।
प्रभु दया से ही सब भासें, कृपा बिना न वे प्रकासें ।
अभागा नर कुछ भी न पावे, खारा सागर उसे लखावे ।
प्रेम से जवाहर ने बतलाया, सभी चरित उस खोल सुनाया ।
प्रभु का सेवक जो बन पावे, सकल सिद्धि उस के घर आवे ।
प्यारे लाल प्रभु का दास, कीनी थी उस इक अरदास ।
उस की इच्छा पूरण कीन, नाती रत्न इक उस को दीन ।
पत्री जिस की प्रभु बनायी, पण्डित जन की मति चकरायी ।
उस पाती को पढ़ने हारे, हारे थे बहु ज्योतिषि भारे ।
ब्रह्मा के भी जो वीधाता, भूत भविष्यत के जो ज्ञाता ।

दो० प्रभु की पात न पढ़ सके, पण्डित जन विद्वान ।
इस में न कोई हीनता, अलख ईश का ज्ञान ॥ १३०९

वर्णन जवाहर तब कर पाया, विविध रूप जो प्रभु प्रकटाया ।
सवाईं से प्रभु न कहीं जाते, हरिद्वार में वे लख पाते ।
कोई अलीगढ़ उन को देखें, अद्भुत घटन सभी जन लेखें ।
प्यारे लाल के मन में आई, प्रभु शक्ति देखन चित्त लाई ।
अर्ज़ प्रभु से जाय कर दीनी, ऊपर दृष्टि जब उस कीनी ।
विलक्षण तेज वहां उस देखा, व्याकुल भया प्रभु को लेखा ।
"कृपा नाथ अब शक्ति संहारो, देख सकें न तेज तुम्हारो" ।
करण सिंह भी आ कह पाया, दिव्य रूप देखन चित्त लाया ।
उस को भी जब प्रभु दिखाया, मुख सूखा और मन घबराया ।
प्रभु का तेजस रूप जो न्यारा, हर जन देख न सकत बेचारा ।
उस को तो कोई योगी देखें, अथवा प्रभु की दया से पेखें ।

दो० प्रभु की दया से जन लखें, प्रभु का रूप अपार ।
मूढ़ मति जन क्या लखें, जिन पै काल की मार ॥ १३१०

इस विध कौतुक वह दिखलाये, अनेकों जन भी चरणों लाये ।
बाबा के तब मन में आई, रहें गुफा में बन्द ही भाई ।
हम को न कोई आन उठावे, समाधी में न वाधा पावे ।
इस विध बाबा ने कह पाया, द्वार गुफा का बन्द कराया ।
भीतर से भी सांकल लाया, बाहर से भी बन्द कराया ।
प्रातः काल बहु जन आये, द्वार बन्द था खोल न पाये ।
बाबा के सब दर्शन चाहते, बन्द द्वार किमि खोल वे पाते ।
बार बार वे टेर बुलावें, भीतर से न कुछ सुन पावें ।

दो० शशो पंज में जन पड़े, लोग भये हैरान ।
सूखा धीमर ने कही, उसी समय पर आन ॥ १३११

बाबा रहत गुफा में जो थे, नभ में उड़ते जाते वे थे ।
रात्री को मैं ने वे देखे, नभ में अपनी आंखों पेखे ।
सुन कर भया कुतूहल सब को, प्रभु बिछुड़न का दुःख भी उनको ।
तोड़ा द्वार गये वे अन्दर, खडांव पड़ी न प्रभु उस मन्दर ।
इस विध प्रभु ने सब को त्यागा, भक्तन का न चित्त फिर लागा ।
तब से अब बाबा यहां आये, इतने वर्ष हैं बाहर बिताये ।
सतरह वर्ष मैंने दुःख पाया, अब तो करो दुःखी पै दाया ।
सुन कर मुलख ने उस की गाथ, धर दिया घुटने पर फिर हाथ ।
ज्यूं ही मुलख की हिली कलायी, टांग तुरन्त ठीक हो पायी ।
जयकारा उस ने तब लाया, भक्तों ने "जय प्रभु" गुंजाया ।

४८. अंधी कन्या को दृष्टि दान

दो० जय जय करते सकल जन, गायें प्रभु के गीत ।
शक्ति प्रभु की निरख सब, चरण गहें सप्रीत ॥ १३१२

दिन अगले इक दम्पती आये, संग में अपनी कन्या लाये ।
कन्या नेत्र हीन बेचारी, रूप कुरूप रोग की मारी ।
कीनी चरणों मांझ पुकार, "नाथ हमें भी करो स्वीकार ।
देवी रूपा कन्या स्वामी, घोर दुखी यह अन्तर्यामी ।
जग में न कोई और हमारा, केवल तोरा प्रभो सहारा ।

यह चेचक से भयी बीमार, दृष्टी उसी ने लीनी मार ।
रूप कुरूप भी है कर पाया, नाथ करो तुम इस पर दाया ।
पंदरह वर्ष की आयु भयी, बोझा बड़ा इस का हम तयी ।
रात दिवस की चिन्ता खावे, इस का दुःख न भूलन पावे ।

दो० स्वामी चिन्ता ग्रस्त हम, पहुंचे तोरो द्वार ।
दूर दूर तक ख्याति तव, लीजो हमें उबार ॥ १३१३

इस को नाथ दृष्टि दे दीजो, हम पर बस यही कृपा कीजो" ।
पति पत्नी ने चरण ग्राहे, प्रभु जी मुख से तब फरमाये ।
"क्षीण दृष्टि का है उपचार, योग के साधन आवें कार ।
अन्धेपन का नहीं उपाय, हम भी सकें क्या कर सहाय ।
हो निराश वे लौटन लागे, मुलखराज जी दया में पागे ।
उन कांसी का लोटा लीना, बिंबित सूर्य कन्या मुख कीना ।
कन्या ने न नेतर झपके, प्रभु जी बोले उन से हंस के ।
"राजा जी तुम कीन प्रयास, यहां पर कुछ भी है न आस" ।
मुलखराज जी विनय उचारी, "प्रभु चरणों में आये दुखारी ।
शरण तुम्हारी जो भी आवे, खाली हाथ न लौटन पावे ।
प्रभु जी अपना विरद विचारो, दया दृष्टि इन पर कर डारो ।

दो० दया दृष्टि अब कीजिये, दीन दुःखी पर आप ।
नाथ आप को छोड़ कर, कौन हरे संताप ॥ १३१४क

कौन हरे संताप जी, आप बतावें भेद ।
मोक्ष धाम तक देत हैं, हरें लघु सा खेद" ॥ १३१४ख

सुन कर मार्मिक वचन ये, कथन किये प्रिय बाल ।
श्री मुख से वरदान कहा, "स्नान करे मम ताल ॥ १३१४ग

मेरे ताल में यदि नहावे, कुछ दिन में ही ठीक हो जावे" ।
ऐसा ही उस कन्या कीना, ताल के जल में मज्जन कीना ।
उस की व्याधि सकल भयी दूर, दृष्टी में था उपजा नूर ।
चेहरे पर भी नूर लखाये, चेचक चिह्न दृष्टि न आये ।
सुन्दर देह कन्या ने पाई, उस को निरख सवाईं हर्षाई ।
प्रभु जी की यह लीला न्यारी, मनन करे जो रोगी भारी ।
उस पर भी प्रभु दया हो जाये, रोग शोक से मुक्ति पाये ।
मुलखराज जी चरित बताया, श्री मुख से 'सेवक' सुन पाया ।
प्रभु लीला का करूं बखान, जन गण का जिमि हो कल्याण ।

दो० जन मंगल के हेत ही, यह लिखी रामायण ।
योगेश्वर प्रभु राम के, जिस में चरित महान ॥१३१५

आगे भी जो नाथ लिखाया, सद्गुरु मुख से वह सुन पाया ।
एक दिवस की बात बतावें, भक्त सभी प्रभु लीला गावें ।
सत्संग का प्रवाह चलाया, प्रभु जी के वह मन को भाया ।
प्रभु चरणों में बैठ उस ठोर, पूछें भक्त हो प्रेम विभोर ।
जिस के मन में होत जो बात, प्रश्न करत और उत्तर पात ।
प्रसंग वश इक कथा चलायी, श्री मुख से प्रभु जी फरमायी ।
गुरु योगी को नर जब पावे, और जो उस की सेव कमावे ।
तीन काल की देखन हारे, गुरु बने शिष्य के रखवारे ।

४९. एक दृढ़ गुरु-भक्त-शिष्य का उपाख्यान

दो० गुरु योगी शिष्य के बनें, सदैव राखनहार।
बाल न बांका हो सके, गुरु हों जब रखवार॥ १३१६

इक योगी इक गांव में आया, युवक एक शिष्य बन पाया।
नित्य वह उस की सेव में आता, योगी से था शिक्षा पाता।
घर उस के तब बालक जाया, योगी को सन्देश सुनाया।
गुरु आज्ञा उस को हो पायी, जा कर शिशु को गाड़ो भायी।
रुपये पचास विप्र को दीजो, यह सब कारज जा तुम कीजो।
उस युवक ने आज्ञा पाली, शिशु दबाया माटी घाली।
विप्र को उस धन भी दीना, लेश मलान न मन को कीना।
वर्ष एक फिर बीतन आया, एक पुत्र तब और था जाया।

दो० गुरु योगी के पास तब, लाया वह सन्देश।
कहा गुरु ने गाड़ दो, लावो देर न लेश॥ १३१७क
दस रुपये संग विप्र को, जाकर देवो आज।
गुरु भक्त उस युवक ने, तिमि कीना सब काज॥ १३१७ख

कथा प्रभु से सुन कर मन लाय, अचरज में सब भक्त थे आय।
कैसी कथा यह नाथ सुनावें, इतनी भक्ति किमि जन पावें।
प्रभु जी भक्तन को फिर बोले, मन युवक का नाहीं डोले।
वह शक्ति सद्गुरु से पायी, मन जो लेश न डोले भाई।
सुनो आगे की बात सुनावें, योगी गुरु के भेद बतावें।
वर्ष एक जब और बिताया, युवक के बालक इक फिर जाया।

योगी को जब खबर सुनाई, युवक ने फिर भी आज्ञा पाई ।
इस को भूमि में तुम गारो, सौ रुपये दे विप्र को डारो ।

दो० सौ रुपये दो विप्र को, गाड़ो जा तुम बाल ।
इसी में तुमरा हित है, मेरी आज्ञा पाल ॥ १३१८

युवक ने जा कर सब यह कीनी, ग्लानि लेश न मन में चीनी ।
गुरु से मिला था ऐसा योग, दम्पती के मन भया न सोग ।
गुरु योगी बिन कौन करावे, ऐसा मन जो दृढ़ हो जावे ।
आगे का भी सुन लो हाल, वर्ष बाद उपजा फिर बाल ।
गुरु आज्ञा अब क्या दे पावें, दम्पती के मन भाव ये आवें ।
गुरु को जब उन खबर सुनाई, इक पल गुरु ने तब लिव लाई ।
आंख खोल फिर कह दी बात, यह सुत भी नहीं ठीक है तात ।
इस को भी तुम भूमि गारो, सार्ध सहस्त्र दान कर डारो ।

दो० सार्ध सहस्त्र तुम देय कर, गाड़ो बालक जाय ।
इस में तेरा हित परम, सद्गुरु होंय सहाय ॥ १३१९

जाय युवक ने तिमि ही कीना, शिशु को उस ने गाड़ ही दीना ।
सार्ध सहस्त्र भी कीने दान, गुरु चरणों का कर के ध्यान ।
एक वर्ष जब बीतन आया, इक बालक फिर और था जाया ।
अब जब गुरु को खबर सुनाई, उपजी गुरु मन भी हर्षाई ।
आज्ञा भयी सब खुशी मनावो, उत्सव मन माने कर पावो ।
आज्ञा पाय युवक तिमि कीना, उत्सव मन माने मन दीना ।

जननी शिशु को लाड़ लडावे, जनक प्रेम से उसे खिलावे ।
पांच वर्ष तक उस का लालन, मात पिता मिल कीना पालन ।

दो० पांच वर्ष का जब भया, उन का सुन्दर बाल ।
माता के मन ऊपजा, "यदि सब जीते बाल ॥ १३२०क
आज पांच मैं पूत की, होती सुभगा मात ।
भाई मिल ये खेलते, हिल मिल कर वे खात" ॥ १३२०ख

इस विध उपजी उस मन सोच, प्रकट करे किमि मन संकोच ।
गुरु ने बात सकल पहचानी, अन्तर्यामी योगी जानी ।
पति पत्नी को पास बुलाया, पत्नी को तब वचन सुनाया ।
"कहो तो तेरे पुत्र बुलावें, अपनी अपनी बात सुनावें" ।
स्वीकार करी उस ने यह बात, तीनों जन गये वन उस प्रात ।
योगी ने उन को बिठलाया, रेखा इक चहुँ दिक खिंच पाया ।
कहा "रेख से बाहर न आना, मुख से भी कुछ बोल न पाना ।
चारों बाल किए आह्वान, बात करें इक दूजे तान ।
सब से बड़ा बोला तब भाई, "यह योगी है बहु दुःखदाई ।
मैंने था दिन बीस ही जीना, पचास रुपये इन के खर्चीना ।
था दिन रात खराब कराना, इस कारण था मेरा आना ।

दो० बीस दिवस यहां रह कर, बदला था मैं लीन ।
मेरी इन से दुश्मनी, अवसर साधन दीन" ॥ १३२१

दूजा बोला "मेरे मीत, इन की योगी से है प्रीत ।
मैंने था भर मास इक जीना, दस रुपये का धन था लीना ।

ब्राह्मण को जो इस दिलवाया, मुझ को भूमि बीच गड़ाया ।
योगी आगे पेश न जावे, ब्रह्मा भी वहां नत हो पावे" ।
तीजा बोला, "मेरे साईं, क्या बतलाऊं तुमरे ताईं ।
इस योगी से प्रभु बचावे, इस से पीछा न छुट पावे ।
पूर्व जन्म में मैं जब जाया, इक क्षत्री के घर उपजाया ।
यही योगी उस खत्री पास, उस का त्राण करत हर श्वास ।
मैंने चौर्य कर्म था कीना, एक वणिक का धन हर लीना ।
योगी ने मुझे घर से काढ़ा, दुःख मेरा अतीव ही बाढ़ा ।

दो० दर बेदर तब भटकता, इसी ब्राह्मण के पास ।
आ विपदा मैं ने कही, दीना इस विश्वास ॥ १३२२

सौ रुपया मैं इस को दीना, हर्षित हो था इस ने लीना ।
विरुद्ध मेरे पर दीन गवाही, ऐसा दुष्ट विप्र यह भाई ।
राजाज्ञा से मैं मर पाया, इस ब्राह्मण के घर उपजाया ।
मैं तो बदला खूब चुकाता, योगी सन्मुख न यदि पाता ।
सौ रुपये इस ने दिलवाये, मुझ को गाढ़ भूमि में आये" ।
चौथा बोला "अब सुन पाओ, जिस से निज २ भूल ही जाओ ।
मेरा है यह अति कर्ज़ाई, उपजा लेन हेत मैं भाई ।
सार्ध सहस्र थे मैं ने लेने, दुःख अनेकों संग में देने ।
पांच वर्ष तक मैं तड़पाता, फिर कहीं परलोक सिधाता ।

दो० पांच वर्ष दुःख देय कर, करके इन्हें ख़्वार ।
राज बन्दी बनवाय कर, तब मैं जाता पार ॥ १३२३

योगी मेख रेख में गाड़ी, इस ने मेरी बात बिगाड़ी ।
विप्रहिं सार्ध सहस्र दिलवाये, मुझ को गाड़ भूमि में आये ।
समदर्शी न है यह योगी, यह है कोई महान कुयोगी ।
अब जो भाई हमारा जाया, उस को है सम्हाल दिखाया ।
इक से वैर दूजे से परीत, योगी की यह कैसी रीत" ।
कहा दूजे ने "भाई मेरे, रहत सुखी योगी के चेरे ।
सेवा योगी की जो करता, उस के संकट योगी हरता ।
लेश न मन में संशय आनो, योगी ईश्वर रूप पहचानो ।

दो० योगी ईश्वर रूप है, घट घट जानन हार ।
जो बालक अब ऊपजा, वह है सुख का सार ॥ १३२४

उस ने पिता को बहु है देना, कर सेवा उऋण है होना ।
देगा मात पिता सुख भारी, योगी ने सब बात विचारी ।
उस की रक्षा वह कर पाया, सब ने उत्सव खूब मनाया ।
सेवा का है मेवा भाई, योगी दोषी लेश न राई" ।
प्रभु जी आगे कथा चलाई, प्रेम से भक्तन ने सुन पाई ।
दृश्य विसर्जित योगी कीना, सुख श्वास पति पत्नी लीना ।
गुरु पग दोनों ने तब ग्राहे, "बख्शो नाथ हमें" कथ पाये ।
"तुम रक्षक हम भूलन हारे, स्वामी तुम हम दास तुम्हारे ।

दो० जैसी कृपा अब करी, सदा करो गुरु देव ।
हम को केवल वखिशये, निज चरणों की सेव ॥ १३२५

योग मारग में गुरु लगाया, कर साधन उन सुख को पाया ।
पुत्र ने बहु विद्या पायी, राज गुरु की पदवी पायी ।
सेवा मात पिता की करता, मान न मन में लेश भी धरता ।
प्रभु मुख से यह सुन कर गाथ, गुरु चरणी जन टेका माथ ।
"सद्गुरु भक्तों के रखवारे" कहन लगे मुख से तब सारे ।
नित्य प्रभु सत्संग कर पाते, भक्तन को उपदेश सुनाते ।
प्रभु चरणों इक साधु आया, बोला "नाथ करिये इक दाया ।
षट्कर्मन का रूप बताइये, विधि विधान मुझ को समझाइये ।
यह विद्या भयी लुप्त अशेष, आप योगेश करें उपदेश ।
सुन कर प्रभु जी ने यह वाणी, कहा "बात तुम ठीक है जानी ।

५०. नेति धौति आदि षट्कम का उपदेश

दो० योग विद्या का लोप तो, भया है जग से मीत ।
योग साधन को जो करे, उससे मेरी प्रीत ॥ १३२६

षट्कर्मन को मैं समझाऊं, जन हित प्रश्न तुम्हारा पाऊं ।
नेति धौती वस्ती जानो, कपालभाति वा त्राटक मानो ।
छटवीं नौलि कर लो मीत, षट्कर्मन से राखो प्रीत ।
घट की शुद्धी ये हैं करते, व्याधि सकल हैं ये संहरते ।
सब साधन मैं तुम्हें बताऊं, उन के भेद उपभेद जताऊं ।

नेति*

नेती कर्म प्रथम लो जान, षट्कर्मन में मुख्य पहचान ।
दिव्य दृष्टि को देने हारी, कफ़ की हरे सकल बीमारी ।
वितस्तिमान[1] सूत्र की डोर, नाक में डाल खींच मुख ओर ।
बाहिर मुख से जब ले आयें, स्कन्ध ऊपर के रोग नशायें[2] ।
दो० नाक छिद्र को डोरी से, करके इस विध शुद्ध ।
[3]जल नाक से पान करे, जल नेती प्रसिद्ध ॥ १३२७

धौति

धौति कर्म अब मैं बतलाऊं, भेदों सहित इसे समझाऊं ।
धौति कर्म जो कर दिखलावे, हठ योगी वह नर बन पावे ।
निर्मल उस की देह हो जावे, व्याधी उस के निकट न आवे ।

धौति के चार भेद....[4]

धौती के जो भेद हैं चार, जगत में उन का हो प्रचार ।
जानो उन को सुख के मूल, देह के रोग करें निर्मूल ।

---

*बालिश्तभर डोरी नाक के छेदों में डालें । पीछे उस को मुख के द्वार से निकालें । इस को नेति कर्म कहते हैं । नेति का साधन करने से खेचरी की सिद्धि हो जाती है । कफ के दोष नाश होते हैं और दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है । (घेरण्ड संहिता I-51-52)

१. बालिश्तभर

२. कन्धों के ऊपर समस्त अंगों के रोग नेति से दूर होते हैं ।

३. सूत्र नेति के पश्चात जल नेति करनी उतनी ही आवश्यक है जितना कि किसी नाली में झाड़ू देने के साथ उस में जल बहाना ।

४. अन्तरद्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति, मूलशोधन ।

पहली अन्तरद्धौती जानो, दूजी दन्त धौती पहचानो ।
तीजी हृद्धौती है भाई, चौथी मूल शोधन सुखदाई ।
घट को निर्मल करने वारीं, चारों धौती मैं कह डारीं ।
दो० इन चारों के भेद भी, सुन लो मेरे मीत ।
पाछे तुम से मैं कहूं, जिमि करने की रीत ॥ १३२८

अन्तरद्धौंति[1]

अन्तरद्धौति के भेद हैं चार, वातसार और वारिसार ।
तीजा अग्निसार लो जान, चतुर्थ लो बहिष्कृत पहचान ।
इन चारों की विधि को जानो, फल भी उन के तुम पहचानो ।

वातसार[2]

वातसार को यों हैं करते, मुख से पेट में वायु भरते ।
पाछे उस को देत निकार, करो यह मुख से बारंबार ।

वारिसार[3] और बहिष्कृत

वारिसार अब करें बखान, जल का करते नर बहु पान ।

---

१. अन्तरद्धौति के चार भेद :—
वातसार, वारिसार, वह्निसार या अग्निसार, बहिष्कृत ।

२. वातसार—इस में मुख को कौवे की चोंच के समान अर्थात् दोनों होठों को सिकोड़ कर धीरे २ वायु से पेट भरना और फिर धीरे २ ही मुख से उस दूषित वायु को पेट से निकालना । इस क्रिया से देह निर्मल होकर रोगों का नाश होता है, शरीर की अग्नि इससे बढ़ती है ।

३. वारिसार—इस में मुख से धीरे २ पानी पीकर पेट में चलाना पड़ता है और बाद में गुदा के रास्ते निकालना पड़ता है । इस क्रिया से देह निर्मल होती है और देव देह प्राप्त हो जाती है ।
'वारिसार' का दूसरा नाम 'शंख प्रक्षालन' भी है । (घेरण्ड संहिता I-17)

गुदा मार्ग से देत निकार, देह निर्मल हो इस प्रकार ।
गुरु से शिक्षा लेय सुजान, इस की विधि को लेवे जान ।

दो० गुरु से शिक्षा लेयकर, साधे वारिसार ।
शंख प्रक्षालन भी कहें, इसके लाभ अपार ॥ १३२६

सुन लो अब वह धौति भाई, जो बहिष्कृत कथन में आई* ।
प्राण उदर में भर दिखलावे, अधो मार्ग से उसे सरावे ।
कठिन क्रिया यह जानो मीत, बतावे गुरु ही इस की रीत ।
अन्तरद्धौति के चारों भेद, सुने तुम ने बिन पाये खेद ।

दन्त धौति[1]

दन्त धौति अब मैं बतलाऊं, इस के सारे भेद सुनाऊं ।
दन्त मूल है पहला भेद, जिह्वामूल से नाशे खेद ।
कर्णरन्ध्रों को धोना जानो, कपालरन्ध्र का शोध पहचानो ।
गुरु से इन की विधि लो जान, और समझ लो सकल विधान ।

*बहिष्कृत धौति—इस क्रिया में कौवे की चोंच के समान मुख करके वायु से पेट भरे। फिर उस वायु को कुछ मिन्ट पेट में रख कर गुदा के मार्ग से निकाले। यह क्रिया काफी कठिन है। यह क्रिया तब तक नहीं करनी चाहिए जब तक प्राणायाम, बस्ति, न्योलिका का अच्छी तरह अभ्यास न हो। (घेरण्ड संहिता I. 21-25)

१. दन्त धौति—यह पांच प्रकार की होती है :
१. दन्तमूल धौति—दांतों की जड़ को धोना। २. जिह्वामूल धौति—जीभ की जड़ को धोना। ३. कर्णरन्ध्र धौति—४. कपालरन्ध्र धौति कपाल के रन्ध्र को धोना।
दन्तमूल धौति से दांतों के रोग दूर होते हैं। कपालरन्ध्र धौति से आंखों की रोशनी तेज होती है। और दिमागी ताकत बढ़ती है। दिमागी कमजोरी के कारण जो नजला है वह कपाल रन्ध्र धौति से दूर होता है। इन सब की विधि गुरु से सीखें।
(घेरण्ड संहिता I. 26-35)

दो० दन्तधौति जो नर करे, स्वस्थ सदा रह पाय ।
आंख कान वा नाक के, दन्त के रोग नशाय ॥ १३३०

हृद्धौति[2]

सुन हृद्धौति के अब प्रकार, दण्ड वमन वा वास उपचार ।
दातुन को गल मध्य चलाये, दण्ड धौति इस विध कर पाये ।

वमन

सुनो वमन की सुगम जो रीत, भर मुख में जल ऊष्म व शीत ।
गरगर करे मुख ऊर्ध्व उठाये, इस विध कर जल देय गिराय ।
भोजन बाद यदि कर पावे, कफ पित्त दोष को दूर दुरावे ।

वास धौति

वास धौति को सुनो मन लाय, वही करे गुरु संग रह पाये ।
अनेकों रोगों का उपचार, वास धौति कर सह सत्कार ।
पंदरह हाथ वस्त्र ले लेवे, चौड़ा अंगुल चार जो होवे ।
गीला कर उस को खा जावे, निकाले तिमि जिमि गुरु बतावे ।

---

२. हृद्धौति अर्थात् हृदय शुद्ध करने की धौति—इस के तीन प्रकार हैं :
१. दण्डधौति २. वमन धौति ३. वास (वस्त्र) धौति (घेरण्ड संहिता I. 36-42)
दण्डधौति—ब्रह्म दातुन को दण्ड धौति कहते हैं। जल पान कर दातुन द्वारा हृदय के मल को बाहिर निकाला जाता है।
वमन – इस में भोजन के बाद मुंह में जल डाल कर गले तक ले जाये। मुख उठा कर गले में जल को चलाये। थोड़ी देर बाद उसे बाहिर निकाल दें। यही वमन धौति है। इस क्रिया से कफ़ पित्त दोष दूर होते हैं।
वास (वस्त्र) धौति—चार अंगुल चौड़ा, पन्द्रह हाथ लम्बा बारीक मलमल का कपड़ा पानी से भिगो कर मुख में डाला जाता है। और पेट में ले जा कर फिर निकाला जाता है। धौति कर्म से श्वास, प्लीहा, कफ़, कुष्ट आदि बीस प्रकार के रोग नष्ट होते हैं।

दो० गुरु आज्ञा को पाल कर, करे जो धौति योग ।
रोग अनेकों से बचे, जिन से पीड़ित लोग ॥ १३३१

धौति से नर सुख को पावे, धौती रोग अनेक नशावे ।
धौती श्वास रोग को हरती, धौती खांसी दूर है करती ।
इस से गले न सूजन पावें, जिगर तिली न बढ़ दिखलावें ।
रक्त शुद्धि इस से हो पावे, रोग कुष्ट भी इस से जावे ।
धौति बहु विध रोग संहरती, उन की कौन सके कर गिनती ।
अद्भुत योग का बना उपाय, धौति कर्म जो कथन में आय ।
धौति अन्तर को इमि धोती, नर धोवे जिमि निज की धोती ।

मूलशोधन[1]

धौति अगली बतावूं मीत, मूल शोधन की जो है रीत ।

दो० अपान वायु की क्रूरता, यदि न जाने पाय ।
मूल शोधन अभ्यास को, कर नर लाभ उठाय ॥ १३३२क
भीतर बाहर से गुदा, करनी जो है शुद्ध ।
मूल शोधन उस को कहें, जो योगी प्रबुद्ध ॥ १३३२ख

बस्ति[2]

इस से आगे हम बतलावें, बस्ति कर्म जो हैं समझावें ।

---

१. मूल शोधन—गुदा द्वारा जब तक मल की सफाई नहीं होती तब तक अपान वायु की क्रूरता खतम नहीं होती। इसलिए मूल शोधन क्रिया द्वारा गुदा को बार बार साफ किया जाता है। इस प्रकार गुदा के साफ होने से पेट की बीमारियां नष्ट होती हैं।
मध्यमा अंगुली से बार २ शौच के पश्चात् यत्न के सहित जल द्वारा गुदा का द्वार साफ करना चाहिए। (घेरण्ड संहिता I. 43-44)

२. बस्ति—यह दो प्रकार की होती है—१. जल बस्ति २. स्थल या शुष्क बस्ति ।

दो प्रकार की बस्ति जानो, जल बस्ति स्थल बस्ति पहचानो ।
जल बस्ति का करें बखान, योग की क्रिया उत्तम मान ।

जल बस्ति[1]

जल के कुण्ड में बैठे धीर, नाभी तक हो मग्न शरीर ।
उत्कटासन में बैठ दिखाय, गुदा संकोचे और फैलाय ।
पेट में जल जभी भर जावे, न्योलि कर वह बाहर गिरावे ।
पुनः पुनः ऐसा कर पावे, जब तक पेट न शुद्ध हो जावे ।
प्रमेह रोग और उदर विकार, इस से नाशें सब प्रकार ।
सुन्दर देह मानव वह पावे, बस्ति कर्म जो कर दिखलावे ।

स्थल बस्ति[2]

स्थल बस्ति का सुनो विधान, जिस को करते नर विद्वान ।

---

१. जल बस्ति—जल बस्ति करने के लिए, नाभि डूब जाय, इतने जल में उत्कटासन से बैठ कर गुदा को सिकोड़े और फैलावे। इस प्रकार जब जल अन्दर भर जाये तो उसे न्योलि कर्म से बाहर निकाल दे। यह क्रिया तब तक की जाती है जब तक दुर्गन्ध रहित जल निकलने लगे। इस साधन से निम्नलिखित रोग दूर होते हैं।

अनेक प्रकार के प्रमेह रोग, क्रूर वायु अथवा पेट के शूल आदि रोग इस क्रिया से दूर होते हैं। मनुष्य का शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है।

बस्ति कर्म की बड़ी महत्ता है। इस कर्म के अभ्यास करने वाले पुरुष के वीर्यादि दोष दूर होते हैं। इस के अतिरिक्त इस कर्म से दिव्य धारणा करने की शक्ति पैदा होती है। तथा पांच ज्ञानेन्द्रियों के दोष दूर होते हैं। ज्ञानेन्द्रियों को भासित होने वाले दुःख, शोक मोह आदि सब नष्ट होते हैं और सतोगुण की वृद्धि होती है। शरीर हल्का होता है। मन की प्रसन्नता बढ़ती है। वात, पित्त आदि शारीरिक रोग दूर हो कर जठराग्नि की वृद्धि होती है।
(घेरण्ड संहिता I. 46-48)

२. स्थल बस्ति—स्थल वस्ति में जमीन पर उल्टा होकर पड़े और गुदा को घोड़े की तरह सिकोड़ें और बाहर करे, ऐसा करने से कुष्ट और वायु अशुद्धि के दोष नष्ट होते हैं। जठराग्नि में वृद्धि होती है। (घेरण्ड संहिता I. 49-50)

उल्टा लेट भूमि पर जाये, भीतर बाहर गुदा चलाये ।
अशुद्धि पेट की इमि दुरावे, जठराग्नी भी वृद्धि पावे ।

दो० स्थल बस्ती जो है कही, करनी बहुत आसान ।
इस का गुण भी जो कथा, जानो उसे महान ॥ १३३३क

कपाल भाति[1]

दो० कपाल भाति अब मैं कहूं, सुन लो लाकर ध्यान ।
कपाल शोधन हित योग यह, योगिन रचा महान ॥ १३३३ख

कपाल भाति के तीन प्रकार, वात क्रम का प्रथम प्रचार ।
दूजा व्युत्क्रम लो जान, तीजा शीत क्रम पहचान ।

वातक्रम कपालभाति[2]

पिंगला वेग से श्वास ग्राहवे, ईड़ा सहज ही छोड़ दिखावे ।
पूरक ईड़ा फिर कर लेवे, रेचक को पिंगला कर देवे ।
बारी बारी श्वास चलावे, इस विध वातक्रम कर पावे ।
कफ का दोष जो जन को होवे, इस क्रिया से शीघ्र खोवे ।

व्युतक्रम कपालभाति[3]

व्युत्क्रम का तुम क्रम अब जानो, उत्तम शोध की क्रिया मानो ।

---

१. कपाल भाति—इस के तीन भेद हैं :
१. वातक्रम २. व्युतक्रम ३. शीतक्रम (घेरण्ड संहिता I. 5-6)

२. वातक्रम कपाल भाति—इस में पहले नाक के दायें छिद्र से वेग सहित पूरक करें और फिर बायें नाक से धीरे २ रेचक करें। इसी प्रकार फिर नाक के बायें छिद्र से पूरक करें तथा दायें नाक से रेचक करें। इस क्रिया से कफ नष्ट होता है। (घेरण्ड संहिता I. 57)

३. व्युत्क्रमकपाल भाति—इस में नाक के दोनों छिद्रों से जल खींचना और मुख से निकालना और फिर मुख से भरना तथा नाक से निकालना होता है। इस से भी कफ आदि दोष दूर होते हैं। (घेरण्ड संहिता I. 59)

नाक से जल का कर के पान, मुख से बाहिर करे सुजान ।
मुख से भी जल का कर ग्रहण, नाक से बाहिर हो प्रवहण ।
इस विध कर के नाड़ी शुद्ध, होती साध की बुद्ध प्रबुद्ध ।
दो० कफ आदि का दोष भी, नाशे बिना विलंभ ।
नर नारी सब योग का, ग्रहण करें अवलंभ ॥ १३३४

शीत क्रम कपालभाति[1]

शीतक्रम भी सुन लो भाई, नर नारी सब को सुखदाई ।
सूं सूं कर मुख से जल लेवे, नाक से बाहिर फिर कर देवे ।
इस क्रम को जब साध चलावे, इस क्रिया से लाभ उठावे ।
बलगम के सब दोष हों दूर, यौवन का रहे मुख पै नूर ।
प्रभु जी ने यह सब बतलाया, साधु ने संतोष अति पाया ।
भक्तों को मिल पाया ज्ञान, किरपा के प्रभु परम निधान ।

त्राटक[2]

कहा प्रभु अब सुन लो भाई, त्राटक की जो विधि है आई ।
स्थिर आसन में बैठ सुजान, एक लक्ष्य का कर के ध्यान ।

---

१. शीतक्रम—मुख से सुरसुर शब्द कर के पानी पीकर नाक से निकाला जाता है। इस से बलगम नष्ट होती है। बुढ़ापा जल्दी नहीं आता। शरीर अपने वश में हो जाता है।
(घेरण्ड संहिता I-60)

२. त्राटक—एक सफेद कागज पर डेढ़ इंच गोलाकार एक बिन्दु को बिना पलक मारे तब तक देखें, जब तक आंसू न निकल आयें।
इस क्रिया को त्राटक कहते हैं। इस क्रिया का अभ्यास धीरे २ आध घन्टे तक बढ़ाना चाहिए। इस क्रिया से नेत्र के सब रोग दूर हो जाते हैं। इस से शांभवी मुद्रा भी सिद्ध होती है।
(घेरण्ड संहिता I. 54)

निमेष उन्मेष को पूर्ण त्याग, इक टक देखे वहीं सुभाग ।
आंसुन धार बहन जब लागे, साधक टकटकी तभी त्यागे ।
दो० जब तक आंसू न वहें, दृढ़ कर मन को साध ।
एक लक्ष्य पर दृष्टि को, स्थिर राखे निर्बाध ॥ १३३५क
दृष्टि के अभ्यास को, कहें त्राटक लोग ।
नेत्रों के बहु रोग जो, नष्ट करत यह योग ॥ १३३५ख

न्योलि (लौलिकी)[1]

अब क्रिया वह तुम्हें बतावें, न्योलि जिसे सभी कह पावें ।
दक्षिण वाम जन पेट चलावे, न्योलि कर्म यह कथन में आवे ।
न्योलि कर्म जो नित्य कर पावे, जठराग्नि उस की बढ़ जावे ।
षट् कर्म इति प्रभु बतलाये, साधु ने मन मनहिं सराहे ।
उस के मन का भ्रम भी नाशा, योग साधन विज्ञान प्रकाशा ।
दिन सात प्रभु वहां बिताये, लौटन के फिर क्षण चलि आये ।
जनता के मन उपजा शोग, सहन करें किमि प्रभु वियोग ।
चरण पूजन उन प्रभु का कीना, चित्र प्रभु का भी उन लीना ।
अगले रोज फिर दीन विदाई, किमि वर्णन हो दृश्य वह भाई ।
दो० इन्द्रमन सूतैल ने, लिख प्रभु चरित अपूर्व[2] ।

न्योलि या (लौलिकी)—अति प्रवल वेग से पेट को दोनों बगल घुमावें। इसी का नाम न्योलि कर्म है। यह बहुत भांति के पेट के रोगों को दूर कर के जठराग्नि को बढ़ाती है।
(घेरण्ड संहिता I. 53)

"सवाईं का अद्भुत चमत्कार" 'यानी महात्मा श्री १०८ स्वामी रामलाल जी योगीराज को दुआ' लेखक पं० इन्द्रमन सूतैल व लक्ष्मीनारायण श्री वास्तव, सवाईं परगना एतमादपुर जिला आगरा। प्रकाशक श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज, प्रधानाचार्य योग साधन आश्रम ऋषिकेश" सन १९४५।

कीना प्रभु की भेंट वह, विदा होने से पूर्व ॥ १३३६क
समाईं से प्रभु चल दिये, ले भक्तन को साथ ।
अमृतसर को सब चले, गाते प्रभु की गाथ ॥ १३३६ख

प्रभु की महिमा सभी बखानें, अद्भुत चरित जो प्रभु दिखानें ।
पहलवान की बात दुहरावें, अन्धी कन्या का कथ पावें ।
ग्राम जनों की भक्ति सराहवें, गुफा प्रभु की याद में लावें ।
ताल का भी सब करें बखान, जिस में प्रभु की दया महान ।
अमृतसर जब नाथ पधारे, आये स्वागत हित जन भारे ।
बहु दिन थे प्रभु बाहिर बिताये, यहां भक्त विरहित हो पाये ।
प्रभु के चरणों को आ पर्षें, दर्शन कर तन मन से हर्षें ।
भेंट में लावें फल वा फूल, मस्तक धारें प्रभु पग धूल ।

दो० प्रभु पग धूलं मंगल मूलं, धारें भक्त सुजान ।
देव सराहवें प्रकट में, उन के भाग्य महान ॥ १३३७क

५१. लाहौर के आश्रम तथा वहां के भक्तों का वर्णन

दो० एक दिवस प्रभु चरण में, आये सज्जन खास ।
कहा प्रभु के पास उन, "हमारा लवपुर वास ॥ १३३७ख
†यदि लाहौर में आप का, इक आश्रम बन पाय ।
वहां की जनता नाथ जी, उस से लाभ उठाय" ॥ १३३७ग

† दोहा १२१५ में लवपुर में आश्रम बनाने का संकेत इसी प्रसंग से संबंधित है ।

उन की मति पै प्रभु विचारा, गोपालानन्द को वचन उचारा ।
"संग मुलख के तुम चलि जाओ, लवपुर में जा देख के आओ ।
उपयुक्त जगह यदि मिल पावे, वहां भी शाखा इक खुल जावे ।
राजधानी वह नगर महान, जनता का वहां हो कल्याण ।
गोपालानन्द संग सज्जन आये, स्थान कई उन ने दिखलाये ।
एक भवन उस के मन भाया, मुलखराज भी वही सराहया ।
वाटरवर्कस के पास मकान, आश्रम खोलें प्रभु जहां आन ।
लौट प्रभु जी को बतलाया, "नाथ भवन इक है हम पाया ।
हमरे संग अब आप पधारें, अपने चरण कमल वहां डारें" ।
दो० उन्नीसशत इकत्तीस, प्रभु पधारे लाहौर ।(सन् ई० १९३१)
प्रभु की आशिष पाय कर, बना आश्रम उस ठौर ॥ १३३८

प्रभुजी आश्रम लाहौर बनाया, वाटरवर्कस समीप चलाया ।
बहु जन साधन हित थे आते, ध्यान समाधि भी कुछ पाते ।
आचार्य गोपालानन्द बनाया, तन मन से उस कार्य चलाया ।
कुछ वर्ष उस लाहौर बिताये, प्रभु आज्ञा से ग्रंथ छपाये ।
*"योग सिद्धि" उस लिख छपवाई, "नेति' पर पुस्तक लिख पाई ।
कीर्तन का उस कीन प्रचार, योग भक्ति का भया संचार ।
कुछ काल कर इस विध काम, मुरादाबाद गये निज धाम ।
श्री मुलखराज फिर भये आचार्य, सेवक लिखे वया उन का कार्य ।
तन्मयता जो उन दिखलाई, देखन सुनन में कहीं न आई ।

*देखो दोहे १२१९-१२२०. जहां इन दोनों पुस्तकों का वर्णन दिया है ।

दो० मुलखराज के काम का, वर्णन किमि हो पाय ।
कर्म करें जब योगि जन, कर्म योग कहलाय ॥ १३३९क
कर्म योगी संसार में, करते कर्म अनूप ।
दिव्य कर्म उन के कथे, कौशल परम स्वरूप ॥ १३३९ख

आत्म लीन मुलख रह पाते, आश्रम का भी कार्य चलाते ।
साधन योग के उन्हें करावें, जन जो आश्रम में चलि आवें ।
रविवार को सत्संग करते, अमृतवचन भक्तन मन भरते ।
साध्य असाध्य रोगिजन आवें, होय स्वस्थ आश्रम से जावें ।
जन जिज्ञासु भी जो आते, मुलखराज से ज्ञान वे पाते ।
मुलखराज की ख्याति भारी, सारे लवपुर में विस्तारी ।
बालवृद्ध वा युवक भी भारे, आ कर करते साधन सारे ।
नेति धौती वे कर पाते, भिन्न भिन्न आसन सभी लगाते ।
दाल चने की बिल्कुल कच्ची, अथवा सेरों सब्जी कच्ची ।
कई सेरों में दही मलाई, साधकों ने नित खा दिखलाई ।

दो० सेरों सब्जी खाय कर, करते जीवन तत्व ।
तन में सभी जनन के, बढ़े जीवन का तत्व ॥ १३४०

नवयुवक कुछ ऐसे आते, प्राणायाम को कर वे पाते ।
अंग अंग भर लेते श्वास, मन में धार के दृढ़ विश्वास ।
कीलों पर वे लेट दिखावें, छाती ऊपर शिला रखावें ।
शिला हथोड़ों से कुटवावें, इस विध योग की शक्ति दिखावें ।
ध्यान हेत कई भक्त थे आते, दीक्षित आश्रम से हो पाते ।

वृत्ति एकाग्र जब हो पाये, भस्त्रिका तब चल दिखलाये ।
होता मन वा प्राण का मेल, मानो चढ़ती तब थी खेल ।
प्रभु चरणों में चित्त रम जाता, साधक देह की सुधि बिसराता ।

दो० देह की सुधि विसार कर, ध्यान में रहता लीन ।
गुरु कृपा जब जन गहे, बनता दीन अदीन ॥ १३४१

लवपुरी जो नगरी भारी, निज शक्ति तहं प्रभु विस्तारी ।
जगह जगह आश्रम खुलवाये, भेद प्रभु का न कोई पाये ।
जिस जिस धरती का संस्कार, उस उस का प्रभु कीन उद्धार ।
'कलकत्ता-मन्दिर' आश्रम लाये, भक्त जनों के मन हर्षाये ।
वहां की जनता सुख बहु माना, साधन हित अब दूर न जाना ।
ऐसे साधन प्रभु करावें, रोगिन के जिमि रोग दुरावें ।
चंचल चित्त को करते शांत, आता जन जब कोई भ्रांत ।
जन जब आर्त कोई आ जाता, प्रभु से सुख को वह था पाता ।
अर्थार्थी जो चलि आवे, प्रभु कृपा से संपद पावे ।
जो जिज्ञासु आता शरणी, पा कर ज्ञान वह लगता चरणी ।

दो० प्रभु चरणों में आकर, पावे नर विश्राम ।
आध व्याध से जो दुखी, वे पाते आराम ॥ १३४२

कलकत्ता मन्दिर रह कुछ काल, स्थान बदला फिर प्रभु दयाल ।
लाहौरी गेट के अन्दर आये, बहु भक्त वहां आन तराये ।
बाल युवा वा वृद्ध थे आते, मुलखराज साधन करवाते ।
दूर दूर से रोगी आवें, साधन कर स्वास्थ्य को पावें ।

देह पर साधन का प्रभाव, करता मन के भी शुद्ध भाव ।
चित्त वृत्ति का करत निरोध, उपजत अन्तर में सद्बोध ।
घट में जोत ईश का अंश, योगी प्राप्त करे बन हंस ।
सब साधन श्री मुलख कराते, प्रभु आज्ञा पा काम चलाते ।

दो० प्रभु आज्ञा से मुलख जी, सबन सिखावें योग ।
तन से मन से जो दुःखी, सुखी भये वे लोग ॥ १३४३

लहौरी गेट काल बिताया, फिर शाहलमी आश्रम लाया ।
परीमहल कूचे का नाम, वहां बना आश्रम सुखधाम ।
घनी आबादी पास बाज़ार, करावें योग जगत आधार ।
वन से चल बस्तिन में आना, घन आबादी योग सिखाना ।
योग गृहस्थी जिमि अपनावें, राम योगेश्वर तिमि कर पावें ।
सेवक का उस आश्रम से प्यार, जहां मिले थे जगदाधार ।
सद्गुरु मुलखराज जी स्वामी, कीना सेवक जहां अनुगामी ।
उस आश्रम का दृश्य अनूप, सेवक मनहिं निरन्तर गूप ।

दो० सेवक के मन प्यार है, प्रभु चरणों के मांहि ।
भव बहते इस जीव को, लीना जिन उतराहिं ॥ १३४४

ऋषिकेश थे प्रभु जी रहते, छेहरटे में भी आ वे पाते ।
कभी लाहौर होत था आना, भक्त जनों को नित अपनाना ।
किस किस भक्त का करूं बखान, अनेक तरे पा प्रभु से ज्ञान ।
गुज्जर मल वा काला राम, सोहन लाल भी भक्त ललाम ।
शामलाल भी प्रभु के प्यारे, गीत रचे जिन योग के न्यारे ।

लाला हुकुम चन्द भी आया, आश्रम की सेवा कर पाया ।
मास्टर लक्ष्मण दास बखानूं, गूढ़ भक्त मैं उस को जानूं ।
न्यामतराय वकील था भारी, प्रभु चरणी भयी प्रीति न्यारी ।
कृष्ण देव का करूं बखान, जानूं उस की सेव महान ।
उस ने सेवक को सिखलाये, नेति धौति साधन मन भाये ।

दो० योग के साधन जो सभी, षटकर्मन में आय ।
कृष्ण देव जी प्रेम से, दीने मुझे सिखाय ॥ १३४५

और भक्तन का करूं बखान, जिन का मुझ को है कुछ ज्ञान ।
दीनानाथ पराशर जानूं, सेवक परम प्रभु का मानूं ।
वेनी प्रसाद जैनी इक भाई, उस ने भी प्रभु सेव कमाई ।
मानक चन्द कपूर बखानूं, प्रभु सेवा में आया मानूं ।
पारस नाथ प्रभु का प्यारा, बहुत काल प्रभु सेव गुजारा ।
अनन्य भक्त कुछ और बताऊँ, प्रभु सूरज की किरण जताऊं ।
माधोराम का करूं बखान, प्रभु भक्तों में गणन महान ।
भक्त शिरोमन चन्द्रमोहन, योग भक्ति का जानूं भौन† ।

दो० सब साधन का भौन जो, चन्द्र मोहन प्रवीण ।
प्रभु प्रेम के रंग रंगा, रहत वह साधन लीन ॥ १३४६

दूर से बालक इक चलि आया, नृसिंह मूर्ति जो प्रभु मन भाया ।
मद्रासी बालक परम सुयोग, प्रभु चरणी लग कीना योग ।
वज्रौलि कर्म प्रभु सिखलाया, बना योगी तब देश घुमाया ।

†भवन

योगीराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

सब साधन का भौन जो, चन्द्र मोहन प्रवीण।
प्रभु प्रेम के रंग रंगा, रहता साधन लीन॥ दोहा १३४६

मथुरादास भक्त था एक, जसवन्त भी लीनी प्रभु की टेक ।
मल्लहन साहब अंग्रेज इसाई, प्रभु चरणी लग कीन कमाई ।
नेति किरया उस ने कीनी, नजले से उस मुक्ति लीनी ।
ध्यान दर्शन का बन अधिकारी, सुख पाया उस योग से भारी ।
एक भक्त का करूं बखान, कुन्दनलाल जिस का अभिधान ।
सेवक बन उस सेव कमाई, सेवा की उसे मिली बढ़ाई ।
लाल चन्द भी भक्त शिरोमण, जिस ने सेव में अर्पा तन मन ।

५२. भक्त नारायण दास

दो० तन मन धन जिन अर्पा, ऐसे भक्त अनेक ।
नाम लिखे कुछ एक के, सब को प्रभु की टेक ॥ १३४७क

भक्त नारायण दास था, उसका करूं बखान ।
ध्यान भजन जिस का कर्म, उसका भाग्य महान ॥ १३४७ख

ऋषिकेष आश्रम में रहता, ध्यान में ही निज काल बिताता ।
एक दिवस वह प्रभु के संगा, करने भ्रमण गया जब गंगा ।
ब्रह्मपुरी तक चल कर आये, वन की शोभा में चित्त लाये ।
दृश्य अनेकों परम मनोहर, बता सके को उन को लिखकर ।
स्थान अनेक प्रभु दिखलाये, नारायण दास निरख विस्माये ।
पावन थल सब परम सुहाने, निरख निरख वह सुख को माने ।
इस विध काल बहुत वित पाया, सूर्य अस्त होने को आया ।
कहा प्रभु अब लौट के जायें, मारग दीरघ चल दिखलायें ।

दो० मारग दीरघ है पड़ा, अस्ताचल पर भान।
लौट चलें ऋषिकेश को, शीघ्र चल नारायण ॥ १३४८

नारायण कहा "प्रभु महाराज, चलना कठिन भया है आज।
क्षत भये हैं पाओं मेरे, उन में कण्टक चुभे घनेरे।
आप की शक्ति से चल पाऊं, अथवा मैं तो हार ही जाऊं"।
कहा प्रभु "हे नरायण प्यारे, अब तो निकले नभ पर तारे।
मारग भी न दीखत भाई, निशा काल वन हो भयदाई।
पैर ठांव कुठांव पड़ जाता, सीधा मार्ग नहीं दिख पाता।
मैं जानूं हम मारग भूला, दीखत कहीं न लक्ष्मण झूला।
प्रभु की माया प्रभु ही जानें, निशाकाल जो वनहिं भुलानें।

दो० निशा काल वन में खड़े, भक्त नरायण साथ।
दिव्य रूप प्रभु का सिमर, सेवक वर्णत गाथ ॥ १३४८क
नरायण के न पग चलत, सूझत मग भी नाहीं।
उस असमंझस में प्रभु, कहा भक्त के ताहीं ॥ १३४८ख

"हे नारायण ध्यान लगावो, प्रभु को अब तुम मन में ध्यावो।
नेत्रों को तुम राखो मीच, बनें सहायक प्रभु इस बीच"।
तब नारायण आज्ञा मानी, नेत्र बन्द बना वह ध्यानी।
सिमरे प्रभु को ला कर चीत, संकट काल बने जो मीत।
प्रभु से बड़ा न मीत है भाई, भीड़ पड़े जो बनत सहाई।
नारायण ने उस को ध्याया, जिस ने संग था उस को लाया।
उसी का मन में कीना ध्यान, संग खड़ा जो ब्रह्म महान।
शीघ्र कान पड़ी फिर वाणी, "आंख उघाड़ो अब तुम ध्यानी"।

दो० आंख खुली तो था खड़ा, आश्रम के वह बाहर ।
संग प्रभु भी थे खड़े, खट खट करते द्वार ॥ १३५०क
द्वार खुला भीतर गये, थी न लेश थकान ।
प्रभु कृपा जब होत है, काम हो इसी समान ॥ १३५०ख

प्रभु किरपा का नाहीं अन्ता, शास्त्र कथन करें बे अन्ता ।
सूर्य एक प्रतिबिंब अनन्त, इक जगदीश सन्त बे अन्त ।
जिन सन्तों ने प्रभु को ध्याया, निरञ्जन का उन दर्शन पाया ।
खिन खिन रहें प्रभु उन के संग, दुखी न हों सन्तन के अंग ।
नारायण दास का यह इतिहास, स्मरण करे जो नर बे आस ।
आस किरण उस को दिख पावे, प्रभु किरपा का भानु लखावे ।
प्रभु किरपा है भानु समान, अथवा मेघ में तड़ित महान ।
निराशा की घन घोर घटायें, जब जीवन पर आ कर छायें ।
स्मृति तार जो तब हिल पाये, प्रभु चरणी मन युक्त हो जाये ।
अन्तर बाहिर होय उद्योत, प्रभु कृपा की जागे जोत ।

दो० प्रभु किरपा की जोत से, नशे दुख अंध्यार ।
रे मन निद्रा त्याग दे, प्रभु खड़े तव द्वार ॥ १३५१क
प्रभु खड़े तव द्वार पर, ग्रह दृढ़ता से टेक ।
एक चित्त हो ध्यान कर, वृत्ति समेट अनेक ॥ १३५१ख

५३. बाल भक्त घुग्घु

इक भक्त मैं और बखानूं, वत्सलता निज चित्त में आनूं ।
नन्हा मुन्ना घुग्घु प्यारा, सद्गुरु दर का उज्जवल तारा ।

माता संग प्रभु चरणी आता, संगत के चरणी कर लाता ।
सब को कर के वह प्रणाम, प्रभु की गोद में करत आराम ।
प्रभु जी माला उसे पहनाते, और स्नेह से उसे खिलाते ।
घुग्घु का सब भाग्य सराहें, विश्वपति जिसे लाड लडायें ।
ध्यान की वृत्ति उस मन जागी, श्री कृष्ण में लिव थी लागी ।
बालकृष्ण उस के संग खेलें, उस के संग वे झूला झूलें ।

दो० कृष्ण संग वह खेलता, धार सखा का रूप ।
नित्य प्रभु को आ कहे, कृष्ण चन्द्र का रूप ॥ १३५२

"कृष्ण ने मोर मुकुट है धारा, रूप है उस का सांवल प्यारा ।
पांव में घुंघरू हैं उस धारे, छन छन कर संग चलत हमारे ।
माला उस को कौन पहनावे, नित नयी देखन में आवे ।
धोती वह तो खूब लगावे, बांधनी जो मुझे न आवे ।
दोपट्टा उस का पीत प्यारा, पर यह उस ने है क्यों धारा ।
बांसुरी उस के कर में सोहे, मैं मांगू तो रुष्ट वह होवे ।
मुरली वह तो खूब बजाता, मुझ को तो वह नहीं सिखाता ।
मैं भी मुरली मां से लूंगा, और फिर उस को न वह दूंगा" ।

दो० घुग्घु की सुन बात को, सभी लगे मुस्कान ।
कृष्ण चन्द्र भगवान को, लीना मित्र मान ॥ १३५३क

घुग्घु की माता कहे, हे मे रे भ ग वा न ।
निज कृपा से बखशिये, मुझ को भी यह ध्यान ॥ १३५३ख

मेरा भी प्रभु ध्यान लगावो, कृष्ण चन्द्र के दर्श करावो ।

मैं भी नेत्र भर कर देखूँ, मुरली मनोहर को मैं पेखूँ ।
कहें प्रभु, "यदि दर्शन चाहो, घुग्घु को ही कह तुम पाओ ।
कृष्ण चन्द्र हैं इस के मीत, इस की बात मानें सप्रीत" ।
कहा मात "मैं और न जानूँ, मैं तो सब कुछ आप को मानूँ ।
चाहे जिमि भी दर्श कराओ, मेरे मन की तृष्ण बुझाओ" ।
घुग्घु को तब प्रभु उचारे, "मां को दर्श कराओ प्यारे ।
देखन चाहे मीत यह तेरा, दर्श कराओ कथन यह मेरा ।

दो० निज मित्र को तुम कहो, तुम्हें बुलावे मात ।
तुम को देखन चाहत वह, मिलना आकर प्रात" ॥ १३५४

कहा घुग्घु "न दर्श कराऊं, कभी न इस से पैसा पाऊं ।
मुझ को इक पैसा दे देवे, दर्शन को यह तब कर लेवे" ।
माता से प्रभु जो कह पाये, "हाथ से अवसर यह न जाये ।
निकालो पैसा देर न लावो, इस सौदे से चूक न जावो" ।
माता ने झट पैसा दीना, मौज में घुग्घु ने वह लीना ।
प्रभु की लीला परम न्यारी, सेवक स्मरण करत बलिहारी ।
माता ने घर जा क्या देखा, कमरा खोल कृष्ण को पेखा ।
मुरली मनोहर सुन्दर रूप, बन्द भवन में बैठा गूप ।

दो० कृष्ण चन्द्र के दर्श से, चौंक गई वह मात ।
गई टेरन जब सखिन को, लुप्त भया साक्षात ॥ १३५५क

मन मूर्ख तू चेतकर, ध्या ले ऐसे राम ।
योग योगेश्वर सद्गुरु, जिनके वश में शाम ॥ १३५५ख

५४. भक्तिमती शकुन्तला

चरित्र एक मैं करूं बखान, प्रभु के चरणों का धर ध्यान ।
नारायणदास भक्त विख्यात, शकुन्तला पुत्री उस की तात ।
उस को मिला प्राण का दान, ध्यान भजन का भी वरदान ।
मात पिता की थी वह प्यारी, पुत्री एक नयन की तारी ।
उस का चरित वर्णन कर पायें, प्रभु कृपा को ध्यान में लायें ।
व्याह उपरांत भयी बीमार, ज्वराक्रान्त वा परम लाचार ।
दो वर्ष तक कीन उपचार, रोग बड़ा ह्रासा तन सार ।
क्षय रोगी मानें सब लोग, मात पिता मन व्यापा सोग ।
अमृतसर था मात का वास, बंधाई द्रौपदी तब आस ।
प्रभु महिमा उस कीनि बखान, आदेश मिला लाई घर आन ।

दो० प्रभु का मान आदेश वह, शकुन्तल को घर लाय ।
द्रौपदी के त्याग को, किस विध सकें सराहय ॥ १३५६

क्षय रोगी जब घर में आये, सगा सम्बन्धी त्याग के जाये ।
क्षय रोगी वह घर में लायी, रुष्ट भयी तब जग समुदायी ।
गुरु की आज्ञा रहे सर ऊपर, जग रूठे तो भक्त को न डर ।
शकुन्तला को उस योग कराया, नासिका मार्ग दूध पिलाया ।
जो तन मरणासन्न भया था, योग साधन से स्वस्थ हुआ था ।
डाक्टर वैद्यों ने जो त्यागा, लाइलाज का फतवा लागा ।
योग ने तन था वही संभाला, कांचन सम उस को कर डाला ।

यही दिखाने जग में आये, रामलाल जी योग थे लाये ।
जग ने लीना खूब यह जान, योग का गुण जो कथा महान ।
दो० योग की महिमा जो कथी, उस में भ्रम न लेश ।
दिखा रहे यह जगत को, राम लाल योगेश ॥ १३५७क
रामलाल योगेश प्रभु, योग से रोग दुरायं ।
ऋषियन का जो योग है, गृहस्थिन को सिखलायं ॥ १३५७ख
रामलाल प्रभु जगत उबारा, बहा दी जग में योग की धारा ।
योग से देह निर्मल हो जाता, निर्मल तन निर्मल मन पाता ।
निर्मल मन में ईश्वर भक्ति, सहज स्वभाव करने की शक्ति ।
शकुन्तल निर्मल देही पायी, मन में प्रभु की भक्ति समायी ।
निशा दिवस वह ध्यान लगावे, प्रभु जी का साक्षात वह पावे ।
जो थे उस के अनुभव महान, कथ न सकें हम सब इस स्थान ।
बस इक बात में सब प्रसंग, प्रभु जी रहें हर दम उस संग ।
समस्या जो भी सन्मुख आये, प्रभु जी देत सकल सुलझाये ।
दो० जीवन की जो उलझनें, देत प्रभु सुलझाय ।
शकुन्तल का जीवन भया, सब विध से सुखदाय ॥ १३५८

५५. पागल रोगी को ठीक करना

असाध्य रोग जब प्रभु दुराये, डाक्टर वैद्य बहुत चकराये ।
मन में ईर्षा उपजी भारी, सोचें किस विध करें खवारी ।
ऐसा रोगी ले कर जायें, जिस को ठीक यह न कर पायें ।
वे अधिकारिन से मिल पाये, बन्दीघर से पागल लाये ।

डाक्टर बेली राम विख्यात, आ कर बोला वह साक्षात ।
"योगिराज पण्डित महाराज, रोगी एक लाये हम आज ।
इस को कीजिये आप नीरोग, मानें तब सब आप को लोग" ।
प्रभु जी ने वह पागल देखा, चुनौति मानी मन में लेखा ।
"इस पागल का भाग्य है जागा, हाथ ईर्षालुन के जो लागा" ।

दो० ऐसा मनहिं विचार कर, कह दी उन से बात ।
"संग चलो रावी नदी, ठीक करें वहां तात" ॥ १३५९

बेली राम मन में मुस्काया, योगी राज है हीला लाया ।
पर अब हम न पीछा छोड़ें, देखूं किस विध मुख ये मोड़ें ।
कार में प्रभु जी को बिठलाया, और सिपाही जो संग आया ।
कुछ अधिकारी और भी संग, रावी नदी को चले निशंग ।
आयी नदी सभी रुक पाये, प्रभु जी एक जड़ी तब लाये ।
पागल को वह जड़ी सुंघाई, उसे छींक तब ज़ोर से आई ।
नाक से कीड़ा इक गिर पाया, पागल का उन्माद नसाया ।
पागलपन के चिन्ह नसाये, भद्र पुरुष के सब गुण आये ।

दो० भद्र पुरुष के गुण लखे, डाक्टर बेली राम ।
परीक्षण करके देखा, माना भया आराम ॥ १३६०क

चरण प्रभु के ग्रहण कर, अपनी भूल बतायी ।
योगी जन की जानते, प्रभो न हम प्रभुतायी ॥ १३६०ख

५६. मानिक चन्द दलाल का तपेदिक निवारण

करें वर्णन अब एक चरित्र, पढ़ सुन कर मन भये पवित्र ।

प्रभु की कृपा को पहचानें, प्रभु की योग विभूति जानें ।
मानकचन्द था इक दलाल, तपदिक से था भया बेहाल ।
चिकित्सालय में रहा बहु देर, भया स्वास्थ्य में लेश न फेर ।
बद से बदतर होता जाय, स्पष्ट बात डाक्टर कह पाये ।
"अब यह दिनों का है महमान", पत्नी सुन कर भयी परेशान ।
सारा दिन रोने में बीता, रात भयी मन कुछ प्रतीता ।
भगवान कृष्ण स्वप्न में आये, ज्ञान देवी को वह कह पाये ।
"मत घबराओ लो तुम जान, ऋषिकेश इक योगी महान ।
उस के चरणों में ले जाओ, योग साधन इसको करवाओ" ।
प्रात भयी सामान संभाला, गाड़ी में निज पति को डाला ।

दो० गाड़ी में इस्वार हो, बदल बदल कर रेल ।
आ पहुँची ऋषिकेश में, प्रभु की दया अपेल ॥ १३६१

टांगे वाले से कह पायी, योगी कौन यहां है भाई ।
योग साधन आश्रम वह लाया, द्वारे पर उनको उतराया ।
द्वार में बैठ रही वह मौन, प्रभु पूछा आ "हो तुम कौन ।
कौन पुरुष यह संग हो लायी, रोग ग्रस्त परम निःसहायी" ।
ज्ञान देवी कहा "मैं अभागिन, मेरा पति भया है रोगिन ।
ज्यों ज्यों कीना मैं उपचार, रोग बढ़ा मैं भयी लाचार ।
हार गई तब चरणी आई, हे भगवन अब बनो सहाई" ।
बोले नाथ "अभागिन माई, व्यर्थ में क्यों परदेश है लाई ।

दो० तुम यहां क्यों लाई हो, हाथ भी न हिल पाय ।

साधन योग न कर सके, क्या कर सकें सहाय" ॥ १३६२क

सुन कर प्रभु के वचन को, वह न भयी हताश ।
उस को आज्ञा कृष्ण की, जिस बन्धाई आश ॥ १३६२ख

ज्ञान देवी पुनः कह पायी, "आये तेरी शरण गोसायीं ।
शरण त्याग हम जाएं नाहिं, जैसे भी हो राखो साईं ।
आये तेरी शरण गोसाईं, पहुंच कहीं न और के ताहिं ।
राखो अथवा दो ठुकराईं, शरण तेरी न छोड़ के जाहिं ।
विपदा हम ने घोर उठाहिं, अब तो ढूंढ लिया तुम ताहिं ।
योगी आप मिले पापारी, प्रकट कहा यह कृष्ण मुरारी ।
आ गये अब शरण तुम्हारी, दुःख निवारो भक्त भय हारी ।
दीन बन्धु है नाम तुम्हारा, सत्य करो प्रभु विरद यह भारा ।

दो० दीन बन्धु जन सब कहें, गहें दीन की लाज ।
हम शरणी जो आ पड़े, न त्यागो प्रभु आज" ॥ १३६३क

करुणामयी यह बोल कर, रुद्ध भया तब कण्ठ ।
जिनका जग में और नहिं, प्रभु लगावें कण्ठ ॥ १३६३ख

दयानिधि तब दया की ठानी, रहस्यमयी यह बोले वाणी ।
"इस से पूछो भूख लगी है, क्या खाने की आस लगी है" ।
पत्नी ने जब पूछी बात, उत्तर मिल पाया साक्षात ।
"चित्त चाहता पकौड़े खाऊं, खाटी चटनी साथ लगाऊं" ।
ज्ञान देवी प्रभु को कह दीन, प्रभु मुस्का कर आज्ञा दीन ।
"जाओ पकौड़े ले कर आओ, खुशी से इसे वही खिलाओ ।

चित्त में लेश न संशय लाना, और न अब तुम कुछ घबराना ।
तुम हो प्रभु की शरणी आयी, तेरे प्रभु अब बनें सहायी ।

दो० प्रभु सहायी अब बनें, राखो मन विश्वास ।
पति तुम्हारा स्वस्थ हो, ऐसी हम को आस" ॥ १३६४

ज्ञान देवी आज्ञा सुन पायी, लाई पकौड़े संग खटायी ।
मानिकचन्द खुशी से खाये, नेत्र तब उस बन्द कर पाये ।
उधर प्रभु निज कक्ष पधार, शय्या ऊपर तन को डार ।
खांस खांस कर भये बेहाल, ज्वर से तन का बिगड़ा हाल ।
सिद्ध पुरुष ध्यान में देखें, धन्य प्रभु तुम धन्य हो लेखें ।
शंकर बिन को विष को पीवे, निज तन पर पर-विपदा सीवे ।
धन्य प्रभो तेरा अवतार, भव बहतों को लीन उबार ।
दुःख में जिन के तड़पत प्राण, तुम से वे जन पाते त्रान ।

दो० दीन जनों के त्रान हित, धारा प्रभु तुम देह ।
शंकर बन पर पीड़ तुम, अपने देह पर लेह ॥ १३६५

मानिक चन्द न आंख उघारी, भयी पत्नी तब चिन्तित भारी ।
बार बार वह टेर बुलावे, देह को भी वह संग हिलावे ।
उस को लेश न होश थी आती, देवी ज्ञान देख विलपाती ।
मन में कहे हे कृष्ण मुरारी, यहां आ मेरी भयी खवारी ।
आप की लीला कैसी न्यारी, विपदा पर जो विपदा डारी ।
आंखों से वह नीर बहावे, बैठ अकेली दुःख को पावे ।
अत्यन्त भयी जब वह बेहाल, कृपा कीनी तब प्रभु दयाल ।

मानिक चन्द ने खोले नयन, और वह मुख से बोला बयन ।
"ज्ञान देवी मैं क्या बतलाऊं, प्रभु कृपा को क्या समझाऊं ।
मेरा रोग प्रभु जी लीना, और मुझे राजी कर दीना ।
दो० स्वस्थ उन्हों ने कर दिया, जिन के दर हम आये ।
अपने तन पर लेय कर, मेरे रोग दुराये ॥ १३६६
निज स्वप्न की बात बताऊं, सिमरण में मैं जैसे लाऊं ।
कहा प्रभु जी मानिक भाई, रोग बड़ा तुम हो निःसहाई ।
तीन दिनों में तुम्हें मुकावे, कर्मों का यह संकट आवे ।
हम लेवें यदि इस को भोग, कर्म कटें तुम बनो निरोग ।
खोलो मुख जब मैं मुंह खोला, वहां से निकलत देखा गोला ।
प्रभु के मुख वह जाय समाया, स्वप्न मेरा तब भंग हो पाया ।
ले चलो मुझे प्रभु के पास, चिन्ता मेरे मन अब खास ।
जावो प्रभु को मिल कर आवो, लौट मुझे सब हाल बतावो ।
दो० जाओ प्रभु को देखने, मेरे मन अब त्रास ।
मैं पापी निज पाप को, भोगूं मम अरदास ॥ १३६७
मेरे कर्मन को क्यों भोग, प्रभु लेवें क्यों मेरा रोग ।
योग शक्ति से यदि कर पाये, मेरा वश न कुछ भी जाये ।
ज्ञान देवी तुम शीघ्र जावो, प्रभु दर्शन को कर के आवो" ।
ज्ञान देवी तब मानी बात, कीना प्रभु का जा साक्षात ।
देखी प्रभु को वही बीमारी, मानिक चन्द जो भोगी भारी ।
कलेजा उस का दहका भाई, "हरे कृष्ण" कह लौट वह आई ।

मुख से वचन न निकलन पाया, कहा "स्वप्न तव सच्च हो पाया ।
कहूं मैं अब यह किस के ताईं, प्रभु लगें मुझे कृष्ण कन्हाईं ।
दो० स्वयं कृष्ण जी आन कर, रोग लिया निज देह ।
प्रभु जी के ही रूप में, कृष्ण रहें इस गेह" ॥ १३६८क
तीन दिवस तक श्री प्रभु, भोगा निज तन रोग ।
मानक चन्द के देह में, रहा न क्षय का रोग ॥ १३६८ख
तीन दिवस उपरान्त फिर, शय्या से उठ पाय ।
निर्बल देह को लेय कर, संगत में प्रभु आय ॥ १३६८ग
संगत सारी प्रभु को देखे, जय योगेश्वर जय उल्लेखे ।
मानिक चन्द बैठ लज्जावे, जिमि दोषी संकोच को पावे ।
ज्ञान देवी भी प्रभु पग पूजे, कृपा कर जिन मनोरथ पूजे ।
'सेवक' महिमा किमि बखाने, अनन्त का भेद वह किस विध जाने ।
प्रभु के चरित वह करत बखान, करे करावे कर्ता जान ।
अनन्त के हाथ जगत खिलवार, अपाणिपाद* वह करत है कार ।
तुरिया पद में जोय लसावे, प्राज्ञ व तैजस भी हो जावे ।
विश्व रूप जो व्यापक जाने, रामलाल बन योग को थापे ।
दो० राम लाल व्यापक विभु, देख योग का लोप ।
सिर्जन हार बन सृष्टि खुद, भये प्रकट पर गोप ॥ १३६९

५७. लाला नियामत राय ऐडवोकेट हाई कोर्ट लाहौर

इक सज्जन प्रभु शरणी आया, कई रोगों से जो सताया ।

* बिना हाथ और पैर के

नियामत राय था उस का नाम, वकालत का वह करता काम ।
शिर की पीड़ा उसे सतावे, दृष्टि क्षीण ही होती जावे ।
कानों की भयी शक्ति क्षीण, सदा जुकाम के रहत अधीन ।
दांतों से था वह परेशान, पायोरिया ने था कीन स्थान ।
"सकल दांत हम देंय निकाल", डाक्टर कथे यह कड़ा सवाल ।
सचमुच बनूं मैं दांत विहीन, इसी बात से शोक में लीन ।
कहें डाक्टर "विष देह रमावे", इस से बढ़ कर चिन्ता खावे ।
हो अधीर आया प्रभु पास, प्रभु जी ने बन्धाई आस ।

दो० चिन्ता से जो व्यथित हो, आये प्रभु के पास ।
दुःख भंजन योगेश प्रभु, उसे बन्धावें आस ॥ १३७०

प्रभु जी ने उसे आस बंधाई, नेति आदि उस को करवाई ।
दो मास का कीन उपचार, सुखी भया जो था लाचार ।
ज्योति क्षीण भयी थी ठीक, दांतों के विष से निर्भीक ।
जुकाम रोग भया निर्मूल, शिर का नाशा सकल था शूल ।
नियामत राय भया प्रसन्न, माना अपना जीवन धन्य ।
आश्रम को उस दीन सहयोग, जिस से बढ़े जगत में योग ।
उस ने कई जन आश्रम लाये, जिन के प्रभु जी रोग दुराये ।
लवपुर के प्रतिष्ठित लोग, सीखें आ आश्रम में योग ।

दो० आश्रम में आ सीखते, लवपुर में बहु लोग ।
छेहरटे भी चलि आते, प्रभु से सीखन योग ॥ १३७१

५८. (Q. C. MALLAN) क्यू. सी. मल्लन

इक सज्जन का करें बखान, मल्लन जिस का था अभिधान ।
आंगल पुरुष वह रहत सुधासर, फैक्टरी इक का था वह मैंजर ।
उस का नाक रहत था बहता, वर्षों से ही कष्ट को सहता ।
उस ने इलाज बहुत करवाये, भारत और इंगलैंड भी जाय ।
सुन कर प्रभु की ख्याति आया, प्रभु जी साधन नेति कराया ।
साधन योग भी और सिखाये, श्रद्धा से सब उस कर पाये ।
स्वस्थ भया तब हुआ हैरान, "अहोभारत के योगी महान ।
उन की समता को कर पाय, योग समान न और उपाय ।
दो० उपाय न योग समान है, सकल जगत के मांहि" ।
कथन किया निज देश में, उसने सब के तांहि ॥ १३७२

क्यू. सी. मल्लन का लेख

The Distillery, Amritsar. **18-12-33**

It is with great pleasure that I make the following statement as regarded my experience of Yoga . I have been a great sufferer from Hay Fever and Catarrh for several years. The attacks were more severe when I went to Europe. Under the advice of Shri Sadgurudev Pandit Ram Lal ji, I have been practising certain Yogic exercises as well as doing "Neti" which consists of passing a string through each notrits daily. I had great difficulty in doing this at first, but after some days, effort I succeeded.

I am most glad to state that since I have been doing "Neti" I have had no further trouble with my nose and although I passed two months in England this summer I had no Hay Fever or Catarrh and I am enjoying good health. I now always carry a "Neti" string with me wherever I go but have had no recurrence of my trouble. I may also state that since doing "Neti" I have never had a cold.

This certificate of mine may be used in any way desired.

Q. C. MALLAN

प्रभु जी को भी लिख के दीना, सद्गुरु मुझ को जीवन दीना ।
इंगलिस्तान भी मैं हो आया, नज़ले ने न मुझे सताया ।
राखूं नेती सदा संभाल, नित्य करूं मैं प्रातः काल ।
भया है मुझ को दृढ़ विश्वास, योग से होत लाभ है खास ।
आप का जानूं मैं एहसान, रोग से मुझे मिला जो त्राण ।
आप गुरु मैं शिष्य तुम्हारा, जिन दीना मुझे योग सहारा ।
मुझ को दीजो ऐसा ज्ञान, दृढ़ बने जिमि मेरा ध्यान ।
मन चंचल जिमि वश में आवे, बिन कारण जो मुझे सतावे ।

दो० मन मारन के हेत मैं, चाहता हूं कुछ ज्ञान ।
मन चंचल जिमि वश भये, और लगे मम ध्यान ॥ १३७३

मल्लन को तब प्रभु बताया, षट्कर्मन का बोध कराया ।
प्राणायाम की विधि बतायी, शिक्षा मन्त्र की दे पायी ।
श्वास श्वास जिमि जाप हो पाये, सिखलाये प्रभु वही उपाये ।
दो काल तुम ध्यान लगावो, प्रातः सायं नेम बनावो ।
अर्ध रात जो तुम जग पाओ, बैठ ध्यान में लाभ उठाओ ।
दिनचर्या प्रभु जी बतलायी, मल्लन शिक्षा दृढ़ अपनायी ।
गुरु की शिक्षा को जो पाले, वह शिष्य कुछ गुरु से पा ले ।
मल्लन साहब धारे जब नेम, प्रभु से मिला योग वा क्षेम ।

दो० योग क्षेम प्रभु से मिला, खुला ध्यान का द्वार ।
समाधि में प्रभु से मिले, शिक्षा मिलत अपार ॥ १३७४

५९. योग से लाभान्वित कुछ अन्य व्यक्ति

योग से प्रभु जी बहु जन तारे, तन के रोग अनेक निवारे ।
हुकुमचन्द अध्यापक आया, चश्मा आंखों का उतराया ।
शिर पीड़ा से मुक्ति पायी, सुखी भया वह सज्जन भायी ।
टीचर बुधु मल्ल भी आया, उस का भी चश्मा उतराया ।
कुन्दन लाल भी था अध्यापक, नेति भयी उस को सुखदायक ।
उस का भी था चश्मा छूटा, किस किस ने न सुख को लूटा ।
विलायती राम का करूं बखान, जिसे दमा ने कीन परशान ।
रसौली उस के नाक के मांझ, रहत दुःखी वह प्रातः सांझ ।
नेति आदि साधन सिखलाये, उस के कष्ट अविलंब दुराये ।

दो० साधन नेति सिखाय कर, सुखी प्रभु ने कीन ।
किस किस का वर्णन करें, सुख सागर सुख दीन ॥ १३७५

अमृतलाल हँजीरन पीड़ित, रह दुखिया जग में अवसीदत ।
आश्रम में जब वह चलि आया, साधन योग उस को करवाया ।
जीवन की तब आशा जागी, प्रभु कृपा का भया वह भागी ।
इक देवी का करूं बखान, बड़ा न जिस से रोगी महान ।
तन परछाईं वत प्रतीते, कराहत ही सब रात्री बीते ।
आश्रम के था साथ निवास, प्रभु के कान पड़ा उच्छवास ।
दुःख निवारण हेत जो आये, दुखिया का न दुःख सह पाये ।
प्रात भयी उस को जा देखा, मरणासन्न बस उस को पेखा ।

उसके पति से कीनी बात, "किस की औषधी करते तात"।
*"बेली राम डाक्टर महाराज, बदल बदल नित करत इलाज।
कुछ भी लाभ न होने पाता, होता तन नित क्षीण ही जाता।
दे दे फीस हारे हम नाथ, इस का बचना प्रभु के हाथ।
दो० प्रभु बचावे तो बचे, डाक्टर के बस नाहिं।
कई मास नित आयकर, देख रहा इस ताहिं" ॥ १३७६

बेली राम इतने में आया, प्रभु जी ने मुख से फरमाया।
"डाक्टर करिये इसे नीरोग, व्याप रहा सब के मन सोग"।
डाक्टर रोष में भरि उचारा, "मेरा ही तो इसे सहारा।
मेरा न जो होत उपचार, देता रोग इसे तो मार"।
कहें प्रभु "उपचार वह कैसा, फर्क पड़े न एक भी पैसा।
उस जीने से क्या सुख भायी, खाट पड़ी हो देह दुःखदायी।
जिमी खाट से यह उठ पाये, ऐसा करिये आप उपाये"।
सीख यह डाक्टर को न भायी, "उठा देखो तुम ही खुद भाई।
दो० यदि आप ही कर सकें, कर देखो उपचार।
कथनी करना सुगम है, करे सो जाने सार" ॥ १३७७क
इस विध डाक्टर बोलकर, छोड़ गया तत्काल।
पति को प्रभु ने बोला, घृत लाओ इस काल ॥ १३७७ख

घृत का टीन पति ले आया, प्याला नाथ जी इक मंगवाया।
मुख में कुछ औषध तब डाली, घृत भर साथ पिलायी प्याली।

*लाहौर का बहुत प्रसिद्ध डाक्टर था।

कई प्याले घृत पीलाया, दे वस्त्र फिर उसे सुलाया ।
आज्ञा पति तब प्रभु से पायी, राखो सुध तुम इस की भायी ।
उठ यह जल के निकट न जावे, और न जल को मुख में पावे ।
जल से इस को तुम्हीं बचाना, चाहो जो इस के प्राण बचाना ।
दे आज्ञा प्रभु आश्रम आये, नित्य कर्म अपना कर पाये ।
इतने में वह सज्जन आया, उस का मन था अति विकलाया ।

दो० अति विकल उस होय कर, बोले प्रभु से बयन ।
"नाथ भूल मुझ से भयी, लगे थे मेरे नयन ॥ १३७८क
इतने में ही उठि कर, पी आई वह नीर ।
होनहार प्रभो प्रबल है, मेरे मनहिं पीर" ॥१३७८ख

सुनी प्रभु जब उसकी वाणी, शीघ्र गये वहां महा दानी ।
उस देवी को औषध दीनी, उल्टी उसने तत्क्षण कीनी ।
उल्टी में एक सीटा† आया, प्रभु कृपा से रोग नसाया ।
वेसुध भयी तभी वह नार, पहर बाद ली होश संभार ।
अपने को तब स्वस्थ वह पाय, उठने बैठने में चित्त लाय ।
प्रभु से उस तब सीखा योग, वरदान भया जनु उस को रोग ।
सद्गुरु मिलें जिसको भगवान, जानो उसके कर्म महान ।
बिन कर्मन के किमि कोई पावे, गुरु अवतारी जब जग आवे ।

दो० ईश्वर जब अवतार ले, सद्गुरु के ही रूप ।
अनादि अनन्त अनीह प्रभु, धारे मानव रूप ॥ १३७९क

† मक्की की छल्ली या सीटे के आकार का मांस तथा मल का लोथ ।

विरला ही जन तब लखे, पूरण कर विश्वास ।
उत्तम कर्मों का उदय, हो तब होत प्रकास ॥ १३७९ख

६०. बालक शांति स्वरूप की रक्षा

घटन अनोखी और बखानें, योग की महिमा जिमि पहचानें ।
और पहचानें प्रभु की दाया, भक्तन पर जिन चरणी लाया ।
एक भक्त अमृतसर रहता, प्रभु प्रेम रस उस मन बहता ।
किसी आफिस में करता काम, तन से कारज मन में राम ।
प्रातः सायं आश्रम जावे, आशिष पा कर ध्यान लगावे ।
प्रभु आश्रित रह समय बितावे, काम काज में प्रभु को ध्यावे ।
प्रभु भी करते उस के काम, भीड़ पड़त तो बहुड़त राम ।
उस का पुत्र भया बीमार, हैज़े ने कर दीन लाचार ।
दस्त पै दस्त उसे आ जावे, कुछ भी औषध कार न आवे ।
सारा दिन बीता इस दुःख में, शाम भयी भय उपजा मन में ।
"हे प्रभो मम पूत बचावो, यह रात किसी तरह कटावो ।

दो० हे प्रभो मम पूत की, रक्षा करिये आप ।
प्राण बचें मम पुत्र के, करूं आप का जाप" ॥ १३८०क
भयी ऐसी कुछ प्रेरणा, लीना पूत उठाय ।
पहुँच प्रभु के पास उस, डाला चरणी जाय ॥ १३८०ख

अन्तर्यामी बालक देखा, मौत के मुंह में उस को पेखा ।
अब तो औषध कार न आवे, इस को बस अब योग बचावे ।

इमी सोच निज परना† लीना, बांध पगों को उस के दीना ।
खूंटी पर बालक लटकाया, भूमि ओर था सर कर पाया ।
बालक ने निज होश भुलाये, लटक रहा न शोर मचाये ।
शांति स्वरूप शांत रह पाया, उस ने लेश न शोर मचाया ।
घण्टा भर जब बीतन आया, नीचे उसे उतार लिटाया ।
सारी रात रहा वह सोया, भोर भयी तब मुंह उस धोया ।

दो० मुंह हाथ वह धोय कर, प्रभु को कर प्रणाम ।
भाग गया घर आपने, धन्य धन्य प्रभु राम ॥ १३८१

बुद्धि अल्प लेखनी बलहीन, लीला अद्भुत प्रभु जो कीन ।
उस का वर्णन है दुश्वार, प्रभु कृपा से लागूं पार ।
सोच सोच चकरावे माथ, प्रभु की शक्ति लिखावे गाथ ।

६१. माला देवी का उद्धार

एक दिवस प्रभु थे आसीन, मुलखराज उन चरणी लीन ।
ध्यान मध्य उस ने क्या देखा, खुली आंख इक रूप को पेखा ।
इक देवी का सूक्ष्म आया, धूम्र वत जिस रूप बनाया ।
मुलखराज ने उसे पहचान, लीना उस को ठीक ही जान ।
माला देवी थी तहँ आई, मुलखराज विनय कर पाई ।
"अशरण शरण ! इस रूप पधारी, क्यों माला को भयी खवारी ।

दो० माला को इस रूप में, देख मुझे संदेह ।
सहमा सा यह रूप है, सूक्ष्म ही बस देह" ॥ १३८२

†अंगोछा

निज बालक की सुन कर वाणी, प्रभु बोले तब जग कल्याणी ।
राजा जी हम क्या बतलायें, नर न देह का लाभ उठायें ।
मानव तन भी पा कर प्राणी, रहता है बिन सोच गुमानी ।
कुटुंब जाल ही उसे सुहावे, ईश्वर से न नेह को लावे ।
जप तप ध्यान न मख वा पूजा, भाता केवल कारज दूजा ।
मृत्यु जब फिर उस की होवे, सद्गति को वह कैसे गोवे ।
माला यहां पर रोज़ थी आती, ध्यान भजन से थी कतराती ।
उस को जो कुछ हम समझाते, "कहां फुरसत" बस उत्तर पाते ।

दो० नहीं फुरसत न वकत है, ईश भजन के हेत ।
फिर नर सर को धुनत है, बनता जब है प्रेत ॥ १३८३

प्रेत बने जो ईश न ध्यावे, प्रेत बने जो जन्म गंवावे ।
प्रेत बने जो माया लीना, प्रेत बने जो भक्ति हीना ।
प्रेत बने जो दंभ न त्यागे, प्रेत बने जो असत पथ लागे ।
प्रेत बने जो धर्म द्रोही, प्रेत बने जो लोभी होई ।
प्रेत बने जो क्रोधी कामी, प्रेत बने कुमारग गामी ।
प्रेत बने अहंकारी मीत, प्रेत बने जिस पाप से प्रीत ।
प्रेत बने कृतघ्नी जान, जिस ने भूला पर ऐहसान ।
मात पिता गुरु जिस अपमाने, अथवा देव न द्विज सन्माने ।
ऐसे नर मर कर जब जाते, प्रेत योनि को हैं वे पाते ।

दो० मानव तन को पाय कर, कीना धर्म न कर्म ।
मोह ममता में रम रहे, प्रेत बनें यह मर्म ॥ १३८४

राजा जी मैं तुम्हें बताऊँ, माला की सब बात जताऊँ ।
नित्य यहां होत था आना, कथन मेरा न इस ने माना ।
ध्यान भजन न इस ने कीना, अन्य ही बातों में मन दीना ।
छत से गिर कर है मर पायी, पूर्व अभ्यास से यहां चलि आई ।
कीनी इस न कोई कमाई, है यह मर कर यहां चलि आई ।
कौन गति को अब यह जावे, यह ही सोच मेरे मन आवे" ।
कहा मुलख "हे जग के शासक, गती पाता जो तव उपासक ।
उसी गती की यह अधिकारी, शरण आई जो नाथ तुम्हारी ।

दो० शरण प्रभु तब आय कर, सद्गति किमि न होय ।
तेरे पग से निकलती, गंगा पाप जो धोय ॥ १३८५

प्रभु जी इस का करो उद्धार, शरणागत वत्सल नाम तुम्हार ।
क्षमा करें प्रभु इस की भूल, ग्रहण करे अब तव पग धूल" ।
बालक का प्रभु सुन फ़रमान, मुख पर लाये दिव्य मुस्कान ।
दृष्टि ऊपर जब कर पाये, इक सिंहासन देव ले आये ।
माला को प्रभु कीन अस्वार, चर्तुभुजी दिव रूप उस धार ।
जय जय कार प्रभु की कीनी, स्वर्ग लोक की राह फिर लीनी ।
रे मन तू भी कर वीचार, संकोच तेरा न आवे कार ।
उठो जागो लो प्रभु पग धार, चाहते हो जो निज उद्धार ।

दो० आना कानी छोड़ कर, करे जो प्रभु से प्रेम ।
ज्ञान भजन व मोक्ष पद, अवश्य मिले यह नेम ॥ १३८६

आश्रम धर्म जब प्रभु अपनाया, जन क्या जग ही था तर पाया ।

किस किस का यहां करें बखान, ग्रहण करें बस मौन यह जान ।
प्रभु की महिमा कथी अपार, "नेति नेति" कह मौन लें धार ।

६२. योग विभूति वर्णन

इक दिन इक योगी था आया, आ उस प्रभु को माथ झुकाया ।
कहन लगा "हे नाथ प्यारे, तुम जानो सब रहस्य न्यारे ।
कलियुग माहीं योग ह्रास, देख भये हम परम उदास ।
आप के आश्रम में अब आय, और दर्श जो आप के पाय ।
मन मेरे है बंध गई आस, योग में जग का हो विश्वास ।
आप के आश्रम में मैं देखूं, सब अंगों की शिक्षा पेखूं ।

दो० आपके आश्रम में प्रभु, पूर्ण योग सिखायें ।
शक्तिपात भी आपसे, सब साधक जन पायें ॥ १३८७

दूर से मैं हूँ चल कर आया, आप का तेज ही ले कर आया ।
दर्शन पा कर भया कृतारथ, नाथ कथूं अब निज भावारथ ।
योग का चाहता हूँ मैं ज्ञान, योग की शक्ति सुनी महान ।
अनेक विभूति कथन में आवें, अष्ट सिद्धि भी योगी पावें ।
प्रभु कराइये उन का ज्ञान, आप जनावें तत्व महान ।
योगी की सुन प्रभु जी वाणी, बोले प्रेम सहित महादानी ।
"सुन योगी मैं तुम्हें बताऊँ, सिद्धि का मैं रूप जताऊँ ।
प्रथम अधिकारी लो तुम जान, पा सके जो सिद्धी महान ।

दो० बिन अधिकारी न मिले, योग सिद्धि न होय ।
गुण अधिकारी के कथे, जान लवो तुम सोय ॥ १३८८

विद्या सकल गुरु से ग्राहवे, देखा देखी न कर पावे ।
गुरु दत्त विद्या फल की दाता, गुरु बिन ज्ञान भी कष्ट प्रदाता ।
गुरु मुख से न ज्ञान जो आवे, निर्वीर्य वह ज्ञान कहावे ।
प्रथम करे जन गुरु की पूजा, तभी आरंभे कारज दूजा ।
श्रद्धा जिस के मन में होय, विद्या का अधिकारी सोय ।
बहुसंगी जिस नर को जानो, वह अधिकारी लेश न मानो ।
मिथ्यावादी भी जो होवे, वह भी सिद्धि को न गोवे ।
निष्ठुरभाषी भी नर नार, योग सिद्धी उन को दुश्वार ।

दो० छः* लक्षण तुम जान लो, योग सिद्धि हित मीत ।
शिव संहिता में जो कथे, मेरे मन प्रतीत ॥ १३८९क

सिद्धी में विश्वास हो, श्रद्धा हो मन माहिं ।
गुरु पूजन में रत रहे, तीन ये लक्षण आहिं ॥ १३८९ख

सब में समता भाव हो, चौथा लक्षण जान ।
कर इन्द्रिन का निग्रह, योगी बने महान ॥ १३८९ग

छटा लक्षण जो कथा, उस पर हो आचरण ।
मिताहारी जो जन बने, करे सिद्धि का वरण ॥ १३८९घ

छः गुणों से युक्त होय, करे जो साधन योग ।
गुरु कृपा से कर सके, सिद्धिन का उपभोग ॥ १३८९ङ

*योग सिद्धि हेतु छः लक्षण—सिद्धि में विश्वास, श्रद्धा, गुरु पूजन, प्राणिमात्र में समभाव, इन्द्रियनिग्रह, मिताहार। (शिव संहिता III. 19, 20)

सिद्धि[1] आठ जो योगी पावे, अणिमा महिमा कथन में आवे ।
गरिमा लघिमा लो तुम जान, प्राप्ति और प्रकाम्य महान ।
ईशिता वशिता अंतिम भाई, अष्टम सिद्धी कथन में आई ।
इनके लक्षण अब कह पावें, शास्त्र जिन के गुण बहु गावें ।
परमाणुवत जो तन हो पावे, अणिमा[1] सिद्धि कथन में आवे ।
देह को करे विशाल महान, महिमा[2] सिद्धि लो यह जान ।
इच्छा होय करे तन भारी, सिद्धी यह है गरिमा[3] सारी ।
कर सके जो हलका देह को, लघिमा[4] सिद्धी कहते उस को ।
प्राप्ती[5] सिद्धी परम महान, और जानें क्या इस समान ।
इच्छा लावे योगी मन में, पूर्ण होवे उसी ही क्षण में ।

दो० पूरण इच्छा होय जब, कहावे पूर्ण काम ।
प्राप्ति सिद्धि योगी गहे, कृपा करें जो राम ॥ १३९०

अगली सिद्धी अब बतलावें, योग की महती महिमा गावें ।
दृश्य अदृश्य योगी हो जावे, प्रकाम्या[6] सिद्धि वही कहावे ।
ईश्वर जैसी शक्ति आवे, जग की रचना भी कर पावे ।
वही कहावे ईशिता[7] सिद्धि, इस से बड़ी क्या होवे ऋद्धि ।
सकल सृष्टि जब वश में आवे, पाप पुण्य योगी तर जावे ।
तीन लोक में विचरे ऐसे, निज का ही घर उस का जैसे ।
वही कहाती वशिता[8] सिद्धि, लोक लोकान्तर योग प्रसिद्धि ।
आठों सिद्धियां मैं बतलाईं, उत्तम योगिजनों ने पाईं ।

1. आठ सिद्धियां—1. अणिमा 2. महिमा 3. गरिमा 4. लघिमा 5. प्राप्ति 6. प्रकाम्या 7. ईशिता 8. वशिता ।

दो० आठों सिद्धी साध कर, अष्टांग योगि कहाय ।
ऐसा नर विरला मिले, बाद युगों प्रकटाय ॥ १३९१

सुन कर प्रभु जी का उपदेश, योगी के मन हर्ष विशेष ।
प्रभु चरणों में आपा वारे, आठों अंग थे प्रभु जी धारे ।
उन सा और न सद्गुरु योगी, मन अनुमान लिया उस योगी ।
प्रभु से विनय वचन कह पाया, "नाथ तुम्हारी अद्भुत माया ।
सुन कर तुम से योग की बात, परम न हर्ष मन मांझ समात ।
सिद्धियां तुम जो प्रभु बखानीं, दास विभूति तुमरी जानीं ।
सिद्धि सकल तेरे घट मांहीं, निश्चय भया मुझे है साईं ।
अन्य विभूति मेरे नाथ, श्रवण करूं और बनूँ सनाथ ।

दो० नाथ मुझे बतलाइये, योग विभूति और ।
ऐसे अद्भुत ज्ञान को, अन्य न पाऊँ ठौर ॥ १३९२क

प्रभु जी सुन कर बेनती, वर्णी और विभूत ।
योगी के घट जो बसैं, जो संयमी[1] हो सूत ॥ १३९२ख

नाथ कहें "हे योगी भाई, योग की महिमा कथी न जाई ।
योगी बनना पर दुश्वार, योगी बने जो मारे मार[2] ।
योग करे जो चित्त को सोध, योगी बने कर वृत्ति निरोध ।
योग करे जो धारणा धार, ध्यान लगावे टक इक सार ।
ध्यान में होवे इस विध लीन, विचरत सागर में जिमि मीन ।

1. 'संयमी' अर्थात् धारणा, ध्यान, समाधी के अभ्यास में परिपक्व ।
2. 'मार' अर्थात् काम और वासना को वश करे वह योगी बनने में समर्थ होता है ।

अपनी सुधि को ध्यान में खोवे, जल मांझ जिमि लवण विगोवे ।
निज आपा जब होता लीन, समाधी पाता नर प्रवीण ।
निरन्तर योग को इस विध साध, संयम[1] को नर लेत आराध ।

दो० ऐसा संयम धार कर, मिले विभूति योग ।
वर्णन जिसका अब करें, बोध पायें सब लोक ॥ १३९३

अनेक विभूति योगी पाये, पूर्व जन्म का बोध हो जाये ।
तीन काल की बात वह जाने, सकल जीवों के मन पहचाने ।
पशु पक्षी जो बोलें बोल, योगी ले सब जान अडोल ।
योगी अन्तर्धान हो जाये, उस को न कोई देखन पाये ।
मृत्यु काल को ले वह जान, अनिष्टों का भी मिलता ज्ञान ।
जैसा चाहे वह देह बनावे, हाथी जैसे बल को पावे ।
दूर की वस्तु का हो ज्ञान, सन्मुख योगी के सब जान ।
चान्द सितारों को वह जाने, उन की गति को भी पहचाने ।
देह का सकल व्यूह ले जान, अपना पूरा तन पहचान ।

दो० कायव्यूह को जानता, करता ऐसा योग ।
क्षुतप्यास की प्रबलता, दूर होय बिन भोग ॥ १३९४

सिद्ध पुरुषों के दर्शन पाता, ज्ञान गोष्ठ उन से कर पाता ।
प्रतिभा उस की ऐसी होवे, सर्व ज्ञाता पदवी गोवे ।
अपने चित्त को लेता जान, पाता आत्मा का भी ज्ञान ।

1. संयम का लक्षण योग दर्शन के अनुसार निम्नलिखित है—
"त्रयमेकत्र संयमः (विभूतिपाद सूत्र) 3.4 अर्थात् तीनों (धारणा, ध्यान, समाधि) का एक लक्ष्य में होना संयम है।

पर शरीर में करत प्रवेश, उत्क्रमण करे जब इच्छ विशेष ।
दिव्य श्रोत्र को वह पा जावे, गमन आकाशी कर दिखलावे ।
विवेकी उस जैसा न होवे, कैवल्य पदवी को योगी गोवे ।
योग विभूत पूछी तुम भाई, मैंने वह तुम को बतलाई ।
विरला योगी इस को पावे, जो पावे कैवल्य ग्राहवे" ।

दो० इस विध वचन सुनाय कर, प्रभु जी धारा मौन ।
योगी सत्य अनुमाना, प्रभु सिद्धिन के भौन ॥ १३९५क
प्रभु जी को प्रणाम कर, उस कीना प्रस्थान ।
नित्य कर्म में तब लगे, राम लाल भगवान ॥ १३९५ख

६३. वेदान्ती का उपाख्यान

रात्रि को कुछ भक्त चलि आये, प्रभु चरणी जिन शीश झुकाये ।
निज मन की उन बात चलायी, शंका अपनी फिर प्रकटायी ।
"बहुश्रुत[1], जभी जन हो जावे, सब शास्त्रन के ज्ञान को पावे ।
सब जनता में होवे नाम, योग से उसको फिर क्या काम" ।
प्रभु जी सुन कर मन अनुमाना, व्यापक भ्रम इक सब में जाना ।
साधन को जगती विसराया, केवल पढ़ने में चित्त लाया ।
मुख से इस विध नाथ उच्चारे, समझ लिए मैं भाव तुम्हारे
एक कथा का करूँ बखान, जिस से तुम कुछ पावो ज्ञान ।

दो० कथा जो तुम से मैं कहूँ, सुनना ला कर ध्यान ।
मन में उस का मनन कर, होवे संशय हान ॥ १३९६

1. विद्वान

एक राजा का है इतिहास, धर्म कर्म में था विश्वास ।
रुचि थी उस की ज्ञान में भारी, परजा मान करे थी सारी ।
राज गुरु वहां का विद्वान, लागा त्यागन जब वह प्राण ।
राजा को उस पास बुलाया, अपने सुत का हाथ थमाया ।
बोला नृप को हाथ थमाय, "किसी से यह न मांगन पाय ।
ऐसी विद्या इसे पढ़ानी, बन पाये यह ठीक ज्ञानी" ।
राजा ने कर लीन स्वीकार, स्वर्ग गया फिर गुरु सिधार ।
राजा ने निज वचन निभाया, इक पण्डित के पढ़ने पाया ।
पढ़ लिख कर जब भया सचेत, भेजा काशी पढ़ने हेत ।
वेदान्ताचार्य बन विद्वान, कण्ठाग्र कीने ग्रंथ महान ।

दो० वेदान्ताचार्य था भया, जिह्वा पर बहु ज्ञान ।
भाषा का पाण्डित्य भी, सुन्दर करत बखान ॥ १३९७

काशी से वह लौट के आया, लाद अश्व पै ग्रंथ भी लाया ।
पुष्प तांबूल भेंट वह लेय, ठाड़ा जा राजा के गेह ।
राजा देख रुदन कर पाया, कैसा इस पाण्डित्य कमाया ।
बालक लौटा उलटे पांव, रोन लगा जा ठहर कुठांव ।
एक महात्मा ने तब देखा, विकट कष्ट में उसे उल्लेखा ।
"क्यों रोते हो मेरे भाई, कौन विपत है तुझ पै आई" ।
सकल बात बालक कह दीनी, महात्मा ने तब मन में चीनी ।
राजा बहुत गुणी मैं जानूं, बालक पुस्तक पण्डित मानूं ।
परम हितैषी राजा इस का, समझा है न भाव यह जिसका ।

दो० है बालक न जान सका, राजा का सद्भाव ।
इस कारण यह लौट कर, रोता खो सब चाव ॥ १३९८

विद्यावान वही कहलावे, धन के लोभ में जो न आवे ।
जिस में हो वैराग्य महान, शास्त्र कथें उस को विद्वान ।
राजा के दर चल क्यों जावे, राजा पास उसी के आवे ।
राजा वचनबद्ध है भाई, इसकी देख त्रुटि उस पाई ।
यह तो भया है न विद्वान, मांगे राजा के दर दान ।
महात्मा चित्त इमि गुण पाया, बालक को फिर रहस्य बताया ।
"सुन बालक हे मीत प्यारे, शास्त्र पढ़े हैं तुम ने सारे ।
पढ़ कर पर आचरण न कीना, देख राजा का मन मलीना ।

दो० शास्त्र के उपदेश जो, औषध की वे नाईं ।
जब तक सेवन न करें, भव का रोग न जाईं ॥ १३९९

शास्त्र में जो साधन आये, बोलो क्या तुम ने कर पाये ।
मन को है क्या तुम ने जीता, सद्गुरु पा क्या योग है कीता ।
योग बिना जब तुम को देखा, राजा का मन दुःखी विशेषा ।
योग साधन में तुम लग जावो, राजा को उऋण कर पावो ।
पितृ ऋण से मुक्ति पावो, साधन योग अब तुम कमावो" ।
महात्मा का सुन कर उपदेश, बालक मन भया बोध विशेष ।
चरणों गिर मुख से वह बोला, "मुझे बना लो अब तुम चेला ।
मुझ को दो तुम योग सिखाय, भव का रोग जिस विध मिट जाय" ।
महात्मा ने तब योग सिखाया, समाधि में उस को बिठलाया ।

दो० समाधि में बिठलाय कर, योग में कर प्रवीण ।
साधु वहां से चल दिया, बाल समाधि लीन ॥ १४००क
समाधि में वह रम गया, भूला सकल जहान ।
माया से उपराम था, जनता लीना जान ॥ १४००ख

जनता भेंटें लाने लागी, ध्यान मग्न था वह वैरागी ।
पक्षी गण ही भेंटें खाता, बालक छू न उन्हें दिखाता ।
पास राजा के पहुंची बात, भेजा मन्त्री उस इक प्रात ।
मन्त्री ने आ उसे पहचाना, यह तो बालक वही अंजाना ।
उस का नाम ले उसे सुनाया, कहा "महाराज ने तुम्हें बुलाया" ।
कहा बालक ने "हम न जानें, राजा तेरा नहीं पहचानें ।
हम को राजा से क्या काम, सद्गुरु से हमें पूरण काम" ।
मन्त्री ने जा दीन सन्देश, सुन राजा मन हर्ष विशेष ।
ले कर भेंटें वह चलि आया, योगी आगे शीश झुकाया ।

दो० अपना नाम बताय कर, राजा कीन प्रणाम ।
योगी बोला "राजवर, आये हो किस काम" ॥ १४०१

कहा राजा ने "दर्शन चाहूं, योगी के पग शीश झुकाऊं ।
कृत कृत्य हो गया हूँ आज, योगी वास करे मम राज ।
जहां योगी का होवे वास, सुख संपद का तहां आवास ।
जो आज्ञा हो हम को दीजो, राज गुरु बन सेवा लीजो" ।
योगी बोला "हे महाराज, हम को न गुरु पद से काज ।
दर्शन हित तुम आए आज, लौट जाओ ले अपना साज ।

हम वन में रह योग कमावें, राज करो तुम जन सुख पावें" ।
सुन कर राजा रूखी वाणी, भया कृतार्थ प्रण का मानी ।

दो० कृतार्थ राजा था भया, कर योगी के दर्श ।
पूरण उस का प्रण भया, भरा था मन में हर्ष ॥ १४०२

प्रभु जी ने यह कथा सुनाई, भक्त जनों के मन तब आई ।
योग बिना विद्वान न होवे, पढ़ पढ़ पुस्तक जीवन खोवे ।
विद्या पढ़े न योग कमावे, मूर्ख पण्डित वह कहलावे ।
खा भोजन जिमि नहिं पचावे, भोजन वह विष सम हो जावे ।
अन्न पचे देह शक्ति ग्राहता, योगी पण्डित मान को पाता ।
चारों फल नर वह ही पाता, विद्या पढ़ जो योग कमाता ।
ऋषि मुनि और सब अवतार, योग को थापा उन आधार ।
कहा प्रभु जी भक्तन ताहिं, "उत्तर मिल पाया वा नाहिं ।

दो० प्रश्न जो तुम ने था किया, क्या सुलझा वह तात ।
लाख बात की बात यह, बिन योग बने न बात" ॥ १४०३

धन्य धन्य सब भक्त पुकारें, योगिराज को वे सत्कारें ।
रात का पहर एक हो पाया, भक्तन को प्रभु विदा कराया ।
निज स्वरूप को प्रभु संभाला, समाधि लीन भये तत्काला ।
जगदाधार प्रभु जग आये, जनता ज्ञान योग का पाये ।
भ्रांत मतों की भ्रांति टूटी, मूढ़ मती से बुद्धि छूटी ।
दूर दूर से जन चलि आवें, शलभ दीप शिखा जिमि धावें ।

६४. भक्त अमरनाथ

एक भक्त का वर्णन आया, ग्राम[1] दुभेटा में जो जाया ।
जन्म जन्म के शुभ संस्कार, लाये खींच कर अमृतसार ।
कई जन्म थी कीन कमाई, शरण प्रभु की जो मिल पाई ।

दो० शरण प्रभु की थी मिली, कोनी शुभ कमाई ।
भक्त शिरोमन अमर ने, सद्गुरु पग रज पाई ॥ १४०४

सद्गुरु चरण अमर ने पाये, अमर भया मनु अमृत खाये ।
अलौकिक कृपा उस पर कीनी, ध्यान समाधि प्रभु जी दीनी ।
लोक लोकान्तर उस ने देखे, विष्णु ब्रह्मा शिव भी पेखे ।
देवों का संग वह कर पाता, सदा ध्यान में चित्त लगाता ।
चित्त में तीव्र था वैराग, जग में लेश भी न अनुराग ।
"वन में जा मैं योग कमाऊँ, त्याग जगत को ही मैं जाऊँ" ।
ऐसे उस के मन में भाव, जगती से बस उलट स्वभाव ।
प्रभु चरणों में करता योग, उठता देखें आसन लोग ।

दो० आसन उसका नित उठत, जब करता वह ध्यान ।
उस के मन में योग का, तीव्र वेग महान ॥ १४०५

घर वालों ने जब यह देखा, बना अमर है योगी लेखा ।
बाधा बन उस के मग ठारे, "काम करो" कह भाई निवारे ।
"क्या गुरु का यही उपदेश, काम करो न घर का लेश ।

१. ग्राम दुभेटा, जिला होश्यारपुर, पंजाब

काम काज में जो मन लावे, और साथ ही प्रभु को ध्यावे ।
उस को जानें सभी महान, कथा यह गीता में भगवान" ।
कहे अमर "यह बात मैं जानूँ, मन को पर मैं किमि संभालूँ ।
मन न जग में सुख को माने, ध्यान में ही निज हित पहचाने ।
एक भी क्षण वह न मुड़ पाये, क्या करूं तुम्हीं कहो उपाये ।
दो० क्या करूं नहीं जानता, मन पर वशता नाहिं" ।
सत्य सत्य इमि कहत वह, घर वालों के ताहिं ॥ १४०६
लक्ष्मण दास ज्येष्ठ जो भाई, अमर नाथ का पिता के नाईं ।
उस ने निज कर्तव्य यह जाना, गृहस्थी बने अमर अनुमाना ।
लवपुर में तब कीन सगाई, बारात दुभेटा से चढ़ आई ।
धूम धाम से भया विवाह, अमरनाथ के मनहिं न चाह* ।
निरन्तर सोंच थी उसे व्यापे, लेश खुशी न मुख पर जापे ।
समय विदाई का जब आया, सास ससुर ने तब समझाया ।
"बेटा हमें है तुम पर आस, कन्या होय न लेश उदास ।
अभी तो यह नितांत अंजानी, भूल करे तो तुम समझानी ।
दो० नितांत अंजानी बाल यह, होय जो इस से भूल ।
प्रेम सहित संबोधना, मत जाना तुम भूल" ॥ १४०७
प्रकट किये जब उन ये भाव, कहा अमर तब सहज स्वभाव ।
"एक साल का मैं मेहमान, प्राप्त करे वह प्रभु से ज्ञान ।
योग साधना वह कर पाये, प्रभु की शरणी वह चलि जाये" ।

*चाव, खुशी

रहस्यमयी यह उस की वाणी, सास ससुर ने ना पहचानी ।
लक्ष्मण दास से कहने लागे, "क्या कहत है समझ न लागे" ।
लक्ष्मण दास बात उलटाई, कहा "भोला है मम लघु भाई ।
कहता है मैं योग कराऊँ, सद्गुरु पास मैं ले कर जाऊँ" ।
सास ससुर तब बोले "मीत, करना मन की जैसी प्रीत ।
कन्या हम सौंपी तब हाथ, जहां जाओ तुम रखना साथ" ।
अमर नाथ ने पुनः उच्चारा, "इस महमान का वर्ष सहारा" ।

दो० गोल मोल इस बात में, कहा अमर निज चीत ।
वर वधु संग बरात तब, विदा भयी जिमि रीत ॥ १४०८

अमर नाथ गृहस्थी बन पाया, मन उस के वैराग समाया ।
विचार मग्न वह रहने लागा, योग समाधि का अनुरागा ।
पत्नी जापे उस को भार, भला न लगता था घर बार ।
बैठा बैठा इमि बुड़ाता, "क्या भया यह समझ न आता ।
घर वालों ने कीना मांद, वनवासी को लीना फांद ।
मैं तो बस अब चल के जाऊं, महाप्रभु को मिल के आऊं ।
घोर वनों में जो हैं रहते, षण्मास के श्वास चढ़ाते ।
परमहिमानी उन का देश, जग की माया जहां न लेश ।
अब तो बस मैं वहां चलि जाऊँ, जग की माया से बच पाऊँ ।

दो० जग की माया से बचूं, पहुंच प्रभु के पास ।
शिव अवतारी महाप्रभु, गुरु जी के गुरु खास" ॥ १४०९

इस विध उसने मता पकाया, इक दिन घर से निकल वह धाया ।

लांघ लांघ वह पर्वत देश, तन पर झेल के बहुत क्लेश ।
हिमानी शिखरों पर चलि आया, भूख प्यास से अति सताया ।
शीत वायु तनहिं कंपावे, सुध बुध जन की तुरत भुलावे ।
अमर नाथ का चित्त न डोला, "प्रभो किधर हो" मुख से बोला ।
महाप्रभु को ढूंढने हारा, पथिक अकेला अमर था न्यारा ।
घाटी घाटी उस ने छानी, शैल शृंग भी उच्च हिमानी ।
महाप्रभु को कहां वह पाये, निर्जन में मग कौन बताये ।

दो० निर्जन वन में कौन था, मग का दर्शन हार ।
"हे प्रभो ! हे महाप्रभो !", फिरता अमर पुकार ॥ १४१०

अमरनाथ उन्मनी में डोले, मुख से प्रभु प्रभु ही बोले ।
तन बदन की सुधी न कोई, वृत्ति प्रभु में दृढ़तम होई ।
तीव्र शीत न उसको व्यापे, क्षुधा पिपासा कुछ न जापे ।
महाप्रभु को ढूंढन हारा, खो गया वह अमर प्यारा ।
यह तो रीत स्नातन आई, भूले को मिलें ईश्वर भाई ।
प्रथम जो निज को खो दिखलावे, इस मग पर वह ही चल पावे ।
इस मग पर तो चलने हारा, कोटिन में को एक प्यारा ।
सहस्र जन जो इस मग आवें, विरले ही महाप्रभु को पावें ।

दो० विरले जन को मिलत हैं, महाप्रभु इस माग ।
स्वयं जगाया आन जिन, रामलाल महाभाग ॥ १४११क

अमर नाथ को न मिले, भयी आकाशी धुन ।
लौट "चलो निज गेह को, और न भटको तुम" ॥ १४११ख

आकाश धुनी जभी सुन पायी, अमर नाथ मन तुष्टि समायी ।
महाप्रभु की आज्ञा जानी, लौट चला सद्गुरु सन्मानी ।
लौट के वह निज घर को आया, जहां पर विरह शोक था छाया ।
अमरनाथ को लौटा देख, सब के मन भया हर्ष विशेष ।
लक्ष्मण ने कहा गले लगाय, "कहां थे तुम बिन पूछ सिधाये" ।
कहे अमर "मैं हूँ मेहमान, प्रभु चरणों में मम इस्थान ।
मेरा मत करना विश्वास, आसक्ति करे जो होत निराश ।
यहां तो अब कुछ मास बिताना, महायात्रा पर फिर है जाना ।

दो० यात्रा उस से लौटना, फिर न होगा तात ।
मेहमान सभी इस जगत में, बना यह यातायात ॥ १४१२

इस जगत के रिश्ते नाते, मोह ममता वश सभी सुहाते ।
जन्म जन्म यह मिलते आये, क्या न हम ने सभी भुलाये ।
जीवन काल में मुख जो मोड़े, काल चक्र को वह नर तोड़े ।
मेरा जग में न है कोई, एक प्रभु से नाता होई ।
सदा रहे वह मेरे पास, मुझे तो उस पर ही विश्वास ।
कुछ हि मास अब जग में रहना, प्रभु के पास है फिर चलि जाना" ।
अमर बोल जब भया खामोश, भाई कहे, "न इस को होश ।
पत्नी की सुधी यह न लेता, फिरे आवारा जीवन खोता ।

दो० इत उत जा बिन काम यह, घर की सुधी न लेत ।
प्रभु प्रभु ही करत हैं, लागा जिमि हो प्रेत ॥ १४१३

बात सत्य थी अमर बताई, लक्ष्मण के मन लेश न भायी ।

मास बीतत न लागी देरी, गति काल की जिमि अंधेरी ।
कहे अमर "बस कल मैं जाऊँ, अपने प्रीतम को मिल पाऊँ" ।
उस का भाव न किसी पहचाना, कहें सभी "अब कहीं न जाना" ।
मौन भाव को वह अपनाता, अपने प्रीतम को था ध्याता ।
प्रात भई उठ प्रभु को ध्याया, नित्य कर्म सब कर वह पाया ।
पत्नी को तब पास बुलाया, दृढ़ता से उस को समझाया ।
सद्गुरु मेरे हैं भगवान, करना उन का ही बस ध्यान ।

दो० प्रभु का करना ध्यान तुम, विसर सकल जंजाल ।
प्रभु का जिस को आसरा, करते प्रभु संभाल ॥ १४१४

मौन बैठ पत्नी वीचारे, मुझे लगें कुछ आज न्यारे ।
मुख पै बात न अबला लावे, सोच सोच कुछ वह पछतावे ।
अज्ञात सोच उस के चित्त छायी, समझ न बुद्धि कुछ भी पायी ।
पत्नी को तब विदा कराया, अमर नाथ ने ध्यान लगाया ।
चिरन्तन उस का था वह ध्यान, समाधि में उस त्यागे प्राण ।
भाई निकट जब उस के आया, प्राण हीन उस देह को पाया ।
सकल ग्राम में फैली बात, त्यागे प्राण अमर हैं प्रात ।
शोक हेतु बहु जन चलि आवें, अमर नाथ के दर्शन पावें ।

दो० दर्शन हित सभी आये, ग्राम ग्राम से लोग ।
सब के मन में था बसा, आज अलौकिक सोग ॥ १४१५

सोग अलौकिक सर्बाहिं समाया, खाली न कोई जन रह पाया ।
आ कर दर्शन को वे पाते, "धन्य गुरु" इमि मुख से गाते ।

"धन्य गुरु जिस का यह चेला, अमर मौत से खेल है खेला ।
धन्य अमर जो अमर हो पाया, जग में आना सफल बनाया ।
धन्य गुरु धन्य चेला भाई, कीनी जिस ने उच्च कमाई" ।
इस विध सभी ग्राम जन कहते, दर्शन करने चलि चलि आते ।
भाई के आगे करते सोग, पत्नी को भी मिलते लोग ।
शव यात्रा का काल तब आया, लक्ष्मण के मन भाव समाया ।

दो० सोच लखन के मन भई, प्रकट कीनी न लेश ।
गुरु पूरण यदि नाथ का, मिले प्रमाण विशेष ॥ १४१६

इसी सोच में संग वह चाला, अर्थी को निज कन्धे डाला ।
मरघट में जा दीन टिकाई, संग में थे बहु लोग लुगाई ।
सब ने मिल तब चिता बनाई, देह अमर की वहां सजाई ।
लखन दास निज सोच मैं लीन, चित में अद्भुत शक नवीन ।
चिता को फिर उस लंबू लाया, लपटों से था शव घिर पाया ।
दैवी नाद भाये तत्काल, ढोल मृदंग बजे उस काल ।
बीन नफीरी की ध्वनि आई, स्पष्ट सभी ने बहु सुन पाई ।
इतने ज़ोर से बजे नगारे, जिन को सुन जन दौड़ पधारे ।

दो० आस पास के खेत से, वा जो चलत घराट ।
अपने अपने काम जन, छोड़ चले उस बाट ॥ १४१७

सब ने अपने काम त्यागे, दैवी नादें सुनने लागे ।
एक दूजे से पूछें "तात, यह अलौकिक क्या है बात ।
कौन मृदंग बजावन हारे, नाद कहां से प्रकटे सारे ।

आस पास कोई दीखे नाहीं, पास चिता यह शब्द सुनाहीं" ।
कोई कहत "हे मीत प्यारे, ईश्वर के सब कर्म न्यारे ।
अमर नाथ था भक्त महान, देव करें उसका सन्मान ।
ये सब नाद हैं देव बजावें, उस को उच्च लोक ले जावें ।
जीने का फल अमर ने लीना, देवों ने जिसे आदर दीना ।

दो० जिस को देवों ने स्वयं, कर के सुन्दर नाद ।
सन्माना सुरलोक में, जग राखेगा याद" ॥ १४१८

एक कहे "चल कर हम जावें, लक्ष्मण दास को मिल कर आवें ।
वह बतलावे बात विशेष, रहे न मन में भ्रम जो लेश" ।
लक्ष्मण दास भी शोक विलीन, मृत्यु ने लिया भाई जो छीन ।
सब मिल लक्ष्मण दास पै आये, शोक किया और फिर कह पाये ।
"अमर ने जीवन का फल जाना, भय न लेश भी मौत से माना ।
ऐसा नर जग में कहां होय, देव तुल्य भाई दीना खोय ।
मृत्यु आगे पेश न जावे, धीरज से ही कुछ हो पावे ।
बात एक पूछें तुम ताहीं, ढोलक शब्द कहां से आहीं ।

दो० ढोल शब्द हैं जो सुने, सुन कर हम चलि आय ।
यहां पर नर न है कोय, जिसने ढोल बजाय ॥ १४१९क

इस संशय को दूर कर, जो बसत मन माहीं ।
भक्त पुरुष था अमर तो, क्या कथें तुम ताहीं" ॥ १४१९ख

सुन कर सज्जनों की यह बात, लक्ष्मण कहत "सुनो जी तात ।
मेरा भाई था जिन का दास, जिन पर था उस का विश्वास ।

कहता था वे हैं भगवान, देवों के अधिदेव महान ।
मन मेरे में बात यह आई, महिमा गुरु की उस कथ पाई ।
हम पर देखी नहीं कुछ बात, इस के गुरु की तो करमात ।
तभी शब्द ये होने लागे, सुन जो आये सभी जन भागे ।
सचमुच इस के गुरु भगवान, नभ के शब्द ये करत बखान ।
अमर नाथ ने सद्गति पाई, योगी गुरु की कर सेवकाई ।

दो० योगी गुरु की सेव से, अमर अमरता लीन ।
सात कुलों तक पितर भी, तार अमर ने दीन" ॥ १४२०क

कहा जनन ने कौन थे, इस के गुरु महान ।
निज श्रवणों से हम सुनें, उन का शुभ अभिधान ॥ १४२०ख

लक्ष्मण दास सब कीन बखान, राम योगेश्वर प्रभु महान ।
कलियुग के अवतार वे भाई, इस विध कहता था मम भाई ।
वही गुरु उसके तुम जानो, स्मरण करो सब उनको मानो ।
नाम अनेकों अमर गिनाये, प्रभु चरणी लग जो तर पाये ।
हरिहरानन्द ब्राह्मण एक, उस का करत था वह उल्लेख ।
प्रभु चरणी जिस शीश चढ़ाया, प्रभु ने उस को सिद्ध बनाया ।
रामरत्ती इक पापिन नार, प्रभु ने उस का कीन उद्धार ।
गोपालानन्द व मुलखराज, समाधि-लीन रहत हैं आज ।

दो० प्रभु योगेश्वर राम की, शक्ति असीम अपार ।
अमरनाथ निज दास जिन, जग से दीना तार ॥ १४२१

यश प्रभु सभी जनन बखाना, अमर नाथ को धन्य अनुमाना ।

लौट सभी तब घर को आय, रहा अमर यश जग में छाय ।
अमर नाथ का यह इतिहास, स्मरण करे जो सहित विश्वास ।
प्रभु चरणों में प्रीत दृढ़ावे, निस्सार जगत से मुक्ति पावे ।
जिस ने शरण प्रभु की लीनी, योग स्थिति प्रभु उसको दीनी ।
योग दान की ऐसी रीति, अनादिकाल की जानो रीति ।
विष्णु से था सूरज पाया, जिस ने सूरज वंश चलाया ।
अर्जुन ने था कृष्ण से लीना, परंपरागत इस विध दीना ।
कलियुग में प्रभु उतरे राम, करते योग समाधि दान ।

दो० कलियुग में प्रभु प्रकट हैं, योग धर्म के हेत ।
शरण पड़ें जो आय कर, दान समाधि लेत ॥ १४२२क

६५. योग उपदेश

दो० एक दिवस की वारता, कथन करे यह दास ।
कुछ जिज्ञासु दूर से, आये प्रभु के पास ॥ १४२२ख
विनय कीन उन नाथ से, "चल कर हम हैं आय ।
श्री मुख से हम सुन सकें, योग धर्म चित्त लाय ॥ १४२२ग

योग धर्म हम को समझाइये, जीवन नौका पार लगाइये ।
तुम सिद्धों के हो सिद्धेश, हमरे मन नहीं संशय लेश ।
तुमरी महिमा सुन हम आये, जो मन में था सो कह पाये ।
हमें करें प्रभु जी स्वीकार, भव बहतों का हो उद्धार" ।
प्रभु जी उन की सुन कर वाणी, कृपा कर बोले महादानी ।

"योग धर्म के तुम जिज्ञासु, चातक जिमि जल बूंद पिपासु ।
अब हम तुम को योग बतावें, उत्तम दर्शन[1] को कथ पावें ।
चित्त वृत्ति का कथा निरोध, इसको कहते योग सुबोध ।
दो० वृत्ति सकल निरोध कर, रहत जो घट के माहिं ।
योगी उस को कहत हैं, पुरुष लोकोत्तर ताहिं" ॥ १४२३

एक पुरुष तब विनय सुनाई, "नाथ बात यह गूढ़ बताई ।
चित्त जानूं मैं वृत्ति स्वरूपा, वृत्ति बिना उस का क्या रूपा ।
यह बात तो समझ न आवे, वृत्ति बिना चित्त कहां रह पावे" ।
सुन कर प्रभु जी उस की बात, प्रसन्न वदन बोले "सुन तात ।
वृत्ति तिमि रहें चित्त मांहि, सागर में जिमि तरंगें आहिं ।
तरंग रहित सागर हो जैसा, समझो चित्त वृत्ति बिन तैसा ।
सागर शांत जिमि हो सोहवे, बिंबित सूरज उस में होवे ।
वृत्ति बिना जो चित्त हो जावे आत्म रूप उस में लख पावे ।
दो० वृत्ति रहित जो चित्त हो, योग साध कर मीत ।
बिंबित उस में पुरुष[2] हो, आत्म ज्ञान प्रतीत" ॥ १४२४

सुन कर प्रभु जी से यह ज्ञान, मिटा भ्रांति का सकल निशान ।
बात विकट स्पष्ट खुल पाई, यह तो सरल बात है भाई ।
जब तक चित्त रहेगा भ्रांत, और न होगा जब तक शांत ।
आत्म ज्ञान किमि कोई पावे, आयना[3] डोले बिंब[4] न आवे ।
दूजा पुरुष बोला महाराज, प्राप्त किया हम ज्ञान जो आज ।

1. ज्ञान-फिलासफी 2. पुरुष-आत्मा 3. आयना-शीशा 4. बिंब-परछाईं

शब्दों में न होये बयान, आप की प्रतिभा लखी महान ।
गूढ़ बात तुम खोल बताई, तुरंत समझ में हमरे आई ।
कृपा हम पर और यह कीजो, ज्ञान प्रभो आगे का दीजो ।
वृत्ति का किमि रोध हो पाये, चित्त में जिस विध शांति आये ।

दो० ऐसा ज्ञान बताइये, होवे वृत्ति निरोध ।
योग धर्म में हम लगें, पाकर तुम से बोध ॥ १४२५क

प्रश्न भक्त का सुन करि, बोले नाथ दयाल ।
"चित्त वृत्ति का रोध किमि, पूछा तुमने सवाल ॥ १४२५ख

यह भी मैं तुम को बतलाऊँ, शास्त्रोक्त सभी बात जताऊँ ।
दृढ़ अभ्यास जभी हो पावे, मानव का मन वश में आवे ।
अभ्यास करे सो योगी होवे, अभ्यास करे फल तप का गोवे ।
अभ्यास करे सो सिद्धि पावे, अभ्यास करे मन वश में लावे ।
अभ्यास करे सो यति बन जाता, अभ्यास करे सो मुनि कहलाता ।
अभ्यास करे सो जाने युक्ति, अभ्यास करे सो पावे मुक्ति ।
अभ्यास करे सिद्धि को पावे, अभ्यास करे तब ऋद्धि पावे ।
बिन अभ्यास न मिलता कुछ भी, बिन अभ्यास न कृपा गुरु की ।
बिन अभ्यास न कोई पाता, ईश्वर भी न करत सहायता ।

दो० मन को यदि हो जीतना, करिये दृढ़ अभ्यास ।
युक्ति गुरु से पाय कर, ग्रहण करो विश्वास" ॥ १४२६क

सुन कर प्रभु के वचन को, प्रश्न किया जन एक ।
"नाथ करें अभ्यास जब, मन न टिकता नेक ॥ १४२६ख

नाथ विधि अब वह बतलावें, जिमि अभ्यास में सिद्धि पावें ।
शीघ्र जिमि मन वश में आवे, बाधा न अभ्यास में लावे" ।
सुन कर प्रभु जी उस की बात, कहन लगे "अब सुन लो तात ।
बात तुम्हारी मम मन भायी, युक्ति रहसमय कहूँ सहायी ।
बिन वैराग्य अभ्यास न होवे, रागी मन किमि शांति गोवे ।
मन चंचल तुम समझो तात, प्रमाथी और बली साक्षात ।
उसको वश तभी कर पावे, जब वैराग्य को नर अपनावे ।
रस विषयन के जो नर चूर, रहत योग से सदा ही दूर ।
विषयों से जब होय विराग, और प्रभु से हो अनुराग ।
ऐसा नर ही योग को पाये, साधे योग मुक्त हो जाये ।

दो० योगी बनना होय जो, धारो दृढ़ वैराग्य ।
दीर्घ काल अभ्यास कर, उज्जवल होगा भाग्य" ॥ १४२७

सुन कर प्रभु जी का उपदेश, बोला नर इक "हे सर्वेश ।
आप की वाणी लगती प्यारी, भ्रांत मती के हरने हारी ।
कृपा कर अब यह बतलावें, किस अभ्यास में मन को लावें ।
हो अभ्यास का नाथ बखान, करें योग हम धार वह ज्ञान ।
हमारी विनती हो प्रवाण, योग का प्रभु जी दीजो दान" ।
सुन कर उस की सरल पुकार, नाथ कहा मन कृपा धार ।
"तात सुनो अभ्यास का रूप, उपाय कथूं संग आज अनूप ।
एक लक्ष्य में चित्त टिकाना, यह अभ्यास का जान निशाना ।
अपना इष्ट ही समझो लक्ष्य, इकाग्रता से हो प्रत्यक्ष ।

दो० चित्त एकाग्र जो करे, धार इष्ट का लक्षय ।
निर्देश गुरु का पाय कर, प्रकटे इष्ट समक्ष ॥ १४२८

अभ्यास करे दृढ़ जन मम मीत, इष्ट से मिलने का यदि चीत" ।
प्रश्न किया तब उस जन "नाथ, दृढ़ अभ्यास लगे किमि हाथ ।
साधन कौन जो हम अपनावें, जिमि अभ्यास में दृढ़ता पावें" ।
प्रभु जी ने उस को बतलाया, गूढ़ भेद सब को समझाया ।
दृढ़ अभ्यास यदि जन चाहे, दीर्घ काल वह योग कमाये ।
जन्म जन्म की साध यह जानो, क्षण भर का न कर्तब मानो ।
एक बात मन और भी धारो, निरन्तर जीवन इस में गारो ।
निरन्तर करे न जो अभ्यास, विफल जाए उस का प्रयास ।
दीर्घ काल अभ्यास निरन्तर, दृढ़ता हित ये उत्तम यन्तर ।

दो० दीर्घ काल अभ्यास को, करे निरन्तर साध ।
क्यों न दृढ़ता को गहे, अपना इष्ट आराध ॥ १४२९

एक बात पर और भी जानो, परम रहस यह मन में आनो ।
श्रद्धा न यदि जन मन लावे, दृढ़ता कभी न योग में पावे ।
श्रद्धा बढ़े जभी मन माहिं, दृढ़ता योग में जन पा जाहिं ।
श्रद्धा सहित करे अभ्यास, निरन्तर रह कर गुरु के पास ।
दीर्घ काल जब हो गुरु संग, सधें योग के सारे अंग ।
गुरु चरणी जब श्रद्धा राखे, योग मार्ग का फल तब चाखे ।
श्रद्धा सिमरन को उपजावे, श्रद्धा से जन समाधि पावे ।
श्रद्धा से जन प्रज्ञा पाता, श्रद्धा के गुण सब जग गाता ।

दो० श्रद्धा जननी योग की, इस में भ्रम न कोय।
योग के मग पर जो चले, मोक्ष पायगा सोय ॥ १४३०

सुन कर प्रभु जी का उपदेश, प्रश्न किया इक भक्त विशेष।
"नाथ क्या रीत न है वह कोई, शीघर जिमि जन योगी होई"।
सुन कर भक्त का यह सवाल, प्रभु मुस्काये दीन दयाल।
फिर फरमाये मुख से राम, "मन में जिस के लेश न काम।
योग की तीव्र इच्छा होय, शीघ्र बने नर योगी सोय।
तीव्र से जो तीव्र संवेग, नर को दे अति योग में वेग।
ऐसा नर तो क्षण में पावे, मनोरोध वह कर दिखलावे।
अधिमात्र जो मन का वेग, वही कहावे तीव्र संवेग।

दो० अधिमात्र संवेग से, करे जो नर आ योग।
उसका मन क्षण में टिके, यह जानें सब लोग" ॥ १४३१क
प्रभु जी का उपदेश सुन, माना निज उन धन्य।
कहा प्रभु से "योग के, कौन उपाय अन्य" ॥ १४३१ख

प्रभु जी कर किरपा बतलाया, उत्तम एक उपाय सुनाया।
"भक्तो हम इक रीत बतायें, सुन्दर मार्ग तुम्हें जतायें।
जो नर चाहे योग को पाना, एकाग्र चित्त समाधि लगाना।
बने वह ईश्वर का अति प्यारा, भजन करे न हो मन न्यारा।
ईश्वर में निज चित्त टिकावे, ईश्वर का प्रणिधान कहावे।
कर के ईश्वर का प्रणिधान, योगी बने नर सिद्ध सुजान"।
यह उपाय सबन मन भाया, प्रभु चरणी निज शीश झुकाया।

एक ने पूछा "हे भगवान, ईश्वर का किमि पावें ज्ञान ।
दो० ईश्वर को हम मानते, लेश न है संदेह ।
क्या ईश्वर का रूप है, है जिज्ञासा येह ॥ १४३२
ईश्वर का जिमि रूप लखावें, कर कृपा हम को समझावें ।
गुण कौन जो ईश में जानें, जिन को हम निज मन में आनें ।
उस का ध्यान किमि कर पावें, किस अभिधान[1] से उसे ध्यावें ।
कर कृपा यह सब बतलाओ, जो पूछा न हो समझाओ ।
समझ आप से हे भगवान, ईश्वर का हम पा कर ज्ञान ।
प्रणिधान में चित्त लगावें, चंचल चित से मुक्ति पावें" ।
ऐसा कह उस शीश झुकाया, प्रभु का आशिष तब उस पाया ।
कहें प्रभु "हे भक्त सुजान, ईश्वर का अति गूढ़ है ज्ञान ।
घट घट व्यापक वह है नाथ, योग बिना न लगता हाथ ।
दो० योग बिना किमि जन लखे, ईश रमे जग मांहि ।
नेति नेति ग्रंथ कथें, योग बिना को पांहि ॥ १४३३
जो कुछ पूछा है मुझ पांहि, मैं बतलाऊँ तुमरे तांहि ।
आत्म रूप ईश्वर को जानो, उत्तम आत्मा उसको मानो ।
परम आत्मा कथन में आवे, पुरुषोतम भी वही कहावे ।
विशेष पुरुष[2] कह ऋषि बखानें, पुरुष विशेष वेद पहचानें ।
ध्यावो इस विध उसका रूप, आत्मा से न भिन्न स्वरूप ।
जीव भी आत्म तत्व बखाना, परमात्म का अंश है माना ।

1. नाम 2. आत्मा

अंश से अंशी का संयोग, इसी कर्म को कहते योग ।
ईश्वर के अब लो गुण जान, सब विध पूरण जो भगवान ।

दो० ईश्वर के अब समझ लो, गुण तुम मेरे मीत ।
पुरुष एक वह जानिये, क्लेशों से जो रहित ॥ १४३४

६६. ईश्वर का स्वरूप

पंच क्लेश जो जग विख्याता, जिन वश जीव हो बंधन पाता ।
ईश्वर उन से रहत अछूता, उसी पुरुष से जगत निसूता† ।
अविद्या अस्मिता राग द्वेषा, अभिनिवेश ये पांच क्लेशा ।
ईश्वर इन से सदा न्यारा, सृष्टि का जिस कीन पसारा ।
अद्भुत गुण का करें बखान, ईश्वर में जो लो तुम जान ।
सृष्टि का वह करता जानो, कर्म बड़ा न इस से मानो ।
कर्ता पालक और संहरता, कर्म करे पर रहे अकर्ता ।
कर्म का फल न उस को लागे, ऐसे अद्भुत योग में पागे ।

दो० ऐसे अद्भुत योग में, सदा रहे भगवान ।
महिमा उस की को लखें, जो नर योगी सुजान ॥ १४३५

ईश्वर का गुण और बतावें, महिमा उस की चित्त में लावें ।
सकल सृष्टि का हो कर स्वामी, बिन इच्छा वह है निष्कामी ।
ज्ञान का पूरण वह भण्डार, पूरण पूरण पूर्ण अपार ।
सृष्टि अनादि को उस उपजाया, गुरु रूप धर ज्ञान सिखाया ।

† निसूता—उत्पन्न हुआ ।

प्रभु के यह गुण चित्त जो लावे, और जो यश उस का नित गावे ।
प्रभु का नाम सिमरे दिन रात, प्रभु का हो उस को साक्षात ।
चित्त एकाग्र प्रभु में होवे, योग समाधि में वह खोवे" ।
सुन कर प्रभु की पावन वाणी, भक्त बोला इक प्रभु सन्मानी ।
"हे सद्गुरु हम शिष्य तुम्हारे, आप निवारे संशय भारे ।
और इक बात का करें बखान, ईश्वर का क्या मुख्य अभिधान ।
कौन नाम जिस को हम लेवें, कर कृपा यह ज्ञान भी देवें ।

दो० ईश्वर का क्या नाम है, करते जिस का जाप ।
निज मुख से बतलाइये, कर कृपा प्रभु आप ॥ १४३६क
प्रभु जी ने तब दीना, आगे का जो ज्ञान ।
गूढ़ बात वह जानिये, सत्य वचन मम मान ॥ १४३६ख

"नाम ईश्वर का एक न भाई, असंख्य नाम असंख्य प्रभुताई ।
गुरु मुख से जो नाम मिल पावे, उसी नाम को शिष्य ध्यावे ।
सभी जगत है नाम अधीना, शब्द ब्रह्म वह नाम अदीना ।
नाम की शक्ति न सब जानें, सिद्ध पुरुष ही इसे पहचानें ।
नाम से कारज जन के होवें, नाम से पदवी मोक्ष भी गोवें ।
नाम से जग में सुख को पावें, नाम से उत्तम लोक को जावें ।
नाम से दुःख दरद का नाश, नाम से अन्तर्जोति प्रकाश ।
नाम की महिमा कथी न जाये, नाम नामी को देत लखाय ।

दो० करे नाम की साधना, नामी का हो ज्ञान ।
ईश्वर के दिव्य रूप को, नाम साध लो जान ॥ १४३७

ओमकार ईश्वर का नाम, अक्षरब्रह्म अनश्वर धाम ।
श्वास श्वास में इसे रमावे, गुरु कृपा से सिद्धि पावे ।
ओमकार को प्रणव लो जान, सत्य सनातन नाम पहचान ।
ऐसा कोई न जग में जीव, उच्चार सके न जिस की जीभ ।
जीभ की इस में न बहु कार, मन से उपजे ओम उद्गार ।
मिलता जब इस नाम का दान, कान पड़त इस की गुंजान ।
यह अनाहत नाम है भाई, सुने वही जो करे कमाई ।
स्पष्ट बात यह तब हो पावे, दिव्य ध्वनि जब श्रवण में आवे ।

दो० सर्वव्यापक नाम है, ओमकार अभिधान ।
स्वयं श्रावे श्रवण में, प्रकटे अग्नि समान[1] ॥ १४३८

ओंकार जो सदैव ध्यावे, प्रमादालस को दूर भगावे ।
जाप से नाशे सकल व्याध, [2]स्त्यान को नाशे जप कर साध ।
जाप से संशय का हो हान, ममता का भी मिटे निशान ।
जप से भ्रांत चित्तता दूर, जप से इष्ट का दर्श अदूर[3] ।
जप से स्थिर चित्त हो जावे, जप से योग की भूमि पावे ।
जप से चित्त विक्षेप न होवे, सकल विघ्न जन जप से खोवे ।
विक्षेप से उपजें जो कुछ दुःख, जाप उन का नीदान[4] प्रमुख ।
उन दुःखों से विघ्न महान, पा लो अब तुम उन का ज्ञान ।

1. जिस प्रकार अग्नि सर्वव्यापक होते हुए भी किसी किसी स्थान पर प्रकट है ऐसे ही नाम की ध्वनि आकाश में परिपूर्ण है। किसी किसी जगह प्रकट हो जाती है और अनाहत रूप में कानों तथा हृदय में गूंजने लगती है।
2. सुस्ती 3. समीप 4. इलाज, उपचार

दो० विक्षिप्त चित दुःखादि जो, उपजें बिन निर्बाध ।
उन का वर्णन हम करें, शांत करें जप साध ॥ १४३९

६७. चित्त विक्षेप के संगी दुखादि और उन से त्राण के उपाय

दुःखादि जो कहे महान, विक्षेप के ये सब संगी जान" ।
श्रवण करि जब प्रभु की वाणी, कहा भक्त इक "हे महादानी ।
विक्षेप के संगी जो हैं नाथ, उन का बोध करावें साथ" ।
प्रभु जी ने तब दीन ज्ञान, "विक्षेप के संगी हैं बलवान ।
उन के वश में वह जन आवे, मन में जो विक्षेप को लावे ।
चार* विक्षेप के संगी जान, चहुं दिक से जो घेरा पान ।

दुःख

प्रथम तो दुःख को ही तुम जानो, दैहिक ताप यही पहचानो ।
जिसका चित्त रहत विक्षिप्त, सदा रहे वह दुःख से लिप्त ।
दो० दुःख किनारा न करे, चित्त रहे यदि भ्रांत ।
भ्रांत जनन का हो सके, कभी न जीवन शांत ॥ १४४०

दौर्मनस्य (दुर्मन)

दूजा संगी अब तुम जानो, दुर्मन उस का नाम पहचानो ।
भ्रांतमति नहीं होवे शुद्ध, उपजत मन में सदा कुबुद्ध ।
उस में वास करत नीरास, होवे आश का न प्रकाश ।

अंग मे जयत्व

* दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास, ये चारों विक्षेप के साथी हैं ।

विक्षेप का जानो तीजा संग, अस्थिर होवें जीव के अंग ।

श्वास प्रश्वास

चौथा श्वास प्रश्वास में बाध, विक्षेप संग यह परम व्याध" ।
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, एक भक्त ने कहा "योगेश ।
इन दुःखों से मिले जो त्राण, ऐसा उपाय कथो भगवान" ।
कर किरपा फिर नाथ फरमाये, उत्तम सब से एक उपाये ।
सर्व दुःखों का नाश जो चाहो, एक इष्ट में चित्त लगाओ ।
दो० एक इष्ट के ध्यान में, जानो लाभ अपार ।
इक नौका में बैठ जिमि, लगता जन है पार ॥ १४४१
मन जब लेगा एक को ध्याय, सब विक्षेप उस का बह जाय ।
और विक्षेप का जो सब संग, उस का भी हो सब विध भंग ।
सुन कर प्रभु की सुन्दर वाणी, सभी भक्तों ने मन अनुमानी ।
प्रभु तो हैं ये ज्ञान भण्डार, वर्णें ये सब धर्म का सार ।
जो पूछें वे सब बतलावें, हम निज मन की पूछत जावें ।
दो० जो कुछ हम हैं पूछते, मिलता सुन्दर ज्ञान ।
आज सभी कुछ पूछ लें, किरपा मिले निधान ॥ १४४२क
ऐसा मन में लाय कर, पूछी इक ने बात ।
"नाथ हमें बतलाइये, किमी इष्ट साक्षात ॥ १४४२ख
प्रभु जी तब उनको बतलावें, गोप्य योग का ज्ञान करावें ।
"जिज्ञासु जन तुम चल कर आये, योग हेतु जिज्ञासा लाये ।
योग जिज्ञासु हमें सुहावें, सन्मारग को जो अपनावें ।

गूढ़ बात इक लो तुम जान, योगी बनना यदि महान ।
जब तक चित्त न होय निरोल, इष्ट बसे न मनहिं अडोल ।
इस कारण तुम लो यह जान, चित्त निरोल किमि करे सुजान ।
निर्मल चित्त सब सुख की खान, निर्मल चित्त में बसहिं भगवान ।
निर्मल चित्त से योग को साधे, निर्मल चित्त से मोक्ष आराधे ।

दो० निर्मल मन जब जन करे, मल का करे विनाश ।
सद्गुरु के प्रसाद से, इष्ट का हो प्रकाश ॥ १४४३

साधन निर्मलता के जानो, मैत्री करुणा मुदिता मानो ।
चौथी जानो उपेक्षा वृत्ति, इस से होत निर्मल प्रवृत्ति* ।
भक्तों की जिज्ञासा जागी, पूछन लगे "प्रभो महाभागी ।
खोल ज़रा कुछ इसे बताइये, इन के अर्थ हमें समझाइये ।
निर्मलता के साधन जान, पाल सकें उन को ला ध्यान" ।
प्रभु जी ने तब उन्हें बताया, चारों का प्रयोग जताया ।

मैत्री

सुख में यदि किसी को देखो, प्रसन्न बनो मित्र वत पेखो ।
इस को मैत्री साधन जानो, द्वेष भाव का शत्रु मानो ।
मन इससे प्रसन्न हो जाये, द्वेष भाव को दूर भगाये ।

दो० मन के निर्मल हित गहो, मित्रता की रीत ।
वैरी जग में न कोई, सब से राखो प्रीत ॥ १४४४क

* मन को निर्मल करने के चार उपाय :—
१. मैत्री २. करुणा ३. मुदिता ४. उपेक्षा

देखो मित्र दृष्टि से, कथा यह वेदन मांहि।
जग में सुख का वास हो, मन निर्मल हो जांहि ॥ १४४४

करुणा

साधन करुणा अब तुम जानो, दुखी जनों के प्रति पहिचानो।
देखो दुखी किसी को जग में, द्रवित भाव ले आओ मन में।
पर दुःख को तुम निज दुःख देखो, चित्त की शुद्धि इस विध लेखो।

मुदिता

मुदिता भाव अब करें बखान, पुण्य कर्म होता जब जान।
मन में तब तुम मोद को लावो, चित्त में फूले नहीं समावो।
पुण्य कर्म से जन कल्याण, पुण्य कर्म से निज हित जान।
पुण्य कर्म सब सुख का दाता, पुण्य कर्म करत विज्ञाता।
पुण्य कर्म की उपमा नाहीं, पुण्य कर्म जग जीव तराहीं।

दो० पुण्य कर्म जब जन लखे, लावे मुदिता चित्त।
अन्य भाव न मन धरे, तभी हो चित्त पवित्त ॥ १४४५

उपेक्षा

चौथा साधन अब लो जान, उपेक्षा वृत्ति ला कर कान।
उपेक्षा को न जब तक धारें, राग द्वेष को किमि निकारें।
राग द्वेष असुर वत जानो, उपेक्षा वज्र सम पहचानो।
वज्र पात जिमि असुर संहारे, उपेक्षा मन के दोष निकारे।
मन स्वभाव से दोषा-पेखी*, जिमि घाव को खोजत माखी।

*दूसरों के दोषों को देखने वाला।

दोष देख मन दोषी होवे, मल से माखी जिमि मल गोवे ।
मन को शुद्ध करन जो चाहवे, दोष दृष्टि से उसे दुरावे ।
पाप किसी का भी न देखे, देख उपेक्षा से वह लेखे ।
जग में पाप की है न तोट, योगी उपेक्षा की ले ओट ।

दो० उपेक्षा वृत्ति जानिये, पाप से राखे दूर ।
जिमि जूते को पहन कर, गढ़ें न पैरीं शूल ॥ १४४६क

चारों साधन साध कर, चित्त करे जो शुद्ध ।
शीघ्र उस का चित्त टिके, कथें योगी प्रबुद्ध ॥ १४४६ख

प्रभु जी का सुन कर उपदेश, तोष भया सब मनहिं विशेष ।
ऐसा ज्ञान कहीं न पावें, बिन योगी की शरणी आवें ।
एक भक्त तब कहा "महाराज, भाग्य से पाये दर्शन आज ।
सुन उपदेश न कर्ण आघाते, वचनामृत वे सुनना चाहते ।
क्या कुछ और भी होती रीत, जिस से टिकता नर का चीत" ।
सुन कर प्रभु जी मन मुस्काय, भक्त के चित्त का जान के भाय[1] ।
परिप्रश्न जो करते आन, ज्ञान गुरु से वही जन पान ।
परिप्रश्न उस डोरी समान, कूप से जल निकाले आन ।
गुरु हृदय वह कूप गंभीर, जिस में ज्ञान का अमृत नीर ।

दो० ज्ञानामृत का नीर है, गुरु के मानस मांहि ।
प्रेम सहित जन आय कर, परिप्रश्न से मांहि ॥ १४४७

1. भाव

६८. चित्त एकाग्रता के विविध उपाय

कहें प्रभु "हे भक्त प्यारे, उपाय कथूं कुछ और न्यारे ।
दत्त चित्त हो सुनते जाओ, योग का मार्ग जिस विध पाओ ।
संकेत रूप उपाय बताऊं, विस्तार न उनका यहां कथ पाऊं ।
पूरण ज्ञान तभी हो पावे, गुरु योगी अभ्यास करावे ।
चित्त को वश में करने हेत, प्राणायाम करिये बन चेत ।
सद्गुरु के रह चरणी मीत, उस की सीखो तुम सब रीत ।
यह विद्या नहीं गुरु बिन आवे, गुरु ही प्राणायाम सिखावे ।
गुरु से मिलता इसका ज्ञान, गुरु होवे जो योगि सुजान ।

दो० गुरु योगी जिस को मिले, प्राणायाम सिखाय ।
चित्त एकाग्र हेत जन, पूरण शिक्षा पाय ॥ १४४८

प्राणायाम से चित्त टिकाये, प्राणायाम है महान उपाय ।
प्राणायाम से अन्तर शुद्धि, प्राणायाम से जागृत बुद्धि ।
प्राणायाम से नाड़ी शोध, प्राणायाम से शक्ति प्रबोध ।
प्राणायाम से अन्तर ज्योत, प्राणायाम से ज्ञान उद्योत ।
प्राणायाम से चक्रन बेध, प्राणायाम को शंसत वेद ।
प्राणायाम से कुण्डली जागे, प्राणायाम से समाधी लागे ।
प्राणायाम जो करे सुधीर, तन मन की सब नाशे पीर ।
प्राणायाम करे सो योगी, प्राण सधे बिन मानो भोगी ।

दो० योगी प्राणायाम का, पूरण कर अभ्यास ।
लेता मन को जीत है, मीन बंधे जिमि पाश[1] ॥ १४४९

एक उपाय मैं और बताऊँ, रसिया मन रस में बंधवाऊँ ।
विषयों को यदि मन न त्यागे, और निरन्तर उनमें लागे ।
विषयों का विष चढ़ा हो मीत, और निरन्तर उन से प्रीत ।
विषयों का ही दे अनुराग, वश करे मन को महाभाग ।
दिव्य सुखों का धारो लक्ष्य, जप तप से जो आयें समक्ष्य ।
ऐसे भोग कहां जग मांहि, मिलें स्वर्ग में योगी तांहि ।
दिव्य भोगों का करे स्मरण, जग का विसरे हेय[2] आचरण ।
विषय जगत के परम मलीन, खावें मल जिमि पशु ही दीन ।
ऐसा ज्ञान तभी हो पावे, स्वर्गिक सुख जब सन्मुख आवे ।

दो० दिव्य सुखों को स्मरण कर, छोड़े जग की प्रीत ।
हेय विषय की हीनता, विरक्त करे जन चीत ॥ १४५०

अन्य उपाय इक और बताऊँ, दिव्य ज्योति घट मांझ दिखाऊँ ।
दिव्य ज्योति का कर के ध्यान, शोक सभी नर के बह जान ।
देह देवालय कथन में आये, दिव्य ज्योति उस में लख पाये ।
उसी ज्योति का पा कर ज्ञान, चित्त एकाग्र करत सुजान ।
दिव्य ज्योति लख शांति पावे, दिव्य ज्योति से मन वश आवे ।
दिव्य ज्योति से उपजत ज्ञान, दिव्य ज्योति दृढ़ावे ध्यान ।
दिव्य ज्योति से निर्मम होवे, दिव्य ज्योति से जन भय खोवे ।
दिव्य ज्योति जिस घट प्रकाशे, ध्यान समाधी वहीं विकाशे ।

1. जाल 2. त्यागने योग्य

दो० दिव्य ज्योति के ध्यान से, विगत शोक जन होय।
अन्त काल इस को लखे, उत्तम गति को गोय॥ १४५१

और इक सुगम उपाय बताऊँ, सकल जनन के हित समझाऊँ।
विरक्त पुरुष जो पाओ मित्त, ध्यावो तुम उस का ही चित्त।
तेरा चित्त भी होगा शांत त्याग जगत की सकल भ्रांत।
दिव्य दृश्य जो स्वप्न में आये, उस में भी जन चित्त टिकाये।
यह भी परम लाभ की रीत, दिव्य दर्शन से लागे प्रीत।
क्या कथूं मैं बहुत उपाय, रोको चित्त जिस विध रुक पाये।
चित्त की शक्ति अतीव अपार, कुछ भी सके नर मन में धार।
परम सूक्ष्म वा परम स्थूल, धार सके मन मत तुम भूल।

दो० मन की शक्ति अपार है, पार सके को पाय।
योगी जन ही वश करे, न बिन योग बसाय* ॥ १४५२

सुन के प्रभु का दिव्य उपदेश, भक्तन मन था हर्ष विशेष।
ज्ञान योग का उत्तम पाया, उन का मन पर नहीं अघाया।
एक प्रश्न कर दीना और, चित्त चाहे कुछ सुनन बहुर।
भक्तन कहा "हे प्रभु प्यारे, वेद रचे प्रभु तुम ने सारे।
शास्त्र अन्य जो हैं गोसाईं, वन्दन करत आप के ताईं।
सकल विद्या तव हृदय माहीं, पूछें हम इक बात गोसाहीं।
निर्मल चित्त जब होवे साईं, और एकाग्र लक्ष्य के ताईं।
मन का रूप कैसा हो पाये, किमि लखे और किमि लखाये।

* बसाय—बसात अर्थात् सामर्थ्य। दूसरा पाठ 'उपाय' भी है।

दो० एकाग्र मन के रूप का, पाना चाहें ज्ञान ।
सुनें सभी हम आप से, कथन करें भगवान ॥ १४५३

६८. एकाग्रमन का स्वरूप

प्रभु जी ने मुख से फरमाया, "प्रश्न तुम्हारा मम मन भाया ।
निर्मल मन निर्मल मणि जानो, लक्ष्य मध्य तद्रूप पहचानो[1] ।
यह तद्रूप समाधि कहावे, निर्मल मन से योगी पावे ।
अभ्यास से उस का होत विकास, सबीज समाधि कथी जो खास ।
विचारों का यहां खास निरोध, निर्विचार की दशा प्रबोध ।
यहां पै दैवी बुद्धि जागे, ऋतंभर प्रज्ञा कथन में लागे[2] ।
योगी तंह जिस ज्ञान को पावे, देखन सुनन में वह न आवे ।
ऋतंभर प्रज्ञा का जो ज्ञान, दूर करे जन का अज्ञान ।

दो० सबीज समाधि मैं कही, जहां ज्ञान का बीज ।
उसी बीज से अंकुरा, ज्ञान जो वेदन बीच ॥ १४५४क

उसी बीज से भी परे, एक इलाही चीज़ ।
कथन न कोई कर सके, बस समझो निर्बीज ॥ १४५४ख

उसी दशा में जो रमे, निर्बीज समाधि पाय ।
जन्म जन्म का बीज तंह, बस निर्बीज हो जाय ॥ १४५४ग

1. निर्मल मणि की तरह निर्मल मन लक्ष्य के साथ तद्रूपता को प्राप्त हो जाता है।
2. सबीज समाधि में विचारों की शांति और ऋतंभरा प्रज्ञा की उत्पत्ति होती है ? शुद्ध ज्ञान को 'ऋत' कहते हैं। इस दशा में प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि सत् ज्ञान को ग्रहण करती है।

दो० इतना कथन सुनाय कर, हुए प्रभु जी मौन।
निज नेत्रों को मूंद वे, तुरिया में भये लीन ॥ १४५४घ

भक्तों ने जब इस विध देखा, समाधि में श्री प्रभु को लेखा।
उठ कर कीना तब प्रणाम, विदा भये सभी निज ग्राम।
जाते निश्चय वे कर पावें, प्रात लौट हम फिर यहां आवें।
ज्ञान योग का मिलेगा और, मिल पाये जो न किसी ठौर।
योगी के दर जो चलि आवे, उस से ज्ञान योग का पावे।
अन्यत्र मिलता न यह ज्ञान, मिले यह योगी से ही दान।
योगी महादानी हम मानें, शिव रूप ही उसे पहचानें।
मन में उन के आस न कोई, करे वितरण पास जो होई।

दो० प्रभु की महिमा शंसते, जा पहुँचे निज ग्राम।
प्रात भई फिर आ गये, शरण गही सुख धाम ॥ १४५५

प्रभु थे निज आसन आसीना, प्रणाम सभी ने आ कर कीना।
प्रभु के चरणों को वे देखें, कुछ एक मुख दिनकर पेखें[1]।
देख देख सब होत हैरान, प्रकटे अमृतसर भगवान।
कौन वह कुल जो इन का प्यारा, जिस में देह इन्हों ने धारा।
यह जिज्ञासा मन की भारी, प्रकट कीन इक ने तब सारी।
"हे नाथ हो क्षमा ढिठाई, मन जिज्ञासा एक समाई।
परिचय करावें अपना नाथ, किस कुल को तुम कीन सनाथ।
ऋषियों के कुल योगी जाये, गीता में यह कृष्ण बताये।

1. सूर्य के समान श्री प्रभु जी का तेजस्वी मुख।

दो० ऋषि आप के पूर्वज, इसमें न संदेह ।
परिचय करावें नाथ जी, भये दूर संदेह ॥ १४५६

७०. अपने पूर्वजों का श्री प्रभु जी द्वारा वर्णन

सुन कर भक्तन की यह वाणी, भये गंभीर प्रभु महादानी ।
मन में उन कुछ कीन ध्यान, वाणी खोली फिर भगवान ।
"प्रश्न आप ने जो कर पाया, यह प्रसंग न किसी चलाया ।
आर्ष वचन जो गीता गाये, मुख से श्री कृष्ण फरमाये ।
त्रिकाल सत्य यह उन को वाणी, अनुभव से यह जग है जानी ।
जिस वंश हम देह को धारा, ब्राह्मण कुल वह सुन लो प्यारा ।
ब्राह्मणोचित सब उस में काम, परंपरागत सभी अभिराम ।
नेम व्रतों का होता पालन, धर्म कर्म का उस में चालन ।

दो० धर्म कर्म की रीत में, जोशी वंश महान ।
धर्म धुरंधर जन भये, उन का करूं बखान ॥ १४५७

धर्म धुरंधर इस कुल जाये, रेख धर्म की सभी चलाये ।
मौदगल गोत है मेरा प्यारा, आंगिरस जिस में तन धारा ।
सारस्वत ब्राह्मण जग विख्यात, उन का गोत यह जानो तात ।
दीरघ वंश न करूँ बखान, पांच पीढ़ी तक दूँ मैं ज्ञान ।
पण्डित चढ़त राम विद्वान, सच्चे ब्राह्मण विरक्त महान ।
जग की माया उन मन नाहीं, योग भक्ति में ही चित्त लाहीं ।
कमल पुष्प वत घर में वासा, माया से चित्त रहत उदासा ।

उन के मन की एक ही साध, घर को त्याग बनूं बस साध ।
एक पुत्र जब मैं पा जाऊं, पितृ ऋण से मुक्त हो जाऊं ।

दो० एक पुत्र के जन्म पर, त्याग करूं बस गेह ।
रहे भजन में विप्र वर, लगा प्रभु से नेह ॥ १४५८

एक दिवस की बात लो जान, पण्डित जी गये करन स्नान ।
वहीं ताल पै मिला संदेश, पुत्र जन्म की खबर विशेष ।
बस फिर लौट वे घर न आये, वहीं से सीधे वनहिं सिधाये ।
घर वालों ने जोर लगाया, उन का पता कहीं न पाया ।
विरक्त जीवन का यह दृष्टांत, करें मनन चित्त होता शांत ।
पुत्र को ले गई ननिहाल, माता पूत की करे सम्हाल ।
लाहौर जिले में था यह ग्राम, है बुग्याना जिस का नाम ।
नाम करण वहां सुत का कीना, साईं दत्त धर नाम था दीना ।
होनहार के चिकने पात, पूर्ण सत्य यह बात लखात ।
अल्पायु बहु विद्या पाई, अनुष्ठान कर्म में वृत्ति लाई ।

दो० अनुष्ठान कर्म बहु कीने, साईं दत्त मन लाय ।
मन्त्र सिद्धि को पाय कर, उसने मृत जिवाय ॥ १४५९

मृत पुरुषों को जीवित कीना, इस विध जग में यश बहु लीना" ।
प्रभु की सुन कर अद्भुत वाणी, भक्त बोला इक "हे महादानी ।
अद्भुत सुनी है तुम से बात, कभी भया न हमें साक्षात ।
मुर्दे जिमि जीवित हो जावें, घटना वह हम भी सुन पावें ।
कृपा कर के हमें सुनाइये, साईं दत्त का चरित बताइये" ।

कहा प्रभु ने भक्त प्यारे, योग विद्या के रहस्य न्यारे ।
जग ने वे सब हैं विसराये, काल चक्र में प्राणी आये ।
यम को भी जो वश कर पाये, ऐसे ऋषि इस देश में जाये ।

दो० ऐसे ऋषि इस देश में, हो गये मम मीत ।
यम भी जिनको मानता, रहत सदा भय भीत ॥ १४६०

साधन साईं दत्त बहु कीने, यम के दूत थे वश कर लीने ।
ग्राम के मुखिया का इक पूत, लेय चले उसे यम के दूत ।
खेल खेल में प्राण त्यागे, सभी संगी उस संग थे लागे ।
सकल ग्राम में मचा कुहराम, अनर्थ भया यह कैसा राम ।
उस के लगी न कुछ भी चोट, देह में लेश न कुछ भी खोट ।
सभी लोग थे सुन हैरान, मात पिता के कंठी प्राण ।
मौत के सन्मुख वश न जाये, रोना ही बस सब को आये ।
अर्थी में तब बालक डाला, लेय चले शमशान तत्काला ।
देह से होत तभी तक प्रीत, उस में आत्मा जब तक मीत ।

दो० लगे देह प्रिय आत्महित, पुत्तर नाती आदि ।
प्राण बिना लगे भूत वह, लागे उस से व्याधि ॥ १४६१

प्राण हीन जब सुत हो लीया, अर्थी में उस को धर दीया ।
सब जन अर्थी के संग चाले, वयोवृद्ध युवक और बाले ।
साईंदत्त जब दृश्य यह देखा, उपजी मन में दया विशेषा ।
अर्थी उस नीचे उतरायी, एक रेख चहुं ओर खिंचाई ।
*अक्षत और शुद्ध जल मंगाया, मन्त्र पढ़ जल को छिड़काया ।

* अक्षत—चावल

अक्षत पश्चिम दिशा फैंकाया, भयंकर रूप इक चलि तब आया ।
स्त्री वेश उस का भयकारी, अञ्जन वत थी रंग में कारी ।
सभी देख कर भये भयभीत, कौन चुड़ैल आई इस रीत ।
साईंदत्त के सन्मुख आकर, आज्ञा मांगे कर बद्ध हो कर ।

दो० साईंदत्त के सामने, खड़ा भयंकर रूप ।
साईंदत्त भी क्रोध में, पढ़ता मन्त्र गूप ॥ १४६२क

जिमी जिमी वह पढ़त था, कांपे थी वह नार ।
"त्राही माम्" वह बोलती, याचन बहुत उच्चार ॥ १४६२ख

साईं दत्त ने तब फटकारा, "दुष्टे तुम ने क्या कर डारा ।
घोर से घोर नरक में जाओ, जो तुम कलुषित कर्म कमाओ ।
क्यों प्राण इस के छिन पाई, निर्लज्जे क्या लाज न आई ।
तुरन्त लौटावो इस के प्राण, नहीं तो तेरा नहीं कल्याण ।
चुड़ैल बोली "हे महाराज, मेरे वश का नहीं यह काज" ।
साईं दत्त क्रोध में आया, उस ने उस्तरा एक मंगाया ।
अपनी जांघ पर उसे चलावे, स्त्री का सर मुण्डता जावे ।
अब तो भई वह बहुत बेहाल, "क्षमा क्षमा" बोली तत्काल ।

दो० "क्षमा क्षमा" पूकारती, "बिगाड़ो न मम रूप ।
मेरे वश का काम न, क्यों कर करो कुरूप" ॥ १४६३

प्रभु जी ने आगे बतलाया, ब्रह्म तेज का रूप जताया ।
साईं दत्त का अग्नि रूप, कांपे देख चुड़ैल कुरूप ।
शक्ति योग से बढ़ कर साईं, हुई न होगी जग के माहीं ।

जब अत्यंत वह गिड़ गिड़ाई, साईं दत्त निज गिरा सुनाई ।
"दुष्टे यदि न वश तब बात, क्यों कीना था इस का घात ।
तुरन्त उपाय कोई बखानो, नहीं तो अभी नाश निज जानो ।
चुड़ैल तभी मुख से कह पाई, एक विधी उस ने बतलाई ।
"इस हित देवे यदि कोई प्राण, बालक के तन विचरें प्राण ।
भिन्न न इस से और उपाय, तुम से क्या कोई बात छिपाय ।

दो० प्राणों को यदि आपने, देगा आ कर कोय ।
केवल एक उपाय है, बालक जीता होय" ॥ १४६४

विनय सहित उस बात सुनाई, साईं दत्त के भी मन आई ।
एक पशु उसको उन दीना, बदले में बालक को लीना ।
चुड़ैल लुप्त भयी तत्काल, बालक उठ बैठा उस काल ।
जय जयकार करें सब लोग, मात पिता का बीता सोग ।
प्रभु जी ने यह घटन सुनाई, चकित भई वह जन समुदाई ।
कहें सभी आश्चर्य में आय, "सिद्धों के कुल प्रभु प्रकटाय" ।
वृत्त एक प्रभु और बताया, साईं दत्त का चरित सुनाया ।
अनावृष्टि का भया था कोपा, खेती सूखी अन्न भी लोपा ।

दो० अनावृष्टि के कारणे, दुःखी भये सब लोग ।
पशु पक्षी मरने लगे, व्यापा घर घर सोग ॥ १४६५

घर घर में था व्यापा सोग, स्मरण करें ईश्वर को लोग ।
संकट में प्रभु बनें सहायी, रक्षक न उस जैसा भाई ।
ईश्वर कृपा न यदि होवे, क्षण में जग चिर निद्रा सोवे ।

भय अकाल का सन्मुख देख, और लुपी जो जल की रेख[1] ।
प्रभु किरपा हित यज्ञ रचाया, अटारी[2] में मण्डप बनवाया ।
बहु सामग्री वहां जुटाई, भयी एकत्र जन समुदाई ।
कर्म काण्डी बहु पण्डित आये, वेद पाठ सब मिल कर पाये ।
विधि विधान से कारज कीना, पूजन गणपति का कर लीना ।
अग्न्याधान का वेला आया, साईं दत्त उस क्षण आ पाया ।

दो० प्रकट भया उस काल में, साईं दत्त महाभाग ।
बोला पण्डित जनन से, करो प्रज्वलित आग ॥ १४६६

माचस को इक पण्डित लीना, यज्ञ कुण्ड कर्पूर धर दीना ।
तीली वह जब लगा जलाने, बोला साईं "बस दो तुम रहने ।
जो माचस से अग्नि जलावें, यज्ञ से वृष्टि न कर पावें ।
मन्त्र से यदि अग्नि जलावें, वर्षा को तब ही हम लावें" ।
पण्डित सब सुन भये हैरान, कैसा आया यह विद्वान ।
मूर्ख हमें बनाना चाहवे, और बिलंब कारज में लावे ।
रोष सभी के मन उपजाया, ऊपर से पर न प्रकटाया ।
यजमान कही तब उस से बात, "आओ विराजो तुम भी तात ।
अग्न्याधान आप ही कीनें, जिस विध वृष्टि को सब लीनें ।

दो० प्रकट करें अब आग को, बोल के मन्त्र नाथ ।
शीघ्र लावें वृष्टी को, जग को करें सनाथ" ॥ १४६७

1. कुओं में भी जल स्तर, वर्षा के अभाव में बहुत नीचे उतरा देख कर ।
2. अटारी—अमृतसर के पश्चिम में 26 किलो मीटर की दूरी पर एक प्रसिद्ध नगर ।

साईं दत्त को आसन दीना, बिन संकोच उस ने वह लीना ।
जिस को आत्म पर विश्वास, तीन काल न होत हताश ।
साईं दत्त ने आसन ग्राहया, पढ़ा मन्त्र अक्षत गिराया ।
ज्यूँहीं अक्षत गिरा कुण्ड माहीं, दीपी आग धुआं प्रकटाहीं ।
यज्ञ में लागी देर न लेश, "स्वाह स्वाह" से गूंजा देश ।
इतने में आकाश भी बोला, गड़गड़ाहट से गाओं डोला ।
उमड़ घुमड़ बहु बादल आये, इन्द्र देव ने खास भिजाये ।
सम्पूर्ण यज्ञ भी न हो पाया, लक्ष्य यज्ञ का सब ने पाया ।
भक्तों को प्रभु जी समझायें, अधीन पुरोहित यज्ञ बतायें ।

दो० फल यज्ञ का तभी मिले, पुरोहित योगी होय ।
बिन योगी पुरोहित के, फल न पावे कोय ॥ १४६८

धारा-वाह वृष्टि हो पायी, धरती की जिस प्यास बुझाई ।
सूखी खेती लहलहायी, जान में जान जनता के आयी ।
साईं दत्त को सब ने माना, योग की शक्ति को पहचाना ।
मन्त्र सिद्ध योगी जो भाई, विधि भी उस के वश हो जाई ।
साईं दत्त की ख्याति व्यापी, सुखी भयी जनता संतापी ।
एक घटना का और बखान, करूँ मैं ला कर सुनो ध्यान ।
ग्राम नौशहरा की यह बात, दुखद भयी इक घटन प्रात ।
दूल्हा एक व्याहुन आया, भयी शादी परलोक सिधाया ।

1. यज्ञ का फल पुरोहित की आत्मिक शक्ति पर निर्भर करता है। यदि पुरोहित आत्मिक शक्ति से शून्य है तो ऐसे यज्ञ से अभीष्ट फल की प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती।
2. नौशहरा ग्राम जिला लाहौर (पंजाब) में।

दो० भया वास परलोक में, तुरत विवाह उपरान्त ।
ऐसे वज्र पात से, ग्राम सकल विक्लान्त ॥ १४६९

धूम धाम रात्री की भारी, प्रातः शोक में बदली सारी ।
वर पक्ष और वधू के नाती, और सकल जो जुटे बराती ।
रोने धोने में सब लागे, कोसन विधि को वे जन पागे ।
पण्डित जन उन्हें समझावें, कर्म गति का ज्ञान करावें ।
लागे न कुछ मन में बात, क्षत[1] पै कोमल स्पर्श आघात ।
सुन कुहराम साईं दत्त आया, शव दूल्हे का देख वह पाया ।
उस के मन में दया जो आई, सब जनता उस परे हटाई ।
शव के पास बैठ कुछ काल, जीवित कीन दिया तत्काल ।

दो० शव को कीना जीवित, चकित भये सब लोग ।
पुनः नगारे धम धमे, विसर गया सब सोग ॥ १४७०

ऐसा साईं दत्त था सिद्ध, जोशी कुल जिस कीन प्रसिद्ध ।
कन्हैया लाल था उन का पूत, जिस[2] पाया मम पिता सुपूत ।
कन्हैया लाल परम विद्वान, ज्योतिष कारज कीन महान ।
सरल चित्त और ईश्वर भक्त, विद्या व्यसनी विषय विरक्त ।
जगती सारी करती मान, जान के उन को पुरुष महान ।
उन के तप के फल अनुरूप, पुत्र जन्मा था देव स्वरूप ।

1. ज्ञान का उपदेश उन्हें शान्ति नहीं देता था, चोट वाले स्थान पर कोमल स्पर्श भी दुःखदायी होता है ।
2. पं० साईं दत्त के पुत्र पं० कन्हैया लाल थे । और पं० कन्हैया लाल के घर (श्री प्रभु राम लाल जी महाराज के) पिता पं० गंडा राम जी का जन्म हुआ ।

कार्तिक† संवत उन्नीशत चार, कृष्णा नवमी चन्द्र वार ।
पण्डित गण्डाराम थे जाये, पूज्य पिता जी जग में आये ।

दो० पण्डित गण्डा राम जी, पूज्य पिता मम तात ।
उन के गुण मैं क्या कथूं, सकूं न कथ सब बात ॥ १४७१

बालपने थी विद्या पाई, सरस्वती उन कण्ठ समाई ।
कर्म काण्ड में भये प्रवीण, ज्योतिष विद्या में मन दीन ।
दिव्य तेजस्वी उन का रूप, पाये रहस्य ज्योतिष के गूप ।
ज्योतिषी भये परम विख्यात, भूत भविष्यत था साक्षात ।
जो कुछ देते थे बतलात, रेख पात्थर की होती तात ।
राजा रंक सभी दर आवें, दूर दूर से निमन्त्रण पावें ।
मन्त्रीगण थे लेने आते, राज-निमन्त्रण को वे लाते ।
पांच वर्ष का मैं हो पाया, ज्योतिष मुझे भी उन सिखलाया ।

दो० पांच वर्ष का जब भया, शिक्षा मुझ को दीन ।
पूज्य पिता की गोद में, मैंने विद्या लीन ॥ १४७२

७१. अपने बाल्यकाल का श्री प्रभु जी द्वारा कथन

बालपने में विद्या पाई, तृप्ती पर न मम मन आई ।
चित्त में रहत सदा वीचार, जाऊँ काशी वा हरिद्वार ।
कुरुक्षेत्र में मैं चलि जाऊँ, खोज गुरु को विद्या पाऊँ ।
देश देशान्तर को मैं देखूं, तीरथ सकल करूँ यह लेखूँ ।

†पं० गण्डा राम जी का जन्म संवत १९०४ कार्तिक कृष्णा नवमी सोमवार को हुआ ।

योगियों की संगत मिल जाये, जीवन सफल जिमि हो पाये ।
इस विध मन में मैंने धारा, चुपके त्यागा घर का द्वारा ।
अमृतसर से पकड़ी गाड़ी, कुरुक्षेत्र जब आ वह ठाड़ी ।
उतर पड़ा मैं उस ही स्थान, कुरुक्षेत्र जो तीरथ महान ।

दो० कुरुक्षेत्र जो तीर्थ है, वह तो जग विख्यात ।
गीता को गाया जहां, कृष्ण चन्द्र साक्षात ॥ १४७३

धर्मभूमि वह कुरु का स्थान, मध्य पुरातन दो नद जान ।
अठसठ[1] तीर्थ उस में मान, अठतालीस कोस परिक्रम जान ।
उस भूमी में जब पग धारा, हर्ष भया मेरे मन भारा ।
नदियां दो यहां अति पुरानी, सूखा है अब जिन का पानी ।
इक पवित्र सरस्वती धारा, कुरुक्षेत्र का उत्तर किनारा ।
दक्षिण दिशा दृषद्वती आई, जिस तट तीर्थ बसे बहु भाई ।
इस भूमि के नदी सरोवर, आदि सृष्टि के सभी धरोहर ।
वराह का यहीं भया अवतार, भूमि का जिस कीन उद्धार ।
इसी भूमि जमदग्नी जाये, परशु राम जिन के घर आये ।

1. ४८ कोस विस्तार की कुरुक्षेत्र भूमि दो पुरातन नदियों – सरस्वती और दृषद्वती के मध्य में स्थित है । इसी विशाल क्षेत्र में कौरवों और पांडवों की सेनाओं के मध्य महाभारत का युद्ध हुआ था । यहीं श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता का उपदेश अर्जुन को दिया था । यहीं परशुराम ने अहंकारी शत्रुओं का संहार कर उन के रुधिर से कुण्ड भरे थे, यहीं पर महाराज जन्मेजय ने सर्पों से वैर का बदला लेने हेतु नागयज्ञ कर सर्पों का दमन सफीदों में किया था। इसी वन्य भूमि में महर्षि व्यास, महर्षि जमदग्नि आदि अनेकों ऋषियों, राजर्षियों तथा ब्रह्मर्षियों के आश्रम थे । भगवान का वराह अवतार इसी भूमि में वराह कलां (जींद) में हुआ था । जिन्होंने जलमग्ना पृथ्वी का उद्धार किया ।

दो० ऐसी पावन भूमि में, थानेसर इक धाम ।
पण्डित बूला राम का, जहां सुना मैं नाम ॥ १४७४

धाम प्रसिद्ध थानेसर जानो, इतिहासिक यह नगरी मानो ।
राजों की यह थी राजधानी, योधा हुए यहां बहुमानी ।
इस नगरी में जब मैं आया, पण्डित जी के द्वार सिधाया ।
शिष्य अनेकों उन के पास, करते विद्या का अभ्यास ।
वेदों की वे शिक्षा पाते, संग वेदांग भी पढ़ कर जाते ।
व्याकरण वा ज्योतिष निरुक्त, कण्ठस्थ करें वेदों के सूक्त ।
ऋक् यजु और साम का गान, पढ़ते पण्डित से ला ध्यान ।
अथर्व की विद्या भी वे पाते, षड् दर्शन थे गुरु पढ़ाते ।
षड् दर्शन का कर अभ्यास, षड् शास्त्री बन पाते खास ।

दो० षड्दर्शन वे सीख कर, षड् शास्त्री कहलायें ।
योग शास्त्र के पढ़न में, छात्र चित्त लगायें ॥ १४७५क
पण्डित जी के चरण में, मैं भी पहुंचा जाय ।
कर बांध कर वेनती, कीनी माथ झुकाय ॥ १४७५ख

पिता सहित निज नाम बताया, आने का तब हेतु जताया ।
कुछ प्रश्न गुरु जी ने कीने, उत्तर मैंने उन के दीने ।
गुरु घर की सेव बताई, कीन शुरू शुभ दिवस पढ़ाई ।
ग्रंथ कई मुझे गुरु पढ़ाये, वेद वेदांग मुझे सिखलाये ।
योग शास्त्र भी मुझे पढ़ाया, योग पातांजल कंठ कराया ।
रुचि सेवा में भी मैं लीनी, किरपा कर जो गुरु जी दीनी ।

गुरु सेवा से बहु फल लेवे, गुरु की सेवा विद्या देवे ।
गुरु की सेवा बंधन मोचे, जन्म जन्म के कर्म संकोचे ।
गुरु की सेवा सम न कर्मा, गुरु सेवा से बड़ा न धर्मा ।
दो० इस विध मन में धार कर, मैं करता था सेव ।
गुरु सेवा की लग्न थी, मान गुरु महादेव ॥ १४७६

गुरु घर की सब सेवा लीनी, मैं सहपाठिन से भी छीनी ।
खुशी खुशी से सब ने दीनी, निज को धन्य मान मैं कीनी ।
[1]ब्रह्म मुहूरत मैं उठ जाता, सेवा गौओं की कर पाता ।
गौशाला में झाड़ू लगाता, गोबर आदि बुहार मैं पाता ।
चारा डाल के सहित दुलार, करता गौओं को मैं प्यार ।
खेतों में फिर चल कर जाता, चारा आदि काट के लाता ।
प्रणाम गुरु को जा फिर करता, जो आज्ञा हो सर पर धरता ।
पाठ गुरु फिर मुझे पढ़ाते, करने को कण्ठस्थ बताते ।
दो० करता मैं वह कण्ठ था, जो गुरु देत बताय ।
गूढ़ विषय सब ज्ञान का, गुरु जी देत बुझाय ॥ १४७७

इक दिन पाठ में मैं न आया, थक कर नींद में था सो पाया ।
गुरु जी ने कुछ शिष्य पठाये, आ कर मुझे उन दीन जगाय ।
उन के मुख पै भय था छाया, "क्या कारण" मैं तब पुछ पाया ।
कहन लगे, "इक नाग को देखा, तेरे सर पै खड़ा वह पेखा" ।
हमें देख वह भया विलुप्त, प्रभु जानें वह है कहां लुप्त ।

1. ब्रह्ममुहूरत—प्रातःकाल ३-४ बजे के बीच ।

चलो पास गुरु जी के जावें, घटना सब उन को बतलावें" ।
प्रभु जी ने जब घटन सुनाई, निज बचपन की बात बताई ।
श्रोतागण ने भी भय माना, अलौकिक पुरुष प्रभु को जाना ।

दो० दिव्य अलौकिक पुरुष हैं, जिन के सर पै नाग ।
कर के छाया था खड़ा, शयन करें महाभाग ॥ १४७८

एक भक्त ने विनय उचारी, "नाथ आप की करनी भारी ।
निज बचपन की और भी बात, हमें सुनावें करें सनाथ" ।
प्रभु जी ने तब यों फरमाया, गुरु घर का ही हाल बताया ।
गुरु घर में बहु शिष्य थे रहते, विद्या पढ़ें भोजन भी पाते ।
मेरे मन में सोच समाई, बोझ बनूं क्यों गुरु पै भाई ।
गुरु घर से चल बाहर जाता, भोजन ढाबे से कर आता ।
इस विध मैं कुछ दिवस बिताये, पैसे जो थे खर्च हो पाये ।
चने चबेने पर निर्वाह, कीना मैं ने कुछ सप्ताह ।

दो० इक पैसे के लेय कर, खात चने इक काल ।
अन्तिम पैसा जब गया, सोच भयी तत्काल ॥ १४७९

पैसा बचा न जब कोई पास, मेरा मन कुछ भया उदास ।
गुरु घर से ना भोजन पाऊँ, मन में यह संकल्प बनाऊँ ।
गुरु घर में रह शिक्षा पाऊँ, कर्म करूँ निर्वाह चलाऊँ ।
मैं विज्ञापन तब लिख पाया, निज को ज्योतिषी इक दिखलाया ।
एक सेठ ने मुझे बुलाया, पाती अपनी ले वह आया ।
मैंने पाती खोल वह देखी, और ध्यान से सारी पेखी ।

फलादेश जो पाये उस में, सब बतलाये मैंने पल में ।
उस का चित्त हुआ प्रसन्न, दिया मुझे कुछ धन व अन्न ।
मैं लौट गुरु गृह को आया, पढ़ने में फिर चित्त लगाया ।
दो० गुरु घर में तब आय कर, पढ़ने में मन लाय ।
गुरु चरणों में बैठ मैं, चिन्ता सब विसराय ॥ १४८०

इतने में कुछ सज्जन आये, गुरु जी को वे सब मिल पाये ।
कहें "पण्डित जी, हमें मिलायें, ज्योतिषी जी के दर्श करायें ।
अमृतसर के ज्योतिषी भारी, जिन की धूम नगरी में सारी ।
हम पाती उन को दिखलावें, अपना भविष्य उन से सुन पावें" ।
सुन कर गुरु जी कहें सप्रीत, "ऐसा ज्योतिषी न यहां मीत ।
और कहीं जा कर तुम देखो, यहां तो केवल शिष्य मम पेखो" ।
वे सज्जन तब भये निराश, उसी सेठ के गये वे पास ।
उन के संग तब सेठ वह आया, मुझ को उस वहां बैठा पाया ।
मेरी ओर उस कीन इशारा, भेद कथा गुरु जी से सारा ।
दो० गुरु जी ने सब श्रवण कर, कही मुझे तब बात ।
"बेटा इन को देख दो, पाती इन की तात" ॥ १४८१

मैंने डरते डरते देखी, पाती गुरु के सन्मुख पेखी ।
मेरी समझ में जो कुछ आया, मैंने सब कुछ प्रकट सुनाया ।
आशिष गुरु जी ने दे पायी, मुदिता सज्जन के चित्त छायी ।
उसने भेंट में जो कुछ दीना, गुरु चरणों में मैं धर दीना ।
इस विध नित्य लोग थे आते, अपने प्रश्न थे संग में लाते ।

आज्ञा गुरु जी की मैं पा कर, उत्तर देता मन को ला कर ।
इक सहपाठी के मन आई, पूछे "कहां तुम विद्या पाई" ।
मैंने उस को उत्तर दीना, "निज पिता से ज्ञान यह लीना ।
दो० अमृतसर के नगर में, पूज्य पिता का वास ।
जिनके अन्तर में लखूं, सरस्वती का वास ॥ १४८२

ज्योतिष विद्या उन की ऐसी, देखी सुनी न मैंने जैसी ।
जो कुछ फलित वे देख बतावें, देव भी अन्यथा न कर पावें ।
देश देशांतर से जन आवें, भूत भविष्य के ज्ञान को पावें ।
बालपने उन मुझे पढ़ाया, ज्योतिष विद्या को सिखलाया ।
पास उन्हीं के बैठ मैं मीत, ज्योतिष कर्म किए ला चीत ।
सहज स्वभाव सभी मैं जाना, ज्योतिष का जो ज्ञान बखाना ।
मैं जानूं मम तात की दाया, यह ज्ञान जो मैंने पाया ।
मेरा परिश्रम इस में नाहीं, दीन पिता जी सब सिखलाहीं ।

दो० मेरा परिश्रम कछु नहीं, पैतृक जानूं दान ।
बालपने में यह मिला, ज्योतिष का सब ज्ञान ॥ १४८३क
ज्योतिष का सब ज्ञान यह, पिता जी मुझ को दीन ।
बालपने में सीख कर, ज्योतिष कारज कीन" ॥ १४८३ख

सहपाठी जब सब सुन पायी, उस के मन इच्छा उपजायी ।
मैं भी अमृतसर को जाऊं, ज्योतिष वहां से सीख के आऊं ।
अर्थकारी* यह विद्या भारी, सीख के लौटूं मैं भी सारी ।

* धन को देने वाली ।

मुझ से घर का पता ले लीना, प्रस्थान तभी वहां से कीना ।
अमृतसर वह सीधा आया, कटड़ा सन्त सिंह जा पाया ।
पूज्य पिता को हाल बताया, चित पिता का सुन हर्षाया ।
सहपाठी से सुध जब पाई, मुझे लिवाने भेजा भाई ।
दिन तीजे मम भाई आया, चित्त मेरा तब कुछ चकराया ।

दो० मन मेरा संशक भया, देखा जब निज भ्रात ।
लेने आये हैं मुझे, चलना होगा प्रात ॥ १४८४

भाई को कीना उठ प्रणाम, सोचा मन में "मेरे राम ।
विद्या में यह विघ्न पड़ा है, गुरु सेवा में बाध पड़ा है ।
ईश्वर इच्छा को अब जान, बड़ों की आज्ञा लूंगा मान ।
करूं वही जो गुरु बतावें, जो सन्देश पिता भिजवावें ।
मात पिता और गुरु की बात, माने जो जन दिन वा रात ।
ईश्वर किरपा को वह पावे, संशय लेश न चित्त में लावे ।
यह मानूं सिद्धान्त अपेल, जीवन बाकी इक है खेल" ।
भ्राता ने मुझ को बतलाया, "पूज्य पिता जी तुझे बुलाया ।

दो० मुझे पिता जी भेज कर, तुझे बुलाया राम ।
संग मेरे अब चल पड़ो, त्याग के सारे काम ॥ १४८५क
गुरु जी को तुम पूछ लो, और न लावो देर ।
अभी रेल को लेय कर, पहुँचें जाय सवेर" ॥ १४८५ख

भ्राता का मैं कहना माना, पिता की आज्ञा को सन्माना ।
गुरु जी को जा बात बताई, लेने आया है मम भाई ।

गुरु सेवा न कुछ कर पाया, मेरे मन पछताव समाया ।
क्षमा करिये जो मम हो भूल, जान मुझे निज पग की धूल ।
ज्ञान समुद्र आप हो नाथ, दे कर विद्या कीन सनाथ ।
मेरा कोटिश कोटि प्रणाम, आज्ञा हो तो जाऊं पितु धाम ।
दण्डवत गुरु जी को तब कीनी, कर कृपा उन अनुमति दीनी ।
दीना मुझ को यह उपदेश, प्रमाद कभी न करना लेश ।

दो० नित्य करो स्वाध्याय तुम, शास्त्र का मन लाय ।
विद्या व्यसनी जन बने, तभी ज्ञान को पाय ॥ १४८६

आशीर्वाद गुरु जी दीना, भाई संग मैं तब चल दीना ।
रेलगाड़ी में भये अस्वार, मेरे मनहिं निराश अपार ।
विद्या मेरी रही अधूरी, कर न सका मैं उस को पूरी ।
मात पिता का मोह अपार, देता सुत मग बाधा डार ।
माता शत्रु पिता वह वैरी, सुतहिं जो दें न विद्या भारी ।
जिस का सुत पण्डित बन पावे, पिता वही सुपिता कहावे ।
सारी रात निराशा छायी, गाड़ी प्रात सुधासर आयी ।
भाई संग मैं घर को आया, मात पिता को शीश झुकाया ।

दो० मात पिता ने देख कर, लीना सुख का श्वास ।
भक्तो मैं ने कथ दिया, अपना यह इतिहास ॥ १४८७क

बता कर सारी बात यह, मौन भये प्रभु लेश ।
भक्त भी उठ तब चल दिये, जान विलंब विशेष ॥ १४८७ख

प्रभु कुल का इतिहास यह, श्रवण करे ला चीत।
दोषों से जन मुक्त हो, प्रभु चरणों हो प्रीत ॥ १४८७॥

७२. मुस्लिम मोची पर कृपा :-

अखिल विश्व के सिरजनहार, अमृतसर में देह को धार।
करते लीला अपरम्पार, भक्तों के नहीं सुख का पार।
प्रभु चरणों में जो जन आता, दिव्य कृपा को वह पा जाता।
भेद भाव न प्रभु अपनावें, सभी जनों को गले लगावें।
हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई, जिस पर भी किरपा हो पाई।
होता उस का था कल्याण, दिव्य दर्शन का पाता दान।
अपना धर्म जो पाल दिखावे, प्रभु कृपा को वह जन पावे।
खुशी खुशी निज कर्म जो करता, और ग्लानी न चित्त धरता।

दो० ऐसा पुरुष ही धर्म युत, पाता प्रभु की प्रीत।
बैठ प्रभु के ध्यान में, करत एकाग्र चीत ॥ १४८८

लवपुर की हम बात बतावें, इक मोची की गाथ सुनावें।
अहमद मोची का अभिधान, आश्रम के सन्मुख दूकान।
जूते गांठन उस का काम, आता प्रातः जाता शाम।
बाहिर जाते जब सुख धाम, देख प्रभु को करत सलाम[1]।
प्रभु जी के चरणों को देखे, जूतों में यदि दोष उल्लेखे।
अर्ज करे वह दस्तवदस्त[2], गुरु जी ठहरें कर दूं दुरुस्त[3]।

1. बन्दगी, नमस्कार। 2. हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता। 3. ठीक।

देख प्रभु भी उस की प्रीति, काम कराते जान के नीति ।
तेय प्रभु का जूता धरता, और प्रेम से कारज करता ।
दो० प्रभु का जूता लेय कर, गांठत था हो लीन ।
सुध वह सारी भूलता, भूलत दुनी व दीन ॥ १४८६
जूता गांठ साफ कर लाता, प्रभु के चरण स्वयं पहनाता ।
पैसा टका जो प्रभु से पाता, संकोच सहित ले माथ छुआता ।
जाननहार प्रभु जी जानें, उस का भाव स्वयं पहचानें ।
कर्म नीच और था वैधर्मी, अशुद्धाहारी और विकर्मी ।
प्रभु जी ने यह कुछ न देखा, उस के केवल प्रेम को पेखा ।
प्रभु चरणों में होवे प्रीती, पाप धुलें यह वैदिक नीती ।
अहमद के मन प्रभु विराजे, मुरली मनोहर रूप से साजे ।
मन हर रूप जो उस ने देखा, "अल्ला" बांसुरी वाला"[1] लेखा ।
दो० अल्ला मेरा बंसी वाला, कहत फिरत दिन रात ।
उस का मन उन्माद युत, कृष्ण रूप साक्षात ॥ १४८०क
जिस प्रभु से प्रीत कर, तरे विधर्मी आन ।
रे मन उस को भूल कर, तेरा कौन ठिकान ॥ १४८०ख
अहमद की इस गाथ को, स्मरण करे जो दास ।
प्रभु की प्रीती मन बसे, भये न चित्त उदास ॥ १४८०ग
इस विध प्रभु जी जग के स्वामी, करते लीला अन्तर्यामी ।
भेद भाव नहीं उन मन आवे, शरण आवे सो सद्गति पावे ।

[1] ईश्वर

इक दिन प्रभु ऋषिकेश विराजे, आश्रम के प्रांगन में साजे ।
बैठ आगन्तुक प्रभु के पास, निरखें आश्रम की छवि खास ।
पावन आश्रम की छवि प्यारी, पुष्पन की रंगीन क्यारी ।
छोटे छोटे वृक्ष उपजाये, निज कर कमल जो प्रभु लगाये ।
निज कर कमल से सींच के नीर, कीना जिन का पुष्ट शरीर ।
पल्लव[1] उन पै चिकन सुहावें, पक्षी भी कलरव कर पावें ।
पुष्पन पर तितली गण आवें, भक्तन के मन को बहु भावें ।

दो० निरखें भक्त प्रेम से, छवि में कर मन लीन ।
योग साधन का आश्रम, सुखप्रद सुखमय कीन ॥ १४९१

राज मार्ग पर साधन धाम, यात्री यहां पर कर प्रणाम ।
त्रिवेणी ऊपर फिर वे जाते, गंग धार में नहा कर आते ।
प्रभु को आ कर शीश झुकावें, साधन योग की दीक्षा पावें ।
अनेक दिशा से जन थे आते, आश्रम में वे सब मिल पाते ।
पूर्व पश्चिम और जो दक्षिण, भक्त एकत्र होत सुलक्षण ।
उत्तर दिक् यह प्रभु का स्थान, त्रिवेणी[3] योग की बनी महान ।
इक त्रिवेणी जल की जानें, दूजी योग की सब पहचानें ।
जल – त्रिवेणी नदी किनारे, योग त्रिवेणी प्रभु के द्वारे ।

1. प्रभु जी के कर कमलों से लगे हुए आश्रम के वृक्षों पर चिकने अर्थात् कोमल पत्ते बहुत शोभा दे रहे हैं।
2. सुख के प्रदाता श्री प्रभु जी ने सुखमय आश्रम का निर्माण किया।
3. ऋषिकेश के योग साधन आश्रम में पूर्व, पश्चिम और दक्षिण—इन तीन दिशाओं से भक्त जन श्री प्रभु जी से योग की दीक्षा पाने एकत्र होते थे। अतः यह आश्रम योग त्रिवेणी था।

दो० प्रभु के द्वारे आय कर, निर्मल करते चित्त ।
तीन दिशा से भक्त जन, आते योग निमित्त ॥ १४९२

७३. तर्पण विद्या

लाखों जन गंगा पै आवें, पितरों का तर्पण कर पावें ।
जिमि पितरों का होवे हित, लोग करें आ कर्म ला चित ।
एक भक्त ने विनय उचारी, "प्रभु जी इक है शंका भारी ।
गंगा में जो तर्पण करते, इस विध क्या सब पितर हैं तरते ।
अथवा कुछ है और उपाय, पितरों का जिमि हित हो पाये" ।
सुन कर भक्त जनों की शंका, कहें नाथ जिमि करें निशंका ।
"भक्तो हम इक रहस्य बतावें, ला कर चित्त सभी सुन पावें ।
पुण्य पाप जन सभी कर पावें, सद्गति को तब किस विध ग्राहवें ।

दो० पुण्य पाप सब जन करें, मिश्रित करते कर्म ।
जीव तरें जिमि जगत से, वही सुनो अब धर्म ॥ १४९३

तर्पण का हम करें बखान, धर्म का इक जो कर्म महान ।
तर्पण विद्या ऋषिन बनाई, पितरों को जो है सुखदाई ।
मृत्यु पीछे कहां नर जावे, तर्पण विद्या सभी बतावे ।
इस ज्ञान के वे अधिकारी, आत्म विद्या जिन को प्यारी ।
मर कर प्राणी जब है जाता, निज कर्मों के फल को पाता ।
जैसी वासना मन में लावे, वैसी ही वह गति को पावे ।
कर्म प्रेरित संकट आवें, जीव कहां से त्राण को पावें ।

जीव बनें तब जीव सहायी, विधि यह तर्पण में बतलाई ।
स्थूल में बन्धु जो बन पावें, सूक्ष्म में क्यों संग गंवावें ।
दो० जीव जीव का बंधु हो, जीव जीव का मीत ।
किसी लोक में वास हो, प्रकटे तर्पण प्रीत" ॥ १४९४

सुन कर प्रभु जी की सब बात, बोले भक्त "हे जगत त्रात ।
यह तो नवीन ज्ञान हम पाया, मरणोपरान्त रहस्य बताया ।
पितरों के हम बने सहायी, नवीन बात आप से पायी ।
जिज्ञासा हमरे मन है स्वामी, विस्तार करें कुछ अन्तर्यामी ।
पितर हमारे जिमि तर पायें, अवश्य करें हम वही उपाय" ।
भक्तन की सुन कर प्रभु बात, कहन लगे "सभी सुन लो तात ।
नवीन बात न मैं बतलाई, स्नातन रीत है यह चलि आई ।
इस विद्या के ऋषि स्रष्टा, आदि वेद के जो हैं द्रष्टा ।
उन ही बताया इस का महत्व, साक्षात किया जिन आत्म तत्व ।
दो० आत्म तत्व साक्षात कर, देखे सूक्ष्म रूप ।
नरक चौरासी जो पड़े, रहस्य बड़ा यह गूप ॥ १४९५

नरक चौरासी गर्त में गूप, निज निज कर्मन के अनुरूप ।
असंख्य जीव जब दुःख में पाये, देख दया उन के मन आये ।
निस्तार वहां से किस विध पावें, ऋषियन के मन भाव ये आवें ।
योग समाधी जब उन लायी, बात सकल तव ध्यान में आयी ।
निज निज आत्म का उज्जाला, समाधी में जिस जीव पै डाला ।
उस का सूक्ष्म भया प्रकाशी, चमक उठा जिमि चांद आकाशी ।

सूर्य तेज जिमि चांद में आवे, आत्म तेज तिमि जीव तरावे ।
अनेक जीव उन उज्ज्वल कीने, तामस रूप उन के हर लीने ।
उज्ज्वल रूप से सद्गति पावें, तामस रूप नरक ले जावें ।
इस विध कोटि जीव तराये, तर्पण विद्या यही कहाये ।

दो० तर्पण विद्या योग की, जाने कोई सुजान ।
योगी की जब टेक ले, सेवक करे विधान ॥ १४९६क

सेवक करे विधान वह, पितरों को ले तार ।
तर्पण किरपा योग बिन, करे न हो निस्तार ॥ १४९६ख

योगी की जो शरणी जावे, और भाव निज कथ जब पावे ।
योगी से हो तब कल्याण, पितर नरक से पावें त्राण ।
गुरु योगी न यदि जन पावे, पितरों को तब किमि तरावे ।
अपने कर्म ही बनें सहायी, इस में लेश न संशय भाई ।
योगी परम दयाल तुम जानो, स्वारथ बिन सहायक मानो ।
जग कल्याण हित उस की नीति, स्वारथ से न लेश भी प्रीति ।
पुत्र[1] सचमुच वही कहावे, पितरों को जो सुख दे पावे ।
योग बिना न होय निस्तार, योगी गुरु को ले जन धार ।

दो० गुरु योगी को कीजिये, सीखें आत्म योग ।
स्वयं तरें जन इस विधि, संग पितर भी लोग" ॥ १४९७क

सुन कर प्रभु उपदेश को, एक भक्त कह दीन ।
"नाथ बात यह काम की, सुनी जो कर मन लीन" ॥ १४९७ख

[1]पुत्र—नरकों से रक्षा करने वाला। पु-नरक। त्र—रक्षा करना।

अन्य भक्त इक तब कथ पाया, "नाथ भाव यह मम मन आया।
लोग कहें निज निश्चय नाथ, मरे जो तीर्थ होय सनाथ।
अथवा किरया जब वहां होवे, जीव स्वर्ग को तब ही गोवे।
इस में सत्यता कितनी स्वामी, निवारो संशय अन्तर्यामी।
तीरथ कर दे यदि यह काज, सुगमता इस में है महाराज"।
प्रभु जी ने जब यह सुन पायी, मुस्कान उन के मुख पै आयी।
मुस्काहट में ही वचन उचारे, "बिन शिक्षा जन भोले भारे।
पानी को लें तीरथ मान, अथवा भूमि को लें जान।
तीरथ वह जहां योगी होवे, कृपा पाये जो जन वहां गोवे।
जहां योगी का होवे वास, देश पवित्र रहे विश्वास।
उसी देश में जो जन जावे, दुःख संकट से मुक्ति पावे।

दो० उसी तीर्थ को ढूंढिये, जहां योगी का वास।
जहां पर योगी न बसे, हाथ लगे नीरास ॥ १४८८क
हाथ लगे निरास वहां, परिश्रम केवल जान।
ऐसे देशन में बसें, बहुधा धूर्त महान" ॥ १४८८ख

सुन कर स्पष्ट गुरु की वाणी, भक्त जनों ने बहु सन्मानी।
कहन लागा इक कर प्रणाम, "नाथ ज्ञान के आप हैं धाम।
गूढ़ बात है आप बताई, हमारी बुद्धि में सब आई।
तीरथ वह जो पुरुष तरावे, भव बन्धन से मुक्त करावे।
योगी पुरुष ही तीरथ होवें, शरणागत के मनोमल धोवें।
वचनामृत से निर्मल करते, बुद्धि के सब कलुष वे हरते।

जन्म जन्म के संचित पाप, दूर करें वे हरें संताप ।
उन की मूर्ति का ही ध्यान, करे मन निर्मल मणि समान ।
उन के पग की पूजा जानें, ईश्वर का हम अर्चन मानें ।
निकली उन के मुख से बात, वेद का मन्त्र वह साक्षात ।
उन की कृपा जो जन पावें, भव बन्धन से मुक्त हो जावें ।

७४. योगी गुरु की शक्ति से पितरों का उद्धार—एक दृष्टांत

दो० भव बन्धन से मुक्त हो, गुरु किरपा को पाय ।
योगी के प्रताप से, पुत्र पितर तराय" ॥ १४९९क
अपनी बात सुनाय कर, भक्त गहे प्रभु चरण ।
सभी भक्त कहने लगे, "हम हैं आप की शरण" ॥ १४९९ख

वरद हस्त तब प्रभु जी धारा, आशिर्वाद सब को दे डारा ।
फिर भक्तन से कही उन बात, भाव मेरा समझा तुम तात ।
वृष्टांत एक दे हम समझावें, सुनें ध्यान से ज्ञान वे पावें ।
एक समय की बात लो जान, क्षत्री था कोई भक्त सुजान ।
तीरथ करने का वह प्यारा, बद्रीनाथ की ओर सिधारा ।
था एकाकी दूर की बाट, भूल गया मग अटवीघाट* ।
खोज खोज मग भया हैरान, भूख ने कीना था परेशान ।
उस की सुन कर आर्त पुकार, इक आया योगी कृपाधार ।

दो० योगी सन्मुख प्रकट हो, पूछी उस से बात ।
"कारण अपने कष्ट का, कह दो हम से तात" ॥ १५००

* वन में नदी के किनारे ।

क्षत्री ने सब बात बताई, निज क्षुधा उस को जतलाई ।
योगी ने तब उसे ठहराया, कन्द मूल दे उसे खिलाया ।
क्षत्री ठहरा उस के पास, सेव करे ला मन वह खास ।
योगी ने तब उसे लगाया, साधन योग उसे सिखलाया ।
कीना उस पै शक्ति पात, बैठ समाधी लावे प्रात ।
लोक लोकान्तर देख के आवे, देह की सुधी सकल विसरावे ।
इक दिन कही योगी ने बात, निज पितरों को देखो तात ।
किस किस योनी में वे सारे, ध्यान में देख सको तुम प्यारे ।

दो० बैठ ध्यान में देख लो, निज पितरों का रूप ।
शिक्षा तुम को जो मिले, होवे वह अति गूप ॥ १५०१क
गुरु आज्ञा को पाय कर, क्षत्रिय कीना ध्यान ।
अद्भुत बातें देख कर, भया अतीब हैरान ॥ १५०१ख

अपने पितरों को उस देखा, निज कर्मों को भोगत पेखा ।
सब से पहले देखा दादा, ठाढ़ा था बन बैल अलहदा[1] ।
देख उसे क्षत्रिय चकराया, किस योनि में दादा आया ।
बहु परिवार का वह था स्वामी, मानें जिस को नामी ग्रामी ।
बहुत भवन थे जिस बनवाये, और अनेकों काम चलाये ।
धन दौलत का वैभव भारी, सब पर उस की थी सरदारी ।
जन अनेकों पास थे आते, झुक कर उसे सलाम बुलाते[2] ।
सेवक करते सेवा सारी, बन कर बैठे सेठ जो भारी ।

1. एक ओर 2. नमस्कार बुलाते

दो० वन कर बैठत सेठ जो, खड़ा बैल के रूप ।
और धूप में था बंधा, कितना पतन अनूप ॥ १५०२क
देख क्षत्रिय रो पड़ा, और पूछी उस बात ।
"दादा जी यह क्या भया, ऐसी गति क्यों तात" ॥ १५०२ख

दादा ने तब वचन उचारा, बोला "क्या है हाल तुम्हारा ।
मेरा तो था घर से प्यार, लीना जन्म है इस ही द्वार ।
अब खड़ा मैं आप के द्वारे, करूं काम मैं सभी तुम्हारे ।
बहुत मजे में रहूँ अज़ीज़[1], लादो मुझ पै चाहो जो चीज़" ।
देख दादा फिर दादी देखी, कुतिया बनी खड़ी वह पेखी ।
क्षत्री देख अचंभित भया, मन उस का तो कांप ही गया ।
परिवार बड़े की बहु जो रानी, शासन करत जिमि महारानी ।
दास दासिन पर शासन करती, याचक गण को झोली भरती ।
जिस के कई थे पूत व नाती, बनी खड़ी कुतिया दिखलाती ।

दो० कुतिया को उस देख कर, कही शोक से बात ।
"हे दादी क्या बात है, बन कुतिया दिखलात" ॥ १५०३

कथन किया तब दादी हाल, "सुख से बीतत मेरा काल ।
इस घर की हूँ मैं रखवाल, तुम बतलाओ अपना हाल" ।
पशु योनी में दोनों देख, मन में क्षत्री कीन उल्लेख ।
तामस योनी में ये आये, जीवन इन को यही सुहाये ।
ईश्वर की यह कैसी माया, जिस योनी में जो उपजाया ।

1. हे प्रिय पुत्र

उसी में माने वह संतोष, लेश न उस के मन हो रोष ।
अपनी योनी उत्तम माने, अहं भाव में सब भरमाने ।
उस माया पै हौं कुरबान, सृष्टी अनन्त करत भ्रमान ।

दो० प्रभु की माया अति प्रबल, देव मनुज सब जीव ।
भ्रान्ति में रहें भ्रांत ही, पांय न सत की सीव ॥ १५०४

दादा दादी इस विध देखे, भयी इच्छा अब माता पेखे ।
सन्मुख रूप माता का आया, सर्प बना जो बैठा पाया ।
धन ऊपर था सर्प आसीन, क्षत्री[1] का मन दुःखी मलीन ।
जिस का था वह पूत प्यारा, और था जिस का बहु दुलारा ।
देख उसी को भय उपजाया, माया का किस भेद है पाया ।
क्षत्री ने तब कीन सवाल, "हे माता क्यों भया यह हाल ।
इस योनी में क्यों हो आई, तेरी तो थी शुद्ध कमाई ।
देव लोक को तुम चलि जाती, अथवा मानव देह को पाती ।

दो० तेरे जैसे जीव ना, तिर्यग योनि पायें ।
पुण्य कर्म के कारणे, स्वर्ग लोक वे जायें" ॥ १५०५क
सुन कर उस की बात को, कहन लगी वह मात ।
"मोह माया के कारणे, पाई गति यह तात ॥ १५०५ख

मैंने था धन यहां छिपाया, और न था किसी को बतलाया ।
मरते काल बोल न पाई, मर कर यहीं हूँ मैं फिर आई ।
इसी रहूँ धन के मैं पास, मुझे तो दुःख है न कुछ खास ।

1. दूसरा पाठ भया क्षत्री तब दुःख में लीन ।

तुम बतलाओ अपना हाल, रहो सुखी तुम सब ही काल" ।
देख माता की गति यह न्यारी, क्षत्री के मन ग्लानी भारी ।
उपजा तब उस मनहिं विचार, तीन पितर तो देखे डार ।
पूज्य पिता का कहां है वास, देखन की मन इच्छा खास ।
जिस काल मन भाव यह आया, रूप पिता का तब दिख पाया ।

दो० निज पत्नी के गर्भ में, देख पिता का वास ।
दुःख पड़ा जो भोगता, कारा का जिमि वास ॥ १५०६

दुःख पिता वहां भोगत भारी, प्रकटाता निज आवाज़ारी ।
क्षत्री ने तब पूछी बात, "क्यों कर मिला वास यह तात ।
आप था शौच कर्म बहु माना, मल मूत्र क्यों कीन ठिकाना" ।
दुःखी पिता ने गिरा उचारी, "मोह की कड़ी बड़ी है भारी ।
जिस गल पड़ी वही यह जाने, कहने से न कोई पहचाने ।
एक कड़ी नहीं पूरा पाश, मोह तो जीव को करत हताश ।
मन को मूर्छा में मोह डाले, बुद्धि को भी भ्रम में घाले ।
स्मृति का मोह करत है नाश, ऐसा मोह का विकट है पाश ।

दो० विकट पास (पाश) है मोह का, पड़े जो जाने सोय ।
पल पल पल घुल कर मरे, छूट सके न कोय ॥ १५०७

मोह की मार का मैं हूँ मारा, फंस गया हूँ दृढ़ इस कारा ।
यहां से किस विध हो निस्तारा, बोलो किस का गहूँ सहारा ।
उपाय यदि हो मुझे बचाओ, दृढ़ इस पाश से मुझे छुड़ाओ" ।

सुन कर पिता की आओ ज़ारी[1], कांपी क्षत्री की देह सारी ।
योगी ने तब उसे जगाया, समाधी से क्षत्री उठ पाया ।
गुरु को सारी व्यथा सुनाई, निज पितरों की गति बतलाई ।
कहा योगी ने "मेरे मीत, अब भी क्या है घर से प्रीत" ।
चरण पकड़ गुरु से कह पाया, "परिणाम जगत का सन्मुख आया ।
मुझे जगत से राखो न्यारे, गुरु चरण मुझे लागें प्यारे ।
जग से सद्गुरु मुझे बचाओ, मोह पाश से मुझे छुड़ाओ ।
दो० मोह ममता के पाश से, मुक्त रहूं मम नाथ !
साधन योग को मैं करूँ, रह तुम्हारे साथ ॥ १५०८
मोह से जन की होत खवारी, मोह से दुर्गत होत न्यारी ।
मोह से जीव नाश हो जावे, मोह से दुःख पै दुःख ही आवे ।
मोह से नाशे सकल ज्ञान, मोह से नाशे सभी विधान[2] ।
मोह से मुक्ती रहती दूर, मोह से बन्धन पड़त ज़रूर ।
मोह से स्वर्ग नहीं मिल पावे, मोह से जीव नरक को जावे ।
मोह से संकट जग में आवें, मोह से शत्रु बहु बन पावें ।
मोह ही जन का रिपु पहचानूँ, मोह को यम का दूत मैं मानूँ ।
मोह ही जन को बांध ले जाये, मोह ही जन्म जन्म में पाये ।
दो० जन्म जन्म का भेद मैं, पाया सद्गुरु नाथ ।
दया आप की पाय कर, बिकूं न मोह के हाथ ॥ १५०९
नाथ मुझे अब तुम्हीं बचाओ, मोह ममता से मुझे छुड़ाओ ।
तव शरणी मैं आया चेरा, उद्धार करो जिस विध हो मेरा" ।

1. दुःख भरी पुकार । 2. शुभ कर्म, धर्म कर्म ।

प्रभु जी जो दृष्टांत सुनाया, भक्त जनों के अति मन भाया ।
एक चित्त हो सब सुन पाये, सभी सुनें जो प्रभु फरमाये ।
आगे कथन करी प्रभु बात, क्षत्री को कहा गुरु ने तात ।
इच्छा हो तो रहो यहां मीत, साधन हेत बढ़े तव प्रीत ।
साधन से ही सब कुछ होवे, साधन से जन सिद्धि गोवे ।
साधन में जो रत हो जावे, गुरु किरपा को जन वह पावे ।

दो० योग साधन के हेत जब, त्यागे ममता साध ।
बांध उसे जग न सके, विचरे वह निर्बाध ॥ १५१०

क्षत्री ने गुरु आज्ञा मानी, वहीं वास की उस ने ठानी ।
सेव करत गुरु की चित्त लाय, करे साधन गुरु–शिक्षा पाय ।
गुरु आज्ञा को दृढ़ कर धारे, कर्म करे पा आज्ञा सारे ।
बहुत काल जब नेम निभाया, गुरु के चित्त अनुग्रह आया ।
कहा गुरु ने "मांग लो मीत, जो कुछ है अब तेरे चीत" ।
क्षत्री ने क्षण भर तब सोचा, अपने पितरों का दुःख लोचा ।
कहा गुरु से "प्राण आधार, यदि चित्त में ली कृपा धार ।
तो बस मेरा यही सवाल, बने पितरों का बिगड़ा हाल ।

दो० पितर मेरे बस तार दो, कर तुम दया दयाल ।
चिन्ता मेरे मन बसत, सोच सभी का हाल ॥ १५११

निज दादा को मैंने देखा, वृषभ योनि में पड़ा उल्लेखा ।
दादी कुतिया रूप निहारी, देख भया दुःखी मन भारी ।
माता सांप रूप में पायी, विषधर योनि में वह आयी ।

इन सब का प्रभु करो उद्धार, सद्गुरु पूरण तारन हार ।
अपने हेत न कुछ मैं चाहूँ, पितरों का दुःख देख न पाऊँ ।
सद्गुरु ब्रह्मा शिव महेश, प्रजापति वा स्वयं देवेश ।
सद्गुरु पूर्ण समर्थ स्वामी, स्वीकार करो मम विनय नमामी ।
यदी न तुम ने पितर तराये, मेरे मन का शूल न जाये ।
दो० मेरे मन यह दुःख बसे, पितरों की गति नीच ।
मोह ममता के कारणे, योनि अधम के बीच" ॥ १५१२क
ऐसी विनय सुनाय कर, ग्रहण किये गुरु चरण ।
गुरु ने विरद संभाला, देख पड़ा निज शरण ॥ १५१२ख
उसी काल ही उतर कर, आया दिव्य विमान ।
लेकर उस के पितर सब, उड़ गया वह यान । १५१२ग
जय हो जय हो सद्गुरु, धुनी भयी उस काल ।
जाते पितरों ने कथा, "सद्गुरु धन्य दयाल" ॥ १५१२घ
सुन कर प्रभु से वारता, बोले भक्त सुजान ।
"जय तुम्हारी राम प्रभु, दीनी सीख महान" ॥ १५१२ङ

प्रभु ने भक्तों को समझाया, सद्गुरु शरणी जो शिष्य आया ।
गुरु योगी से पितर तरावे, सत्पुत्तर की पदवी पावे ।
जिस के पितर रहें दुःख मांहि, ऐसे पूत भी नरक को जांहि ।
यह समझो सिद्धांत अपेल, जीवन विषयों की नहीं खेल ।
योग हेत मानव देह पायी, जिस ने विषयों मांझ गंवायी ।
अधम गति उस की किमि वर्णें, समझ लेवो बस बिन ही वर्णें ।

सुनी प्रभु की स्पष्ट यह उक्ति, समझे भक्त मुक्ति की युक्ति ।
गुरु योगी जिस को मिल पाये, स्वयं तरे व पितर तराये

दो० गुरु योगी को पाय कर, पितरों को कर तृप्त ।
सात कुलों को तारता, और रहे निर्लिप्त ॥ १५१३क
गुरु योगी जिस को मिले, उस के पूरण भाग ।
योग बिना नर न तरे, मिटे न जग का राग ॥ १५१३ख

जग में गुरु तो हैं बहुतेरे, योग बिना ही बहुत घनेरे ।
खड़े स्वयं वे हैं अंधेरे, शिष्यन को किमि लायें बनेरे[1] ।
वेद ने वचन हैं सत्य उचारे, अंधे को किमि अंधा तारे ।
स्वयं खड़े अंधेरे मांहिं, शिष्यन को क्या ज्ञान सिखाहिं ।
महन्ती पा कर गुरु न होवे, वेष धार भी गुरु न होवे ।
माला तिलक से गुरु न बनता, गुरु[2] न बहुत है जिसकी जनता ।
मन्त्र देय न गुरु बन जाता, राज गुरु नहीं गुरु कहलाता ।
बहुश्रुत हो कर न गुरु होवे, योग युक्त ही गुरु पद गोवे ।
पंथी[3] ग्रंथी महन्ती जन्ती, योग विहीन न गुरु ये सन्ती ।

७५. कुंभ के अवसर पर श्री मुलखराज जी को श्री सद्गुरुतत्व के विराट् दर्शनों का दान

1. किनारे
2. बहुत शिष्य होने से कोई वास्तव में गुरु नहीं हो जाता।
3. पंथी—पंथों को चलाने वाला। ग्रंथी—ग्रंथों को पढ़ने, पढ़ाने वाले। महन्ती—मठों के महन्त। जन्ती—यन्त्र मन्त्र जानने वाले, तान्त्रिक लोग। योग के बिना ये गुरु पदवी के अधिकारी नहीं।

दो० योग बिना न गुरु बने, अग्न बिना न आग ।
चुंबक की बिन शक्ति के, लोह न लागे लाग ॥ १५१४क
राम लाल कलि युग भये, गुरु रूप धर ईश ।
प्रमाण जिमि जग को मिले, सद्गुरु हो योगीश ॥ १५१४ख
एक समय की वारता, 'सेवक' करे बखान ।
सद्गुरु तत्व का मिले, जिमि सबन को ज्ञान ॥ १५१४ग
गूढ़ बात हूँ कथ रहा, मति-मन्द मैं दास ।
गुरु मुख से था जो सुना, बैठ चरण के पास ॥ १५१४घ

कुंभ के अवसर पर इक बार, प्रभु पधारे थे हरिद्वार ।
संग में बहु भक्त थे साजे, मुलखराज भी संग विराजे ।
गंग तीर पर ले कर स्थान, विराजें वहीं पर जगन्निधान ।
कुंभ का मेला बहु भर पाया, विश्व सकल मनु वहीं चलि आया ।
आर पार गंग जन समुदाई, ओर छोर नहीं दीखे भाई ।
जन समूह इतना भर पाया, भूमी का तल सकल छिपाया ।
जनता ही थी वहां दिख पाती, भूमी दृष्टी न कहीं आती ।
भूमि क्या जल भी छिप पाया, गंगा में जन-बाढ़† था आया ।

दो० जल थल दोनों ही छिपे, लोक लुकाई मांझ ।
एक दृश्य ही दीखता, प्रातः अथवा सांझ ॥ १५१५

देश देश की जनता दीखे, मिली सकल जिमि बन्धु सरीखे ।
रूप रंग और भाषा भेद, होय न इस का किसी को खेद ।

† जनता की बाढ़ ।

कुंभ स्नान सभी को प्यारा, उमड़ पड़ा था विश्व ही सारा ।
नगर नगर से लोग पधारे, गोरे कोई थे भूरे कारे ।
धनी कोई था निर्धन भारी, एक भई वहां जनता सारी ।
कुंभ का ऐसा था प्रभाव, बदला था वहां सब का भाव ।
घर वा बार सबन विसराया, धर्म कर्म में चित्त लगाया ।
जनता साधु संग कर पावे, दर्शन कर निज भाग सराहवे ।

दो० साधु दर्शन सभी करें, दर्शन का था चाव ।
ईश्वर साधुन में बसत, ऐसा उन मन भाव ॥ १५१६

साधुन की भी बहु समुदाई, भई एकत्र कुंभ के मांहि ।
अनेकों साधुन के भी वेष, परन्तु कुछ तो बिन ही वेष ।
नग्न रुप जो रहें दिगम्बर, छूते तन से लेश न अम्बर* ।
वन एकाकी ही रह पावें, केवल कुंभ के अवसर आवें ।
ऐसे भी वहां महन्त महान, राजों जैसी जिन की शान ।
हस्तिन पर वे चढ़ कर जावें, बजें नगाड़े जब वे आवें ।
दासी दास और अनुयायी, गिनी जाये न जन समुदायी ।
सोने के वे छात लगायें, उन की संपत न गिन पायें ।

दो० इतने बड़े महन्त थे, संपत का न अन्त ।
ऐसे ऐसे महन्त तो, कुंभ में आये अनन्त ॥ १५१७

कई सन्यासी वहां पधारे, सर से रुण्ड मुण्ड जो सारे ।
भगवां वेष था उन का प्यारा, मानो अग्नी को उन धारा ।

*वस्त्र

अपनी मति के सब अनुसार, घूम घूम कर करें प्रचार ।
कई साधु ले वृक्ष की ओट, धारे केवल एक लंगोट ।
जटाजूट वे सभी सुहावें, दर्शन उन के कर जन जावें ।
कुंभ पै इतने साधु आये, गिनती उन की को कर पाये ।
ऐसे भी उन में विद्वान, शास्त्रों का जिन्हें पूर्ण ज्ञान ।
सुन कर उन के शब्द महान, होता चकित था सकल जहान ।

दो० भीड़ थी साधुन की बहु, सब के रूप अनूप ।
उन को जनता मानती, ईश्वर के ही रूप ॥ १५१८क

प्रभु विराजे कक्ष में, मुलख राज के संग ।
रहत प्रभु के चरण जो, कभी न त्यागत अंग ॥ १५१८ख

अंग संग वह सद रहे, प्रभु थे उस के प्राण ।
भिन्न प्रभु के संग से, कर्म न सूझत आन ॥ १५१८ग

गंगा जी का दृश्य जो प्यारा, कक्ष से दृष्टि आता सारा ।
बाहिर मुलख ने दृष्टि घुमाई, और पुनः प्रभु चरणि टिकाई ।
विनीत वचन मुख से कह पाये, "नाथ बात इक मम मन आये ।
आज्ञा हो तो पूँछू देव, तव सृष्टि का को जाने भेव ।
जनता असंख्य यहां है आई, साधुन की असीम समुदाई ।
मुझे बतावें दीना नाथ, किस किस पर तव किरपा हाथ ।
इन में भक्त कौन हैं साचे, अथवा कितने योग में राचे ।
ज्ञानवान हम कितने जानें, योग युक्त कितने पहचानें ।

दो० योग युक्त कितने जुटे, कितने ज्ञानी नाथ ।
किन किन पर है नाथ जी, तव कृपा का हाथ" ॥ १५१९क
सुन मुलख की बात को, प्रभु जी भये गंभीर ।
कहन लगे तब मुलख से, "ध्यान धरो तुम धीर ॥ १५१९ख

ध्यान से लो तुम सब कुछ जान, ध्यान से लो तुम सत्य पहचान ।
ध्यान से सूक्ष्म आये समक्ष, ध्यान से आत्म होय प्रत्यक्ष ।
ध्यान से भेद सभी खुल जायें, ध्यान से रहस्य जगत का पायें ।
ध्यान से संशय होंय निवृत्त, ध्यान से समझें गूढ़ वृत्त ।
ध्यान से अखिल विश्व का ज्ञान, ध्यान से लोक लोकान्तर जान ।
ध्यान से सकल जगत का बोध, ध्यान से मन का हो प्रबोध ।
ध्यान से रहत न कुछ भी गुप्त, ध्यान से मायावरण[1] हो लुप्त ।
ध्यान से सूक्ष्म का हो ज्ञान, सतस्वरूप का होगा भान ।

दो० तुम ध्यान में बैठ कर, देख पाओ जब साध ।
किस की साची साधना, जानोगे निर्बाध" ॥ १५२०क
आज्ञा प्रभु की पाय कर, बैठा मुलख समाध ।
अखिल कुंभ के साध तब, सन्मुख आये अगाध ॥ १५२०ख

शतशः साधुन का गण आया, अन्तर में उन के तम छाया ।
शतशः साधु तब चलि आये, अन्तर में कुछ तेज लखाये ।
कुछ साधु फिर उस ने देखे, तारागण सम दीपत लेखे ।
तेरह गण की फिर समुदायी, सन्मुख मुलख राज के आयी ।

1. माया का आवर्ण । अज्ञान रूपी पर्दा जिस से सत्य छिपा है ।

चान्द के सम उन का प्रकाश, जग मग जिस से भया आकाश ।
उन से कुंभ की शोभा भारी, छटा थी जिन की विस्तृत न्यारी ।
तेजोमय थे मण्डल छाये, तेरह के बहु रूप सुहाये ।
मुलख देख कर उन का रूप, प्रसन्न भया उस क्षण अनूप ।

दो० मुलख रूप वह निरख कर, चित्त में भया प्रसन्न ।
धन्य धन्य प्रभु का किया, रूप दिखाये धन्य ॥ १५२१क
लाखों के समुदाय में, कुंभ में जो जुट पाय ।
तेरह केवल साध थे, सिद्ध नज़र जो आय ॥ १५२१ख

सिद्धों के जब रूप को देखा, मुलख ने मन में तुरत उल्लेखा ।
जिन की कृपा से यह देखूं, उन का भी क्यों रूप न लेखूं ।
उन की क्या इन से है तुलना, मन में उपजा जब यह फुरना ।
धक से नभ मण्डल फट पाया, और उदय मार्तण्ड हो आया ।
सन्मुख उस के टिके न दृष्टी, उस के तेज से व्यापत सृष्टी ।
चित्त मुलख का तेज निहारे, लोक लोकान्तर घूमें सारे ।
लोक लोकान्तर से भी आगे, मन मुलख का तेज में पागे ।
कई घंटे वह रहा आसीन, उत्थान प्रभु जी ने तब कीन ।

दो० प्रभु जी ने उत्थान कर, कही मुलख से बात ।
"साधुन को तो देखने, बैठे थे तुम तात ॥ १५२२
हम ही को तुम देखन लागे, किस क्रीड़ा में थे तुम पागे ।
ब्रह्मा अपनी आयु हारे, पार न पावे तेज का प्यारे ।
अखिल विश्व वह तेज समाया, जिस से सब ने जीवन पाया ।

बिन भानु नहीं जिमि जग प्राण, तिमि मम तेज विश्व में मान ।
अखिल विश्व में तेज व्यापा, जहां सृष्टि न वहां भी थापा ।
इस तेज को देखन हारे, भक्त भये न जग में सारे ।
जिस भक्त पर मेरी दाया, उस ने ही यह दर्शन पाया ।
जिस नर को तेजस्वी मानो, तेज लिया मम तेज से जानो ।

दो० मम तेज से तेज लेय, जीव तेज को पाय ।
भानु के प्रकाश से, जग उज्जवल हो जाय" ॥ १५२३क

सुन कर प्रभु के वचन को, मुलख राज कह पाय ।
नाथ तुम्हारे तेज का, पार न ब्रह्मा पाय ॥ १५२३ख

ब्रह्मा* की जो सृष्टि कहायी, एक अंश में सकल समायी ।
उस सृष्टि से बहिर स्वरूप, देखें आप ही अपना रूप ।
उस के देखन हारा स्वामी, भया न होगा अन्तर्यामी ।
उसी रूप का भास कराया, और तुरन्त मुझे लौटाया ।
अपनी मर्यादा निभाई, देख सीम किस उस की पाई ।
क्षमा नाथ हो मम ढीठाई, जिस के मन में बात यह आई ।
भानु जिमि आकाश में एक, और हैं तारा गण अनेक ।
तिमि विश्व में आप हैं एक, भजें आप को साध अनेक ।

दो० अनेक साध हैं भज रहे, दिव्य आप का रूप ।
जिन पै कृपा आप की, बनें वे दिव्य स्वरूप ॥ १५२४क

* ब्रह्मा की सृष्टि विश्वात्मा प्रभु के एक अंश में ही समायी है। प्रभु उस से भी परे हैं।

दो० माया में जो रम रहे, वे भी साध अनेक ।
दूर आप से ही रहे, तमोगुणी प्रत्येक ॥ १५२४ख

इतनी बात सुनाय कर, गहे मुलख ने चरण ।
"शरण शरण" ही ऊचरे, "रखिये अपनी शरण" ॥ १५२४ग

भक्त बैठे जो संग थे, मिला यह उनको ज्ञान ।
कलियुग में गुरु ऊतरे, रामलाल भगवान ॥ १५२४घ

७६. त्रेता युग में ऋषिकाक भुषुण्डी की भविष्यवाणी

भक्तों ने जो बात थी जानी, काक भुषुण्डी वही बखानी ।
त्रेता में उस कलियुग देखा, आना प्रभु का मुख से लेखा ।
जग जननी को उस बतलाया, कलिकाल का भविष्य सुनाया ।
"कलियुग का जब मध्य हो आये, पाप से जग का घट भर जाये ।
जब मर्यादा धर्म की नाशे, सर्वत्र आसुर कर्म प्रकाशे ।
योगी रूप धरें तब स्वामी, प्रकटें जग में अन्तर्यामी ।
करें योग से जग को पावन, देव मनुज सब महिमा गावन ।
पापी को न राम संहारें, पापी का वे पाप निकारें ।

दो० राम लाल के नाम से, कलि में लें अवतार ।
पाप ताप जग के हरें, चित्त में कृपा धार ॥ १५२५

जन्म भूमी उन की पंजाब, जहां बहत शुभ पांच हैं आब[1] ।
अमृतसर हो नगर का नाम, प्रकटें गे जहां योगी राम ।

1. आब—जल, नदियां

नगर बने वह जग विख्यात, प्रकटें गे जहां जग के त्रात ।
अधर्म धर्म को ग्रस जब लेत, प्रकटें प्रभु तब रक्षा हेत ।
राम करें नहीं नर संहार, पापी का दें पाप निकार ।
योग बने गा अघ संहारी[1], योग युक्ति हो राम को प्यारी ।
प्रभु बनें गे सभी के मीत, पापी धर्मी सभी से प्रीत ।
पापी को वे कर के शुद्ध, बदलें उस की योग से बुद्ध ।
योग को शक्ति ऐसी धारें, रक्षा सब जग की कर डारें ।

दो० अखिल जगत के त्राण हित, और धर्म के हेत ।
कलियुग में प्रकटें प्रभु, देख रहा हूँ त्रोत ॥ १५२६

जिस घर में वे लें अवतारा, उस घर का हो सिंह द्वारा ।
द्वार का सन्मुख उत्तर होवे, पूर्व दिशा वीथी[2] मन मोहे ।
पंचम गर्भ शोभा का धाम, प्रकटें गे प्रभु राम ललाम ।
ऐसा समरथ संग वे लावें, ऐश्वर्य जग का सब दे पावें ।
परलोक सुधारें जन का आप, ऐसा उन का होय प्रताप ।
सिद्धियां अष्ट कथीं जग मांहि, प्रभु दिखलावें सब के तांहि ।
इतनी शक्ति संग वे लावें, शारद नारद न कथ पावें ।
भक्त यदि संकट में होवें, अपने पर प्रभु कष्ट को लेवें ।
पर प्रारब्ध को लेवें भोग, शरणागत का हर लें रोग ।

दो० हरें कष्ट वे भक्त के, बदलें उस का भाग ।
उस के संकट खुद गहें, चरणी जो जन लाग ॥ १५२७क

2. पाप का नाश करने वाला 3. गली

दो० केवल संकट न हरें, लेवें इमि उबार।
योगी उसे बनाय कर, जग से करें उद्धार ॥ १५२७ख

साधारण घर में लें अवतार, संपद का न जहां विस्तार।
पैतृक संपति अल्प ही होवे, प्रभु से तो जग सुख को गोवे।
उस प्रभु को क्या परवाह, संपत से वे लापरवाह।
हे देवि ! मैं तुम्हें सुनाऊँ, मात पिता का नाम बताऊँ।
धन्य धन्य वह नर और नार, जिन के होगा यह अवतार।
गंडा राम पिता का नाम, उन के हां प्रकटें गे राम।
भागवन्ती सुलक्षण मात, जग जननी वह हो साक्षात।
बीस वर्ष जब आयु पावें, तब पिता जी स्वर्ग सिधावें।

दो० बीस वर्ष की आयु में, पिता से होय वियोग।
राम त्यागें गेह तब, साधन हेतु योग ॥ १५२८

घर को त्याग बनों को जावें, अनुग्रह सिद्धों का अपनावें।
एक बात मैं और बताऊँ, राम का पाणिग्रहण सुनाऊँ।
पंदरह वर्ष की आयु मांहि, राम प्रभु का व्याह हो जांहि।
मात पिता का आग्रह मान, बनें गृहस्थी राम सुजान।
रहें न फिर भी घर में राम, शाश्वत माया से उपराम।
अल्प आयु ही ज्ञान वे पावें, सिद्धों के भी भरम मिटावें।
अनेक स्थानों में पग धारें, ज्ञानोपदेश से जनगण तारें।
तीस वर्ष की आयु होवे, माता स्वर्गवास को गोवे।

दो० उसी काल तब राम में, प्रकटें सिद्धि अनेक।
शेष शारद न कर सकें, वर्णन जिन का नेक ॥ १५२९क

दो० गुरु शक्ति को वे गहें, अतुल असीम अनन्त ।
जिस पर कृपा वे करें, बने गुरु वह सन्त ॥ १५२९ख
जैसी जिस की योग्यता, वैसी कृपा पाय ।
राम लाल की शरण रह, गुरु शक्ति आ जाय ॥ १५२९ग

गुरु शक्ति प्रभु देने हारे, गुरुओं के भी हों गुरु प्यारे ।
सृष्टि के वे करने वारे, महाशक्ति के हों अवतारे ।
स्थिति जगत की उन से होवे, मुंह मांगे वर को जन गोवे ।
जग जननी मैं सच बतलाऊँ, उन का समरथ न कथ पाऊँ ।
जिन के आश्रित सारी सृष्टि, कलियुग में कर किरपा दृष्टि ।
धारें मानव तन वे राम, रूप अनूप हो परम ललाम ।
नर चरित्र जो वे कर पावें, और योग को जिमि अपनावें ।
अन्त काल तक जग वह गावे, सिमर सिमर कर भक्ति पावे ।
और पावे गा उन से ज्ञान, प्रभु के चरित्र बनें प्रमान ।

दो० चरित्र प्रभु जी जो करें, कलि में ले अवतार ।
पूरण उन का हो सके, किसी से न विस्तार ॥ १५३०

जग जननी मैं पुल्कित गाऊँ, एक रहस्य की बात बताऊँ ।
ऐसा चरित करेंगे स्वामी, विरला जान सके अनुगामी ।
कई बार वे देह निज त्याग, नूतन देह धारें महा भाग ।
योग शक्ति जग में प्रकटावें, सब नर परन्तु जान न पावें ।
निर्विकल्प समाधि का रूप, रहें जगत में इसी स्वरूप ।
इकावन वर्ष की आयु आवे, राम पलट तन सुमेरू जावे ।

वहां पर ऐसी पदवी पावे, उच्च से उच्चतम जो कहलावे ।
एक देह फिर और वे धारें, कल्प तलक जिस को स्वीकारें ।

दो० कल्प अन्त तक जो धरें, विलक्षण हो वह देह ।
गुप्त भेद है ईश का, आये समझ न येह" ॥ १५३१

इस विध काक भुषुण्डी गाया, श्रोता में जो ऋषि था जाया ।
कलियुग में जो लीला कीनी, कथ भुषुण्डी श्रोता दीनी ।
काक भुषुण्डी जो सब गाया, मुलख राज को प्रभु दिखाया ।
सर्वेश्वर निज रूप लखाया, यह रहस्य किसी और न पाया ।
मुलखराज ने जग को दीना, ज्ञान प्रभु का जो था चीना ।
जनता आये मुलख से पाये, ज्ञान अलौकिक जो प्रभु लाये ।
मुलख समाधी में थे रहते, ज्ञान प्रभु का भी थे कहते ।
एक बार की बात सुनायें, सत्संग हित कुछ जन चलि आयें ।
कीना मुलखराज सत्कार, आदर सहित लीना बैठार ।
योग रीत यही चली आई, औरों को जन देय बढ़ाई ।

७७. श्री मुलखराज का उपदेश

दो० स्वयं निमाना जन रहे, औरों को दे मान ।
विनय शीलता योग में, कथें प्रभु प्रधान ॥ १५३२

सुख को सभी जनों ने पाया, मुलखराज जब पास बिठाया ।
ध्यान मग्न जो साधक होवे, उस के संग से नर सुख गोवे ।
हिम से शीतलता जिमि पावें, सूर्य से जिमि तेज ग्राहवें ।

योगी के संग जन तिमि पावे, परमानन्द जो कथन में आवे ।
भूल जगत के कारज भारे, पास मुलख जब बैठे सारे ।
कहा मुलख ने "आईये मीत, कथन करो जो है तव चीत ।
हम तो एक बात ही जानें, जगदाधार प्रभु को मानें ।
भूपर लिया है उन अवतार, लोक परलोक सुधारन हार ।
दीन दुनी के प्रभु जी स्वामी, शरणागत रक्षक अन्तर्यामी ।

दो० शरण पड़े की लाज के, रक्षक प्रभु जी आप ।
मूक होय वाचाल जन, प्रभु जी के प्रताप" ॥ १५३३क

अमृत वाणी श्रवण कर, भक्तन के मन शांत ।
मलय वात के बहत जिमि, रहत न जन तन श्रांत ॥ १५३३ख

एक भक्त तब इमि कथ पाया, "स्वामिन् जो तुम कथन में लाया ।
उसी ज्ञान के हम जिज्ञासु, मानिये चातक जिमि पिपासु ।
ईश्वर ने कलियुग अवतार, योगी रूप है लीना धार ।
तुम जानो सब उन के भेद, रह कर उन के संग बिन खेद ।
हम को भी उपदेश सुनावो, जो ज्ञान तुम उन से पावो ।
एक चित हो हम सुन पावें, योग धर्म आचरण में लावें ।
कृष्ण योगेश्वर द्वापर आये, राम योगेश्वर कलि में आये ।
योग धर्म ही प्रभु को प्यारा, दो हमें भी ज्ञान वह भारा ।

दो० जो कुछ प्रभु से तुम सुनो, हमें बतावें आप ।
योग धर्म को समझ कर, आचरण करें हम आप" ॥ १५३४क

दो० मुलखराज ने जब सुनी, भक्तन की यह बात।
प्रणाम प्रभु को उस किया, और कहा, "हे तात ॥ १५३४

प्रभु प्रेरे हो तुम आये, और जो तुम ने भाव सुनाये।
ये भी प्रभु जी हैं उपजाये, लेश न कोई संशय लाये।
ऋषियन की यह भूमि जान, हम सब ऋषियों की संतान।
प्रभु बतलाया यह सब आप, अलौकिक कथन करें आलाप।
उन की वाणी है अति प्यारी, भक्तन के मन मोहन हारी।
ऋषियन की संतान हैं भाई, कीनी थी जिन योग कमाई।
अपने को हम लें पहचान, शिक्षा दें हम को भगवान।
जब तक निज को न पहचानें, हीन भाव में रहें डुबाने।

दो० ऋषियों की संतान हम, निज को लें पहचान।
सशक्त बनें हम योग से, करें आत्म कल्याण ॥ १५३५

जग को हम ने योग सिखाया, भेद जगत का था हम पाया।
आठ सिद्धि वा नव निधि भारी, सेवा में थीं रहत हमारी।
व्यापक ईश्वर को पहचाना, कुनबा[1] सकल विश्व को माना।
बताते प्रभु यह हम को बात, भेद सृष्टी का जान के तात।
ऋषियों ने जग को बतलाया, गुरु–पद भारत को दिलवाया।
उन ऋषियन की हम संतान, आज भये विषयन गुलतान।
विचार हेत प्रभु समझावें, चित्त योग में जिस विध लावें।
दुराग्रही चित्त प्रभु को त्यागे, योग करें तो प्रभु में लागे।

1. कुनबा—परिवार, कुटुंब

दो० चित्त दुराग्रही होय कर, प्रभु से रहत अलग ।
योग करें तब जा मिले, प्रभु से होये सलग ॥ १५३६

एक रहस्य प्रभु समझाया, चित्त दुराग्रही किमि हो पाया ।
जिमि मात पिता से बिछुड़ा बाल, होत न शांत किसी भी काल ।
तिमि जगपिता से बिछुड़ा चित्त, अशांत भया है इसी निमित्त ।
छटपटात और होत अशांत, प्रभु मिलें और मिटे विल्कांत ।
मानव योनि मिली इस हेत, परमारथ के ज्ञान समेत ।
साधन इस में सब उपजाये, प्रभु किरपा से जो मिल पाये ।
ज्ञानेन्द्री कर्मेन्द्री समेत, विषयन में पड़ भया अचेत ।
विषयन का प्रभाव है ऐसा, सुख पूर्व और अन्त निराशा ।

दो० विषय ये मन को घेर कर, राखें प्रभु से दूर ।
संस्कारों के जाल में, करें पीस नर चूर । १५३७क
विषय विष सम जानिये, मन को करें मलीन ।
चंचलता चित्त में बढ़े, राग द्वेष में लीन ॥ १५३७ख

इच्छा विषयों की उपजाये, कामी जीव तभी हो पाये ।
पूरी इच्छा न जभी होवे, क्रोध का आग बबूला गोवे ।
और जो इच्छा होवे पूरी, लाभ लोभ उपजाय जरूरी ।
अधिक लाभ और लोभ अधिक, लोभी लाभ से आय न दिक्क* ।
गहन आसक्ति मन में छाये, जीव मोह के पाश में जाये ।
लाभ से होवे जब सम्पन्न, और मोह के वश आपन्न ।

* तंग ! जैसे २ लाभ होता है, लोभ की मात्रा बढ़ती जाती है। मनुष्य कभी इस से तंग नहीं आता ।

तब अहंकार से होवे पूर्ण, करावे अधःपतन कर चूर्ण ।
इस विध काम क्रोध अहंकार, रिपुदल लोभ मोह वदकार ।
लेते जीव को पथ में लूट, ईश्वर से जाये नाता टूट ।

दो० काम क्रोध को वर्जिये, वर्जिये लोभ व मोह ।
अहंकार को वर्जिये, ईश मिलें तभी तोह" ॥ १५३८

इस विध मुलखराज समझाया, अधःपतन का रहस्य जताया ।
और किया जन को साचेत, मानव तन पाया जिस हेत ।
सुन कर भक्तन ने सुख माना, अहो भाग्य अपना उन जाना ।
मुलखराज पुनः कह पाये, प्रभु जी के उपदेश सुनाये ।
"जीव दुःखी क्यों जग में होवे, क्या कारण वह पीड़ा गोवे ।
जीवों को जो हम दुःख देते, वैसा ही दुःख हम भी लेते ।
यही किसमत अथवा तकदीर, यही देती है जीव को पीर ।
गिरकर जखम जो मैं अब पाया, अवश्य किसी को था गिराया ।

दो० जैसे कर्मन नर करे, वैसे फल को पाय ।
खायी खोदे अन्य हित, गिरे कूप में जाय ॥ १५३९क

कर्म कारण त्रिताप के, भौतिक दैविक आत्म ।
रहस्य पावे त्रिताप का, पा कर गुरु-महात्म" ॥ १५३९ख

सुन कर एक भक्त यह बात, बोला बीच में काट के बात ।
धृष्टता मेरी वखशो स्वामी, जान मुझे तुम निज अनुगामी ।
गुरु से क्यों जन पावे ज्ञाना, अन्तर में सब ज्ञान वखाना ।

अन्तर में सब ज्ञान गोसाईं, बीज में गुप्त वृक्ष की नाईं[1] ।
सुन कर तर्क मुलख मुस्काया, हृदय में उस प्रभु को ध्याया ।
गुरु किरपा को जो जन पाये, इस रहस्य को वही लखाये ।
मुलख बताई तव यह बात, मिले न कुछ भी गुरु बिन तात ।
भेद अन्तर का गुरु ही जाने, जीव के पूर्व कर्म पहचाने ।

दो० पूर्व के जो कर्म हों, वही मग आगे होय ।
भिन्न मार्ग यदि जन गहे, क्या पाये गा सोय[2] ॥ १५४०

दिव्य दृष्टि को गुरु जी धार, देखें शिष्य के कर्म अपार ।
दीक्षा देवें कर्म अनुसार, शिष्य भये जिमि भव से पार ।
ऐसे गुरु कलि राम अवतार, सेवक का जो करें उद्धार ।
संशय इस में है न राई, ज्ञान खजाना भीतर भाई ।
तालों में वह बंद खजाना, गुरु खोले जिस भेद है जाना ।
सोच समझ अब तुम लो भाई, सूक्ष्म रूप मैं बात बताई ।
उस जन ने संतोष जताया, अपने प्रश्न का उत्तर पाया ।
मुलखराज तब बात चलाई, योग युक्ति उन को समझाई ।

दो० योग युक्ति उन को कही, योग साधन का ज्ञान ।
भक्त पायें जिमि नाथ से, परमानन्द महान ॥ १५४१

1. जिस प्रकार बीज में वृक्ष गुप्त रहता है उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में ज्ञान छिपा है। जब ज्ञान भीतर है तो गुरु से ज्ञान मिलने का क्या भाव है।
2. गुरु पूर्व जन्मार्जित अन्तःकरण के संस्कार चक्र को देख कर निश्चित करते हैं कि इस के हृदय मानस क्षेत्र में किस प्रकार के विचारों का संग्रह है। उसी के अनुसार गुरु शिष्य को ध्यान दीक्षा प्रदान करते हैं।

अपनी चंचलता मन त्यागे, परमानन्द हाथ फिर लागे ।
नाम रूप दो धार बह पायें, अन्तर में जब वे मिल जायें ।
उस संगम में करें स्नान, परमानन्द को जन वे पान ।
नाम रूप जन गुरु से पाये, योग युक्त फिर वह हो जाये ।
प्राण बहावे नाम की धार, मन में रूप का हो साकार ।
एक साथ जब हो अभ्यास, सुख का सागर उमड़े खास ।
अमृत का वह सागर जानो, अथवा क्षीर सागर पहचानो ।
जिस में शेषनाग साक्षात, धार विष्णु को रहते तात ।
कुण्डली शक्ति शेष पहचानो, इष्ट अपने को विष्णु जानो ।
साक्षात्कार तब होय भाई, नाम रूप की जभी कमाई ।

दो० नाम रूप जब जन भजे, सद्गुरु कृपा पाय ।
प्राणों का हो मंथन भी, ईश्वर रूप लखाय ॥ १५४२

मन प्राण का संगम जानो, शिव शक्ति का मेल पहचानो ।
संकल्प तभी सिद्धि को ग्राहवे, प्राणों की जब शक्ति पावे ।
सिद्धि की यह कुञ्जी जानो, मन प्राण का ऐक्य जो मानो ।
प्राण बिना संकल्प व्यर्थ, बात सकल का समझो अर्थ ।
एक बात यह भी लो जान, दुर्बल मन संग दुर्बल प्राण ।
संशय सहित जो मन हो जाय, दुर्बलता उस भीतर आये ।
प्राण शक्ति तब उस को त्यागे, सिद्धि उसके हाथ न लागे ।
प्राण शक्ति का संग जो चाहो, संशय सारे दूर भगाओ ।

दो० संशय कर के दूर सब, धार के मन विश्वास ।
प्राणों की ले संबलता, पावो सिद्धि खास ॥ १५४३

प्राण शक्ति को नित्य बढ़ाये, देवत्व को जन इस विध पाये ।
आसुर भाव होयें सब दूर, शक्तिमान बने नर शूर ।
दैवी भावों का आकर्षण, आसुर भावों का अपकर्षण ।
अन्तर में जब होने पावे, देवासुर संग्राम कहलावे ।
मिलती गुरु से युक्ति सारी, होवें देव जिमि बलकारी ।
सात्विक भाव की होवे जय, राजस तामस भाव हों क्षय ।
मन वचन हों कर्म भी शुद्ध, बुद्धि जागृत ज्ञान प्रबुद्ध ।
सात्विक भावों का वरदान, इस विध साधक बने महान ।

दो० सात्विकता से जन बने, निर्मलता का रूप ।
सर्वव्यापक जो प्रभु, उस में तब तद्रूप ॥ १५४४

करे करावे जो वह काम, होवे उस का सब निष्काम ।
ईश्वर करे ईश्वर कर पावे, ऐसा ही सब काल लखावे ।
मैं कर्ता यह है अज्ञान, ईश्वर कर्ता ले वह जान ।
मैं कर्ता न करने हारा, ईश्वर का ही सकल पसारा ।
कण कण में वह बैठा स्वामी, करे करावे अन्तर्यामी ।
चित्त मेरे में उस का थाप, सोचे सोच करावे आप ।
ऐसा ज्ञान प्रभु बतलावें, मूढ़ मति हम क्या कथ पावें ।
वचन प्रभु के सुन मम मीत, होती जन मन दृढ़ प्रतीत ।

दो० प्रभु के मुख से श्रवण करे, उपजे तत्क्षण ज्ञान ।
मनन करें जो प्रेम से, होय एकाग्र ध्यान ॥ १५४५

इस विध मुलखराज बतलाया, निज मुख से प्रभु ज्ञान सुनाया ।
भक्तों ने बहु सुख को माना, श्रवण किया जो मुलख बखाना ।
भक्त एक तब कहा मम स्वामी, तुम योगी हो प्रभु अनुगामी ।
ज्ञान की बातें जो बतलाईं चित्त हमारे को अति भाईं ।
चित्त में चाह यही है भारी, सुनें आप से वार्ता सारी ।
कर कृपा कुछ और सुनावें, ज्ञान प्रभु का आप से पावें ।
धन्य मानें हम तुम को नाथ, वास करो जो प्रभु के साथ ।
ज्ञान दीना प्रभु ने तुम ताहीं, जग में जिस की समता नाहीं ।

दो० योग ज्ञान तुम को मिला, रह कर प्रभु के पास ।
योग विलक्षण ज्ञान है, हुआ हमें विश्वास ॥ १५४६क

किरपा हो यदि आप की, अधिक मिले कुछ ज्ञान ।
बात कथें कुछ और भी, हित हमारा जान ॥ १५४६ख

ऐसी जब उन विनय उचारी, मुलख कहा शुभ मति तुम्हारी ।
योग ज्ञान तुम उत्तम माना, कीना कथन यही भगवाना ।
अर्जुन प्रति भगवान उच्चारे, बन योगी तुम मीत प्यारे ।
तप से योग की है अधिकाई, कर्म काण्ड से उत्तम भाई ।
शब्द ज्ञान से भी यह उत्तम, योग को प्रभु ने कथा उनुत्तम ।
योग बिना सन्यास न होवे, योग बिना कोई ज्ञान न गोवे ।
योग बिना मुक्ती है दुरलभ, वही योग प्रभु कीना सुरलभ ।
सज्जन जन तुम भी हो धन्य, मांगो न कुछ योग से अन्य ।

दो० योग में निश्चय जो धरे, और योग से प्रीति ।
सचमुच वह जन धन्य है, सुन्दर उस की नीति ॥ १५४७

ऋतंभरा प्रज्ञा योग से पावें, निश्चय से यह कथन में लावें ।
ऋतंभरा आर्ष बुद्धि का नाम, जिस ने रचे हैं वेद तमाम ।
उस बुद्धि को योगी पावे, प्रभु कृपा जिस पै हो जावे ।
बिन बुद्धि नहीं बनता काम, ऋतंभरा प्रज्ञा सुख का धाम ।
जननी मोक्ष की इसको जानो, परम गति इस से ही मानो ।
इस से भिन्न मती जो भाई, लौकिक प्रज्ञा वही कहायी ।
लौकिक प्रज्ञा बन्धन हेतु, ऋतंभरा भव सागर का सेतु ।
योग करो ऋतंभरा पावो, ऋषियों का जीवन अपनावो ।

दो० ऋषि जीवन अपनान हित, होय लगन जो मीत ।
शरण प्रभु की आय कर, सीख योग ला चीत ॥ १५४८

जिस ने ऐसा जीवन पाया, सुख सागर में वही समाया ।
सुख सागर आत्म प्रकासा, उत्तम उस से न कोई वासा ।
साक्षी सकल सृष्टि का होवे, कुल देवों के दर्शन गोवे ।
देव वरों को देना चाहवें, योगी न उस में चित्त लावें ।
सृष्टि की रचना संसार, योगी देख ले इस का सार ।
उस के सन्मुख सब कुछ आवे, गुप्त बात न कुछ रह पावे ।
श्वास श्वास में होता देखे, सृष्टि के निर्माण को पेखे ।
श्वास बने आनन्द की धार, ज्योति गङ्ग परम अपार ।

दो० श्वास २ में सुख बहे, श्वास श्वास आनन्द ।
योग युक्त योगी बने, भोगे परमानन्द ॥ १५४८क
भोगे परमानन्द को, होय प्रभु में लीन ।
उस के सुख की क्या कहें, सन्मुख देव भी दीन ॥ १५४८ख

कथन में उस का सुख न आवे, अमृत भोगी वह हो जावे ।
योगी अमृत किस विध पावें, इस का भेद प्रभु समझावें ।
श्वास श्वास वह विचरत देखे, शुद्ध रूप चैतन्य का पेखे ।
अणु अणु चैतन्य हो जावे, दुर्बलता तब सकल नसावे ।
दैहिक मानस दोष जो भारे, चेतन तत्व दूर निकारे ।
मल विक्षेप आवरण का नाश, करता चेतन तत्त प्रकाश ।
"शुद्धोऽस्मि"[1] का इस विध भास, योगी के मन बसत यह खास ।
सीमित रहत न उसका योग, निरन्तर करत अमृत का भोग ।
साधन रत जो ऐसा योगी, प्रभु कथें उसे "अमृत-भोगी" ।

दो० अमृत, का करे भोग वह, निरत योग में लीन ।
उठता बैठा चलत वा, प्रभु में कर मन मीन ॥ १५५०

एक बात प्रभु और बतावें, क्रिया प्राणों की समझावें ।
प्राणों की मथनी वन पावे, अन्तः करण में उसे चलावे ।
क्षीर सागर के मथन समान, जपे प्रणव होय शक्तिमान ।

1. अर्थात "मैं शुद्ध स्वरूप हूं"
2. "मन को प्राणों में स्थित किये हुए प्रणव की साधना सोते, बैठते, उठते, चलते फिरते करता हुआ संसार बीजों को अर्थात् सब संसार चक्र को नाश कर के साधक अमृत भोगता है।" श्री प्रभु जी ! योग दर्शन व्यास भाष्य २.३२ भी देखें ।

घट से ही ज्योति प्रकटावे, अरणी से जिमि अग्नी आवे ।
घट में ज्योति का प्रकाश, तामस का करता है नाश ।
ब्रह्म व्यापक जग में जोय, घट में इस विध परगट होय ।
ब्रह्म का ज्ञान मिले तब ऐसे, हाथ पै राखा आमल जैसे ।
यह सब प्राण की है करमात, भये चित्त में ब्रह्म साक्षात ।
रहस्य प्राण का योग से जान, किरपा गुरु की भी लो मान ।
कर किरपा प्रभु सब दिखलाया, किस ने गुरु बिन योग है पाया ।

दो० मिले योग न गुरु बिना, ब्रह्म का हो न भान ।
चित्त एकाग्र न भये, निश्चय से लो जान ॥ १५५१क

गुरू कृपा से जब भये, योगी पुरुष महान ।
काम क्रोध व लोभ के, दोष नाश हो जान ॥ १५५१ख

परमानन्द जब योगी पाये, काम वृत्ति का नाश हो जाये ।
क्रोध से दमन करे न जग को, योगी शमन करे निज मन को ।
दिव्य ऐश्वर्य लिया जो पाय, गया सकल जग लोभ नसाय ।
मोह जगत का तब से नासा, ज्ञान का सूर्य जब प्रकासा ।
अहं भाव जो बादल छाया, ज्ञान के सूरज से मिट पाया ।
धन्य तभी से भया मैं मीत, जब से भयी गुरु चरणी प्रीत ।
मात पिता सम करते प्रेम, धारें बन्धु सम गुरु क्षेम ।
ज्ञान वही मम द्रव्य वही है, प्राण प्यारा सब कुछ गुर है ।
पारस रूप मिले गुरु प्यारे, दूर किये मम दोष जो भारे ।

दो० गुरु पारस हैं मिल गये, स्पर्श जो उन का पाय।
पलट गति मति मम गयी, चित्त न हर्ष समाय ॥ १५५२क

मुलखराज की श्रवण कर, अमृत वाणी पूर्ण।
भक्तन के मन भक्ति से, द्रवित भये सम्पूर्ण ॥ १५५२ख

भक्तन निज संकल्प जताया, प्रभु दर्शन हित मन ललचाया।
मुलखराज की अनुमति पाय, प्रभु पास वे चल के आये।
दण्डवत सभी ने प्रभु को कीना, आशीर्वाद प्रभु जी दीना।
दृष्टि प्रभु पग सब की लागी, वृत्ति प्रभु जी में अनुरागी।
अन्तर्यामी प्रभु जी जाना, भक्ति वश उन सब का आना।
मुख से कुछ न प्रभु उच्चारे, चित्त एकाग्र बैठे सारे।
कुछ काल जब इमि बिताया, प्रभु जी फिर उन को फरमाया।
कहो भक्तो निज मन की बात, भया है किस विध यह साक्षात।

दो० पड़ी श्रवण जब सबन के, अमृत रस की धार।
चेतनता में तब भये, लीला नाथ अपार ॥ १५५३

कौन कहे निज मन की बात, शिथिल भये थे सब के गात।
खुमारी भक्ति की चढ़ जाये, होश में शीघ्र गात न आये।
अमृत रस था प्रभु बहाया, उस ने निज प्रभाव दिखाया।
संमोहन को उस कुछ काटा, तो भी नशा न सारा नाटा।
देख प्रभु जी उन का हाल, जान पाये सब दीन दयाल।
मुलखराज से हैं मिल आये, भक्ति का रस वहां से लाये।

मिले न जग में कहीं प्रमाण, चेतन करे जो जड़ समान ।
मुलखराज में ऐसी भक्ति, चेतन जड़ भये जिस की शक्ति ।

दो० चेतन को करे जड़ सम, जड़ को करे चैतन्य ।
मुलखराज की भक्ति से, आज भये ये धन्य ॥ १५५४क
प्रभु जी तब निज शक्ति से, पूर्ण किया चैतन्य ।
बात कथी फिर सबन से, देकर भक्ति अनन्य ॥ १५५४ख

भक्त जनो अब तुम बतलाओ, किमि आये यहां हमें सुनाओ ।
योग भक्ति क्या तुम को लाई, मन में बात या और थी आई ।
श्रवण करी जब प्रभु की वाणी, कथा भक्त इक "हे महादानी ।
हम तो थे कुछ मन में लाये, योग की शक्ति देखन आये ।
दूर भया हमरा संकल्प, आप की कृपा पा कर अल्प ।
पूरण किरपा हम पर कीजो, अपने चरणों की रज दीजो" ।
इस विध कथ उस माथ झुकाया, आगे कुछ और कह न पाया ।
जान के प्रभु जी उन का भाव, कथन किया "यह जग स्वभाव ।
योग की शक्ति देखन चाहें, सब जनता के मन ललचायें ।
योगी शक्ति नहीं दरशावें, प्रकट करें अहंकार को पावें ।
अहंकार से साधन छूटें, चोर जिमी घर का धन लूटें ।

दो० योग रिपु अहंकार का, योगी रहता दूर ।
शक्ति सारी ईश की, करे न कभी गरूर ॥ १५५५

योग की शक्ति जो दरशावें, अधोगती वे योगी पावें ।
श्रवण करो तुम इक इतिहास, सुन कर जिमि मन हो विश्वास ।

७८. राजा शंभू का दृष्टांत

इक योगी वन में था रहता, साधन में निज काल बिताता ।
इक दिन उस के मन में आया, पर्यटन का वीचार बनाया ।
उठ आसन से भया तैयार, लीना लोटा डोर संभार ।
नूतन थल कुछ उस ने चीने, तीर्थ भी कई उस ने कीने ।
इक नगरी में फिर वह आया, जहां था दुखद घटन घट पाया ।
वहां का राजा प्रजा प्यारा, उसी समय था स्वर्ग सिधारा ।
शोक ग्रस्त प्रजा थी भारी, नगरी सूनी दीखे सारी ।

दो० नगर शून्य था दीखता, गयी प्रजा शमशान ।
योगी ने भी देख यह, कीना उधर पयान ॥ १५५६क
मारग में ही मिल गये, संग अर्थी के लोग ।
प्रश्न किया तब योगी ने, भया यह किस विध सोग ॥ १५५६ख

जनता ने तब वचन उच्चारा, साधो सोग आज बहु भारा ।
शंभु राजा प्रजा का प्यारा, अकस्मात है स्वर्ग सिधारा ।
सभी प्रजा है शोक डुबानी, वज्रपात सम सकल कहानी ।
अनाथ भये हैं हम महाराज, विधाता दुःख दिया बहु आज ।
राजा के गुण कर के याद, आज भये दुःख हमें अगाद ।
नृप यह था हमें पिता समान, पूजत थी प्रजा ईश्वर मान ।
ऐसे नृप से भई जुदाई, राम अयोध्या त्याग दिखाई ।
कहो तुम्हीं कुछ हे महाराज, सहन भये जिमि शोक यह आज ।

दो० सहन भये जिमि शोक यह, कथिये कुछ उपाय ।
किरपा कीनी आप ने, चल कर जो हैं आय ॥ १५५७क
सुनकर उन के वचन को, शोक भरी पुकार ।
अधोलिखी जो बात है, लीनी मन उस धार ॥ १५५७ख

इतना काल मैं योग कमाया, और जो सिद्धि को है पाया ।
क्यों न करूं उस का प्रयोग, किस काम फिर आयेगा योग ।
राजा की पदवी पा जाऊं, यदि राजा के देह समाऊं ।
जीर्ण शीर्ण यह देह त्यागूं, जा राजा के तनहिं विराजूं ।
सकल प्रजा भये मम अधीन, भोगूं भोग महल आसीन ।
आज स्वर्ग मम हाथ है लागा, सोच इमि वह कहने लागा ।
दुःख तुम्हारा मैंने जाना, और है मैंने मन अनुमाना ।
योग शक्ति से नृप जीवाऊँ, नृप के बदले मैं मर जाऊँ ।
पर हित के जब काम में आवे, क्यों कर नर फिर देह बचावे ।

दो० हाडचाम का पूतला, यदि आय किसी काम ।
सब से उत्तम बात है, राखो स्मरण तमाम ॥ १५५८

बचावूं गा मैं नृप की जान, त्यागूं बदले में निज प्राण ।
यदि तुम्हारी इच्छा होवे, इस विध राजा जीवन गोवे ।
सुन कर हर्ष प्रफुल्लित लोग, भूल गये मृत्यु का सोग ।
साधु से वे कहने लागे, साधु जन परहित अनुरागे ।
जिस विध राजा जीवन पाये, करिये वह महाराज उपाये ।
साधु ने तब मन्त्र उच्चारे, राजा पर जल छींटे मारे ।

अपना देह फिर साधु त्यागा, नृप उठा जिमि सो कर जागा ।
जीवित भया जब राजा देखा, मन प्रजा के हर्ष विशेषा ।
साधु का तन जल प्रवाहया, जन समूह सब नगरी आया ।
दो० नगरी में सब आ गये, शोक गया विस्माय ।
योगी बैठा राज पर, शंभू का तन पाय ॥ १५५९
इस भेद को किसी न जाना, काल गया तब बहुत विहाना ।
पाणि ग्रहण उस तीन कराये, बन राजा उस सुख बहु पाये ।
योग के चमत्कार दिखाता, रानियों का मन इमि बहलाता ।
ख्याती उस की बहु बिस्तारी, शंभू राजा योगी भारी ।
सुन ख्याति इक योगी आया, कान फटा जिस रूप बनाया ।
शुक एक वह संग में लाया, और शंभू से मिल वह पाया ।
राजा से उस कही यह बात, राजन योगी तुम विख्यात ।
योग विद्या को हम भी जानें, कौतुक कुछ हम आये दिखाने ।
निज कौतुक तुम हमें दिखाओ, हमरे भी तुम देखन पाओ ।
दो० कौतुक निज दिखलाइये, और देखिये नाथ ।
योगी धन्य महाराज तुम, राज्य लगा तव हाथ ॥ १५६०
राज्य पाय न योग विसारो, राज्य से उत्तम योग निहारो ।
राजन राज्य में दोष महान, योग करे जन का कल्याण ।
उतर स्वर्ग से राज्य को पावें, राज्य पाय फिर नरक को जावें ।
राज्य पाय जो कर ले योग, रहे पुनः वह स्वर्ग के योग ।
योगी की सुन राजा वाणी, मन में बात सत्य अनुमानी ।

मान लीनी तब उस की बात, गया शिवालय उस संग प्रात ।
कहा योगी "तुम योगी राज, प्रवेश करो मम शुक में आज" ।
मार तोते को वह ले आया, राजा के सन्मुख धर पाया ।

दो० तोते को वह मार कर, लाया राजा पास ।
प्रवेश करो इस शुक में, हमें भये विश्वास ॥ १५६१क
सुन राजा इस बात को, लायी न देर विशेष ।
तोते के उस देह में, कीना तुरत प्रवेश ॥ १५६१ख
इतनी कथा सुनाय कर, बोले प्रभु दयाल ।
होनहार जो होत है, कौन सके वह टाल ॥ १५६१ग

मोक्ष का मार्ग था उस त्यागा, सिद्धियों का था वह अनुरागा ।
फंस गया अब शुक तन मांहि, जिस तोते का योगी साईं ।
योगी ऐसी माया पायी, दीनी सारी बीति भुलायी ।
कहां से हूँ मैं इस तन आया, इस स्मृति को उस विसराया ।
अब योगी ने कीन वीचार, दूं न क्यों मैं तोता मार ।
और राजा के तन में जाऊँ, सकल राज को तब मैं पाऊँ ।
सोच इमि जब मारन लागा, तोता फुदक हाथ से भागा ।
तोते का उस पीछा कीना, पर न उस को फिर कहीं चीना ।

दो० किधर गया वह शुक था, भया न ज्ञान विशेष ।
लौट शिवालय आ गया, नृप तन कीन प्रवेश ॥ १५६२

राज महल में तब वह आया, किसी ने उसका भेद न पाया ।
सभी जानें यह नृप हमारा, शिवालय से जो आन पधारा ।

हीरा वती जो थी महारानी, समझ गयी वह सकल कहानी ।
नृप ने था उसे योग सिखाया, इस कारण उस भेद को पाया ।
रानियों को उस कीन सचेत, छोड़ दो करना इस से हेत ।
महारानी का कहना माना, त्यागा योगी संग उन रहना ।
शंभू की जो पहली रानी, योगी कीनी वह पटरानी ।
उस के संग वह रहने लागा, राज कर्म में भी अनुरागा ।

दो० राज कर्म में लाग कर, दीना उस आदेश ।
मारो तोते देश के, रहे न इक भी शेष । १५६३

जो तोते को ले कर आता, राजा से वह धन था पाता ।
सैंकड़ों तोते उस संहारे, माया वश नर अघ* कर डारे ।
हीरावती जब बात यह जानी, मन में तब उस ने अनुमानी ।
रहस्य समझ लिया अब सारा, शुक के देह में पति हमारा ।
हम भी तोते खोज मंगायें, और निज पति को ढूंढ दिखायें ।
दासिन को उस दीना काम, खोज लाओ तुम सब शुक-राम ।
दासिन नगर गईं तत्काल, मिला न इक भी शुक उस काल ।
सब तोते थे नृप मरवाये, कौन कहां अब तोता पाये ।

दो० तोता जब वहां न मिला, रानिन कीन विचार ।
प्राण पति अब कहां मिले, संकट पड़ा अपार ॥ १५६४

हीरावती से बोलीं सारी, लाओ समाधि बहन प्यारी ।
ढूंढो ला कर तुम्हीं ध्यान, प्राण पति का हाल लो जान ।

*पाप

कहां पर उसने कौन वसेरा, संकट जो आ पड़ा घनेरा ।
हीरावती ने मानी बात, आश्रय योग का लीना तात ।
पड़ोस में इक उस तोता पाया, जिस में उस का पति था आया ।
हीरावती स्वयं चलि आई, पड़ोसिन से वह तोता लाई ।
रानियों ने तब कौन विचार, योगी राजा लीन हुंकार ।
सब मिल उस से कौन सवाल, "हमें बताइये अपना हाल ।

दो० पूछें यह हम आप से, कहां हमारा नाथ ।
कैसे तुम हो आ गये, कह दो सब इक साथ ॥ १५६५

योगी ने कहा कैसी वाणी, बोलीं हो तुम मेरी रानी ।
मैं तो वही तुम्हारा स्वामी, जिस की तुम सब हो अनुगामी ।
अचरज की तुम कही यह बात, विसर गई क्या पति का गात ।
ऐसी पत्नी ना जग माहीं, भूल जाये जो अपना साईं ।
रानी कहा, "तुम सत बखाना", पत्नी का हो पति भगवाना ।
सिमरे उस को वह दिन रात, उस की जाने सब वह बात ।
पतिव्रता जो पत्नी होवे, पति के मन की बात वह गोवे ।
गुप्त रहे न कोई भी कार, पति पै पत्नी का अधिकार ।
कहे योगी, "मैं क्या कह पाऊं, किस विध मैं तुम को समझाऊं ।
मैं राजा तुम रानी मेरी, जग जाने यह बात घनेरी ।

दो० मैं हूँ राजा देश का, तुम पटरानी नार ।
ऐसी व्याधी क्या लगी, विसर गया सब प्यार" ॥ १५६६

कहे रानी "न व्याधी आयी, न ही विसर हूं मैं कुछ पायी ।
देखूं मैं सब कारज तोरे, लगें विलक्षण मन को मोरे ।
राजा जानत योग विशेष, कर सकता पर देह प्रवेश" ।
सुन योगी तत्काल उच्चारा, "त्यागो तब तुम यह तकरारा ।
अभी परीक्षा लो प्रिय नार, भ्रांति मन की सब लो टार" ।
रानी ने सुन कर यह माना, इक छाग* उसी काल मंगाना ।
कहा, "करो इस माहीं प्रवेश", लायी न योगी देर विशेष ।
छाग को उस ने दीना मार, प्रवेश किया उस में तत्काल ।

दो० छाग को उसने मार कर, जूं ही कीन प्रवेश ।
रानी लायी शुक तभी, देर न लायी लेश ॥ १५६७

रानी का संकेत जो पाया, अपने देह में राजा आया ।
तोते का तन त्याग दिखाया, खड्ग से छाग को मार मुकाया ।
इस विध विपदा से वह छूटा, हीरावती का काम अनूठा ।
योगिनी पत्नी थी वह नारी, अपने पति की कीन संभारी ।
प्रभु जी ने यह कथा सुनाई, खोल योग की बात बताई ।
फिसल लोभ में योगी जावे, प्रदर्शित जब शक्ति कर पावे ।
योगी की तब भये खवारी, क्यों मर्यादा उस ने टारी ।
योग मर्यादा है यह मीत, माया से नहीं करे प्रीत ।
योग करे जन मोक्ष के हेत, त्यागे लोभ को काम समेत ।
जिस मन लोभ व काम का वास, उस योगी पर क्या विश्वास ।

* बकरा

दो० काम लोभ के वश भये, जो योगी महाराज ।
लानत उस को सब कहें, उसे न लागे लाज ॥ १५६८क
समझे न कुछ लाज को, मारी उस की बुद्ध ।
गुरु मर्यादा भूल कर, बिसराई सब सुध ॥ १५६८ख

इस विध प्रभु जी कथा सुनाई, भक्त जनों के मन जो भायी ।
ज्ञान पाया उन से उन ऐसा, मिल पाये न कहीं भी जैसा ।
कर प्रणाम सभी चलि पाये, अपने २ स्थान पै आये ।
कीर्ति प्रभु जी की कथ पावें, जन गण शौक से सुन कर जावें ।
जो जन प्रभु की कीर्ति गावें, जन्म २ के अघ धो पावें ।
प्रभु जब भू पर लें अवतार, अलौकिक कर्म करें करतार ।
उनके कर्म की पावन धार, जिस में सत्य ही सत्य अपार ।
उस को सिमिर २ नर नार, ग्रहण करें जब सत्य का सार ।
निज कथनी में फिर जब लावें, प्रभु के चरित पवित्र सुनावें ।
पावन चित्त श्रवण हों पावन, वाणी भी जिस के गुण गावन ।

दो० चरित्र पवित्र नाथ के, गावें जो नर नार ।
उनके भाग्य की महिम का, पा सकें नहीं पार ॥ १५६९क
पढ़ें सुनें जो निशी दिन, प्रभु के चरित महान ।
मन में उनके प्रभु बसें, सुख से तरें जहान ॥ १५६९ख

७९. श्री गोपालानन्द का देह त्याग

एक दिवस थे प्रभु विराजे, भक्त जनों के मध्य में साजे ।

अकस्मात उन के मन आई, शोक रेख मुख पै छा पाई ।
उठ आसन से बैठे दूर, अधोवदन जिमि दुःख में चूर ।
देख भक्त मन में विस्माये, चरित अनोखा क्या दिख पाये ।
ऐसा कभी न प्रभु जी कीना, जैसा इस क्षण हम ने चीना ।
कुतुहल भया सभी मन भारी, क्या कारण जो दुःखी असुरारी ।
एक भक्त ने कीन प्रणाम, पूछा, "दुःख क्या सुख के धाम ।
अधोवदन क्यों बैठे नाथ, त्याग भक्त संग हो इक हाथ ।

दो० भक्तों के तुम नाथ हो, दीन दयाल योगेश ।
देख आप को शोक में, चैन हमें न लेश ॥ १५७०क

सुनी भक्त की बात जब, मुख से बोले राम ।
आज दिवस है शोक का, त्याग दिया तन राम ॥ १५७०ख

कही बात जब यह महादानी, भक्त समझे न उन की वाणी ।
कौन राम जिस देह त्यागा, कौन शोक जो प्रभु मन लागा ।
उत्सुकता वश सबन उच्चारा, "राम कौन जो स्वर्ग सिधारा"? ।
यह सुना तब प्रभु उच्चारा, "योग में जीवन राम गुज़ारा ।
ब्रह्मचर्य यहां व्रत आ धारा, घर को त्याग था यहां पधारा ।
गोपालानन्द नाम से जानो, पंचत्व–गत† अब उस को मानो ।
हम को कर के उस ने याद, त्यागा देह मुरादाबाद ।
उच्च गती है उस ने पायी, फलित भई है योग कमाई ।

† मृत्यु को प्राप्त

दो० पाकर गति उस उच्च को, नरतन कौन कृतार्थ ।
धन्य योगी का मरण है, प्राप्त करत परमार्थ ॥ १५७१क

सुन कर प्रभु के वचन को, भक्तन समझा भेद ।
पुत्र सम निज शिष्य से, बिछुड़ भया मन खेद ॥ १५७१ख

सकल विश्व यह नाथ का, जीव जन्तु बिन भेद ।
खास प्यारे शिष्य ने, त्यागा जग बिन भेद ॥ १५७१ग

एक भक्त तब वचन उच्चारा, "नाथ राम था आप को प्यारा ।
आप के रंग में वह था राता, निशिदिन कृपा आप की पाता ।
ऐसा शिष्य धन्य हम जानें, जिस के चित्त में आप समाने ।
आप बिना जो सब कुछ भूले, जिस का चित्त तव चरणी झूले ।
आप की गोदी नित जो खेले, सहन करे न रहन अकेले ।
आप के संग ही सोता खाता, श्वास २ में तुम्हें ध्याता ।
आप बिना जो चैन न पाता, आप बिना व्याकुल हो जाता ।
जल बिन मीन प्राण बिन प्राणी, आप बिना जो जिये न प्राणी ।

दो० आप बिना जो न जिये, मरे भी न बिन आप ।
विदा भये जब जगत से, करें आप संताप ॥ १५७२क

आप जगत के ईश हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
जग मर्यादा हेत ही, शोक किया यह लेश ॥ १५७२ख

गोपालानन्द था आप का प्यारा, योग भक्ति का व्रत उस धारा ।
आप के मुख से यदि सुन पायें, उस के अनुभव हम तब पायें ।

शिक्षा योग की परम विशेष, संशय हमरे मन नहीं लेश ।
गोपालानन्द आप का प्यारा, आप से उस ने योग को धारा ।
उस का भया परम उद्धार, योग ने दीना उस को तार ।
उसने आज संसार को त्यागा, विराग हमें सुन कर बहु लागा ।
आपके मुख से सुनना चाहें, गोपालानन्द की बात बतायें ।
उस के गुण जो हैं प्रभु खास, श्रवण करें हम सह विश्वास ।

दो० उस के गुण हम श्रवण कर, राखें मनहिं संभाल ।
नाथ बतावें राम के, गुण कुछ प्रभु इस काल" ॥ १५७३क
विनती प्रभु जी जब सुनी, उपजा मनहिं दुलार ।
त्याग शिष्य का याद कर, कहन लगे करतार ॥ १५७३ख

गोपालानन्द योग का प्यारा, ढूंढ २ जब योगी हारा ।
सहारनपुर हमें मिल पाया, प्रभु कृपा से योग को पाया ।
उस के थे संस्कार महान, दिव्य दर्शन पा उपजा ज्ञान ।
हेय वस्तु सब उसने त्यागी, ईश्वर में उसकी लिव लागी ।
जग झूठा सब कहते लोग, त्यागा उस ने सिद्ध कर योग ।
रहत जगत में जग से न्यारा, त्यागा उसने सकल पसारा ।
खान पान वा पहनन सारा, इन की चिन्ता से रह न्यारा ।
क्षुधा पिपासा की सुध नाहीं, वस्त्र त्यागे तन के ताहीं ।
असत से क्यों फिर प्रेम बढ़ायें, ज्ञान जभी जन योग से पायें ।

दो० योग कसौटी ज्ञान की, परख पड़े मन राग ।
राग खोट है चित्त का, खरी चीज वैराग ॥ १५७४

गोपालानन्द जब घर को त्यागा, उस का पिता दुःख में पागा ।
मैं ने दीना कुछ संबोध, उपजे जिस विध मन उस बोध ।
प्रभु कृपा से भया संतोष, मिटा तब उस के मन का रोष ।
उस ने पत्र लिख बतलाया, अपने मन का हाल जताया ।
"गुरुदेव" उस ने लिख दीना, "रामगोपाल मैं आप को दीना ।
ब्रह्मचर्य में इसे लगायें, योग विद्या इसको सिखलायें ।
मैं चाहूं यह सेव कमाये, आप के चरणों में रह पाये ।
जो कुछ गुण उस में मैं देखे, और कभी न कहीं भी पेखे ।

दो० योग विद्या जो आप से, राम ने पायी नाथ ।
ज्ञान मुझे भी मिल गया, अपने सुत के साथ* ॥ १५७५

सनातन धर्म को मैं अब मानूं, निज को आपका शिष्य बस जानू ।
अपने सुत के संग महाराज, अर्पा जीवन चरणों आज" ।
इस विध पात लिखा निज हाथ, ज्ञान मिला उसे पूत के साथ ।

---

* श्री गोपालानन्द (पहला नाम राम गोपाल) के पिता महाशय गोबिन्द राम का श्री प्रभु जी के नाम पत्र :—

'मुझ गोबिन्द राम दास का श्री गुरुदेव महाराज को हाथ जोड़ कर चरणारविन्द में प्रणाम। मैं आज से आप के १५ नियमों के अनुसार चलूंगा। राम गोपाल को इस योग मार्ग से आजन्म कभी न हटाऊंगा, न कभी हटाने का संकल्प मन में उठाऊंगा और आज से सनातन धर्म को मानूंगा। और बराबर विघ्नों से हर वक्त बचता रहूंगा। जो योग के विरोधी होंगे उन को कभी नहीं मानूंगा।

मैं अपनी इच्छा के अनुसार राम गोपाल को आप के सुपुर्द करता हूं। आप इसे ब्रह्मचर्य अवस्था में रखियेगा। मैं आज से आप का शिष्य हुआ। मैं इसलिये आया था कि रामगोपाल को ले जाऊं। मैं आप का ऐसा अद्भुत योग मार्ग देख कर खुश हुआ। अब मेरी यही इच्छा है कि रामगोपाल आप की सेवा करे। जो बातें मैंने अपने बच्चे में देखीं, आज तक सुनने में भी नहीं आईं। मैं देख कर खुश हुआ। द: गोविन्द राम ता० १ दिसम्बर सन् १९२८।

उत्तम जीव जब कुल में जायें, मात पिता भी तब तर जायें ।
इस विध स्मरण कीन प्रभु बात, गोपालानन्द जब त्यागा गात ।
गोपालानन्द के गुण क्या गायें, उस के ध्यान अनुभव बतलायें ।
लिपि बद्ध कीने जो उस आप, जिन में प्रभु की महिमा साफ़ ।
क्रम से हम कुछ यहां लिख पायें, पढ़ सुन कर जन भक्ति पायें ।

दो० ध्यानानुभव जो राम के, पढ़ें सुनें जब लोग ।
महिमा प्रभु की को गुणें, साधें रुचि से योग ॥ १५७६

८०. श्री गोपालानन्द के ध्यानानुभव

(क) "निद्रा को रोकने का उपाय" :–

ध्यान में राम बहु काल बिताता, ध्यान में ज्ञान प्रभु से पाता ।
उस के चित्त में बात जो आय, प्रभु जी देत थे तुरत बुझाय ।
एक दिवस उसके मन आवे, निद्रा से किमि मुक्ति पावे ।
नींद तो करती नर को खवार, नष्ट करे यह काल अपार ।
ध्यान में जब जन बैठन चाहवे, निद्रा बहुत विघ्न कर पावे ।
गोपालानन्द हो ध्यानासीना, प्रश्न प्रभु जी से उस कीना ।
प्रभु जी ने इक विधि बतलायी, अनुपम योग की युक्ति सुझाई ।
हृदय पर तुम ध्यान लगावो ध्वनि प्रणव की वहां सुन पावो ।
रहे प्रफुल्लित चित्त तुम्हारा, नींद से प्राप्त करो छुटकारा ।

दो० चित्त प्रफुल्लित होत जब, सहित प्रणव के जाप ।
निद्रा के वश न भये, रहे ध्यान में आप । १५७७क

*प्रणव – ओं

राम जभी इस विध किया, भया नींद से मुक्त ।
ध्यान निरत रहने लगा, रात काल बिन सुप्त ॥ १५७७ख

(ख) गोपालानन्द को गुरु नानक से साक्षातकार :–

ध्यान में दर्शन इक दिन पाये, गुरु नानक देव थे सन्मुख आये ।
दर्शन पा कर हर्षित राम, श्रद्धा सहित उस कीन प्रणाम ।
मांगा साधन का वह ज्ञान, देह भये जिस से बलवान ।
नानक देव कहा उस ताहीं, महाप्रभु सब जानत आहीं ।
उन से ही जन ज्ञान को पावे, उन से बढ़ कोई क्या बतलावे ।
गोपालानन्द आग्रह कीना, नानक देव साधन कथ दीना ।
फिर यह कह उन लीन विदाई, प्रभु आज्ञा पा करना भाई ।
गोपालानन्द ध्यान से जागा, साधन वही वह करने लागा ।
उस से उपजा रोग विशेष, चैन पड़े न देह में लेश ।

दो० भया दुःखी जब बहुत वह, बैठा ध्यान में जाय ।
गुरु नानक को याद कर, लीना उन्हें बुलाय ॥ १५७८क

गुरु नानक ने कहा उसे, मैंने था कथ दीन ।
बिन आज्ञा गुरु देव की, साधन तुम क्यों कीन ॥ १५७८ख

अब भी तुम गुरु देव पै जाओ, क्षमा की याचन वहां कर पाओ ।
रोग से होगा तब निस्तार, नहीं तो देगा रोग यह मार ।
गोपालानन्द ने शिक्षा पाई, प्रभु से जा कर भूल बख्शाई ।
प्रभु जी ने इक औषध दीनी, व्याधी शिष्य की सब हर लीनी ।

(ग) गोपालानन्द को देवी कालिका के दर्शन :-

इक दिन का करें और बखान, गोपालानन्द लाये था ध्यान ।
माता काली आई समक्ष, दिव्य रूप में भयी प्रत्यक्ष ।
गोपालानन्द मन हर्ष अशेष, देख काली का रूप विशेष ।
नत मस्तक उसका हो पाया, काली मां ने चरणी लाया ।

दो० नत मस्तक वह था भया, देख कालिका रूप ।
काल पुरुष भगवान का, प्रकटा दिव्य स्वरूप ॥ १५७९

गोपालानन्द बात मन आई, माता को उस विनय सुनाई ।
"अनुष्ठान था जब मैं कीना, दर्शन मां तुम नहीं था दीना ।
आज कृपा का क्या है कारण, इस संशय का करो निवारण" ।
कही तब मां ने उससे बात, प्रश्न तुम्हारा सुन्दर तात ।
एक बात तुम लेवो जान, गुरुमुख जन ही पाता ज्ञान ।
सद्गुरु मिला न था उस काल, दिये न दर्शन मैं तत्काल ।
तुम्हें मिले अब पूरण नाथ, भये हो पा कर उन्हें सनाथ ।
सेवक उन के जोय अनन्य, देव भी मानें उन को धन्य ।
बिना परिश्रम दर्शन पावें, देव स्वयं उन सन्मुख आवें ।

दो० पूरण सद्गुरु बिन मिले, दर्शन दुर्लभ होय ।
प्रकाश बिना न आंख से, देख सके जन कोय ॥ १५८०

देवों के प्रभु हैं अधिदेव, यह तो जानें सब ही देव ।
किरपा उनकी का जहां वास, देव रहें वहां कर विश्वास ।
दिव्य दर्शन जो जीव तराये, भक्त उसे बिन मांगे पाये ।

देव सभी मिल वहीं पधारें, प्रभु भक्त को सभी सत्कारें ।
निश्चल चित्त से प्रभु ध्यावो, बस इसी से सभी सुख पावो ।
ऐसा कुछ नहीं सृष्टि माहीं, सके न मिल जो प्रभु के ताहीं ।
देव भी उन से ही वर पावें, सद्गुरु जो तुम्हें कण्ठ लगावें ।
भक्त सभी वे हैं महाभाग, जिन का प्रभु चरणी अनुराग ।

दो० नेह प्रभु के चरण में, जिन का हो दिन रात ।
धन्य सभी वे भक्त जन, अटल सत्य यह बात ॥ १५८१क

मां के सुन कर वचन को, भया मुदित मन राम ।
लीन भया प्रभु ध्यान में, परमानन्द के धाम ॥ १५८१ख

(घ) गोपालानन्द को श्री कृष्ण के दर्शन :–

एक समय की और बतावें, गोपालानन्द का ध्यान सुनावें ।
वृन्दावन की बात यह भाई, कृष्ण लीला का थल सुखदाई ।
गोपालानन्द वहां जब आया, समय सुहावन मन को भाया ।
यमुन तीर पै रात बितावे, ध्यान लगावे कभी सो जावे ।
नींद में नेत्र जब लग पाया, कृष्ण चन्द्र आ उसे जगाया ।
बालरूप में कृष्ण पधारे, मनहर मुरली कर में धारे ।
कहन लगे उसके वे ताहीं, "नींद करो न तुम इस थाहीं ।
योग समाधी बैठ लगावो, सद्गुरु से जिमि शिक्षा पावो ।
गुरु तुम्हारे मेरा रूप, धारो चित्त में वही स्वरूप ।

दो० कलियुग में मैं राम[1] हूं, द्वापर था कण्हायी ।
यही तथ्य मन धार तुम, ध्यान धरो चित्त लायी ॥ १५८२

1. अर्थात् 'राम लाल'

यह उपदेश कृष्ण जी दीना, अलौकिक दर्शन उस ने कीना ।
मन में उपजा परम आह्लाद, धिक्कारा तब उस निज प्रमाद ।
प्रभु विश्वेश्वर सद्गुरु पाय, फिर भी नहीं जो योग कमाय ।
उस जन को कोई क्या कह पाये, 'सेवक' उस पै तरस ही खाये ।
रे मन तू भी आलस त्याग, त्याग जगत प्रभु चरणी लाग ।
जग के मोह ने कीन अचेत, प्रभु उपदेशत तेरे हेत ।
खोल कान सुन उन की वाणी, छोड़ छाड़ सब आना कीनी ।
जागो उठो दृढ़ निश्चय धार, योग से हो जन का उद्धार ।

दो० दृढ़ निश्चय मन में करे, और त्यागे मोह ।
ऐसे ही नर के बनें, प्रभु सहायक ओह ॥ १५८३

गोपालानन्द था भक्त प्रवीण, योग भक्ति मन कीना लीन ।
दर्शन दे उस को समझाया, इस मिस भक्तन राह दिखलाया ।
कलियुग में नर तन प्रभु धारा, योगी रूप उन का अति प्यारा ।
उन की शरण न जो जन आवे, सुन्दर अवसर खो वह पावे ।
गया काल फिर हाथ न आता, भूला नर पाछे पछताता ।
रे मन मत भूलो तुम भाई, प्रभु मिले हैं कृष्ण कण्हायी ।
योगेश्वर का वे रूप बनाय, तेरे हित हैं कलियुग आय ।
सिमरो २ उन को सिमरो, राम प्रभु को नित तुम सिमरो ।

दो० सिमर २ फिर सिमर मन, पुनः २ ले सिमर ।
बिन सिमरन चलि जात पल, श्वास २ ले सिमर ॥ १५८४

सिद्ध पुरुष सब यही बतायें, राम योगेश्वर कलियुग आयें ।
जिस २ जन को चरणी लगायें, जरा मरण से उसे छुड़ायें ।

(ङ.) "केशवानन्द अवधूत से समागम" :–

ऋषिकेश की बात लो जान, गोपालानन्द बैठा ला ध्यान ।
सिद्ध पुरुष उसने इक देखा, समाधि में ही उस को पेखा ।
केशवानन्द अवधूत अभिधान, कृष्ण भक्त और सिद्ध महान ।
श्री कृष्ण में चित्त था लीन, मन्त्र जपत प्रति प्राण नवीन ।
गोपालानन्द के मन तब आई, कौन मन्त्र यह जपत है भाई ।
हम भी जा कर इस से जानें, नवीन बात कुछ हम पहचानें ।

दो० कौन मन्त्र यह जपत है, धारणा की क्या रीत ।
कृष्ण चन्द्र में किमि भई, अखण्डित इस की प्रीत ॥ १५८५

समाधि से तब उठ वह पाया, चलि अवधूत पास वह आया ।
नमो नारायण उसे बुलाया, केशवानन्द ने पास बिठाया ।
ध्यान योग की चरचा चाली, गोपालानन्द मन की कह डाली ।
वही मन्त्र मुझ को बतलायें, जिस से आप हैं ध्यान लगायें ।
जिससे मिली है सिद्धि महान, चाहूँ मैं वही आप से ज्ञान ।
केशवानन्द सुन कर कह पाये, "सागर से तुम चल कर आये ।
चाहो क्षुद्र जलाशय पानी, उलट आपने कथी कहानी ।
मुझे दया बस तुम पर आये, जगदाधार को जान न पाये ।

दो० जगदाधार हैं मिल गये, श्रम बिना बिन खेद ।
अमूल्य निधि को पाय कर, नहीं जाना तुम भेद ॥ १५८६

सिमर प्रभु को जब कर पाओ, कौन ज्ञान जो न पा जाओ ।
जिस विध अर्जुन कृष्ण न जाने, इस विध राम न तुम पहचाने ।
कृष्ण अर्जुन से प्रीत निभाई, राम प्रीत तुम से कर पाई ।
दोनों ही तुम भूलन हार, पहचाना न वह सिरजनहार ।
जाकर ग्रहण करो प्रभु चरण, भूल न त्याग करो वह शरण ।
उनसे बड़ा न दानी होय, ज्ञानी भी न उन सम कोय" ।
इस विध कह गोपाल पठाया, प्रभु माया को शीष झुकाया ।
जिस ने बड़े बड़े भरमाये, लाख चौरासी चकर घुमाये ।

दो० माया जिस की है प्रबल, और जो दीन दयाल ।
शक्ति मान उस नाथ के, समर्प हाथ निज हाल ॥ १५८७क
स्मरण रहे यदि बात यह, लिख ऊपर जो पाई ।
माया के प्रभाव से, प्रभु बचावें भाई । १५८७ख

(च) 'गोपालानन्द का निज माता को सद्गति दिलवाना' :-

गोपालानन्द इक दिन मन आई, मम माता ने क्या गति पाई ।
मैं तो था तब छोटा बाल, उस को लीना ग्रस जब काल ।
रोग में उसने देह त्यागी, वैद्यों की न औषध लागी ।
देखूं ध्यान में वही स्वरूप, धारण किया जो उस अब रूप ।
ध्यान में उस ने तब क्या देखा, एक घिनौना कर्म उल्लेखा ।
उस की मां उस कुल थी जायी, मत्स्य पकड़ जो करें कमाई ।
प्रभु से विनती उसने कीनी, नाथ गति क्या इस को दीनी ।
निरामिष भोगी वंश हमारा, जीवन शुद्ध था बीता सारा ।

भक्ष अभक्ष का करत विचार, जन्मी क्यों जहां मत्स्याहार ।
प्रभु बताई तब उसको बात, अन्तवृत्ति थी मत्स्य में तात ।
जो अन्तमति सो गति हो भाई, कथी गीता यह अटल सचाई ।

दो० अन्त समय जिस भाव को, रख मन त्यागे देह ।
उसी भाव प्रभाव वश, जन्मत बिन संदेह ॥ १५८८

ध्यान से वह तभी उठ पाया, बड़ी बहन के पास वह आया ।
निज ध्यान की बात बताई, माता की वह गाथ सुनाई ।
प्रभु जी का उपदेश सुनाया, गीता का उल्लेख जताया ।
अचरज मन का उस कह दीना, रुक्मणी बहन भी सिमरन कीना ।
उस को बात याद तब आई, "माता रुग्ण बहुत थी भाई ।
उदर शूल से तड़पे भारी, औषध आय कोई न कारी ।
कहा डाक्टर तब न घबराओ, तेल मछली का शीघ्र लाओ ।
तरन्तु भये गी पीड़ा शांत, निरोग रहे यह तदुपरान्त ।

दो० मत्स्यतेल प्रयोग से, बिल्कुल भये निरोग ।
औषध में कुछ दोष नहीं, दूर करे जो रोग ॥ १५८८क
तेल मछली का न मिला, उसी काल बाज़ार ।
प्राण त्यागे मात ने, भया न वह उपचार" ॥ १५८८ख
सुनी बहन की बात जब, मन में कीन विचार ।
ज्ञान प्रभु जी दीन जो, मिल पाया अब सार ॥ १५८८ग

माता की सुध मत्स्य में लागी, उस सुधी में देह उस त्यागी ।
मत्स्य मारों में जा उपजायी, अन्तमति थी प्रबल हो आयी ।

गोपालानन्द ध्यान लगाया, प्रभु जी को उस पुनः ध्याया ।
प्रभु से विनती कीनी "नाथ, धारो मां पर किरपा हाथ ।
सद्गति को प्राप्त हो जाये, नीच कर्म न नरक ले जाये ।
"तथाऽस्तु" श्री प्रभु कह दीना, गोपालानन्द आश्वासन लीना ।
योगी पुत्तर पितर तराता, सकल जगत में यह विख्याता ।
गोपालानन्द निज मात तराई, गुरु योगी उसे भये सहाई ।

दो० बनत सहायी सद्गुरु, संकट में जब दास ।
मात तराई राम[1] ने, गुरु से कर अरदास ॥ १५६०

८१. श्री गोपालानन्द को सृष्टि की उत्पत्ति तथा उसके विस्तार का ज्ञान देना

गोपालानन्द इक दिन मन आया, सृष्टि का तो रहस्य न पाया ।
असंख्य लोक कथन में आवें, उन का भेद किमी जन पावें ।
बिन गुरु करे कौन उपदेश, जन निःसहायी न जाने लेश ।
च्योंटी सम जन हैं जग माहीं, अनन्त[2] का साक्षी न बन पाहीं ।
विचार इसी में ध्यान लगाया, प्रभु जी इमि तब दृश्य दिखाया ।
सृष्टि की रचना का ज्ञान, देखा इस विध ला उस ध्यान ।
गोला बृहद् आकाश में फूटा, धमाका उस का घोर अनूठा ।
उस के खण्ड २ हो छाये, नभ में व्यापक जो हो पाये ।

1. राम गोपाल दूसरा नाम गोपालानन्द
2. जिस प्रकार एक च्योंटी को नगर और प्रदेश आदि का ज्ञान नहीं हो सकता इसी प्रकार एक साधारण मनुष्य को लोक लोकान्तरों का बोध प्राप्त नहीं होता ।

प्राणी उसने उन में देखे, भिन्न २ आकार के पेखे ।
इस विध सृष्टि का निर्माण, दीना प्रभु जी संकेत से ज्ञान ।
दो० विलक्षण क्रिया देख कर, उठा ध्यान से राम ।
आ पहुँचा प्रभु चरण में, जहां थे सुख के धाम ॥ १५९१
प्रभु जी को उस ने बतलाया, दृश्य जो उस के सन्मुख आया ।
जिज्ञासा भी अपनी बतलाई, किमि सृष्टि कर्ता उपजाई ।
सृष्टि का कितना विस्तार, मिल पाये किमि इस का पार ।
प्रभु जी के उस चरण ग्राहे, कहा "नाथ न समझ में आये ।
भ्रांत भयी है मति यह मोरी, शरण पड़ा हूं बस अब तोरी ।
मुझ को दीन दयाल बताओ, सृष्टि का कुछ ज्ञान कराओ ।
तृप्त भये जिमि मम जिज्ञासा, अंधकार मांहि हो प्रकाशा ।
गुरु बिन कौन करावे ज्ञाना, रोग मेरे के आप निदाना ।
दो० ज्ञान गुरु से ही मिले, इस में शक न लेश ।
विश्व नियन्ता ! विश्व के, रहस्य बतायें अशेष" ॥ १५९२
गोपालानन्द की सुन जिज्ञासा, करन हेत मन में प्रकासा ।
निज मुख से प्रभु वचन उच्चारा, सुन लीना हम ध्यान तुम्हारा ।
समझो उसका हम से भेद, मिट पाये जिमि मन का खेद ।
पांच तत्व और त्रय गुणी न्यारी, देखी दिव्य प्रकृति सारी ।
वही जब छिन्न भिन्न हो पायी, लोक लोकान्तर रूप बन छायी ।
अंश ईश के उसमें आये, नाना रूप प्राणी जाये ।
कितने लोक हैं सृष्टी मांही, गिनती में वे सकल न आंही ।

दूर दुरन्तर सब विस्तार, उस का भी नहीं पारावार ।
दूरी लोक लोकान्तर मध्य, गणना में आ सके न सद्य ।
दो० गणना में न आ सकें, सृष्टि के सब लोक ।
अनगिनत इसी कारणे, कथे लोक परलोक ॥ १५९३क
दूरी उन के मध्य की, है गणित से पार ।
इस कारण ही जन कहें, यह आकाश अपार ॥ १५९३ख
अनंत और असंख्य से, भी जो कथा है पार ।
प्रभु वह सब में रम रहा, समझे योगी सार ॥ १५९३ग
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, उपजा मनहिं संतोष विशेष ।
प्रभु जी से विनती कर पायी, "नाथ बात अब समझ में आई ।
तव माया का पार न पावें, गणना में किमि उस को लावें ।
असंख्य लोक असंख्य प्राणी, नेति २ कहें जन ज्ञानी ।
इतनी बात नाथ बतलाइये, मात लोक का ज्ञान कराइये ।
इस पृथ्वी का जो विस्तार, चन्द्र लोक आदि करतार ।
उन सब का मैं पाऊं बोध, ज्योतिष ने जिमि राखा शोध ।
जाननहार आप भगवान, निज रचना का देवें ज्ञान ।
दो० रचना तेरी जान कर, बढ़े चरण में प्रीत ।
सृष्टि का सब ज्ञान जो, दृढ़ावे मन प्रतीत" ॥ १५९४
सुन कर उस की विनय भगवान, दीना उस को बहु विध ज्ञान ।
"मात लोक जो यह दिख पावे, निरन्तर यह अति वेग से धावे ।
इसकी गतियां दो लो जान, जिन के भिन्न २ परिणाम ।

परिक्रमा सूर्य की कर पावे, एक वर्ष में इसे मुकावे ।
इस का फल है ऋतु परिवर्तन, बसंत ग्रीष्म शरद हेमन्तन ।
दूसरी गति तुम इस की जानो, अपने अक्ष पै चक्र मानो ।
लट्टू सम यह घूम दिखावे, दिवस रात इस विध बन पावे ।
चमत्कार ईश्वर का कैसा, दृष्टि आये परिवर्तन जैसा ।
केवल गति ही उस का कारण, दीनी चाल न प्रभु अकारण ।

दो० पृथ्वी की जो चाल है, यह जीवन आधार ।
अन्तर क्षण का न पड़ा, जब से रची करतार ॥ १५६५क

सुन कर प्रभु की बात को, कहा गोपालानन्द ।
महिमा यह सब आप की, जानें न मतिमन्द ॥ १५६५ख

एक बात मैं आप से जानूं, परिक्रमा विस्तृत कितनी मानूं ।
एक वर्ष जब पूरण करती, कितनी दूरी पृथ्वी चलती ।
कहा नाथ ने लो यह जान, साठ करोड़ मील लो मान ।
एक वर्ष जब पृथ्वी चाले, साठ कोटी मील कर डाले ।
अब तुम गणना खुद कर जानो, इसकी दैनिक गति अनुमानो* ।
एक बात पर लो तुम जान, शिक्षा जग को मिले महान ।
पृथ्वी रुक न कभी दिखलावे, रुके धरा तो प्रलय हो जावे ।
गतिशील जन जीवित रहता, गति हीन सो नष्ट हो जाता ।
सदैव प्रगति का राखे लक्ष्य, सकल विभूति आये समक्ष ।

* इस के अनुसार पृथ्वी एक मास में पांच करोड़ मील चलती है। और दैनिक गति लगभग साढ़े सोलह लाख मील (16,66,666 मील) से कुछ अधिक है।

दो० जीवन की जो डोर है, गति ही उस के प्राण ।
गति बिन जीवन न रहे, धरा की सीख महान ॥ १५८६

सुन कर प्रभु जी का उपदेश, गोपालानन्द मन हर्ष विशेष ।
इक जिज्ञासा उस प्रकटाई, प्रभु के सन्मुख जो कह पाई ।
"धरा की गति को तो हम जानें, अन्य ग्रहों की गति वखानें ।
कौन ग्रह जिनका यह धर्मा, सूर्य देव की करें परिक्रमा ।
कितना काल प्रत्येक ले नाथ, चले एकाकी या कोई साथ ।
सृष्टि का यह रहस्य महान, प्रभो सर्वज्ञ करावें ज्ञान" ।
सुन कर उस की इच्छा भारी, बोले नाथ प्रभु पापारी ।
सभी ग्रहों के नाम लो जान, चलें जो सूर्य गिर्द महान ।
वुध शुक्र और पृथ्वी जानो, मंगल वृहस्पति शनि पहचानो ।
अरुण वरुण और नवम कुबेर, दौड़ लगावें करें न देर ।

दो० अपने अपने कक्ष में, रह सब करें परिक्रम ।
ज्योतिर्विद जो नर बने, गति का जाने मर्म ॥ १५८७क

*पृथ्वी तो इक वर्ष में, लगाती पूर्ण चक्र ।
अठासी दिन बुध लेत है, दो सौ पच्चीस शुक्र ॥ १५८७ख

सूरज के कुछ निकट हैं, वुध शुक्र लो जान ।
शीघ्र परिक्रमा वे करें, गहें प्रकाश महान ॥ १५८७ग

* ग्रहों की परिक्रमा का समय (1) वुध=88 दिन । (2) शुक्र=225 दिन । (3) पृथ्वी=365·25 दिन । (4) मंगल=687 दिन । (5) वृहस्पति=11·9 वर्ष । (6) शनि=29·5 वर्ष । (7) अरुण (यूरेनस) 84 वर्ष । (8) वरुण (नेपटयून)=164·8 वर्ष । कुवेर (प्लूटो) =248·4 वर्ष ।

मंगल लगभग दो वर्ष, वृहस्पति वारह साल ।
शनि वर्ष उनतीस ले, इन का ऐसा हाल ॥ १५८७घ
जितनी २ दूरी है, उतना उतना काल ।
अरुण वरुण कुवेर का, क्या बतावें हाल ॥ १५८७ङ
ज्योतिष विद्या महान है, बतावे नभ का भेद ।
पूज्य पिता से मिल गई, बिन परिश्रम बिन खेद ॥ १५८७च
निज को प्रभु जी गोपते, ले पिता का नाम ।
अपनी सारी रचन को, जानें हैं भगवान ॥ १५८७छ

सुन कर प्रभु जी की यह वाणी, गोपालानन्द ने विनय बखानी ।
"नाथ आप यह ज्ञान करावें, पृथवी का आकार बतावें ।
पृथवी का इतना विस्तार, इस का पा न सके कोई पार ।
इसका ओर छोर न पावें, देश विदेश न कथन में आवें ।
नदी नदीशों की न गणना, महा द्वीपों की है बहु रचना ।
घोर वनों का यहां विस्तार, मरुस्थलों का कहीं प्रसार ।
हरा २ कहीं घास बिछाया, कोसों तक कहीं रूखा छाया ।
देख पर्वतों की ऊंचाई, और समुद्रों की गहराई ।
मति तो मानव की चकरावे, प्रभु की रचना क्या कथ पावे ।

दो० मानव बुद्धि अल्प है, सके न सब कुछ जान ।
अपनी रचना का प्रभु, आप करावें ज्ञान" ॥ १५८८क
गोपालानन्द की वेनती, सुन कर दीन दयाल ।
बखान किया संक्षेप से, पृथ्वी का कुछ हाल ॥ १५८८ख

पृथ्वी गोलाकार है, भूगोल इति प्रसिद्ध ।
आदिकाल से जानते, यहां के [1]ज्योतिर्विद ॥ १५९८ग

गोलाकार का आदि न अन्त, पच्चीस सहस्त्र मील पर्यन्त ।
परिधि इस की जानो भाई, मात लोक की जो सुखदाई ।
इस के क्षेत्रफल को जानो, इकावन कोटि किलो पहचानो[2] ।
पृथ्वी का इमि वहु विस्तार, जीव पाये न इस का पार ।
परन्तु मैं तुम को बतलाऊं, ग्रहों मध्य यह क्षुद्र ही पाऊं ।
पृथ्वो को तुम अल्प ही जानो, इस से बड़े २ ग्रह मानो ।
वरुण अरुण शनी को जानो, वृहस्पती भी बड़ा पहचानो ।
इन सब से है पृथ्वी अल्प, कथन में आये न सारा कल्प ।
बात एक से तुम अनुमानो, पृथ्वी का जिमि छुटपन जानो ।
सूरज जिस को हम सब देखें, थाली सम इक चक्र ही पेखें ।
तुलना में जो इसे अनुमानें, दस लाख गुणा बड़ा पहचानें ।

दो० दस लाख गुणा है बड़ा, पृथ्वी से मार्तण्ड ।
दीखत जो आकाश में, गोलाकार इक अण्ड ॥ १५९९

पर मैं तुम को यह बतलाऊं, सूरज को भी अल्प ही पाऊं ।
इस सूरज से भी अति महान, नभ में चमकें ज्योतिष्मान् ।
ऋषियों ने यह सभी वखाना, दिव्य दृष्टि से जिन था जाना ।
आगे से आगे है रचना, कथन हेतु न जीभ में वचना ।

1. ज्योतिर्विद—ज्योतिष विद्या के जानने वाले ।
2. पृथ्वी का क्षेत्रफल—51·1 करोड़ वर्ग किलो मीटर ।

त्रिकाल में जन्मा न वह जीव, सृष्टि की जो पावे सीव ।
एक ही जाने इसका अन्त, रचनहार जो है भगवन्त ।
योगी उस का भेदी जानो, ईश्वर का वह अंग ही मानो ।
जहां ईश वहां उसका वासा, उस के घट में सृष्टि निवासा ।
विराट रूप स्वयं बन जाये, सृष्टि सकल हृदय में आये ।
इस विध देखे सकल पसारा, समझे योगी कथन हमारा ।

दो० योगी के ही ध्यान में, आ सके मम बात ।
वाणी में सामर्थ्य नहीं, कथ सके सब तात ॥ १६००

गोपालानन्द जब यह सुन पाया, हृदय में वह अति विस्माया ।
सृजनहार स्वयं कथ पाये, कथनी में न सृष्टि आये ।
अनुभूति से ही होवे ज्ञान, अनुभूति का है साधन ध्यान ।
ध्यान बिना जो चाहता ज्ञान, जन वह है सचमुच नादान ।
योग ध्यान ज्ञान उपजावे, योग बिना जन ज्ञान न पावे ।
ऐसा कथन किया भगवान, समझे इस को कोई सुजान ।
गोपालानन्द ने पुनः उचारा, नाथ प्रश्न इक मेरा भारा ।
आप ने ग्रह सभी बतलाये, चन्द्र को न गणन में लाये ।
इस का क्या कारण गुरुदेव, बतलावें मुझ को इस का भेव ।

दो० सुन कर उस की बात को, दिया उत्तर भगवान ।
चन्द्र ग्रह नहीं मानिये, उपग्रह इस को जान ॥ १६०१

वह पृथ्वी की करे परिक्रमा, उस का मुख्य यही है कर्मा ।
एक मास में चक्र लगावे, इस प्रकार कलायें बनावे ।

चांद मिला पृथ्वी को एक, कई ग्रहों के चांद अनेक ।
मंगल वरुण के दो दो जान, अरुण के चांद पांच पहचान ।
शनी के नौ चांद तुम जानो, बृहस्पती के बारह मानो ।
वुध शुक्र का चांद न कोई, कुबेर को भी मिला न सोई ।
ग्रहों के सब ये मानों अंग, रहें ये ग्रहों के ही संग ।
चन्द्रमा का मधुर स्वभाव, डाले पृथिवी पर प्रभाव ।

दो० चन्द्रमा की बहु विध, पृथ्वी को है देन ।
रात्री को प्रकाश दे, बनस्पत अमृत लेन ॥ १६०२क
सुन्दरता जग की बढ़े, चांद उजाला देय ।
सागर से जा पूछिये, जो कुछ इस से लेय ॥ १६०२ख

प्रभु जी ने जब यह कथ पाया, गोपालानन्द के तव मन आया ।
उसने पुनः कथी यह वाणी, नाथ क्या सब जां रहें प्राणी ।
सभी ग्रहों में क्या हैं जीव, अथवा कुछ ग्रह हैं निर्जीव ।
सुन कर प्रभु जी मन मुस्काये, विद्वज्जन यह प्रश्न सताये ।
निश्चित उत्तर मैं दे पाऊं, भ्रम जगती का जिमी मिटाऊं ।
कहन लागे तव जग कल्याण, निश्चित बात तुम लेवो जान ।
प्रथम है यह कि सृष्टि माहीं, थल निर्जीव न कहीं भी आहीं ।
दूसर यह कि जीव देह धारे, पंचतत्व के सिरफ सहारे ।

उपग्रहों (अर्थात चन्द्रमाओं) की संख्या

ग्रह	उपग्रह	ग्रह	उपग्रह	ग्रह	उपग्रह
वुध	0	मंगल	2	अरुण	5
शुक्र	0	बृहस्पति	12	वरुण	2
पृथ्वी	1	शनि	9	कुबेर	0

जैसे देह दीखें इस भू पर, ऐसे देह न दूसर ग्रह पर ।
निकट जो सूरज के ग्रह जानो, वहां पै ताप अति ही मानो ।
सूरज से जो दूर ग्रह भाई, वहां पै हो वहु शीतलताई ।

दो० सृष्टि तो सब में बसे, भिन्न २ पर होय ।
जैसा जहां पै तत्व हो, देह बनें वहां सोय ॥ १६०३

कहीं स्थूल कहीं सूक्ष्म भाई, कहीं सूक्ष्म की अति अधिकाई ।
इन आंखों से नज़र न आवे, जन वहां यदि पहुंच भी पावे ।
सत्य बात यह ले जग जान, योग से केवल मिलता ज्ञान ।
इतनी बात प्रभु कथ दीनी, फिर चुप्पी उन साध ही लीनी ।
सृष्टि का सब रहस्य बताना, उच्चित न उन मन अनुमाना ।
शांत मुद्रा में प्रभु को देखा, गोपालानन्द तव मनहीं उल्लेखा ।
पा कर ज्ञान प्रभु से भारी, दूर करूं जिज्ञासा सारी ।
ऐसा मन माहीं अनुमाना, पूछा प्रभु से फिर यह ज्ञाना ।
बात एक मम चित भगवान, उस का भी मुझे देवें ज्ञान ।
सकल ग्रह जो आप बखानें, उन की दूरी हम न जानें ।

दो० दूरी उन की जान कर, कर पायें अनुमान ।
सूरज का कितना मिले, ताप उन्हें भगवान ॥ १६०४

श्रवण कीनी जब उस की बात, कथ पाये फिर जग के त्रात ।
इस का भी लो उत्तर जान, मिले जो तुम को सूक्ष्म ज्ञान ।
ग्रहों की दूरी करूं वखान, क्रम से कहूँ सुनो ला ध्यान ।

सूरज से जो जितना दूर, कोटी* किलों में कथूं जरूर ।
लगभग उतना अन्तर जानो, ठीक बात इस को तुम मानो ।
बुध को सब से आगे जानो, छः करोड़ की दूरी मानो ।
शुक्र ग्यारह कोटी भाई, भू की दूरी पन्दरह आई ।
मंगल तेइस कोटी है दूर, बृहस्पती सत्तर आठ जरूर ।
शनि एक सौ अठतीस जानो, अरूण शत-द्वय-सतासी मानो ।

दो० वरूण और कुवेर हैं, क्रमशः इतने दूर ।
चार शत पचास वा सौ, पंच षन्नवति जरूर ॥ १६०५क
(वरूण–४५०) (कुवेर–५९६)

सुन कर सारी बात को, भया सन्तोष महान ।
चरण गहे गुरुदेव के, जान उन्हें भगवान । १६०५ख

प्रभु का यह उपदेश जो, पढ़े सुने मन लाय ।
सृष्टि के वह भेद को, सरल रीत से पाय ॥ १६०५ग

गोपालानन्द का ध्यान बतावें, प्रभु की दया जिमि लख पावें ।
जिस पै कृपा प्रभु कर पाते, दिव्य दर्शन उसके चित्त आते ।
बिन प्रभु कृपा के हे भाई, ध्यान समाधी किस ने पाई ।

---

*किलो—किलोमीटर (एक मील का 5/8 भाग)

सूर्य से दूरी करोड़ किलो मीटरों में :—

बुध— 5·8	मंगल— 22·8	अरूण—286·8
शुक्र—10·8	बृहस्पति— 77·7	वरूण—449·7
पृथ्वी—15·00	शति—138·2	कुबेर—595·5

८२. श्री गोपालानन्द को श्री महाप्रभु जी के दिव्य दर्शन

गोपालानन्द के मन यह आई, देखूं महाप्रभु चित्त लाई ।
दादा गुरु जिनको हम जानें, प्रभु जी जिन का विरद वखानें ।
सुमेरू पर्वत जिन का वासा, आधा वर्ष चढ़ावें श्वासा ।
जिनकी आयु का नहीं ज्ञान, ऋषिजन जिन का करते ध्यान ।
यह संकल्प जब मन में लाया, देहाध्यास सकल विसराया ।
तत्क्षण प्रभु के दर्शन पाये, महाप्रभु भी सन्मुख आये ।

दो० महा प्रभु के रूप पर, ठहर न दृष्टि पाये ।
अनेकों भानु एक दम, उदय भये जिमि आये ॥ १६०६क

महाप्रभु के तेज को, सह सका नहीं सोय ।
प्रभु के चरणों पर गिरा, चेतनता को खोय ॥ १६०६ख

प्रचण्ड तेज दृष्टि जो आया, प्रभु जी के सब घटहिं समाया ।
श्रवण पड़ी फिर दिव्य इक वाणी, गंभीर जलद की जिमि ध्वानी ।
"रामलाल को हम ने अर्पी, अपनी सारी शक्ति समर्पी ।
जग में योग का हो विस्तार, इन का इसी हेतु अवतार ।
जिज्ञासु जन जो शरणी आवें, इन से योग व ज्ञान को पावें ।
शरणागत का होय कल्याण इन के न कोई और समान ।
योग योगेश्वर हों विख्यात, त्रेतायुग से विदित यह बात ।
इन को परम पुरुष हम जानें, देवों के अधिदेव ही मानें ।

दो० देवों के अधिदेव हैं, पारब्रह्म अवतार ।
अलौकिक विद्या योग का, राम करें प्रचार ॥" १६०७

दिव्य रूप महाप्रभु का देख, और अलौकिक वचन उल्लेख ।
गोपालानन्द धन्य हो पाया, उठ कर प्रभु चरणों में आया ।
महाप्रभु का रूप बतलाया, जैसा ध्यान दृष्टि में आया ।
हो प्रसन्न प्रभु आशिष दीनी, स्मृति फिर महाप्रभु की कीनी ।
गोपालानन्द निज भाव बताया, स्तुती प्रभु की वह कर पाया ।
"दीन वन्धु अशरण के शरण, मिले भाग्य से आप के चरण ।
आप से ही मैं सब कुछ पाया, धर्म पाया व अर्थ भी पाया ।
शुद्ध काम की पूर्ति पायी, रीति मोक्ष की आप बतायी ।

दो० धर्म अर्थ और काम का, तथा मोक्ष का ज्ञान ।
आप के चरणों में मिला, मिला आप से दान ॥ १६०८क

जो कुछ आप से है मिला, मिला न अन्य स्थान ।
श्रद्धा भक्ति से प्रभो, करूं आप का ध्यान ॥ १६०८ख

जो कुछ हमको है मिला, मिला आप से नाथ ।
बिक गया इसी कारणे, चित्त आप के हाथ ॥" १६०८ग

इतना ही बस कथन कर, सुध भयी विसराई ।
जगत पिता के ध्यान में, सुरती गयी समाई ॥ १६०८घ

इतना ही बस कथन कर, विसर गई सब सुध ।
अखिलेश्वर के ध्यान में, लीन भयी कुल बुद्ध ॥ १६०८ङ

८३. श्री गोपालानन्द को वैकुण्ठ धाम के दर्शन तथा नारद को श्री प्रभु जी द्वारा उपदेश

गोपालानन्द इक दिन आसीना, प्रभु चरणों में कर चित्त लीना ।
प्रभु जी आसन पर वीराजे, शिष्यों के थे मध्य में साजे ।
भजन एक जब द्रौपदी गाया, ध्यान मग्न तब वह हो पाया ।
उस काल जो कुछ उस देखा, ज्ञान अलौकिक करें उल्लेखा ।
इक मारग था सन्मुख आया, उस पर उस ने कदम बढ़ाया ।
पर्वत श्रृंखल सन्मुख छायी, मारग विकट परम कठिनायी ।
धीरे धीरे चलने लागा, चित्त प्राकृत दृश्य में लागा ।
शैल श्रृंग उत्तंग अति भारी, वनस्पति पूर्ण धरा थी सारी ।

दो० गगन स्पर्शी हिमगिरी, पाताल स्पर्शी खाई ।
मध्य में वह था चल रहा, मन में अति विस्माई ॥ १६०९

बद्री नाथ का मग था भारी, जिस की छटा अलौकिक न्यारी ।
नर नारी जो उस मग चालें, अद्भुत शांति को वे पालें ।
आ पहुँचे तब धाम के पास, दर्शन कर मन पूजी आस ।
मग आकाशीं प्रभु उड़ायें, नीचे मन्दिर सब दिख पायें ।
स्वर्ण कलश ऊपर से देखा, श्री प्रभु जी तब उसे उल्लेखा ।
नहीं रुकें हम इस थल मीत, दूर गमन की राखें चीत ।
आगे मिले हिमानी शैल, उस के बाद ये शैल रुपैल ।
स्वर्णमयी नगरी तब आई, स्वर्ण के पर्वत दीन दिखाई ।

दो० स्वर्णिम नगरी तब मिली, अलौकिक जिस का रूप ।
सिद्धों का वह लोक था, जिस की छटा अनूप ॥ १६१०

आगे बढ़े तो दृश्य इक आया, कोटि सूरज तेज सुहाया ।

विष्णु लोक में वे थे आये, दर्शन विष्णु के वहां पाये ।
रूप विष्णु का किमो बखानें, दिव्य अलौकिक रूप ही जानें ।
योग लीन थे विष्णु देवा, लक्ष्मी करत चरण की सेवा ।
अंग प्रत्यंग विष्णु के दिव्य, भूषण वस्त्र धारे दिव्य ।
कुण्डल दिव्य किरीट भी दिव्य, पड़ी गले में माल भी दिव्य ।
चितवन दिव्य मुस्कान भी दिव्य, इंङ्गित दिव्य प्रभाव भी दिव्य ।
उत्पन्न हो रहा नाद भी दिव्य, बंधा समय संगीत से दिव्य ।
तेज दिव्य प्रकाश भी दिव्य, समीर बहत थी वह भी दिव्य ।
वहां की धरा थी सारी दिव्य, आकाश कहें जो वह भी दिव्य ।

दो० दिव्य अलौकिक लोक था, दिखा वहां जो जाय ।
उस लोक की वस्तु का, वर्णन न हो पाय ॥ १६११क
पृथ्वी के हैं तत्व जो, उन में वहां न एक ।
दिव्य तत्वों का लोक वह, अलौकिक विष्णु लोक ॥ १६११ख

विष्णु लोक वे ही लख पावें, दिव्य दृष्टि को जो अपनावें ।
सत्गुरु से जब मिलता योग, त्याग करें जन लौकिक भोग ।
दिव्य दृष्टि के बन अधिकारी, अलौकिक देखें सृष्टि भारी ।
दिव्य लोक से जुड़ता चीत, करत योग से जन जब प्रीत ।
गोपालानन्द वह लख पाया, विष्णु लोक जो दिव्य सुहाया ।
नारद भक्ति रस रंग राता, आया मधुर वह बीन बजाता ।
प्रभु जी के जब सम्मुख आया, मान सहित प्रभु जी बिठलाया ।
नारद कथन किया प्रभु पाहिं, "नाथ ! प्रश्न इक मम मन आहिं ।

दो० एक प्रश्न मम मन बसे, कथूं जो आज्ञा होय ।
संशय तुम बिन हे प्रभु, निवार सके न कोय ॥ १६१२

मेरा प्रश्न यही है नाथ, बेचा निज चित्त जिन तव हाथ ।
कैसा उनका जीवन नाथ, व्यवहार करें किमी जग के साथ ।
कौन वे गुण जो उन के मांहिं, कौन लक्षण जो उन के आहिं ।
करें वे जग का किस विध हित, उन का तो नहीं जग में चित ।
निज चित की न मैं कथ पाऊं, स्पष्ट बात मैं किमी सुनाऊँ ।
अन्तर्यामी आप हो स्वामी, मम सम जीव तो परम सकामी ।
संशय मेरा करें निवारण, दें उपदेश हे जग के कारण" ।
सुन कर उसकी प्रभु जी वाणी, कहा 'हे नारद तुम हो ज्ञानी ।

दो० भक्त शिरोमन हो तुम, और ज्ञान प्रवीन ।
कौन बात तुम को कहूँ, जिस में ज्ञान नवीन ॥ १६१३क
जो कुछ तुम ने है कथा, वही बताऊं मीत ।
भक्ति में जो जन रमे, कैसा उसका चीत ॥ १६१३ख
जिस के मन में मैं बसूं, रहे न उस मन और ।
दो खड्ग नहीं रह सकें, एक म्यान की ठौर ॥ १६१३ग

भक्त रहे वह जग के माहीं, बसे न जग उस के मन माहीं ।
कामिनी कांचन के मध्य बासा, फिर भी उन से रहे उदासा ।
क्रोध न उस के मन में आवे, बिगड़ भी उसका यदि कुछ जावे ।
मम आश्रित हो वह जन रहता, चिन्ता न कुछ मन में वहता ।
योग क्षेम मैं उसका धारूं, उस के कारज स्वयं संवारूं ।

मम प्रतीती जिस मन माहिं, वह जन मेरा भक्त कहाहिं ।
ऐसा भक्त जानों मम रूपा, राखूं उस से नहीं कुछ गूपा ।
उसके हृदय में मम वासा, नेत्रों में हो मम प्रकासा ।

दो० उसे समझ कर रूप मम, करे यदि जन प्रीत ।
प्राप्त करत वह जन मुझे, निश्चय से मम मीत ॥ १६१४

हे नारद मैं तुम्हें बताऊँ, भक्त की महिमा अब कथ पाऊं ।
भक्त के घट में हो मम वासा, भक्त जगत से रहत उदासा ।
भक्त सहज ही मुझे आराधे, माया भक्त को लेश न बाधे ।
योग युक्त मैं भक्त पहचानूं, भक्त की वृत्ति लय मैं मानूं ।
भक्त धर्म में रत रह पावे, गुरु पितु मात की सेव कमावे ।
मम गुण गावत पुलक सरीरा, भक्ती रस बहे नयनन नीरा ।
कामादिमद मोह से दूर, मुक्त काल के भय से शूर ।
काल का भय न भक्त को व्यापे, द्वंदों से वह नहीं संतापे ।

दो० वचन करम मन प्रभु गति, भजन करे निष्काम ।
उस भक्त के चित्त बसें, विश्व पति सुखधाम ॥ १६१५

भक्त रमे प्रभु कथा प्रसंगा, रुचे उसे सन्तन का संगा ।
गुरु की सेवा उसे सुहावे, प्रभु का गुण वह दम्भ तजि गावे ।
श्रद्धा से करे मन्त्र जाप, रहत विरत वह मन से आप ।
इन्द्रिय दमन हो उसकी रीत, करत योग से नित्य वह प्रीत ।
जग को देखे प्रभु का रूप, कण-कण में जो बसत है गूप ।
सन्तोष बसे उसके मन मांहि, परदोष न देखे स्वप्ने माहिं ।

सब से करे सरल व्यवहारा, छल कपट से सदैव न्यारा ।
प्रभु चरणों का परम भरोसा, मिले जो बस उस में सन्तोषा ।
दो० ये हैं सब गुण भक्त के, मिले एक जिस मांही ।
प्रभु भक्त उसे जान लो, भक्ति मिले उस ताहीं ॥ १६१६

कुछ एक गुण और बताऊँ, आचरण भक्त का जिमी लखाऊँ ।
नारद तुम तो सब ही जानो, गुण सभी निज घटहिं पहचानो ।
तेरे गुण ही मैं कथ पाऊँ, सकल जगत के हेतु सुनाऊँ ।
प्रथम भक्त का गुण यह जानूँ, भक्ति के रस मग्न मैं मानूँ ।
विषयों का रस नहीं लुभावे, चित्त माया में रम न पावे ।
सत्संगति में राखे प्रीति, गुरु सेवा बस उस की रीति ।
राग द्वेष को वह परिहारे, काम क्रोध मद लोभ संहारे ।
कर्ण रमें हरि गाथा माहिं, जिह्वा से प्रभु नाम जपाहिं ।
हृदय में हो प्रभु का ध्यान, झुके माथ प्रभु पग सुख खान ।
दो० नेत्रों से निरखत रहे, प्रभु का रूप महान ।
इन्हीं गुणों से जान लो, द्रवित होंय भगवान" ॥ १६१७क
प्रभु-मुख से यह श्रवण कर, नारद भक्त सुजान ।
विदा भया गाता भया, महिमा प्रभु महान ॥ १६१७ख
गोपालानन्द ध्यान से, उठ पाया उस काल ।
मुख में उस के वचन थे, धन्य हो दीन दयाल ॥ १६१७ग

८४. शूली का शूल

प्रभु भक्तों पर कृपा करते, शरणागत के संकट हरते ।

शूली का वे शूल बनावें, जीवन पथ के शूल दुरावें ।
प्रभु समान हितैषी नाहीं, सोच समझ ले मन के माहीं ।
गोपालानन्द को प्रभु दिखाया, अकाल मृत्यु से उसे बचाया ।
इक दिन गया स्नान के हेत, कूप ऊपर निज मीत समेत ।
अकस्मात फिसला जो पांव, धड़ाम गिरा वह उसी कुठांव ।
भुजा पै आया घाव करारा, बही रुधिर की भी वहां धारा ।
कर उपचार प्रभु पै आया, आ कर अपना हाल सुनाया ।

दो० आकर उस ने सब कथी, चोट जिमी थी आई ।
इतने में श्री मुलख ने, तान मधुर इक गाई । १६१८

सुनकर मुलख का गीत मनोहर, लीन भया जिमी मीन सरोवर ।
प्रभु चरणी उस आपा भूला, ध्यान के झूले में मन झूला ।
प्रभु जी ने तब उसे दिखाया, पूर्व जन्म का बोध कराया ।
मथुरा नगर गौघाट के पास, पूर्व जन्म में था वहां वास ।
राम नारायण था तब नाम, गौढ़ ब्राह्मण वंश ललाम ।
भक्त प्रभु का था गौ सेवी, उसकी पत्नी थी इक देवी ।
धर्म कर्म में उस की प्रीति, आचरण करे जिमि कुल की नीति ।
इक दिन गया वह पास के गांम, रनछोर–गांव था जिस का नाम ।
निज पत्नी को कही यह बात, खिलाना गौ को चारा काट ।

दो० गौ को चारा काट कर, देना तुम खिलाय ।
कथा श्रवण हित मैं चला, शीघ्र जाऊँ आय ।। १६१९

लौट वहां से जब वह आया, पत्नी ने था नहीं खिलाया ।

द्वारा काटन तुरत वह लागा, क्रोध में उसका मन था पागा ।
पत्नी देख आई वह पास, लागी ग्रहण करन गण्डास ।
मन में उस के पश्चाताप, भूल का उस को था संताप ।
वह पर क्रोध में था मदहोश, क्रोध से नाशे जन का होश ।
उस न अपना रोष संहारा, दे गंडासा हाथ पै मारा ।
हाथ कटा जा पड़ा वह दूर, भय ने कीना गर्व तब चूर ।
पत्नी तो कुछ न कर पायी, असह्य पीड़ा में मायके आई ।
वहां पै उस का भया देहान्त, क्रोधाग्नी का यह था अन्त ।

दो० क्रोधाग्नी में भसम हों, गुण घनेरे भाई ।
उस पाप ने आज तुझे, आ घेरा इस थाईं ॥ १६२०क
महाप्रभु की शरण में, न होता तू जोय ।
निश्चित तेरी मौत थी, बचा सकत न कोय ॥ १६२०ख

जैसा भी जन कर्म कमावे, बदला उसका निश्चित पावे ।
कर्म के फल से बचना दूभर, क्यों फिर पाप करें हम तिल भर ।
पाप कर्म संकट उपजावे, मल पै मच्छर जिमी बढ़ पावे ।
चैन की नींद न प्राणी सोवे, अपने कर्म के फल को गोवे ।
गुरु योगी की सीख यह मीत, रहे धर्म से नित्य ही प्रीत" ।
प्रभु जी ने जब यह दिखलाया, गोपालानन्द उठ ध्यान से पाया ।
प्रभु चरणों में शीश झुकाया, जो देखा सो सब कथ पाया ।
अपने कर्म को उस पहचाना, दयानिधि की दया को जाना ।

दो० दीनदयाल हैं सद्गुरु, करते दया हमेश ।
जन्म जन्म के कर्म सब, क्षय करें निःशेष ॥ १६२१

८५. गुरु भक्तों की गति

इक दिन की हम और बतायें, गति भक्तों की यहां लिख पायें ।
गोपालानन्द ध्यान में देखा, प्रभु कृपा से उसने पेखा ।
प्रभु जी दिव्य आसन आसीना, गोपालानन्द चरणों में लीना ।
दिव्य आलोक व्याप्त ऐसे, आतप हो मध्यान्ह की जैसे ।
देवलोक से देव चलि आते, जौहार प्रभु को कर के जाते ।
अन्य लोक भी दृष्टि आयें, प्रभु भक्त जहां पर दिखपायें ।
गोपालानन्द के मन तब आयी, समझूं गुरु भक्ति चित्त लाई ।
प्रश्न तभी प्रभु से उस कीना, निज मन का सब भाव कह दीना ।
भक्त गुरु के कैसे होवें, कौन गति जिस को वे गोवें ।

दो० किस २ गति को नाथ जी, गुरु भक्त जन जायें ।
गुरु भक्ति जिमि है कथी, खोल प्रभु समझायें ॥ १६२२

गोपालानन्द के मन जब आई, और प्रभु को विनय सुनाई ।
कहा प्रभु ने "तुम्हें बताऊँ, गुरु भक्तों की गति दिखलाऊँ ।
त्रय विध गुरु के भक्त लो जान, अधम मध्यम व उत्तम मान ।
अधम पाप पुण्य सभी करते, गुरु के आश्रित रह नहीं डरते ।
गुरु रक्षक उनके चित्त मांहि, पाप का फल गुरु दे बखशाहिं ।
ऐसे भक्त की गति लो देख, सन्मुख मरनासन्न वह पेख" ।

प्रभु जी ने जब यों कह पाया, मरणासन्न इक व्यक्ति आया ।
निज गुरु का वह करता ध्यान, उसी भाव से निकले प्राण ।
मर कर कुत्ता वह बन पाया, निज गुरु के तब आश्रम आया ।

दो० मर कर कुत्ता वह बना, करे गुरु की सेव ।
आश्रम की रक्षा करे, जो मिले सो लेव ॥ १६२३

गोपालानन्द प्रश्न तब कीना, "नाथ कुत्ते का इस देह लीना ।
गुरु भक्ति कर कुत्ता होय, यह सब देख कांपा मन मोय ।
प्रभु जी तब उस को समझाया, निज कर्मों से देह यह पाया ।
गुरु की शिक्षा न जो माने, कर्म करे सभी मनमाने ।
पावे जन्म कर्म अनुसार, गुरु भी होत वहां लाचार ।
अधम शिष्य अधम गति पावे, मत उपदेश यह कोई भुलावे ।
गुरु की कृपा इसी में जान, त्यागें न उसे अधम पहचान ।
कुत्ते को भी शरणी लाया, शुभ कर्म का राह दिखलाया ।

दो० सेवक उसे बनाय कर, सेवा उस से लेय ।
सेवा का जो फल कथा, देख वही अब लेय ॥ १६२४क

जूं ही प्रभु ने यह कथा, उतरा दिव्य विमान ।
दिव्य रूप धर तंह चढ़े, निकल कुत्ते के प्राण ॥ १६२४ख

आगे प्रभु जी यह बतलाया, गुरु कृपा ने उसे बचाया ।
अधम जीव को स्वर्ग दिलाया, कौन समझे सद्गुरु की माया ।
मन मानी ने श्वान बनाया, गुरु दाया ने स्वर्ग दिलाया ।
स्वर्ग से जीव लौट जब आवे, उत्तम कुल में फिर वह जावे ।

गुरु जी करें उसकी सम्भाल, लगावें योग में गुरु दयाल ।
योग से तब वह मुक्ति पावे, गुरु कैवल्य धाम पहुँचावे ।
अब हम मध्य शिष्य दिखलावें, उसकी गति तुम को समझावें ।
सुन कर बात गोपालानन्द, कहन लगा "हे परमानन्द ।
गुरु की कृपा मैं लख पाई, एक बात है मम मन आई ।
स्वर्ग में बीते बहु जब काल, किमी मिले फिर वह गुरु दयाल ।
देह त्याग गुरु मुक्त हो जावे, जीव उसी गुरु को किमि पावे ।

दो० दूसर भव में नाथ जी, गुरु मिलेंगे और ।
मेरे मन की बात पर, नाथ करें जी ग़ौर ॥ १६२५

बात सुनी जब दीन दयाल, प्रेम से बोले तब कृपाल ।
ऐसा संशय मत मन आनो, गुरु शक्ति तुम व्यापक जानो ।
नहीं गुरु मरता तीनों काल, ग्रस्त केवल है जग को काल ।
गुरु जगत का ईश्वर भाई, मन में संशय लाओ न राई ।
गुरु अनादी अनन्त महान, धारो चित्त में दृढ़ यह ज्ञान ।
जिस के मन न ज्ञान यह आवे, उस की निष्फल भक्ति जावे ।
सद्गुरु बन्धन में न भाई, देह रचे ज़िस काल वह चाही ।
देह असंख्य सद्गुरु रच पावें, भ्रांतमति चित्त संशय लावें ।

दो० भ्रांतमति जन जगत में, उन्हें ज्ञान न होय ।
कथनी में आ सकत नहीं, गुरु की शक्ति जोय ॥ १६२६

मध्यम भक्त हम तुम्हें दिखावें, उस की गति को भी बतलावें ।
प्रभु जी जब यह वचन उचारा, एक पुरुष तब आन पधारा ।

उस के अन्तर का प्रकाश, निकल गया जब महदाकाश ।
टिका वहां पर गुरु के चरणी, गुरु चरण भये सागर तरणी ।
दिव्य लोक में गुरु ले आया, साक्षी बन उस सुख को पाया ।
बालपने ही योग कमाया, मोक्ष धाम फिर उस ने पाया ।
मध्यम शिष्य नित धर्म कमावे, स्वर्ग भोग फिर मोक्ष को पावे ।

दो० मध्यम शिष्य तुम जान लो, करता शुभ वह काम ।
योग भ्रष्ट जब होत है, पावे स्वर्गिक धाम ॥ १६२७क
भोग करे शुभ कर्म का, करता आ फिर योग ।
गुरु कृपा को पाय कर, दूर करे भव रोग ॥ १६२७ख

उत्तम शिष्य का अब बतलावें, समर्पण का गुण जिस में पावें ।
गुरु को जान जीवन आधार, समझे वह इस जग का सार ।
कण कण में वह गुरु को देखे, गुरु बिन कुछ भी न वह पेखे ।
गुरु बिन बुद्धि न कुछ जाने, गुरु बिन मन भी न कुछ माने ।
गुरु ही धारणा गुरु ही ध्यान, गुरु ही समाधि और ज्ञान ।
गुरु ही लोक और परलोक, गुरु ही हरता जग के शोक ।
मुक्ति मुक्ति सब गुरु के हाथ, इक पल त्यागे न गुरु साथ ।
कर्म करावे गुरु सब आप, भक्त को पुण्य न लागे पाप ।

दो० पुण्य पाप से मुक्त जो, संग न लागे लेश ।
उत्तम शिष्य पहचानिये, गुरु का भक्त विशेष ॥ १६२८क
गुरु का भक्त विशेष जो, होवे गुरु में लीन ।
गुरु का रूप अनन्त है, जान सके प्रवीण ॥ १६२८ख

यही ध्यान में प्रभु बतलावें, गुरु भक्तों की गति दिखलावें ।
गोपालानन्द ध्यान से जागा, आ कर वह प्रभु चरणों लागा ।
जागृत मांझ प्रभु को देखे, स्वप्न सुषुप्ति में भी पेखे ।
ध्यान समाधि में प्रभु संग, भया वह इस विध प्रभु का अंग ।
रे मन तू भी कर ले ध्यान, प्रभु को जान के प्राण के प्राण ।
प्रभु बिन चाले श्वास न एक, रटे प्रभु को श्वास प्रत्येक ।
परन्तु करना यह दुश्वार, प्रभु कृपा बिन कठिन अपार ।
पर तू मन में सोच विचार, लगे न बेड़ा प्रभु बिन पार ।

दो० प्रभु बिन बेड़ा न लगे, भव सागर से पार ।
रे मन ऐसा जान कर, जीवन प्रभु पग हार ॥ १६२६

८६. आकर्षण विद्या

इक दिन प्रभु जी ने समझाया, कृष्ण नाम का अर्थ बताया ।
"आकर्षण से लो कृष्ण पहचान, आकर्षण कृष्ण में परम महान ।
थे योगेश्वर कृष्ण महाराज, मिले न उन सा जग में आज ।
योग में शक्ति वह मिल पावे, आकर्षण विद्या जो कहलावे" ।
सुन गोपालानन्द यह बात, उपजा भाव उस मन तब प्रात ।
"मैं आकर्षण विद्या सीखूं, साधन योग कृष्ण से पूछूं" ।
भया ध्यान में तब तल्लीन, कृष्ण चन्द्र में चित्त कर लीन ।
हुआ कृष्ण का तब साक्षात, गोपालानन्द वही पूछी बात ।

दो० कह दी उस ने बात यह, "कृष्ण चन्द्र महाराज ।
आकर्षण विद्या का मुझे, ज्ञान करावें आज ॥ १६३०क
आकर्षण शक्ति आप में, पूर्ण है भगवान ।
मुझ को भी प्रभु दीजिये, उसका किंचित ज्ञान" ॥ १६३०ख
सुन कृष्ण महाराज ने, कथन किया फ़रमान ।
"आकर्षण विद्या जानिये, मिले गुरु से ज्ञान ॥ १६३०ग

गुरु योगी ही यह बतलावें, गुरु बिना जन योग न पावें ।
संकेत गुरु से तुम ने पाया, मैं जानूं तुम्हें गुरु भिजाया ।
समझ पावो तुम मुझ से बात, आकर्षण विद्या जो है तात ।
आकर्षण विद्या शक्ति खान, मिले जिसे सो बने महान ।
श्वासों में जब तेज समावे, ऐसी शक्ति जन तब पावे ।
आत्म तेज से हो भरपूर, प्राण चलें तब नूरो नूर ।
पड़े जड़ चेतन पर प्रभाव, आकर्षित जीव जन्तु हों जाव ।
आत्म तेज जब प्राण समावे, जड़ चेतन सब वश में आवे ।

दो० दिव्य तेज का वास जब, श्वास श्वास में होय ।
जड़ चेतन सब जगत के, करे आकर्षित सोय"॥ १६३१

इस विध कृष्ण चन्द्र समझाया, रहस्य गूढ़ उन कथन में लाया ।
गोपालानन्द तभी उठ दीना, प्रभु चरणी आ आशिष लीना ।
गुप्त विद्या को उसने जाना, योग ध्यान से उसे पहचाना ।
गूढ़ विद्या जो जग न जाने, योगी ध्यान मध्य पहचाने ।
गुरु कृपा से ज्ञान वह पावे, नेति-नेति जिस को श्रुति गावे ।

श्रुति भी मौन जहां रह जावे, वही ज्ञान जन ध्यान में पावे ।
ध्यान रहस्य की बात बखाने, ध्यान से योगी भेद को जाने ।
ध्यान से मिले सृष्टि का सार, ध्यान से पावे सुख अपार ।
ध्यान से आवागमन नशायीं, ध्यान से कैवल पद जन पायीं ।

दो० ज्ञान ध्यान से ही मिले, गुरु से मिलता ध्यान ।
भाग्य बिना न गुरु मिले, लो निश्चय कर मान ॥ १६३२

८७. ब्रह्मचर्य शिक्षा

ध्यान एक यहां और बतावें, उपदेश अनुपम को सुन पावें ।
मुनियों का था एक समागम, हरिहरानन्द का भी आगम ।
यज्ञ विधि सबने मिल कीनी, गोपालानन्द को शिक्षा दीनी ।
ब्रह्मचर्य का धर्म बताया, प्रभु कृपा का सार जताया ।
वचन कर्म से तुम लो पाल, गुरु आज्ञा को मनहिं सम्भाल ।
विपरीत कर्म न कभी कर पाना, आज्ञा के विपरीत न जाना ।
ध्यान भजन जो भी कर पाओ, गुरु निर्देश से मन में लाओ ।
तन को भूल भी न शृंगारो, पान ताबूल को न तुम धारो ।

दो० तांवूल पान को जो धरे, और करे शृंगार ।
ब्रह्मचर्य से वह गिरे, लो मन में यह धार ॥ १६३३

दृष्टि नीचे कर के चालो, इस विध मन को सदा सम्भालो ।
संग करो जब किसी भी जन का, ध्यान न त्यागो निज प्रभु जी का ।
संग नारी का न कर पाना, ब्रह्मचर्य का नेम निभाना ।
नारी पास न बैठन पाओ, आंख से आंख न कभी मिलावो ।

गुरु को मात पिता तुम मानो, बन्धु बान्धव सभी कुछ जानो ।
आलस, निद्रा, धन और नारी, ब्रह्मचारी के सब ये वैरी ।
मौन को धारण करके रहना, विषय न जग के चित्त में वहना ।
बात करे जब जग की कोई, जाप करे गुरु मन्त्र सोई ।
चर्चा जग की हो जिस काल, करो सिमरण तुम दीन दयाल ।

दो० गुरु मन्त्र जिस चित्त बसे, व्यापे न जग ताहीं ।
गुरु मूरत सिमरण करे, संकट सबन नसाहीं ॥ १६३४

मन वचन और निज कर्म से, दुःखी न करना किसी को इनसे ।
जीवन का यह नियम बनाना, सत्य वचन पे अटल हो रहना ।
होवे सत्य सत्य जो बात, लज्जावो न तुम उस से तात ।
सत्य वचन ही मुख पर लाओ, हिंसा चोरी से बच पाओ ।
मोह जगत का तुम दो त्याग, सत्गुरू चरणी हो अनुराग ।
गुरु से पहले प्रातः जागो, शयन करें गुरु पाओं लागो ।
परिग्रह से बच के चलना, व्यर्थ का संग्रह न तुम करना ।
ब्रह्मचर्य के नेम कठोर, खुशी २ सब पालो भोर ।

दो० ब्रह्मचर्य के नेम को, पाले शुद्ध मनुष्य ।
असंभव हैं वे पालने, जिस का चित्त कलुष्य ॥ १६३५

यज्ञोपवीत जो तुम है धारा, इसका जानो महत्व भारा ।
तीन तार जो तुम हैं धारी, बंधे सूत में हो बलकारी ।
पितृ ऋण इक तार जतावे, दूजी ऋषि ऋण को बतलावे ।
तीजी देव ऋणों की तार, यज्ञोपवीत का समझो सार ।

तीन ऋणों से होओ उऋण, रहन पाये न लेश भी ऋण ।
तार न करना कभी मलीन, रहे शुद्ध और सदा नवीन ।
पांच यज्ञ तुम नित ही करना, गुरु सेवा को चित्त में धरना ।
गुरु की आज्ञा सदा संभारो, धर्म करो व आत्म उद्धारो ।

दो० गुरु की आज्ञा मान कर, करिये साधन योग ।
धर्म कर्म अनुरक्त रह, त्याग करो जग भोग ॥ १६३६क

हरानन्द आचार्य ने, दीना यह उपदेश ।
प्रण कीना गोपाल ने, पालूं मैं आदेश ॥ १६३६ख

मोपालानन्द के सब ये ध्यान, पढ़े सुने जो लाकर कान ।
उपदेश मिले उसे बहु भारी, प्रभु कृपा का बन अधिकारी ।
गोपालानन्द प्रभु पग लागा, पुण्य कर्म तब उस का जागा ।
दिव्य दृष्टि प्रभु जी ने दीनी, ईश्वर की दिव्य सृष्टि चीनी ।
हरदम रहत प्रभु के संगा, ध्यानी बना भया प्रभु अंगा ।

८८. ध्यानी भक्त बिहारी लाल

एक चरित्र हम और बतावें, ध्यानी जन की कथा सुनावें ।
बिहारी लाल था उस का नाम, फैक्टरी में वह करता काम ।
अमृतसर का वह था वासी, प्रभु चरणों का भी विश्वासी ।
नित्य प्रातः वह था आता, प्रभु चरणों में शीश झुकाता ।
सेवा प्रभु की कर के जाता, अथवा योग समाधि लगाता ।
निशिदिन प्रभु का नाम ध्याता, उसे न भक्ति बिन कुछ भाता ।

प्रभु दर्शन कर घर को जाता, भोजन कर फिर काम सिधाता ।
दैनिक उस का यही था नेम, प्रभु चरणों में अटल प्रेम ।

दो० प्रभु चरणों में प्रेम था, और नित्य यह नेम ।
प्रभु चरणों में वन्दना, करता सहित प्रेम ॥ १६३७

इक दिन जब प्रभु चरणी आया, और ध्यान में बैठ दिखाया ।
प्रभु कृपा से भयी समाधि, माया की सब नाशी व्याधि ।
घन्टे कई समाधि आसीना, घर जाने का नाम न लीना ।
फैक्टरी का भी काल विहाया, समाधि से न उठ वह पाया ।
पत्नी ने तब मनहिं विचारा, क्यों कर पति न सदन पधारा ।
भेजा निज सुत को तत्काल, देख आवे जा पिता का हाल ।
बालक आश्रम में चलि आया, प्रभु चरणि आ शीश झुकाया ।
निज माता की विथा सुनायी, हेत पति जिस चिन्ता लायी ।

दो० सुनी प्रभु ने बात जब, कहन लगे 'हे बाल ।
अभी गया है तात तव, होवो मत बेहाल' ॥ १६३८

बालक फैक्टरी में चलि आया, पिता को बैठे वहां उस पाया ।
घर पर जा सब बात बताई, जो कुछ वहां उस देख थी पाई ।
माता को तब दीन सन्तोष, "देखे पूज्य पिता बिन रोष ।
प्रभु जी से सब जान के हाल, गया मैं आफिस में तत्काल ।
पूज्य पिता बहु काम में लागे, मैं गया न उन के आगे ।
सोचा दौड़ मैं घर को जाऊँ, आप को आ कर सब बतलाऊँ" ।
ऐसा कह उस लीन श्वास, माता मन उपजा विश्वास ।

भोजन पका था पड़ा तयार, भेज दिया आफिस तत्काल ।
दो० आफिस भोजन भेज कर, लीना सुख का श्वास ।
बीती चिन्ता की घड़ी, पूत बंधाई आस ॥ १६३६

आश्रम की अब बात बतावें, प्रभु महिमा को जिमि लख पावें ।
समाधि में जब वह था लीना, बिहारी लाल सुखी आसीना ।
प्रभु जी ने बहु दृश्य दिखाये, लोक-लोकान्तर उसे घुमाये ।
इतने में बहु काल विहाया, आफिस का वेला हो आया ।
समाधि से न भक्त उठाया, उस का प्रभु खुद रूप बनाया ।
आफिस में तत्काल पधारे, उस के काम किये वहां सारे ।
सर पर हों जब खुद भगवान, भक्त की जावे क्यों फिर आन* ।
नरसी की जिस हुण्डी तारी, उसी बनाया रूप बिहारी ।
इक बिहारी ध्यान आसीना, दूजा आफिस कारज कीना ।
दो० प्रभु का प्राकृत रूप भी, था आसन आसीन ।
सहस्र शेष न कथ सकें, प्रभु की महिम असीम ॥ १६४०

बिहारी स्वयं ध्यान में मग्ना, रूप बिहारी आफिस लग्ना ।
स्वयं प्रभु आसन आसीना, आफिस का भी कारज कीना ।
ब्रह्मा जब थे ग्वाल छिपाये, कृष्ण चन्द्र बहु रूप बनाये ।
अयोध्या वासी मिलने आये, रामचन्द्र थे बहु बन पाये ।
प्रभु जी वही अब महिम दिखाई, अपने भक्त को भये सहायी ।
सनातन रीत यही चली आई, सदैव भक्त के प्रभु सहायी ।

*आन—इज्ज़त

बिहारी लाल जब ध्यान त्यागा, प्रभु चरणी तब आ कर लागा ।
घटिका प्रभु जी ने दिखलाई, विलंब भया यह बात बताई ।
कर प्रणाम तुरन्त सिधाया, दौड़ा दौड़ा आफिस आया ।
मर्यादा को प्रभु पाल दिखावें, भक्तों को मर्याद सिखावें ।
मर्यादा से प्रभु करें प्यार, उल्लंघन उस का न स्वीकार ।

दो० पुरुषोत्तम मर्याद के, पाल रहे मर्याद ।
शरणी आवे भक्त जन, कृपा करें अगाध ।। १६४१

आफिस में चल कर वह आया, विलंब भया है डर मन पाया ।
जब अधिकारी से मिल पाया, अपना दोष उसे जतलाया ।
विस्मय से अधिकारी देखे, "क्या कहते हो भाई" उल्लेखे ।
"ठीक समय पर तो तुम आये, निज हस्ताक्षर भी कर पाये ।
किस कारण हो भये अस्वस्थ, विस्मृति ने जो लीना ग्रस्त ।
पान करो जा कर तुम पानी, दूर भये जिस से परेशानी ।
सारा काम तो है तुम कीना, देखा खुद मैं बहत पसीना ।
शायद परिश्रम की थकान, जिस ने कीन तुम्हें हैरान ।
जा कर लो कुछ तुम विश्राम, सचमुच कीना बहुत ही काम ।

दो० देख तुम्हारे काम को, मुदित हमारा चित्त ।
तुम्हीं सरीखे नरन से, सचमुच मेरा हित" ।। १६४२

सुन अधिकारी की वह वाणी, प्रभु की दया बिहारी जानी ।
शतशः करे मन में प्रणाम, राखी लाज है उस की राम ।
स्वयं रूप जो भक्त का धार, करते उस के हित सब कार ।

लाज भक्त की जिमि बच पाय, स्वयं करें प्रभु वही उपाय ।
'सेवक' उसी प्रभु का दासा, पूजत चरण सहित विश्वासा ।
आयु भर नहीं और ध्याया, उसी प्रभु का ही गुण गाया ।
ऐसा क्षण कभी नहीं आया, ध्यान नाथ का हो विसराया ।
उस प्रभु के चरण जो लागें, मुक्ति भुक्ति में वे जन पागें ।

दो० प्रभु चरणों की प्रीत की, बाढ़ बहे मन माहिं ।
उमड़ २ जग में बहे, "सेवक" के वश नाहिं ॥ १६४३

बिहारी लाल का यह इतिहास, पढ़े सुने जो कर विश्वास ।
प्रभु की मूरत उस मन माहिं, दिव्य रूप में रहे समाहिं ।

८९. जसवन्त राय को दिव्य दर्शनों का दान

घटना इक अब और बतावें, लिखें वही जो प्रभु लिखावें ।
जसवन्त* राय प्रभु का प्यारा, वह तो बालक था इक न्यारा ।
उस बालक को प्रभु की टेक, प्रभु बिन रुचती बात न एक ।
प्रभु के पास नित चल के आता, सेवा में बहु काल बिताता ।
प्रभु भी करते उस से प्यार, धन्य बालक जो पात दुलार ।
संग प्रभु के हर दम रहता, आज्ञा प्रभु की प्रेम से वहता ।

दो० प्रभु की आज्ञा जो मिले, करता ला वह चित्त ।
जानत प्रभु को मात पित, माने प्रभु को मित्त ॥ १६४४

इक दिन प्रभु थे सुख आसीना, जगत पिता मस्ती में लीना ।
कहा जसवन्त को "दही लाओ, बाहर से सांकल ला जाओ ।

*जसवन्त राय की धूप की दुकान अमृतसर में दुर्ग्याना मन्दिर के समीप है ।

शीघ्र ही तुम लौट के आना, विलंब न पुत्र लेश भी लाना" ।
जसवन्त ने पात्र संग में लीना, सांकल द्वार को उस दे दीना ।
ले कर दही को जब था आता, देखा प्रभु को मग पर जाता ।
आगे बढ़ उस शीश झुकाया, आशीर्वाद प्रभु से पाया ।
आ कर फिर जब सांकल खोला, प्रभु बैठे थे वहीं अडोला ।
क्या लीला यह मनहिं विचारे, बाहिर मिले प्रभु अभी प्यारे ।

दो० मग पर देखे नाथ जी, पा या आ शि र्वा द ।
बन्द भवन में भी मिले, महिमा प्रभु अगाध ।। १६४५

प्रभु का पा सकें किमि पार, थके वेद भी कथ २ हार ।
तब उस प्रभु जी को दधि दीना, कृपा नाथ कृपा कर लीना ।
जसवन्त को बीती प्रभु भुलाई, मन न स्थिर रही विस्माई ।
प्रभु चरणी जिनका हो वासा, सेव करें धर चित्त विश्वासा ।
प्रभु लीला को वे जन देखें, दिव्य लीला को निशि दिन पेखें ।
प्रभु लीला का पार न पावें, प्रभु लीला किमि कथनी लावें ।
प्रभु लीला है अपरंपारा, जाने कौन उस का विस्तारा ।
प्रभु लीला की सूक्ष्मताई, किस की समझ में अब तक आई ।
प्रभु लीला है लोकलोकाई, प्रभु लीला ही रचन रचाई ।
प्रभु लीला यह सकल पसारा, प्रभु लीला ही विश्व है सारा ।
प्रभु लीला की अद्भुतताई, शारद नारद भी विस्माई ।
लीला का पा सकें न पार, रहे ऋषि सब कथ २ हार ।

दो० जिस लीला को कथन में, ला सके नहीं वेद।
उस लीला को देखते, प्रभु भक्त बिन खेद ॥ १६४६क
रे मन लीला नाथ की, यदि तुम्हें विस्माय।
शरण प्रभु की ग्रहण कर, भूल जा दूज उपाय ॥ १६४६ख

लीला एक जो आगे गाई, निज मुख से जसवन्त सुनाई।
कहा जसवन्त "प्रभु महाराज, हमारे घर भी चालो आज।
मैं चाहता निज घर ले जाऊँ, अपने कमरे में बिठलाऊँ।
निज कर से मैं भोग लगाऊं, चरण पखार चरणामृत पाऊं।
स्वीकार करो विनय मम देव, चरणों की मुझे मिले जो सेव"।
इस विध कह उस शीश झुकाया, प्रभु जी ने मुख से फरमाया।
"चिरञ्जीव तुम घर को जाओ, मन में खेद न लेश भी लाओ।
अवसर पा हम भी आ जायें, इच्छा पूरण तव कर पायें।

दो० चिरञ्जीव तव वास में, ले आवें भगवान।
जाना बन्द कपाट कर, बैठें ला हम ध्यान" ॥ १६४७क
प्रभु आज्ञा को पाय कर, चला गया वह बाल।
मग में सोचन वह लगा, बताया न प्रभु काल ॥ १६४७ख

प्रभु ने काल नहीं बतलाया, समय आने का न कथ पाया।
क्या जानूं प्रभु कब आ जायें, और न यदि मुझ को वे पायें।
सुन्दर अवसर हाथ से जाये, यह चिन्ता अब मुझे सताये।
इसी सोच में वह घर आया, द्वार खोल जब कदम बढ़ाया।
सन्मुख बैठे सद्गुरु देव, राम लाल देवों के देव।

दिव्य रूप उनका मन मोहे, पुष्प माल गल में अति सोहे ।
तेजोपुञ्ज दिव्य आकार, वस्त्र श्वेत धारे करतार ।
मन मोहनी उन की मुस्कान, ज्ञानी निरख भूलें निज ज्ञान ।

दो० ऐसे प्रभु के रूप को, निरख राय जसवन्त ।
हक्का बक्का रह गया, आये किमि भगवन्त ॥ १६४८क
कमरा तो था बन्द यह, आया प्रभु को छोड़ ।
यहां आने में नाथ ने, खूब लगाई होड़ ॥ १६४८ख

चरणों का उस कीन स्पर्श, अतीव था उस के मन में हर्ष ।
मैं बतलाऊं सब को जाय, घर हमारे प्रभु हैं आय ।
सूचना देकर जब वह आया, वहां फिर न उस प्रभु को पाया ।
किधर गये प्रभु मन-पछताता, जसवन्त धैर्य न मन में लाता ।
सुन्दर अवसर हाथ गंवाया, प्रभु की सेवा न कर पाया ।
प्रभु की माया प्रबल महान, उसका मिले न किसी को ज्ञान ।
रूप अनेकों लें प्रभु धार, निज माया को कर स्वीकार ।
भक्त हेत बहु रूप बनावें, जग को माया से भरमावें ।

दो० भक्तेन हित कई रूप ही, प्रकटावें भगवान ।
यह है रीत सनातन, मिलें बहुत प्रमाण ॥ १६४९

नासिक में दो रूप बनाये, स्वाईं में निज कई प्रकटाये ।
बिहारी लाल का रूप बनाया, आफिस का जिस काम चलाया ।
जसवन्त हेत उन्हीं ने धारा, मनमोहन अति रूप प्यारा ।
उसी प्रभु पर मैं बलिहारी, करे जो पग पग पर रखवारी ।

स्मरण मात्र ही जिन का न्यारा, भक्त जनों का परम सहारा ।
शरणागत जब दास ध्याये, निमेषमात्र में बनें सहाय ।
समर्पण भाव जिस जन में होवे, प्रभु में आपा जन जो खोवे ।
त्यागे मन से जब वह काम, प्रभु भक्ति से ही राखे काम ।

दो० ऐसे जन के हेत ही, प्रभु धरावें देह ।
प्रेम भाव जब मन बसे, आवें प्रभु जी गेह ॥ १६५०

लीला अनेक प्रभु प्रकटाईं, वर्णन में कुछ एक ही आईं ।
प्रेम सहित जो इन को गावे, दुःख संकट से वह तर जावे ।
एक बार प्रभु सुख आसीना, भक्त भी बैठे प्रभु चित्त लीना ।

९०. भगवान विष्णु की योग समाधि का स्वरूप

एक भक्त ने बात चलाई, अपने मन की उस कह पाई ।
"बात प्रभु इक मम मन आई, आप से समझूं हे सुखदाई ।
जग में हो जब धर्म की हान, और बढ़े जब पाप महान ।
ले अवतार प्रभु चलि आवें, विष्णु के वे रूप कहावें ।
शेष नाग पर विष्णु विराजें, क्षीर सागर मध्य वे साजें ।
लक्ष्मी रहत चरण आसीना, विष्णु योग निद्रा में लीना ।
क्षीर समुद्र वह कहां स्वामी, दृश्य जहां का अन्तर्यामी ।

दो० दृश्य अलौकिक देख कर, चित्त परम विस्माय ।
शान्त रूप वह विष्णु का, क्यों कर क्षोभ में आय" ॥ १६५१क

सुन भक्त की बात को, उत्तर दीना नाथ ।
विष्णु के दिव्य रूप का, रहस्य कथूं इक साथ ॥ १६५१ख

व्यापक रूप विष्णु का जानो, जगदाधार उसी को मानो ।
आश्रित विश्व विष्णु के सारा, बल विष्णु का अलौकिक न्यारा ।
हो निष्कामी काम चलावे, अकर्ता रह वह कर्म कमावे ।
अपानीपाद है उस का रूप, अलख निरञ्जन दिव्य स्वरूप ।
दिव्य दृष्टि से दृष्टि आवे, जभी समाधी योगी लावे ।
अनेक रूप विष्णु प्रकटावे, व्यापक भी वह बन दिखलावे ।
चतुर्भुजी कभी हो जावे चक्रादि को करहिं धरावे ।
वामनादि जो रूप धराये, सभी ध्यान में योगी पाये ।

दो० सृष्टि का नहीं आद है, अनन्त विष्णु के रूप ।
विष्णु के हर रूप में, योग शक्ति है गूप ॥ १६५२

गुप्त बात को योगी जाने, रहस्य विष्णु का वही पहचाने ।
विष्णु शेषशायी कथ पावें, उस का भेद तुम्हें बतलावें ।
शेषनाग कुण्डलिनी जानो, प्रकृति का ही बीज वह मानो ।
प्रकृति वश है ईश के भाई, शेष पै विष्णु की प्रभुताई ।
कुण्डली जागृत वह कर पावे, प्रकृति को जो वश में लावे ।
क्षीर सागर का रूप जो जानो, व्यापक शुद्ध ज्ञान ही मानो ।
योगी का जो ज्ञान में वास, क्षीर सागर में वह अधिवास ।
भेद इस का तुम लेवो जान, विष्णु का लो रूप पहचान ।

दो० शुद्ध ज्ञान में वास हो, कुण्डली हो प्रबुद्ध ।
विष्णु रूप ही मानिये, ऐसा ज्ञानी बुद्ध ॥ १६५३

एक बात तुम और भी देखो, लक्ष्मी चरणा सीना पेखो ।
योगी की सब संपद दासी, योगी उस से रहत उदासी ।
ऋद्धि सिद्धि हों योगी पास, योगी उन से रहत उदास ।
नेत्र बंद विष्णु रह पाये, योगी ध्यान समाधि लाये ।
यह रहस्य प्रभु जी समझाया, भक्तन चित्त बहुत वह भाया ।
विष्णु योगेश्वर महाराज, समझा भक्तन तथ्य यह आज ।
प्रभु जी ने तब यह समझाया, जब जब विष्णु देह धराया ।
योगेश्वर वे बन कर आये, योग वासिष्ट वा गीता लाये ।

दो० विष्णु का अवतार जब, भया जगत के बीच ।
शिक्षा देवें योग की, उद्धरें पापी नीच ॥ १६५४क
एक भक्त ने तब किया, प्रश्न "प्रभु महाराज ।
शंख गदा और पद्म से, चक्र से क्या काज ॥ १६५४ख
ये चारों क्यों हाथ में, धारण कीने देव ।
इन का भी जो भेद है, स्पष्ट करें अधिदेव" ॥ १६५४ग

बात कही प्रभु तब समझाय, गूढ़ बात वे मुख पै लाय ।
"शिक्षा हेत ये हैं प्रतीक, अनुसरण करें जन योग की लीक ।
चक्र का है यही संकेत, जन्म मरण है भय का हेत ।
चक्र चौरासी सदा डरावे, जीव न शांति को कभी पावे ।
पद्म कहे निर्लेप रह पावो, जग में पंकज सम विकसावो ।
शंख† से शम का मिले संकेत, शांत करो चित्त योग के हेत ।

† शंख—शं (शान्त करना) + ख (मन आदि इन्द्रियां)

गदा कहे दमन करो भाई, इन्द्रियदमन है बहु सुखदाई ।
शंख चक्र गदा पद्म की सीख, कथन करें सब योग की लीक ।
दो० शंख चक्र गदा पद्म की, शिक्षा लो तुम जान ।
शिक्षा पर जब जन चले, पूजित हों भगवान" ॥ १६५५क
प्रभु के सुन उपदेश को, कृतार्थ भये सुजान ।
विष्णु के दिव्य रूप का, प्राप्त भया विज्ञान ॥ १६५५ख
शिक्षा योग की इस मिस पाई, समझी विष्णु की प्रभुताई ।
एक बात प्रभु पुनः बतावें, प्रभुता विष्णु की जतलावें ।
विष्णु को बहु रूप में देखो, शेषशायी न केवल पेखो ।
सहस्र नाम विष्णु के आये, भिन्न २ गुण जिन में प्रकटाये ।
योग नाम विष्णु का आया, योगिजनों का देव कहाया ।
सिद्ध नाम विष्णु का भाई, सिद्धियों की जिस में प्रभुताई ।
वेदविद[1] भी विष्णु जानो, कवि सनातन भी वह मानो ।
धन्वी[2] और जेता भी सोई, महाबली उत्साही होई ।
महाबुद्धि महावीर्य कहावे, सुरारिहन्ता[3] जग कथ पावे ।
विराट रूप विष्णु कहलाता, सहस्रपग[4] सहस्राक्ष[5] सुहाता ।
दो० विराट रूप विष्णु कथा, और वह सहस्रपाद ।
नैकरूप[6] वह जानिये, विदित वही त्रिपाद[7] ॥ १६५६क
विष्णु रूप सब जगत है, अनिल[8] अनल वह होई ।

१. वेदो का ज्ञाता । २. धनुषधारी । ३. असुरों का वध करने वाला ४. हजारों पैरों वाला ५. हजारों आंखों वाला ६. नैकरूप—अनेक रूपों में ७. वामन अवतार जिस ने तीन पांव में सारी पृथ्वी को नाप लिया । ८. अनिल=वायु ९. अनल=अग्नि ।

पृथ्वी व जल जानिये, रूप गगन वह सोई ॥ १६५६ख
जगत भुलावे योग जब, त्याग करे मर्याद ।
प्रकट करें निज शक्ति को, विष्णु देह तब धार ॥ १६५६ग
प्रभु के इस उपदेश को, श्रवण करे नर नार ।
भ्रांतमति से मुक्त हो, गहे सत्य का सार ॥ १६५६घ

इस विध प्रभु जी ने समझाया, योग धर्म का ज्ञान कराया ।
नित्य प्रभु के पास जो आते, सज्जन पुरुष ज्ञान को पाते ।

९१. नारियों को योग साधन का उपदेश

एक दिवस इक नारी वृन्दा, आया मिल प्रभु चरणारविन्दा ।
चाह उपदेश की सब मन माहिं, योग जिज्ञासा ले कर आईं ।
एक नारी ने सह सन्मान, कीना प्रभु से इमी बखान ।
"हे देव हम चल के आईं, जिज्ञासा हैं कुछ मन में लाईं ।
विस्तृत आपका यश जो नाथ, श्रवण पड़ा हम भई सनाथ ।
करिये हम को कुछ उपदेश, जन्म सुधारें पा निर्देश ।

दो० जन्म मरण के रोग के, जीव पड़ा जो पेश ।
कैसे उस से मुक्त हो, नाथ करें उपदेश ॥ १६५७

कौन कर्म जो हम कर पावें, व्रत नेम भी हमें बतावें ।
पाठ पूजा का जो विधान, करावें उस का भी प्रभु ज्ञान ।
नारिन का जो होता धर्म, उस का भी समझावें मर्म ।
नारी धर्म को ले पहचान, देवें प्रभु जी वह सब ज्ञान" ।
इमि कह उस ने मौन अपनाया, प्रभु जी ने तब सब समझाया ।

देवी-जन का यह समुदाया, चल कर जो है आश्रम आया ।
क्या स्वागत हम कर दिखलावें, मातृ शक्ति को शीष झुकावें ।
मातृ शक्ति की उपमा भारी, कथन में सकती आ न सारी ।
जितनी जगती जग उपजाई, माता से उस शिक्षा पाई ।
चलना फिरना मात सिखाया, खान पान का ढंग बतलाया ।
भाषा का भी ज्ञान जो भारा, दीना माता ने वह न्यारा ।
दुर्लभ नारी जीवन जानो, जगद्गुरु उस को पहचानो ।

दो० जगद्गुरु नारी जन्म, बहु गुणों की खान ।
योग धर्म यदि वह गहे, नित्य मुक्त पहचान ॥ १६५८क
मुक्ति पाना सरल है, योग करे यदि नार ।
भाव भक्ति की खान वह, सहज हो भव से पार ॥ १६५८ख

स्वयं तरे वह औरन तारे, स्वयं उबरे परिवार उबारे ।
जन्म मरण के दुख जो भारे, दैत्य रूप वे जानो सारे ।
दिव्य रूप जब नारी धारे, उसी दैत्य को वही संहारे ।
नारी जन जब यह सुन पाया, प्रभु जी का उपदेश सुहाया ।
बात नई उन थी सुन पाई, यह नारी की महत्वताई ।
उन के मन तो बसा था और, नारी का है अधम ही ठौर ।
प्रभु बतलाया महान गुरुत्व, नारी का विशेष प्रभुत्व ।
संशय उपजा सब मन भारी, बोल उठी तब इक वहां नारी ।

दो० इक नारी तब कह उठी, हो कर परम गंभीर ।
हम तो जानें बात यह, नारी अधम शरीर ॥ १६५९क

'नारी की झाईं परत, अंधा होत भुजंग'।
ऐसे ऐसे वचन सुन, अन्य चढ़ा मन रंग ॥ १६५९ख
किस विध मन विश्वास हो, जो बतलावें आप।
पराधीन नारी जन्म, विविध सहे संताप। १६५९ग
यह संशय प्रभु आप निवारो, सन्मार्ग पर हम को डारो।
कौन कर्म जो हम कर पावें, जीवन में कुछ श्रेय कमावें।
आप की वाणी से उत्साह, सचमुच मिला है हमें अथाह।
मानव जीवन जो हम पाया, मुक्ति का यह द्वार कहलाया।
इसे कथे कोई क्यों खराब, गंगा का जिमि पावन आब।
सुन कर उस की सुन्दर वाणी, कहा प्रभु "देवी कल्याणी।
भूल से भी न मन यह धारो, भेद भाव की बात निकारो।
मूर्खता के सब वे वचना, चाहे किसी की हो वह रचना।
स्त्री पुरुष में भेद न कोई, समान धर्म के मग पर दोई,।
नारी बिन न यज्ञ हो पाये, वेद वचन प्रत्यक्ष बताये।
अधर्म के मग को नारी त्यागे, और धर्म के मग जब लागे।
स्वयं तरे परिवार तरावे, उस की क्षमता को कर पावे।
हम बतलावें इक इतिहास, नारी के जिस में गुण खास।
दो० ऐसा इक इतिहास है, पति तराया नार।
योग धर्म में लग स्वयं, कीना निज उद्धार ॥ १६६०

९२, योगिनी सुकर्मा उपाख्यान

गौढ़ देश का इक था राजा, राजों का भी जो अधिराजा।

इस नाम से वह विख्यात, सुकर्मा नार देवी साक्षात ।
एक दिवस राजा सुन पायी, महिमा तीर्थन की सुखदायी ।
उस के मन में तभी समायी, यात्रा आरंभ करूं मन भायी ।
फौज सजाई हाथी घोड़ा, संग में लीना धन न थोड़ा ।
संग में ले कर सैना कोष, रानी सहित चला निर्दोष ।
सुत को सौंप दीना निज राज, स्वयं विदायी लीन सहसाज ।
भारत की मर्याद चलि आई, वृद्ध काल सिमरें रघुराई ।
चतुर्थ अवस्था में जब आवे, मोह माया से चित्त हटावे ।

दो० चतुर्थ अवस्था में नर, करे ईश से प्यार ।
मुख ले जग से मोड़ वह, जान जगत निस्सार ॥ १६६१

जिस तीर्थ में राजा जाता, यज्ञ दान वहां बहु कर पाता ।
दान में गौएं हस्ति देता, विप्र जनों से आशिष लेता ।
अन्न का दान स्वर्ण का दान, रत्नों का भी देता दान ।
प्रत्येक तीर्थ पर करता दान, राखत न वह कोष का ध्यान ।
घटे कोष जब देता दान, उस का चित न होत म्लान ।
कीने इस विध तीर्थ अनेक, बचा न धन न सेवक एक ।
राजा रानी रहे अकेले, दोनों विचरें जंगल बेले ।
यात्रा की न हिवस* रिसाई, तीर्थ की चित चाह अधिकाई ।

दो० यात्रा की उस लग्न में, आ पहुँचे ऋषिकेश ।
जंगल में इक महात्मा, मिला उसी प्रदेश ॥ १६६२

* हिवस = इच्छा

राजा रानी वहीं टिकाये, साधु-सेवा हित रुक पाये ।
बहुत काल उन वहां बिताया, कंद खाय निर्वाह चलाया ।
प्रसन्न भया सेव से साध, उपजी कृपा मनहिं अगाध ।
कहन लगा "जो हो मन धारा, मांग लेवो तुम वह फल सारा ।
बहुत काल कीन सेवकाई, मांगो जो मन होवे भाई ।
सेवा साध न निष्फल जावे, सेवक मनचाहा फल पावे ।
तीन लोक के सुख जो भारे, साध सेव से मिलते सारे ।
साध सेव का व्रत जो धारे, अपना जीवन वही संवारे ।
दो० साध सेव के नेम से, हो आत्म कल्याण ।
करे सेव जो साध की, पावे सुख महान" ॥ १६६३क
सुने साध के वचन जब, कहन लगा ब्रज राज ।
"तीर्थ करूं जहान के, चाह बसे मन आज ॥ १६६३ख
चाह बसे मन आज यह, तीर्थ न छूटे कोऊ ।
सब तीर्थों में जाय कर, दान करूं जो होऊ ॥ १६६३ग
हम पर कीजिये कृपा आज, तीर्थ करें हम सब महाराज ।
तीर्थ यात्रा रही अधूरी, तव कृपा से होवे पूरी" ।
राजा कह चुका जब बात, कही रानी ने तब निज बात ।
"मुझ को इच्छा मोक्ष की नाथ, मिले मोक्ष करूं जन्म सनाथ ।
जन्म मरण से मुक्ति पाऊं, मानव देह को सफल बनाऊं ।
जगत महा दुःखों का मूल, साधन कौन से निकले शूल ।
साधन उसी में मैं लग जाऊं, मोक्ष की साध जिमि पा पाऊं ।
ऐसी स्वामिन करिये दाया, मुझे मिले जिमि आप का साया ।

दो० शरण मिले मुझे आप की, दया आप की होय ।
मोक्ष मिले भव वन्ध कटे, और न भावे मोय" ॥ १६६४

रानी की सुन कर यह वाणी, योगी ने वह बहु सन्मानी ।
कहा "पुत्री तू चतुर सयानी, इच्छा मोक्ष की मन जो आनी ।
मोक्ष पाओगी मैं अनुमानूं, कर्म तुम्हारे उत्तम जानूं" ।
राजा को फिर उस संबोधा, त्यागन को निज इच्छा बोधा ।
"राजन् तीर्थ हैं विविध अनेक, गिन भी सको न तुम प्रत्येक ।
कई जन्म भी करते जावो, अन्त न तीर्थों का तुम पावो ।
इस इच्छा को देवो त्याग, पत्नी संग जा योग में लाग ।
तीर्थों में जो पुण्य कमावो, उस से स्वर्ग को केवल पावो ।

दो० दान पुण्य जो जन करे, तीरथ थल में जाय ।
स्वर्ग लाभ वह करत हैं, मोक्ष को वह न पाय ॥ १६६५क

मोक्ष का मारग एक है, योग साधन लो जान ।
योग उसी का तुम दोय, मुझ से पावो ज्ञान ॥ १६६५ख

योग समान न दूजा ज्ञान, मोक्ष से उत्तम गति न जान ।
योग करो व मोक्ष को पावो, आवागमन में फिर न आवो ।
योग से तीनों ताप की हान, योग के कुछ न और समान ।
योग से ऋषि पदवी नर पावे, योग से देवर्षि हो जावे ।
योग से तन मन बुद्ध हो शुद्ध, योग से ज्ञान की जोत प्रबुद्ध ।
योग से आत्म जोत प्रकाश, योग से जन का पूर्ण विकास ।
योग को कर लो तुम कमाई, विलंब लावो न मेरे भाई ।

योग से सफल करो निज देह, त्यागो भ्रांत मती संदेह ।
दो० भ्रांत सकल तुम छोड़ कर, कर लो राजन योग ।
क्या भरोसा देह का, यम का है यह भोग" ॥ १६६६

साधु राजा को समझाये, राजा न कुछ ध्यान में लाये ।
रानी साधन लगी कमाने, योगी लगा उसे सिखलाने ।
ज्ञान का उसे भया प्रकाश, देखे लोक-लोकान्तर खास ।
इतना कह प्रभु जी समझाया, नारीगण को याद दिलाया ।
नारी का है गुण यह खास, उपजे उस के चित्त विश्वास ।
श्रद्धा से शुभ कर्म में लागे, धर्म कर्म को न वह त्यागे ।
रानी ने शुभ कर्म कमाया, साधा योग सिद्धि को पाया ।
दिव्य लोक देखे उस ऐसे, तीर्थ कोई न जग में जैसे ।
देखे लोकपाल साक्षात, बैठ समाधि में नित्य प्रात ।
चौदह भुवन वह हो के आई, योग साधा गुरु कृपा पाई ।
दो० गुरु कृपा को पाय कर, और साध के योग ।
सुकर्मा सु-कर्मा भई, भई मोक्ष के योग ॥ १६६७

पतिव्रता जो होत है नार, विसारत पति को न किसी काल ।
स्वर्ग में भी निज पति को ध्यावे, मोक्ष पति बिन उसे न भावे ।
इसी से कथन किया यह सार, 'नार से लागत पति भी पार' ।
इक दिन का हम करें बखान, नृप देखा इक दृश्य महान ।

* अर्थात् सुकर्मा नाम की वह रानी अपने नाम को सार्थक कर पाई। सुकर्मा का अर्थ है शुभ कर्म करने वाली।

रानी का देह उड़ता पेखा, चमत्कार यह राजा देखा ।
समाधी से जब जागी रानी, राजा ने वह बात बखानी ।
"भया तुम्हें था क्या मम नार, घूमा जो तुम गगन अपार ।
किस विध ज्ञान यह तुम ने पाया, अजीब अचंभा मम मन छाया ।
दो० अजब अचंभा है भया, मम मन में मम नार ।
कैसे शिक्षा यह मिली, अजब कौन जो कार" ॥ १६६८

सुकर्मा ने जब यह सुन पाया, पति को उस ने तब समझाया ।
"यह सब प्राणायाम की कार, योग से पावें ज्ञान अपार ।
योग अनुपम विद्या नाथ, योग साध जन बने सनाथ ।
जग भ्रमण की इच्छा त्यागो, गुरु चरणों में जा कर लागो ।
लोक लोकान्तर आवो देख, यदि लेवो तुम योग की टेक ।
आवो दोनों योग कमावें, गुरु कृपा से भव तर जावें" ।
रानी ने बहु विध समझाया, टस से मस न उस को पाया ।
समाधि में तब गई अडोली, कई दिवस उस आंख न खोली ।
दो० कई दिवस रही बैठ वह, समाधि में लवलीन ।
द्वार दशम में प्राण थे, गुरु चरणी मन मीन ॥ १६६९

कई दिवस न आंख उघारी, नृप अनुमाना स्वर्ग सिधारी ।
गंगा में उसे दीन प्रवाह, स्वयं लीन तब तीर्थ की राह ।
गंगा ने न उसे बहाया, रेते पर ही त्याग दिखाया ।
ईश चिन्तन में जब जन लीन, संकट घोर हों उस के क्षीन ।
रक्षक स्वयं बने भगवान, यम भी सके न कर कुछ हान ।

समाधि से जब रानी जागी, उठ के खोज में पति की लागी ।
राजा को जब कहीं न पाया, रानी ने पुनः ध्यान लगाया ।
पति को पाया वन में चलता, तीर्थों की धुन में अनुरक्ता ।
ध्यान में ही उठ वह चल पाई, जिधर पति था दीन दिखाई ।

दो० चली पति को मिलन वह, वायु मग कर गहन ।
विलंब न लागे पहुँच में, प्राण बनें जब वहन ॥ १६७०

पहुँच वहां मन में यह लावे, किस विध पति को वह समझावे
राजा हठ दिखलाया भारी, रानी भी मन में नहीं हारी ।
सोचा उस ने एक उपाय, जिस विध राजा वश में आय ।
साधु का उस रूप बनाया, बाग बगीचा भी मन भाया ।
मन्दिर ताल सभी मन भाये, राजा की वे राह में आये ।
राजा मन्दिर में जब आया, साधु को उस शीश झुकाया ।
आशीर्वाद साधु ने दीनो, और बात फिर उस से कीनी ।
कहा साधु ने "हे महाभाग, सभी राज चिन्ह तव अंग लाग ।
किस कारण तव इस वन आना, कहो कहां तुम ने है जाना ।

दो० निज राज्य का त्याग कर, करें कहां प्रस्थान ।
राजन वन यह घोर है, वनचरों का स्थान" ॥ १६७१

राजा ने जब सुनी यह वाणी, जिस में भेद की बात बखानी ।
कथन किया उस "हे महाराज, फिरूं न वन में मैं बिन काज ।
तीरथ दर्शन की अभिलाष, पूरण करिये मेरी आश ।

*प्राणायाम की शक्ति से उड़ कर जायें तो कहीं भी पहुंचने में देरी नहीं लगती।

धरती के सब तीरथ देखूं, बड़ा न इस से पुण्य उल्लेखूं ।
इस मिस त्यागा राज्य सुपास, मिले तीर्थ से स्वर्ग का वास ।
मानव जीवन सफल बनाऊं, मृत्यु बाद जो स्वर्ग को पाऊं ।
इस जीवन का क्या विश्वास, मिटे जगत जब निकले श्वास ।
ऐसी दया करें भगवान, तीरथ में मम निकलें प्राण ।

दो० तीर्थ में तन त्याग कर, मिले स्वर्ग में वास ।
भोर न दुःख में मैं पड़ूं, भये न गर्भावास" ॥ १६७२

राजा की सुन बात यह सारी, साधु ने तब गिरा उच्चारी ।
"राजन बात तुम्हें बतलाऊं, स्वर्ग से लौटे जन समझाऊं ।
स्वर्ग से पीछे गर्भावास, स्वर्ग के सुख का क्या विश्वास ।
स्वर्ग में ईर्षा राग द्वेष, स्वर्ग में मन को सुख न लेश ।
त्याग स्वर्ग की तुम अभिलाष, राखो मोक्ष में तुम विश्वास ।
मोक्ष हेत तुम योग कमावो, योग बिना न राहत† पावो ।
योग करो तुम चित्त लगाय, स्वर्गादि के विसर उपाय ।
परम शांती को योग से पावो, लोक सुधार परलोक कमावो ।

दो० परम शांति के लाभ को, यदि चाहो तुम मीत ।
स्थिर आसन को ग्रहण कर, करो योग से प्रीत ॥ १६७३

योग से प्रीत करो महाराज, योग सुधारे जन के काज ।
योगी चिन्ता सकल त्यागे, योगी को न भव भय लागे ।
योग से होवे आत्म शुद्ध, योग से होवे विकसित बुद्ध ।

† राहत—शांति

योग से मन के ऊपर वश, योग बिना नर होय परवश ।
योग से विषयन से निर्लेप, योग से पाप पुण्य का क्षेप ।
योग से संशयों की हो हान, योग से उपजे आत्म ज्ञान ।
कर्मों का नहीं बन्धन व्यापे, योगी को नहीं भव संतापे ।
एक वास योगी अपनावे, परिभ्रमण न उस को भावे ।

दो० कर के निश्चित वास तुम, करिये साधन योग ।
तीर्थाटन की लालसा, भी इक मानस रोग" ॥ १६७४

बहु विध साधु ने समझाया, असर न राजा पर हो पाया ।
सोचा उस ने हो कुछ खिन्न, उपाय करूं कुछ इस से भिन्न ।
हठी न हठ को शीघ्र त्यागे, सीख न उसको कुछ भी लागे ।
भय पाये तो हठ को छोड़े, भय बिन हठ से मुंह न मोड़े ।
करूं मैं अब कुछ वही उपाय, जिस से यह भयभीत हो जाय ।
भय से हठ को दे यह त्याग, सन्मारग में जावे लाग ।
सुकर्मा जभी सोच यह पाया, सिंह एक का रूप बनाया ।
राजा को वन मांझ दबोचा, 'हाय मरा' राजा ने सोचा ।

दो० हाय मरा यह सोच कर, भूल गया वह होश ।
होश आयी जब फिर उसे, देख भया सन्तोष ॥ १६७५क
साध खड़ा था पास में, उसका देह संभाल ।
सिंह वहां पर था नहीं, नृप ने देखा भाल ॥ १६७५ख
*पेय पिलाया साध ने, ढाढस उस को दीन ।
राजा ने कुछ संभल कर, बात साध से कीन ॥ १६७५ग

*पेय—जल

"सिंह ने मुझ पर कीना वार, देता वह तो मुझ को मार ।
आप की कृपा से बच पाया, आप शेर को आन भगाया ।
चिन्ता अब मेरे मन लागी, तीर्थाटन किमि करूं अभागी ।
सुकर्मा मेरी साधवी नार, उस को दीन विधाता मार ।
सिधार स्वर्ग वह यदि न पाती, [1]गगन गमन मुझको सिखलाती ।
उड़ आकाशीं तीरथ जाता, वनचरों के वश नहीं आता ।
सुकर्मा उड़ती थी आकाश, सीखा न मैं योग वह काश[2] ।
अब पछतावूं बैठ मैं दीन, चिड़ियन चुग है खेत को लीन ।

दो० अब पछतावूं बैठ मैं, बिगड़ गई जब बात ।
पतिव्रता निज नार से, योग न सीखा तात" ॥ १६७६

राजा का सुन पश्चाताप, कहा साधु "न कर संताप ।
योग विद्या तुम को सिखलाऊं, आकाश गमन भी सिद्ध कराऊं ।
सुकर्मा का दुःख चित्त न लाओ, उस की शिक्षा को अपनाओ" ।
गूढ़ बात साधु कह पाया, राजा को उस योग कराया ।
रहस्य योग के सब बतलाये, संशय चित्त के सकल दुराये ।
कई मास के फिर उपरान्त, राजा से कही बात एकान्त ।
"क्या तीर्थन की अब भी चाह, राजा कहत "न अब परवाह ।
पूरण काम तुम मुझे बनाया, ऐसा अद्भुत योग कराया ।

दो० चाह गई चिन्ता मिटी, पाया मैं सन्तोष ।
गुरु कृपा से मिल गया, योग धर्म निर्दोष । १६७७

१. आकाश में उड़ना २. अफसोस

मैं न कुछ भी अब तो चाहूं, केवल बैठ समाधि लगाऊं ।
जग की वस्तु कोई न भावे, स्वर्ग मिले बस यह मन आवे ।
तीर्थन की मम इच्छा नासी, जावूं अब न मथुरा कासी ।
तीर्थ सभी बन्धन के कारण, बन्धन से करे योग निवारण" ।
सुन साधु सन्तोष जताया, योग ने बदली उस की काया ।
साधु के तब मन में आई, रचना स्वर्ग की उस कर पाई ।
राजा सभी घूम फिर देखा, इन्द्र देव ने उसे उल्लेखा ।
"राजन स्वर्ग भी बन्धन जानो, मोक्ष के मग में बाधक मानो ।
स्वर्ग से मुक्ति [1]श्रेयस होवे, पूरण सुख उस में जन गोवे ।

दो० पूरण सुख आनन्द का, यदि चाहो तुम लाभ ।
त्याग स्वर्ग की चाह को, साध मोक्ष अमिताभ[2] ॥ १६७८

स्वर्ग एक सुन्दर आवासा, दीर्घ काल का कारा वासा ।
मत जानो इस को सुख दायी, इस की तुच्छ अति प्रभुताई ।
स्वर्ग में ईर्षा राग द्वेष, स्वर्ग में मन को सुख न लेश ।
त्याग स्वर्ग की तुम अभिलाष, राखो मोक्ष में तुम विश्वास ।
मोक्ष हेतु तुम योग कमावो, योग बिना कोई राह न पावो" ।
लौट स्वर्ग से राजा आया, स्वर्ग का सपना भी मिट पाया ।
आन साधु को उस बतलाया, अब चित्त मैं मोक्ष में लाया ।
परम सन्तोष साधु ने पाया, उसकी साध ने था फल लाया ।

1. उत्तम होती है 2. असीम आत्मिक सौन्द शाली (मोक्ष)

दो० साध पूर्ण भई साध की, था कठिन यह काम ।
पति अपने हित नार ने, क्या कुछ कीन न काम ॥ १६७९

एक दिवस साधु तब बोला, समाधि में तूं बैठ अडोला ।
देखो कहां सुकर्मा तेरी, लौट आना बिन लाये देरी ।
राजा ने संकेत जो पाया, शीघ्र ही उस ध्यान लगाया ।
समाधि में जो कौतुक देखा, उस का सकत न होत उल्लेखा ।
ध्यान में उस जो अनुभव पाया, खोली आंख समक्ष वह आया ।
नहीं साधु नहीं वन घन घोर, थल सुन्दर जहां नाचत मोर ।
सुकर्मा बैठी थी उस पास, पलटा देखा नकशा खास ।
रहस्य समाधि में सब जान, सुकर्मा का उस कीना मान ।

दो० मान सुकर्मा का किया, जा न म ह त उ प का र ।
मोह माया की धार से, जिस था कीना पार ॥ १६८०क
प्रभु से सुन दृष्टांत यह, बोल उठीं सब नार ।
"धन्य सुकर्मा नार थी, पति लगाया पार" ॥ १६८०ख

प्रभु जी ने तब सबन संबोधा, मातृशक्ति परम सुबोधा ।
माता योग धर्म में लागे, कुटुम्ब सकल सन्मार्ग पागे ।
संकट में भी बने सहायी, शत्रु नाश करे आततायी ।
सुनिये एक कथा मन लायी, समझें बात जो मैं समझाई ।

९३. योगिनी मर्यादा रानी का उपाख्यान

एक था राजा हरेन्द्र राव, सकल जनता पर था प्रभाव ।
मर्यादा रानी उस की नार, बुद्धिमती और भक्त अपार ।

ठाकुर पूजन उस का काम, बिताती इस विध काल तमाम ।
वरुणा उस की दासी सुजान, रखती उस का बहुत ध्यान ।
दो० वरुणा दासी देखती, स्वामिनी पूजा रत ।
मन में वह अनुमानती, सभी कर्मन का तत ॥ १६८१क
वह भी लागी योग में, योगी एक अधीन ।
वन में जिस का वास था, साधन में नित लीन ॥ १६८१ख
वरुणा को उस योग सिखाया, उसका भरम था सकल दुराया ।
देव पूजन न वरुणा माने, वह तो योग को उत्तम जाने ।
प्रकट कीना उस निज विचार, महिमा योग की चित्त में धार ।
"स्वामिनी पूजा रत तुम रहती, साधु संग न कुछ कर पाती ।
योग साधन साधु सिखलावें, और मोक्ष की राह दिखलावें ।
ऐसा मार्ग नहीं जग माहीं, योग बिना जो मोक्ष दिलाहीं ।
योग में रानी तुम लग जावो, जन्म मरण से मुक्ति पावो ।
काम क्रोध जो शत्रु भारे, योगासि[1] इन्हें काट निवारे ।
दो० काम क्रोध मद मोह को, और रिपु जो लोभ ।
योगासि सब को हने, कर के परम क्षोभ" ॥ १६८२
सुन मर्यादा रानी युक्ति, बोली मुख से मधुर वह उक्ति ।
"वरुणा तुम ने ठीक उच्चारा, गुरु बिना नहीं मिले किनारा ।
तुम उपकार करो अब भारी, मुझे मिलावो गुरु पापारी" ।
सुन कर बोल उठी तब दासी, "जानूँ योगी एक उदासी ।

1. योगासि—योग रूपी तलवार ।

यदि उस की तुम किरपा पाओ, मानव जीवन सुफल बनाओ ।
योगी गुरु भव तारण हारे, योगी गुरु जीवन उजयारे ।
योगी गुरु पुण्यों से मिलते, उनकी कृपा कमल मन खिलते ।
योगी गुरुवर योग सिखावें, योग पाय जन भव तर जावें ।

दो० योगी गुरु को पाय कर, जन योगी हो जाय ।
योग साधन प्रभाव से, मोक्ष को शीघ्र पाय ॥ १६८३

योगी बनें सकल दुःख छूटें, माया पाश क्षणों में टूटें ।
बिना योग के चैन न पावे, बिना योग नर गोते खावे ।
योग बिना सब काज अधूरे, योगी के सब कारज पूरे ।
बिना योग नहीं सफल विहार, योग बिना निष्फल व्यवहार ।
योग बिना जो पूजा पाठ, उस को जानो झूठा ठाठ ।
योग बिना चिन्ता नहीं छूटे, योग बिना भव जाल न टूटे ।
तीर्थ व्रत बिना योग अधूरे, योग बिना नहीं कारज पूरे ।
जिस जन ने योगी गुरु पाया, उस मुक्ति का मेवा खाया ।
पास मैं योगी के उस जावूं, यत्न करूं उसे ले कर आवूं" ।

दो० इस विध वचन उचार कर, गई लेन को साध ।
अनुनय विनय वह बहुत कर, ले आई प्रासाद ॥ १६८४

चल योगी प्रासाद में आया, रानी ने आ माथ झुकाया ।
"मैं दासी तुम स्वामी मेरे, भव के बन्धन पड़े घनेरे ।
इन से गुरुवर मुझे छुड़ाओ, किरपा कर के पार लगाओ ।
क्या आप को का नहीं पार, आये जो चल कर आप द्वार" ।

कथ सकी न बहुत वह वाणी, चरण गिरी योगी के रानी ।
आशीर्वाद योगी ने दीना, आसन को फिर योगी लीना ।
योगी से उस दीक्षा पाई, अपना पुत्र फिर वह लाई ।
उस का पुत्तर था बलवीर, राज कुंवर जो था वह वीर ।
उसको भी गुरु चरणी लाया, योगी से गुरुमन्त्र दिलाया ।

दो० मां पूत दोनों लगे, साधन योग कमान ।
हरेन्द्र राव यह जान कर, किञ्चित भया हैरान ॥ १६८५

योग क्रिया उस भली न जानी, साधुन की यह वृत्ति मानी ।
जब बलवीर सभा में आया, अपमानित वह उसे कर पाया ।
छोड़ सभा वह घर को धाया, माता को सब हाल सुनाया ।
राजा से उस मिलना त्यागा, साधन योग में ही अनुरागा ।
प्रभु की माया कैसी न्यारी, भक्त को करता जग दुखयारी ।
वीर कुंवर न नृपहिं सुहावे, उस को दुःख ही वह दे पावे ।
वीर कुंवर दुःख सब सह पाता, योगी गुरु को मन में ध्याता ।
योगी गुरु का यही उपदेश, दुःख जग का न मानो लेश ।

दो० योगी दुःख न मानता, जग वैरी जो होय ।
सन्मारग पर ही चले, गुरु बतलावे जोय ॥ १६८६क
गुरु बतलावे जो पथ, चले उसी वह राह ।
अन्य दिशा अवलोकन, उस के चित्त न चाह ॥ १६८६ख

इक दिन क्या राजा मन आया, कुछ पुरुष वह संग में लाया ।
वीर को मारन की उस ठानी, सोची न निज मन कुछ हानी ।

हानि लाभ न चित्त में आवे, जब जन के मन क्रोध समावे ।
वीर कुंवर जब आपद देखी, गुरु मूर्ति उस मनहिं उल्लेखी ।
आपतकाल धर्म उस पाला, शस्त्र को तभी वीर संभाला ।
पायी गुरु से शक्ति भारी, टूट पड़ा सब पर इक वारी ।
काट काट कर कई गिराये, भय से उस ने कई भगाये ।
राजा को तब बंदी कीना, गुरु[1] कीना निज वीर अदीना ।

दो० गुरु से शक्ति जब मिले, वीर करे वह काम ।
जगत में उपमा न मिले, भज रे गुरु का नाम ॥ १६८७

राजा को जब बन्दी देखा, मन्त्री ने निज कर्म उल्लेखा ।
राजा को उस आन छुड़ाया, वीर कुंवर को भी समझाया ।
प्रतिशोध की अग्नी जागी, राजा के तन मन में लागी ।
रानी को वह मारन धाया, मन्त्री ने उस को समझाया ।
वीर धर्म को सदा निभाये, स्त्री पर नहीं हाथ उठाये ।
बहुत यत्न कर नृप लौटाया, दावाग्नि मनु वश कर पाया ।
दावाग्नि को सुगम बुझाना, कठिन क्रोध का वश कर पाना ।
महल अपने में राजा आया, भृत्यन को उस ने बुलवाया ।
मदान्ध हस्ति को करो तय्यार, मर्यादा के घर देवो डार ।
ईंट से ईंट जो देय बजाय, लौटे तब जब सभी गिराये ।
ऐसा करना जा कर काम, बचे न किसी का भी वहां नाम ।

1. गुरु ने अपने वीर शिष्य को अदीन अर्थात् प्रबल बना दिया ।

दो० सर्व नाश तुम जा करो, मेरा यह आदेश ।
राज द्रोही का रहे, नाम तलक न लेश ॥ १६८८

भृत्यन ने आज्ञा को पाला, मस्त हस्ती को जा कर डाला ।
गुरु योगी हो अन्तर्यामी, चर अचर के वे ही स्वामी ।
हस्ती को उन प्रेरा ऐसे, चकित भये सब देख के जैसे ।
सर्व प्रथम उस ने भृत्य मारे, जो थे आये उस संग द्वारे ।
मर्यादा जब उपद्रव देखा, आ बाहिर उस हस्ती पेखा ।
हस्ती ने आ शीश झुकाया, उस के चरणों पै टिक पाया ।
दीनि मर्यादा आशीष, तभी उठाया उस निज शीष ।
गुरु योगी की न्यारी लीला, जिस ने हस्ती मस्त भी कीला ।

दो० मस्त हस्ती को कील कर, लीन विलक्षण सेव ।
राज महल फिर जाय उस, घेरा हरेन्द्र देव ॥ १६८९

सेवक गण ने जब यह देखा, राजा को संकट में पेखा ।
हाथी को वे लगे डराने, शस्त्रों से उसे लगे त्राहने[1] ।
वह तो किसी को कुछ न माने, चित उस का न कोई पहचाने ।
उस के प्रेरक थे भगवान, भक्त जनों को जो दें त्राण ।
हार सबन ने उस से मानी, आई मृत्यु हरेन्द्र जानी ।
वाम विधाता जब हो जाये, मानी का सब मान नसाये ।
उलट पड़ी उस को निज कार, स्मरण कीन फिर उस निज दार[2] ।
दीन होय उस वचन उच्चारा, मर्यादा को उस तभी पुकारा ।

1. त्रस्त करने लगे, भयभीत करने लगे । 2. स्त्री, मर्यादा रानी ।

दो० पुकार करी मर्याद की, राजा ने जिस काल ।
त्याग हस्ती तब चल दिया, राजा को तत्काल ॥ १६६०

नृप का पीछा उसने छोड़ा, अन्य दिशा में मुख को मोड़ा ।
जो २ जन थे वहां विपरीत, धरा[1] सभी को हस्ती चीत ।
मर्यादा की जो बोलत जय, हस्ती न करता उस का क्षय ।
अचरज की यह देख के बात, मर्यादा नाम भया विख्यात ।
जन मर्यादा के गुण गावें, उस के योग को सभी सराहवें ।
राजा भी तब चल कर आया, क्षमा प्रार्थी वह हो पाया ।
योग की महिमा सब ने जानी, योगी गुरु की शक्ति मानी ।
प्रभु जी ने तब सबन सुनाया, योग साधन का गुण जतलाया ।

दो० योग साधना से अधिक, साधन न जग बीच ।
शरण योग की जो गहें, नीच रहे न नीच ॥ १६६१क
एक दिवस की वारता, प्रभु सुनाई और ।
शिकार हेत था चल दिया, हरेन्द्र वन की ओर ॥ १६६१ख
संग में उस के एक था, राजा उस का मीत ।
बालपने से थी रही, साची जिस से प्रीत ॥ १६६१ग

सेना वाहन बहु संग लीने, आहत कई पशु उन कीने ।
एक सिंह के पीछे धाये, दूर निकल तब वन में आये ।
सेना से छूटा था संग, श्रमित भये दोनों के अंग ।
रात पड़ी और पथ न पाया, काल कठिन तब चल के आया ।

[1] हाथी ने उन (विपरीत) सभी लोगों को मार डाला ।

वृक्ष नीचे उन डेरा डारा, कटत विपद का काल न भारा ।
अर्ध रात जब सर पर आई, मूसलधार वृष्टि हो पाई ।
मित्र राज तब भया बेहाल, शीत से बिगड़ा उस का हाल ।
कहन लगा "हे मीत प्यारे, जानूं निकलें प्राण हमारे ।
अब करो तुम कोई उपाय, जान मेरी जिस विध बच पाये ।

दो० हृदय मेरा डूबता, लब पर आये प्राण ।
कथ सकूं नहीं हाल निज, निकलन चाहे जान" ॥ १६६२

सुनी हरेन्द्र आर्त पुकार, अन्य न सूझ पड़ी कुछ काज ।
मर्यादा को उस कीना याद, कीनी उस से निज फर्याद ।
रानी प्रकट भई तत्काल, और निहारा उन का हाल ।
मेंघ सकल तब भये विलुप्त, वर्णन हो न बात यह गुप्त ।
सुख से रात गयी वह बीत, दिवस चढ़ता न भया प्रतीत ।
प्रातः चल जब आगे आये, अन्य राज्य में पहुंच वे पाये ।
वहां फिर फंसे विपदा माहीं, वर्णें हम अब आप के ताहीं ।
इस विध प्रभु जी ने कथ पाया, हरेन्द्र का दृष्टांत सुनाया ।

दो० कथें प्रभु दृष्टांत को, सभी सुनें ला कान ।
रोचक वह प्रसंग था, प्रभु में सब का ध्यान ॥ १६६३

जिस राजा के राज्य पधारे, वहां छिपे थे कुछ हत्यारे ।
राज पुत्र था उन ने घाता, शोक मग्न थे पितु व माता ।
विचरें राज पुरुष सब ठौर, मिल पावें कहीं दस्यु चौर ।
हरेन्द्र को जब वन में पेखा, संग में अन्य पुरुष भी देखा ।

शस्त्रास्त्र भी थे उन पास, इस से भया उन्हें विश्वास ।
दस्यु यही जिन्हों ने मारा, राज पुत्र को जिन संहारा ।
सेनापति यह निश्चय कीना, और पकड़ दोनों को लीना ।
सेनापति तब दीन आदेश, "हत्यारे जीवित रहें न लेश ।
तुरन्त ही इन के सर उतारो, कुत्तों आगे धड़ को डारो ।

दो० सिर इनके हम लेय कर, पहुँचें नृप के पास ।
अपनी कार जताय कर, दें नृपहिं आश्वास" ।। १६९४क
बातें उन की श्रवण कर, राजा भया बेहाल ।
दोनों ने सिमरन किया, रानी को तत्काल ।। १६९४ख

घोर विपत्ति सिर पर जानी, सिमरी उन मर्यादा रानी ।
दिव्य रूप में रानी आयी, सैनापति की कीन पिटाई ।
अंधा कर के उसे गिराया, देख आतंक सबन मन छाया ।
सैनिक उस कई मार मुकाये, पलायन कर सब बाकी पाये ।
मर्यादा ने निज पति बचाया, मीत सहित निज राज्य वह आया ।
धन्य भाग उन अपना जाना, योग की शक्ति को पहचाना ।
कहा मीत ने हरेन्द्र तायीं, रानी से हम रक्षा पायी ।
प्रणाम उसे मैं कर के जाऊं, और सदा उस के गुण गाऊं ।
प्रभु जी से सुन सारी गाथा, नारिन सबन झुकाया माथा ।
"धन्य २ मर्यादा रानी," सब के मुख से निकसी वाणी ।
सब के मुख से सहज स्वभाव, प्रकट भयी बस यही आवाज ।

दो० "मर्यादा रानी धन्य है, पति परायण नार।
योगी गुरु से योग कर, दिव्य कीनी जिस कार ॥ १६६५क
कीनि दिव्य जिस कार थी, राखे पति के प्राण।
यम से जिमि बचाय था, सावित्री ने सतवान" ॥ १६६५ख
सुन कर प्रभु के वचन को, भया सबन विश्वास।
लागें नारिन योग में, लाभ जगत को खास ॥ १६६५ग

प्रभु जी ने इस विध बतलाया, सब संगत को उन समझाया।
हीन भावना का कर त्याग, जाय नारी जब योग में लाग।
बन पावे वह शक्ति स्वरूपा, दुर्गा काली भवानी रूपा।
मर्यादा लीला और चुडाला, विश्ववन्द्या सावित्री बाला।
दिव्य शक्ति वह योग से पावे, अबला वह सबला हो जावे।
सुन सुन्दर यह प्रभु की वाणी, सभी संगत ने बहु सन्मानी।
धन्य प्रभु जिन के उपदेश, भ्रान्ती दूर करें निःशेष।
तम हरता है जिमि तमारी[1], भ्रांति दूर करें प्रभु सारी।

दो० प्रभु जी के उपदेश से, नशे सकल अज्ञान।
दिव्य दिवाकर का उदय, जिमि भरता जग प्राण ॥ १६६६क
रे मन तू भी चेत कर, जान प्रभु का रूप।
सद्गुरु के जो रूप में, प्रकटा ब्रह्म अनूप ॥ १६६६ख

कुम्हार पूत जिन जसपुर तारा, नदीतीर हरानन्द उबारा।
कृष्णानन्द मुखराम बचाये, नागे जिन्हें संहार न पाये।

1. तमारी = सूर्य

हस्ति दल से भी कर त्राण, बचाये उन के जिस थे प्राण ।
तू भी शरण उन्हीं की लाग, दृढ़ कर धार उन्हीं के पाग ।
राजा रणसिंह जिन उपदेशा, योग धर्म का कर निर्देशा ।
योग मार्ग में उसे लगाया, मन्त्र यन्त्र का भरम दुराया ।
तारनहार जो सब के स्वामी, जगत पधारे अन्तर्यामी ।
रे मन उन की शरण में लाग, काम क्रोध मद मोह त्याग ।

दो० काम क्रोध मद मोह को, त्याग सको मम मीत ।
प्रभु के पग की धूल जब, ग्रहण करो सप्रीत ॥ १६९७क
ग्रहण करो सप्रीत जब, प्रभु पग की तुम धूल ।
निर्मल तेरा रूप हो, लागे पाप न मूल ॥ १६९७ख

पापिन को प्रभु तारण हारे, पापारि निज विरद संभारे ।
दुराचारी भी शरण जो आया, प्रभु ने उस को गले लगाया ।
धूर भरा भी शिशु जिमि आवे, उठा कर जननी गले लगावे ।
झाड़ पोंछ कर उसे नहलावे, सुन्दर उस का रूप बनावे ।
प्रभु माता हम शिशु हैं सारे, पाप भरे जग में दुःखयारे ।
प्रभु यदि हम को न अपनावें, किस की अंक में हम फिर जावें ।
एक बार की बात लिखावें, प्रसंग जिमि यह स्पष्ट करावें ।
इक दिन कई भक्त थे आये, मन के भाव सभी कह पाये ।
भक्त एक ने पूछी बात, "सद्गुरु पतित पावन" विख्यात ।
इस का भाव नाथ समझावें, किस विध "पतित पावन" हो पावें ।

दो० सुन कर उसकी बात को, कहन लगे तब नाथ ।

ध्यान एकाग्र तुम कर, सभी सुनो इक साथ ॥ १६६८क
गुप्त बात यह है परम, समझ सके वह भक्त ।
जिस के मन विश्वास हो, गुणगाहक अनुरक्त ॥ १६६८ख

पतित वही जो पाप में उलझा, पढ़ सुन कर भी मन न सुलझा ।
वह पापी यम लोक में जावे, कष्ट अनेकों वहां पर पावे ।
उस पापी का हो निस्तार, मिलें जभी सद्गुरु करतार ।
सद्गुरु उस के पाप दुरावें, दुर्गति से उसे स्वयं बचावें ।
जब तक पाप न होवें दूर, क्षण क्षण बने सहायी हजूर ।
जिमि बालक जब तलक अयाना, मात पिता दें शिक्षा नाना ।
स्मरण रहे पर तुम्हें ज़रूर, शिष्य अधिकारी हो मंजूर ।
गुरु अधिकारी–शिष्य ग्राहवें, अनाधिकारी न संग लावें ।

दो० बिन अधिकारी के नहीं, गुरु से रक्षा पाय ।
अनाधिकारी यदि गहें, जग मर्यादा जाय ॥ १६६९क
नहीं निर्दोषी जगत में, सभी दोष से युक्त ।
अन्तर्यामी सद्गुरु, करें शरण ले मुक्त ॥ १६६९ख

९४. गुरु भक्त तस्कर* उपाख्यान

इक तस्कर की घटन सुनावें, गुरु योगी की महिम जतावें ।
जिस को शरणी योगी लीना, दोष दुराय योग को दीना ।
चोर भया फिर उत्तम साध, योग की महिमा अतीव अगाध ।
घटना है यह इस प्रकार, ध्यान से सुन कर करो विचार ।

* चोर

इक योगी ने इक नर देखा, देख उसे यह वचन उल्लेखा ।
जाओ भक्त कुछ भोजन लाओ, भूख लगी है हमें खिलाओ ।
भोजन उस ने लाकर दीना, स्वीकार जिसे साधु ने कीना ।
चुका साध जब भोजन खाय, हंसा पुरुष वह ठहक लगाय ।
योगी ने तब पूछी बात, बात अनोखी क्या भयी तात ।

दो० बात अनोखी क्या भयी, हंस पड़े हो जोय ।
कहा पुरुष ने साध से, ज्ञात मरम न तोय ॥ १७००क
मैं तो हूं इक चोर जी, चोरी का धन लाय ।
अन्न उसी से मोल ले, दीना तुझे खिलाय ॥ १७००ख

मैं तो तस्कर हूँ महाराज, भोजन किया मुझ से तुम आज ।
भये पाप के तुम भी भागी, इस से हंसी मुझ को लागी ।
सुन कर बात चोर की साच, चोर को साधु वचन उवाच ।
"बात सत्य जो तुम कह पायी, हमरे मन को वह अति भायी ।
तुम चोर हम साध हैं भाई, आज से हमरी भई मिताई ।
सत से कभी न मुख तुम मोड़ो, और धर्म में चित्त को जोड़ो ।
सत का जिस घट में हो वास, उस में सहज ही ईश प्रकास" ।
चोर ने बात साध की मानी, सेवक बना साध सन्मानी ।

दो० सेवक बना वह साध का, चौर्य कर्म को त्याग ।
रहन लगा बस साध संग, योग धर्म में लाग ॥ १७०१

"चेला चोर" भया विख्यात, जनता उस से भय थी खात ।
साधु संग भी जो मिल पाये, दृढ़ आदत न शीघ्र जाये ।

चोर के मन में इक दिन आई, ग्राम से उस ने भैंस चुराई ।
लाय साध के आश्रम बांधी, चेला बना चौर्य अपराधी ।
योगी के मन सोच यह भारी, त्यागे किमी यह निज बदकारी ।
ग्राम के वासी ढूंढत आये, साधु को वे सब कथ पाये ।
"आप के चेले ने महाराज, भैंस चुरा कर लाई आज ।
कहा साधु ने "मेरे भाई, कैसी भैंस थी जो उस लाई ।
भैंस का रूप हमें बतलाओ, यदि तुम्हारी हो ले जाओ ।

दो० यदि तुम्हारी भैंस हो, बंधी हमारे पास ।
खोल उसे तुम ले चलो, राखो मन विश्वास" ॥ १७०२

ग्राम जनों ने तब बतलाया, अपनी भैंस का रूप सुनाया ।
"सुन्दर भैंस अति ही प्यारी, लांबे सींग खड़े जो भारी ।
काला रंग ऐसा महाराज, अंजन को भी देवे लाज ।
और निशानी क्या बतलावें, भैंस देख हम अपनी पावें" ।
कहा साधु ने "देख लो भाई, ले जाओ जो भैंस है आई" ।
भीतर जा सब ने तब देखी, श्वेत भैंस इक बंधी पेखी ।
उस के सींग भी लटके देखे, पड़े गले में ही जो पेखे ।
सभी लौट तब आये बाहर, क्षमा साध से मांगनहार ।

दो० क्षमा साध से मांगते, करते पश्चाताप ।
चेले को निर्दोष कथ, मन में भर संताप ॥ १७०३

"चोर चेला" निर्दोषी जान, चल दीने सब ग्राम्य सुजान ।
प्रभु जी ने कहा भक्तन ताहीं, शिष्यन की गुरु लाज बचाहीं ।

शिष्य की लाज गुरु के हाथ, लाज बचावें रह सदा साथ ।
दोषी शिष्य भी होय निहाल, निर्दोषी पर गुरु सदा दयाल ।
दोषी का नहीं दोष निहारें, किरपा की ही बात विचारें ।
ऐसे सद्गुरु विरले मीत, पूरण योगी की यह रीत ।
क्षमा शील पूरण ही होवे, अपूरण के मन क्रोध विगोवे ।
पूर्ण के चित्त सभी समावे, जिमि सागर में नद गिर पावे ।
जिमि सागर में नदियां भारी, निशि दिन गिरती हैं आ सारी ।
सागर बाढ़ में न वह आवे, तिमि योगी न क्रोध में आवे ।

दो० दोष पराया देख कर, योगी करत विचार ।
मुझ में भी तो दोष थे, योगी लगाया पार ॥ १७०४

दोषी शिष्य करे जब योग, दूर भयेगा दोष का रोग ।
दोषी पर नहीं करिये क्रोध, दोष निकासें दे कर बोध ।
औषध से जिमि रोग नशावे, अथवा साधन से वह जावे ।
गुरु योगी जब योग करावें, दोष हवा ही सब हो पावें ।
चोर चेला की और करतूत, श्रवण करो तो मिले सबूत ।
गुरु कृपा जिमि शिष्य बचावे, उसकी लाज जिमि रख पावे ।
शिष्य दोषी से होवें दोष, गुरु रक्षक बन करत अदोष ।
गुरु विरद नहीं अपना त्यागें, क्षमा शील क्षमा में पागें ।

दो० चोर चेला इक दिन गया, भिक्षा हेत ग्राम ।
कन्या वर्ष इक चार की, भूषण भरी ललाम ॥ १७०५क
उसे देख कर ऊपजा, मन में चौर्य विचार ।

पकड़ जिसे वह ले गया, योगी के ही द्वार ॥ १७०५ख
कोठी में विठलाय कर, कीना बन्द किवार ।
योगी ने सब ध्यान में, जानी उस की कार ॥ १७०५ग

ग्राम जनों ने जब यह देखा, कन्या के अपहरण को पेखा ।
दौड़े दौड़े आये सारे, योगी के वे पहुँचे द्वारे ।
लागे कहन, "सुनो महाराज, चुरायी कन्या चेले आज ।
भूषणों से थी लादी देह, उठा कर लाया ग्राम से यह ।
हम चेले से हैं परेशान, बहुत उपद्रव करता आन ।
इस चेले से हमें बचाइये, कन्या लाई वह हमें दिलाइये ।
आश्रम में उस अभी छिपाई, सब के सन्मुख जो है लाई ।
यहीं वह कन्या है महाराज, दण्डित कीजिये चेला आज ।

दो० निज चेले को पूछ कर, सकल जान लो हाल ।
कन्या है भूषण लदी, यह भी बड़ा सवाल" ॥ १७०६क
सुन कर उन की बात को, सोचन लागा साध ।
तस्कर को स्वीकार कर, संकट मिला अगाध ॥ १७०६ख

तस्कर को जो शरणी लाया, संकट को है मैं अपनाया ।
शरण लीना पर जो इक बार, कैसे उस को देऊं निकार ।
उस की पत मैं राखूं भारी, होय न इस की कहीं खवारी ।
इस विध साध ने सोच विचार, सब को दीना उत्तर डार ।
आश्रम में नहीं गुप्त स्थान, खोजो जहां कुछ पाओ निशान ।
कन्या यदि तुम्हें मिल जाये, चेला अवश्य दण्ड को पाये ।

सज्जन रोष भरे थे सारे, कोठी के उन खोले द्वारे ।
सन्मुख क्या उन्हों ने देखा, इक सुन्दर अवधूत को पेखा ।
सर पर सुन्दर मुकुट जड़ीन, तन पर रमी थी भस्म नवीन ।
अल्प वयस व तेज स्वरूप, भये चकित सब देख के रूप ।

दो० आसन पर उन देख कर, आसीन समाधि बाल ।
चल दीने प्रणाम कर, भूल अपनी स्वीकार ॥ १७०७

स्पष्ट बात प्रभु जी बतलाई, सेवक के गुरु बनें सहाई ।
घोर जब गुरु की कृपा जानी, गुरु की शक्ति उस पहचानी ।
घोर्य कर्म से भई गलानी, गुरु की सीख उस पूर्ण मानी ।
योग साधन में लागा चोर, करता ध्यान वह उठ के भोर ।
गुरु किरपा से पायी सिद्धि, जन गण में भी भयो प्रसिद्धि ।
भय लोगों के चित्त का नाशा, गुरु की भी भयी दूर निराशा ।
गुरु की किरपा जब हो जाये, पाप ताप जन का मिट जाये ।
पापी का सब पाप नशाये, उज्ज्वल यश को भी वह पाये ।

दो० छूटे पापी पाप से, होत व्याधि विनाश ।
गुरु किरपा सब से बड़ी, सत गुण करत विकाश ॥ १७०८क
इस के आगे अब सुनो, चोर भया जब सिद्ध ।
जन हित में वह रत भया, भया वरद[1] प्रसिद्ध ॥ १७०८ख
भिक्षा हेतु इक दिन गया, चेला ग्राम के मांझ ।
सदा[2] लगाई वहां उस, "रोटी दो इस सांझ ॥ १७०८ग

1. वरद—वरों का दाता 2. सदा—आवाज़, पुकार

जितनी रोटी देय जो, उतने लड़के होंय।
सत्य बात यह जानिये, संशय करे न कोय" ॥ १७०८घ

एक बूढ़े सुन पायी सदा, चित्त माहीं उपजी गुदगुदा[1]।
सन्तानहीन अति चिन्तातुर, बुलाया भिक्षुक उस हो आतुर।
छः रोटी उसने दे पायी, चेले से फिर आशिष पायी।
ईश्वर की महिमा को देखो, योगी की भी सिद्धि पेखो।
संतान हीन जो बुढ़िया नार, छः पुत्रों की भयी मातार।
ऐसा चमत्कार दिखलाया, चोर चेले ने योग कमाया।
योग पारस जन लोहा जानो, स्वर्ण भये जब संग ले आनो।
गुरु पारखी सब कुछ कर पाय, निरख २ जग हो विस्माय।

दो० निरख २ कर जग भये, विस्मित महिम अपार।
गुरु मिले तब ही भये, जन जगतारन हार ॥ १७०९

इक घटना हम और बतावें, शिक्षाप्रद वह बात सुनावें।
योगी का मत करो निरादर, यथा शक्ति दो उस को आदर।
सहज स्वभाव योगी कह पाये, पाथर की वह लीक हो जाये।
मांगन गया चेला इक बार, खड़ा भया जा कर इक द्वार।
उस ने जभी सदा लगाई, द्वार पै तब इक बुढ़िया आई।
राख की मुठिया बुढ़िया लीनी, डाल झोली में उस की दीनी।
इस घर से कहा "राख ही पाओ, झीघ्र निकल जहां से जाओ"।
चेला बोला "राख है पायी, राख भये तव सकल कमायी।

1. दूसरा पाठ—चित्त भीतर भयी गुदगुदा

दो० हो राख ही राख यहां", निकल गया कह साध ।
चमत्कार ऐसा भया, उमड़ी राख अबाध ॥ १७१०क
उमड़ी राख अबाध इमि, फैल गयी सब ग्राम ।
जनता सारी दुखित हो, गयी कुटिया फिर शाम ॥ १७१०ख

सब ने कही साधु से वाणी, सभी जीव हम हैं अज्ञानी ।
अनादर चेले का कर पाये, शाप मिला तो डर कर आये ।
बुढ़िया राख चेले को दीनी, वाणी भी संग यह कह दीनी ।
"तुम राख ही यहां से पाओ, निकल के शीघ्र यहां से जाओ" ।
राख राख अब वहां लखाये, बढ़ी राख है पेश न जाये ।
करिये स्वामी तुम ही दाया, ग्राम सकल दुःखी हो आया ।
इस शाप को अब संहारो, ग्राम सभी है दास तुम्हारो ।
शाप राख का होवे दूर, किरपा करिये नाथ जरूर ।
इस विध कथ कर माथ झुकाया, साधु ने तब वचन सुनाया ।

दो० साधु ने निज मुखन से, कही ज्ञान-युत बात ।
"चेले ने कर मूर्खता, शाप दिया है तात ॥ १७११
काम क्रोध तो जग का काम, योगी इन से रहत उपराम ।
योगी क्रोध नहीं कर पावे, जग चाहे कुछ भी कर पावे ।
क्षीर समुद्र बिगड़े नाहीं, कांजी की लुटिया से साईं ।
जगत का भी पर है कर्तव्य, योगी का समझे मन्तव्य ।
योगी करन हेत उपकार, करता भ्रमण बीच संसार ।
दुखी देखे वह जन को जब ही, करत सुखी दृष्टि से तब ही ।

योगी मीत सबन का जानो, द्वेष न उस प्रति मन में आनो ।
योगी सबन से करत मिताई, राग द्वेष न उस चित भाई ।
दो० राग द्वेष न योगी मन, समझ लवो मम मीत ।
योगी के प्रति तुम सभी, राखो मन में प्रीत ॥ १७१२
जाओ राख की मुठिया लाओ, मम धूनी में वह उलटाओ ।
होगा शांत उपद्रव सारा, धूनी में मिटे राख पसारा" ।
जनता ने उपदेश सराहया, राख को ला तब धूनि गिराया ।
सुखी भयो फिर जनता सारी, मिटी राख की क्रीड़ा भारी ।
इस विध प्रभु जी ने समझाया, दे दृष्टांत उन्हें बतलाया ।
भक्तो योगी गुरु की दाया, किस ने उस का पार है पाया ।
दयावान जब गुरु हो जायें, पाप सभी जन के धुल जायें ।
पापी भी तब स्वर्ग को जाये, उस को न कोई रोक दिखाये ।
श्री कृष्ण हैं गीता गाया, पापी भी जब शरणी आया ।
धुलें पाप तब उसके सारे, पाये मुक्ति या स्वर्ग सिधारे ।
दो० कृष्ण चन्द्र भगवान ने, कही रहस्य की बात ।
श्रद्धावान ही जन लखें, सत्य बात यह तात ॥ १७१३क
"पतित पावन"की बात तुम, थी चलाई मीत ।
स्पष्ट बात मैंने कथी, जो मम आई चीत ॥ १७१३ख
पतित पावन न गुरु सा भाई, बने जो प्रतिपल शिष्य सहाई ।
गुरु योगी को ढूंढो मीत, योगी गुरु से राखो प्रीत ।
जन्म जन्म के फिर सब पाप, गुरु मिटावें निज प्रताप ।

हम बतलावें अपनी बात, शिव अवतारी मम गुरु तात ।
ढूंढ ढूंढ जब गुरु हम हारे, स्वयं प्रभु थे आन पधारे ।
इस से बढ़ कर क्या हो दाया, सेवक को गुरु गले लगाया ।
खोज खोज मैं भया निराश, बंधाई प्रभु थी आ तब आश ।
अलौकिक गति से तब ले आये, सुमेरू गिरि पै जो मन भाये ।

दो० प्रभु लाये उस देश में, जहां जाना दुश्वार ।
समर्थ गुरु योगी मिलें, तभी लगे जन पार ॥ १७१४क
अगम देश गुरु ले गये, कौन सके वहां ठहर ।
पल पल पल रक्षक बनें, रात दिवस हर पहर ॥ १७१४ख

क्षुदा से गुरु जी कीन त्राण, भालु केले दीने आन ।
हिम में डूब गये जब भाई, गुरु जी ने तब बर्फ हटाई ।
अद्भुत खेल था गुरु का न्यारा, कहां से था प्रभु हाथ पसारा ।
बैठ गुफा में समाधि लगावें, फिर भी शिष्य के पीछे धावें ।
एक साथ दोनों ही कर्मा, उस का जान पाये को मर्मा ।
अघोरी ने जब मुझे छकाया, मेंडक का था जलेब बनाया ।
चिमटा धार प्रभु तब आये, दण्ड अघोरी को दे पाये ।
छः मास का श्वास चढ़ाते, फिर भी दास के पाछे धाते ।

दो० विलक्षण कृपा देख कर, चकित भया मैं मीत ।
गुरु सरीखी जगत में, को करता है प्रीत ॥ १७१५क
प्रश्न जो तुम ने था किया, क्या भया चित्त तोष ।
गुरु कृपा जब करत हैं, दूर करें सब दोष ॥ १७१५ख

सुन कर प्रभु जी का उपदेश, रहा न संशय मन में लेश ।
स्वीकार कीना प्रभु के ताहीं, "नाथ नहीं संशय मन माहीं ।
गुरु बिना को भरम दुरावे, बिन गुरु कौन अज्ञान मिटावे ।
पूर्ण सद्गुरु आप महाराज, अज्ञान मिटाया हमरा आज ।
कृतकृत्य हम सभी को कीना, मोह अंधेरा सब हर लीना ।
गुरु किरपा की महिमा जानी, योगी गुरु की शक्ति पहचानी ।
एक बात प्रभु और बतायें, मन का भ्रम प्रभु आप दुरायें ।
ऐसे भी हैं गुरु जग माहीं, योग को वे कुछ जानें नाहीं ।
प्राप्त क्या करे शिष्य उन से, जान पावें प्रभु हम यह तुम से ।

दो० बिना योग के नाथ जी, गुरू जो हैं जग बीच ।
शिष्यन का क्या कर सकें, पड़ें शरण जो नीच" । १७१६क

संशय उनका श्रवण कर, मुस्काये भगवान ।
गुरु कहलाना सुगम है, निभाना कठिन महान ॥ १७१६ख

गुरुओं का मैं क्या कथ पाऊं, गुरु अनेकों जग में पाऊं ।
साचे गुरू हैं विरले मीत, शिष्यन से जो करते प्रीत ।
ईश्वर से जिन का है प्यार, लिया जिन मुक्ति का व्रत धार ।
शिष्यन को सद् राह पर डालें, जग भंवर से काड निकालें ।
वे नहीं शिष्य गहें बहुतेरे, राखें विरले वे निज नेरे ।
वे तो साधन योग करावें, चित्त एकाग्र जिमि हो पावें ।
जन्म जन्म के सारे पाप, और जगत का सब संताप ।
इन के नाश हेत ही भाई, गुरु के चरण लगें सुख दाई ।

दो० मन एकाग्र जिमि भये, और नशें जिमि दोष ।
योग साधन से होत यह, कहें सज्जन बिन रोष ॥ १७१७क

९५. योग में सब धर्मों का ऐक्य

आदि काल से जो भये, जग में गुरु विख्यात ।
ग्रहण योग सब ने किया, शक न इस में तात" ॥ १७१७ख
सुन कर प्रभु की बात को, सज्जन बोला एक ।
"प्रभो यह बात नवीन है, सुनी जो हम ने एक ॥ १७१७ग
जग में हैं प्रभु बहु जो धर्मा, उनमें वर्णित भिन्न भिन्न कर्मा ।
उन में योग का है क्या रूप, बखान करो प्रभु दयास्वरूप ।
जिससे हो मन को सन्तोष, योग करे सब को निर्दोष" ।
श्रवण करी उसकी प्रभु वाणी, बोले नाथ जगत कल्याणी ।
मैं तो सब धर्मों को मानूं, सब को एक धर्म मैं जानूं ।
धर्म एक ही होता भाई, जिमि इक ईश्वर की प्रभुताई ।
सब धर्मों का मत है एक, इक ही बात को कथें अनेक ।
उसी एक को योग बताया, शास्त्र पतंजली ने लिख पाया ।

दो० शास्त्र पतंजल योग को, लीना जिस ने जान ।
सत्य धर्म की बात को, लेता वह है मान ॥ १७१८
स्पष्ट बात मैं कह बतलाऊं, उदाहरण दे तुम को समझाऊं ।
सभी धर्मों के मूल सिद्धांत, योग में कथन किये बहु भांत ।
अष्टांग योग में सभी समाये, बाहिर नहीं कुछ रहने पाये ।
वैदिक धर्म पुरातन जानो, यही स्नातन धर्म पहचानो ।

ऋषि मुनि जो हुये पुरातन, कथन किया जिन धर्म स्नातन ।
वे तो सभी योग को मानें, योग की महिमा प्रकट बखानें ।
चार वेदों का संहिताकार, रचे हैं जिस ने पुराण अठार ।
महाभारत को जिस रच दीना, सब से उत्तम योग है चीना ।
व्यास ऋषि वह जग विख्यात, गीता ग्रंथ रचा जिस तात ।
योग सम्पूरण उस में आया, कृष्ण चन्द्र निज मुख से गाया ।

दो० व्यास ऋषि ने रच दिया, योग का उत्तम ग्रंथ ।
गीता के आधार पर, चले अनेकों पंथ ॥ १७१९

उन सब पंथन का आधार, योग ही बस है इस प्रकार ।
शंकर आदि भये आचार्य, रामानन्द व माधवाचार्य ।
रामानुज आचार्य महान, गीता सब ने कीन प्रमान ।
भाष्य रचे गीता के ऊपर, पंथ चले उन के इस भूपर ।
सगुण व निर्गुण हैं जो पंथा, मानें सभी उन्हीं के ग्रंथा ।
भक्त अनेकों देश में भये, आचार्यों के ही शिष्य वे थये ।
इस विध योग ही है आधार, सभी मतों का हर प्रकार ।
यह अनुयायियों का कर्तव्य, आचार्यों के समझें मंतव्य ।

दो० आचार्यों के मन्तव्य को, भूल गये जब शिष्य ।
मनमानी करने लगे, बिगड़ा तभी भविष्य ॥ १७२०क
धर्म के तभी नाम पर, लागे होन कुकर्म ।
सत्य सनातन योग का, विसर गया सब मर्म ॥ १७२०ख
देश देशान्तर मैं गया, मिला न योगाचार्य ।

लुप्त भया पाखण्ड में, योग धर्म का कार्य ॥ १७२०ग
हार गया जब ढूंढ मैं, योगी गुरु का द्वार ।
शिव शंकर तब आ मिले, रूप गुरु का धार ॥ १७२०घ

शंकर आन मिले तब भाई, महाप्रभु का रूप बनाई ।
सुमेरु पर्वत में तब राखा, योग सिखाया फिर उन भाखा ।
सभी मतों ने योग भुलाया, अधोगति को इस विध पाया ।
जाओ जग को योग सिखाओ, सद् धर्म का राह बतलाओ ।
शिरोधार कर गुरु-उपदेश, उतर के आया मैं निज देश ।
यथा शक्ति मैं योग प्रचारूं, गुरु आज्ञा को शिर पर धारूं ।
सभी जनन को यह बतलाऊं, धर्म का मूल योग जतलाऊं ।
स्पष्ट बात जब प्रभु कह पाई, एक भक्त निज विनय सुनाई ।

९६. जैन धर्म और योग

दो० एक भक्त कर जोड़ कर, कहन लगा "हे नाथ ।
समझे हम ने आप से, तथ्य बहुत इक साथ ॥ १७२१

द्वैत अद्वैत आदि जो धर्मा, निर्गुण सगुण जो भक्ति कर्मा ।
उन सब का आधार है योग, मानें यह सब सज्जन लोग ।
एक बात प्रभु और बतावें, बौद्ध व जैन जो धर्म कहावें ।
उन का भी क्या योग आधार, स्पष्ट करें प्रभु इस का सार" ।
सुन कर प्रभु जी उस की वाणी, कहन लगे हे भक्त सुजानी ।
प्रश्न तुम्हारा अति अनुकूल, इस से दूर भये जग भूल ।

मैं बतलावूं तुम को तात, रहस्यमयी धर्मों की बात ।
आदि प्रवर्तक योगी महान, सभी धर्मों के भये सुजान ।
योग युक्त उन हो कर भाई, जन हित योग की लीक चलाई ।
विशिष्ट पुरुष थे वे उपजाये, या अवतारी नर जग आये ।

दो० नर अवतारी जगत में, प्रकट भयें जब तात ।
पाप ताप बहु जनन के, हरते समझो बात ॥ १७२२

जैन धर्म के आदि नाथ, ऋषभ देव जग कीन सनाथ ।
उन के विषय में लो कुछ जान, दूर भये मन भ्रांति महान ।
सतयुग में यह भया अवतार, नाभि* पिता था मेरु मातार ।
मात पिता ने तप था कीना, आजन्म सिद्ध पुत्र पा लीना ।
तपस्वी हंस परम वह ज्ञानी, नौष्ठिक ब्रह्मचारी महादानी ।
सत्व मूर्ति उन पुत्र पाया, ऋषभ देव जिस नाम धराया ।
ऋषभ देव भया ऋषभ समान, सहन शील और महाबलवान ।
सकल प्रजा उस पर आसक्त, संतान पिता पर जिमि अनुरक्त ।

दो० प्यार प्रजा से करत वह, प्रजा उसी से प्यार ।
राजा योगी ऋषभ था, अद्भुत कीने कार । १७२३

---

*ऋषभ देव के पिता का नाम राजर्षि नाभि और माता का नाम रानी मेरु देवी था।
ऋषभ देव में सब योग सिद्धियां परिपूर्ण थीं– जैसे
वैहायस – आकाश में उड़ना ।
मनोजव—मन के समान गति, अर्थात् जहां जाने का विचार किया, वहां तुरन्त पहुंच जाना।
अन्तर्धान – अदृश्य हो जाना ।
पर कायप्रवेश - दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाना ।
दूरदर्शन—एक स्थान पर बैठ कर दूर २ की घटना देख सकना आदि
देखें –श्रीमद्भागवत पुराण ५-५-३५

उसके राज में प्रजा सुखारी, अकाल पड़े न हो महामारी ।
प्रजा सुखारी सकल सम्पन्न, दरिद्र और न कोई विपन्न ।
स्वर्गिम सुख उस भू पै दीना, शक्ति योग से शासन कीना ।
योग सिद्धि उस में भरपूर, कुछ का वर्णन करें ज़रूर ।
वैहायस सिद्धि उस में ऐसे, उड़े आकाशीं पक्षी जैसे ।
मनोजव बल भी उस में भारा, मन की गति से पहुँचन हारा ।
राज में होत कहीं अन्याय, मनोजव शक्ति वहीं पहुँचाय ।
दुष्ट सत्व न कुछ कर पावें, योग शक्ति से भय सब खावें ।

दो० योग शक्ति से भीत रह, चलें धर्म पर लोग ।
योगी जब राजा बने, दूर भयें सब सोग । १७२४क
और भी सिद्धि ऋषभ की, बखान करें हम मीत ।
योगी जब राजा बने, मिटे प्रजा की भीत ।। १७२४ख

शक्ति योग ऋषभ की भारी, दुष्टों पर सदैव बलकारी ।
अन्तर्धान से होत अदृश्य, राज्य के देखे सकल दृश्य ।
मन सबन के रहत यह शंका, राजा ठाडा पास निशंका ।
पाप कर्म से सब डर पावें, धर्म कर्म में चित्त लगावें ।
सकता कर परकाय प्रवेश, धारे भिन्न २ देह हमेश ।
कौन सके उस को पहचान, सब के सकता कर्म वह जान ।
राजा क्या वह ईश्वर जानो, सर्व व्यापक उसको मानो ।
ऐसा सब के मन आतंक, पापी पाप न करत निशंक ।

दो० पापों को सब छोड़ कर, करें धर्म के काम ।

योगी नर राजा बने, देश भये सुख धाम ॥ १७२५

एक सिद्धि हम और बखानें, ऋषभ राज की शक्ति जानें ।
दूर दर्शन सिद्धि जो गायी, ऋषभ देव ने थी वह पायी ।
बैठ एकान्त सभी कुछ देखे, सकल राज्य के कारज पेखे ।
द्वापर युग सञ्जय जो पाई, युद्ध क्षेत्र की कथा सुनाई ।
वही सिद्धि ऋषभ महाराज, सतयुग में पा कीना राज ।
राज्य में होते सब जो काम, ऋषभ बैठ जाने निज धाम ।
योग सिद्धि ऋषभ की सारी, भयी जगत को बहु सुखकारी ।
जन हित में उस योग लगाया, जग में बहुत कर्म कर पाया ।

दो० जन हित में उस योग को, लाय कर्म बहु कीन ।
प्रजा सुखारी राज उस, योग धर्म सुख दीन ॥ १७२६क
इन्द्र देव देखा जभी, ऋषभ देव का मान ।
ईर्षा उस के मन भयी, सोचा ला उस ध्यान ॥ १७२६ख

मर्त्यों ने मम सुधि बिसराई, मानें सब ऋषभ प्रभुताई ।
इस में देव लोक की हान, ऋषभ को मानें सब भगवान ।
मर्त्यों को मैं पाठ पढ़ाऊं, अब इन्हें निज बल दिखलाऊं ।
इन्द्र ने तब वर्षा रोकी, खेती सकल देश की सोकी ।
फैला देश में बहुत अकाल, मुँह बाय मनु आया काल ।
हाहाकार भया सब ओर, भूख मरी का उपजा शोर ।
ऋषभ जान प्रजा दुःखयारी, देखा ध्यान लगा इक बारी ।
इन्द्र देव का कारज जान, मन में तुरन्त लिया अनुमान ।

दो० इन्द्र का उस जान कर, निज प्रजा पर रोष ।
कीनो वृष्टी योग से, भया सबन संतोष ॥ १७२७क
ऋषभ देव इस विध किया, राज्य को दीर्घ काल ।
राज्य भरत को देय कर, वनहिं चले तत्काल ॥ १७२७ख

निज पुत्रन को दीन उपदेश, कीना योग धर्म निर्देश ।
करना शास्त्रों का अभ्यास, प्राणायाम से जीतो श्वास ।
करना मन का सदैव निरोध, तुम्हारे शत्रु काम क्रोध ।
इन से सावधान हो जाओ, विषयों के न वश में आओ ।
सत्कर्मों में होवे प्रीत, करना कर्म न कुछ विपरीत ।
ब्रह्मचर्य को पाल दिखावो, संयम से ही काल बितावो ।
ईश्वर भक्ति को कर पाना, योग समाधि सदा लगाना ।
प्रमाद व आलस रख तुम दूर, साधन योग को करो जरूर ।
इस विध पुत्रन को समझा, ऋषभ ने लीना वन का राह ।

दो० ऋषभ देव थे आदि में, जैन धर्म के देव ।
महान भये वे योग से, सिद्ध पुरुष अधिदेव ॥ १७२८क
ऋषभ देव के बाद तुम, तेइस तीर्थंकर जान ।
वे भी सब योगी भये, योगी वर्य सुजान ॥ १७२८ख
एक भक्त ने तब कही, प्रभु जी से यह बात ।
नाथ तीर्थंकर कौन थे, वे योगी साक्षात ॥ १७२८ग

सुन कर उस की प्रभु जिज्ञासा, कहन लगे सुन सह विश्वासा ।

श्रवण† करो सब के भाई नाम, जिन योग धर्म के कीने काम ।
अजित और संभव अभिनन्दन, सुमति पद्मप्रभ जग के चन्दन ।
सुपार्श्व चन्द्रप्रभ सुविधि महान, शीतल श्रेयांस वसुपूज्य सुजान ।
विमल अनन्त धर्म और शांति, कुन्थु अरमल्ली योगसुकांति ।
सुव्रत नेमी हुए तीर्थंकर, अरिष्टनेमी पार्श्व व्रतंकर ।
पार्श्व उपरान्त भये महावीर, जन्मे राजा भये फकीर ।
नाम सबन के हम बतलाये, योगी तीर्थंकर हो पाये ।

दो० योग धर्म को साध कर, भये योगी प्रवीण ।
नये धर्म की लीक को, चालू था उन कीन ॥ १७२८क
सुन कर प्रभु की बात सब, एक भक्त कह दीन ।
नाथ सुना महावीर ने, तप कठिन था कीन ॥ १७२८ख

कौन तपस्या उस ने कीनी, कौन उपलब्धि तप से लीनी ।
हमें बतावें यह महाराज, भ्रांत मिटावें हमरा आज ।
प्रभु जी ने तब वचन उचारा, भ्रांत मति का कीन निवारा ।
महावीर ने योग को साधा, योग हेतु सब तप आराधा ।
बुद्धिमान पुरुष जो होवे, सिद्धि हेतु कष्ट संजोवे ।
लक्ष्य हीन जो कष्ट सहारे, तामस उस के तप हों भारे ।

†चौबीस तीर्थंकर :—
१. ऋषभ २. अजित ३. सम्भव ४. अभिनन्दन ५. सुमति ६. पद्मप्रभ ७. सुपार्श्व ८. चन्द्रप्रभ ९. सुविधि १०. शीतल ११. श्रेयांस १२. वसुपूज्य १३. विमल १४. अनन्त १५. धर्म १६. शांति १७. कुन्थु १८. अर १९. मल्ली २०. सुव्रत २१. नेमी २२. अरिष्टनेमी २३. पार्श्वनाथ २४. महावीर ।

कृष्ण चन्द्र जो गीता गाया, तप का सारा रहस्य बताया ।
उसका श्रवण करो ला ध्यान, तपस्या करो न बिन तुम ज्ञान ।

दो० कृष्ण चन्द्र ने जो कहा, भगवद्गीता मध्य ।
योगी तप वैसा करे, सिद्धी पावे सद्य ॥ १७३०

सुन कर प्रभुजी का उपदेश, मन जिज्ञासा बढ़ी विशेष ।
कहन लगे वे भक्त तमाम, "उपदेश करें तप का हे राम ।
कृष्ण चन्द्र जिमि गीता गावें, आप के मुख से हम सुन पावें ।
कौन तपस्वी योग कमावे, तपी कौन जो अधोगति पावे ।
धर्म में तप की है प्रभुताई, तप से ही हो धर्म कमाई ।
ऐसा तप प्रभु हमें बतावें, धर्म का संग्रह हम कर पावें" ।
कथ यह सब ने मौन अपनाया, प्रभु ने फिर उनको कह पाया ।
गहन विषय यह तप का भाई, श्रवण करो तुम ध्यान जमाई ।

दो० तपस्या को तुम जान लो, सकल सिद्धि का मूल ।
बिना तपस्या जीव को, दुर्लभ तक हो धूल ॥ १७३१

सात्विक राजस तामस भाई, त्रिविध तपस्या है लिख पाई ।
ज्ञानी लक्ष्य निज जान सुजान, यत्न करे जब सहित ज्ञान ।
सिमरे संग पल २ भगवान, चित्त न फल का लावे ध्यान ।
ऐसा परिश्रम कर दिन रात, करता लाभ सिद्धी साक्षात ।
सात्विक तपस्या उस की जानो, तपस्वी उत्तम जन वह मानो ।
राजस तप अब हम बतलावें, सावधान हो सब सुन पावें ।
करना उस पर फिर विचार, हो पावे जिमि शुद्ध आचार ।

राजस तप में दम्भ हो भाई, लोभ की इस में भी अधिकाई ।
दो० लोभी जन जब तप करे, राजस गुण मन धार ।
तप करता वह हेतु इस, मान पूजा सत्कार ॥ १७३२
सात्विक तप का फल सुखदायी, अन्त है राजस का दुःखदायी ।
तामस तप को तुम लो जान, उस का बीज केवल अज्ञान ।
पर पीड़ा के हेत ही भाई, तमो गुणी करते तप आई ।
अपनी देह को वे दुखावें, नाश किसी का जिमिकर पावें ।
मूढ़ता वश वे न कुछ मानें, मारण योग को उत्तम जानें ।
मोक्ष तपस्वी सात्विक पावे, राजस जन्म मरण में आवे ।
गति लो तामस तपी को जान, असुर लोक में जन्म को पान ।
सुन कर प्रभुजी का उपदेश, कहा भक्त इक हे सर्वेश ।
दो० कहा भक्त इक श्रवण कर, प्रभु जी का उपदेश ।
नाथ हमारी भ्रांति को, मेटा आप निःशेष ॥ १७३३
भ्रम हमारा आप मिटाया, तप का हम को ज्ञान कराया ।
सात्विक तप उत्तम बतलाया, राजस मध्यम ही कह पाया ।
तामस तप अधम महाराज, आप ने हमें बताया आज ।
एक बात हम को बतलावें, सात्विक नर जो तप कर पावें ।
उन के कर्म क्या होवें स्वामी, हमें बतावें अन्तर्यामी ।
हम भी कर्म करें भगवान, सतो गुणी महा पुरुष समान ।
उस की सुन कर प्रभु जी वाणी, भये प्रसन्न नाथ महादानी ।
बोले बात तुम्हारी भाई, हमरे मन को है बहु भायी ।

दो० लागी हमरे चित्त को, भली तुम्हारी बात ।
श्रवण करो तुम ध्यान से, कहें जो आगे तात ॥ १७३४

देह वचन और मन से भाई, तपस्या त्रिविध कथन में आई ।
सतोगुणी जो पुरुष कहावें, देह से इस विध तप कर पावें ।
पूजा, अर्चा नित्य कर पाते, देवों को वे शीश झुकाते ।
गुरुओं का नित्य करते मान, जिन से ग्रहण करें वे ज्ञान ।
मात पिता की सेव कमावें, पितृ ऋण से मुक्ति पावें ।
ज्ञानी का नित्य करते संग, पूजा मान दें उसे निसंग ।
सब विध उन का शुद्ध आचार, और हो उन का सरल व्यवहार ।
ब्रह्मचर्य को पाल दिखावें, अहिंसा का व्रत सदा निभावें ।
दैहिक तप यह कथन में आये, गीता में जिमि कृष्ण बताये ।

दो० देह के तप ये मैं कथे, जिमि कथे भगवान ।
पालन इन का जो करे, तपस्वी उस को जान ॥ १७३५क
अब सुनो ला ध्यान तुम, वाणी के तप जोय ।
तपस्या ऐसी जो करे, तपी कहावे सोय ॥ १७३५ख

पहले तोलो फिर तुम बोलो, झट से अपना मुंह न खोलो ।
वाणी का यह संयम भारो, करना है न बहु सुखकारी ।
वह वाणी तो परम नकारी, जन गण को जो करत दुखारी ।
प्रिय वचनों का कर अभ्यास, शिष्ट बनावो वाणी खास ।
पर तुम समझो यह भी मीत, सत्य वचन से राखो प्रीत ।
सत्य वचन जो न कह पाये, पतित धर्म से वह हो जाये ।

सत्य प्यारी व हितकारी, तपमयी जानो वाणी भारी ।
वाणी में ये गुण तब आवें, स्वाध्याय जब जन कर पावें ।

दो० स्वाध्याय से जान लो, वाणी होवे शुद्ध ।
निर्मल वाणी को धरे, जन तपस्वी बुद्ध ॥ १७३६

वाणी का मैं तप बतलाया, जानूं ध्यान से सब सुन पाया ।
निरन्तर करे जो जन अभ्यास, निशंक पावे वह सिद्धि खास ।
मानसिक तप मैं अब कह पाऊं, मुनियों का मैं व्रत बतलाऊं ।
मुनी वही जो व्रत यह साधे, मानसिक तप सदा आराधे ।
प्रथम बात मन को कर निर्मल, दूर करें जो मन का हो मल ।
निर्मलता मन सौम्य उपजावे, सौम्य स्वभाव तपी हो पावे ।
सौम्य स्वभाव बने जब जन का, क्या कथें सुख उसके मन का ।
मन का क्षोभ होवे जब दूर, मौनी बने तपस्वी शूर ।
शूर वही जो मन को जीते, मन जीते जन जग को जीते ।

दो० मौनी मन को जीत कर, मुनि बने विख्यात ।
जग की माया पंक वत, मन पंकज हो तात ॥ १७३७

निग्रह आतम करे तपस्वी, भाव की शुद्धि गहे मनस्वी ।
ऐसे तपी बनो तुम तात, सुखी बसो फिर दिन और रात ।
महावीर यही तप अपनाया, महावीर तब नाम धराया ।
मन को उसने जीता मीत, कहावे "जिन" जो जीते चीत ।
"जिन" से जैन धर्म बन पाया, जैन वह जिसे छुवे न माया ।
महावीर ने राज को त्यागा, रहा माया से न अनुरागा ।

बिना वैराग्य योग न होवे, जैन वह जो विरक्ता गोवे ।
माया से चित राखे दूर, आत्म बोध पाये बन शूर ।
दो० आत्म बोध के हेत ही, धर्म कर्म सब मीत ।
धर्म निरर्थक तब भये, फांदे माया चीत ॥ १७३८

सुनी प्रभु की ज्ञान मयी वाणी, भक्त जनों ने अति सन्मानी ।
कहन लगा इक भक्त सुजान, प्राप्त किया प्रभु जी बहु ज्ञान ।
शुद्ध धर्म का रूप पहचाना, धर्म की एकता को हम जाना ।
एक प्रश्न मन में अब नाथ, निवारण कर के करें सनाथ ।
महावीर ने तप अपनाया, और जगत में धर्म चलाया ।
क्या शिक्षा जन उन से पावें, सार रूप हम को बतलावें ।
सुन कर प्रभु जी उस का सवाल, दीना उत्तर उन तत्काल ।
महावीर की शिक्षा भाई, वही पतांजल ऋषि जो गाई ।
जग को संयम उन सिखलाया, अहिंसा सत्य अस्तेय बताया ।
ब्रह्मचर्य की शिक्षा दीनी, अपरिग्रही बनो यह चीनी ।
दो० अहिंसा सत्य अस्तेय को ब्रह्मचर्य की लीक ।
अपरिग्रह को मान ले, समझो जैनी ठीक ॥ १७३९

इस विध प्रभु जी ने समझाया, जैन धर्म का तत बतलाया ।
योग से भिन्न न धर्म यह होई, विज्ञ पुरुष ही समझे कोई ।
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, रहा न मन में संशय लेश ।
विलंब भया सब को बहु जान, कहन लगे प्रभु परम सुजान ।
अब तुम जाओ सज्जन सारे, पुनः आना कल फिर इस द्वारे ।

आगे की फिर बात चलावें, ऐक्य धर्म का हम समझावे ।
योग में सब का मेल लो जान, मतों सभी का मूल यह मान ।
प्रभु जी को तब कर प्रणाम, सज्जन चाले भई थी शाम ।
नित्य कर्म में प्रभु जी लागे, सर्वाधार ध्यान में पागे ।
जगदाधार पालें जगधर्मा, मर्याद रूप करें सब कर्मा ।

दो० प्रभु करते सब कर्म हैं, मर्यादा अनुसार ।
जग मर्यादा सीखता, निरख २ करतार ॥ १७४०

प्रातः भयी फिर सब जन आये, प्रभु के दर्शन कर हर्षाये ।
दर्शन प्रभु के सुख के मूल, प्रभु के दर्शन मेटें शूल ।
प्रभु के दर्शन पुण्य उजागर, प्रभु दर्शन से तरें भव सागर ।
प्रभु के दर्शन न भव बाधा, प्रभु के दर्शन सुख अगाधा ।
प्रभु के दर्शन मन सन्तोष, प्रभु के दर्शन नाशे रोष ।
प्रभु के दर्शन काम न क्रोध, प्रभु के दर्शन चित्त निरोध ।
प्रभु के दर्शन परम ज्ञान, प्रभु के दर्शन नहीं अज्ञान ।
प्रभु के दर्शन अनिष्ट न लागे, प्रभु के दर्शन से भय भागे ।
प्रभु के दर्शन से सब होई, प्रभु के दर्शन पावे कोई ।

दो० प्रभु के दर्शन पाय कर, कृत कृत्य हो पाय ।
प्रभु के चरणी बैठ कर, श्रवण करें मन लाय ॥ १७४१क

९७. बौद्ध धर्म और योग

विनय कीन इक भक्त ने, नाथ प्रात साक्षात ।
दर्शन पा कर आप के, हर्षित हमरे गात ॥ १७४१ख

हर्ष प्रफुल्लित हमरे गात, दर्शन पा कर आज प्रात ।
योग धर्म जो कल समझाया, सिमर २ हम सुख बहु पाया ।
आगे का जो वर्णन नाथ, वह बतला कर करें सनाथ ।
प्रभु जी ने तब वचन उचारा, भक्त जनों को जो बहु प्यारा ।
मत अनेकों जगत के मांहि, शिक्षा देवें मानव तांहि ।
सत्य अहिंसा को सब पालें, हिंसा से सब बच के चालें ।
बौद्ध धर्म का करें बखान, जगत में जो इक धर्म महान ।
योग समाधि गौतम लाई, ज्ञान की ज्योति दृष्टि आई ।
अहिंसा का उस पाठ पढ़ाया, पंथ धर्म का नया चलाया ।
इस विध गौतम भया था बुद्ध, कर के योग से आतम शुद्ध ।
योग धर्म का कीन प्रचार, जग पाले जिमि शुद्ध आचार ।
शुद्ध साधन व शुद्ध आचार, बुद्ध की शिक्षा का यह सार ।

दो० शिक्षा दीनी बुद्ध ने, समाधि से पा ज्ञान ।
योग समाधि से भया, जग में बुद्ध महान ॥ १७४२

राजवंश में गौतम जाया, विरक्त भया व योग कमाया ।
राज पाट से कीन किनारा, तप का था उस लीन सहारा ।
यम नियम को उस ने साधा, आसन प्राणायाम आराधा ।
प्रत्याहार में सिद्धि पाई, धारणा ध्यान समाधि लाई ।
गया में बोधी वृक्ष है भाई, जहां पर बुद्ध समाधि लाई ।
ऋतंभरा प्रज्ञा जब उस पाई, सन्तुष्टि तब उस चित्त समाई ।
ऋत व सत्य उस के चित्त आया, तब से गौतम बुद्ध कहाया ।

सत्य का जग को दीना ज्ञान, खण्डित कर के उस अज्ञान ।
भरम जगत का बुद्ध निवारा, योग से पा कर ज्ञान न्यारा ।

दो० योग समाधि लाय कर, और पाय कर ज्ञान ।
मेटे भ्रम उस जगत के, और सकल अज्ञान ॥ १७४३

बुद्ध देव ने धर्म सिखाया, अहिंसा सत्य अस्तेय बताया ।
ब्रह्मचर्य का कर प्रचार, भिक्षुक कीने बहु तयार ।
अपरिग्रह की दीनी सीख, भिक्षुक सञ्चित करे न भीख ।
शौच से राखें सभी प्यार, जीवन का सन्तोष आधार ।
तप के बिन न कोई कुछ पावे, तपस्या ही सब काम चलावे ।
ऐश आराम का जीवन भाई, जन को अन्त में न सुखदाई ।
सन्त जनों की सीख को मानो, स्वाध्याय से निज को जानो ।
यम नियम की इस विध भाई, गौतम से जग शिक्षा पाई ।
गौतम भया था सिद्ध महान, जन्म अनेक का उस को ज्ञान ।

दो० जन्म अनेकों जान कर, रची थी जातकमाल ।
अनुयायियों ने बुद्ध के, राखा ग्रन्थ सम्भाल ॥ १७४४

योग की शक्ति ऐसी पायी, राजा रंक बने अनुयायी ।
देश देशान्तर धर्म फैलाया, योग चरित्र सबन सिखाया ।
लंका तिब्बत चीन महान, सब ने माना बुद्ध का ज्ञान ।
पूर्व पश्चिम उत्तर देश, सब ने माना बुद्ध आदेश ।
योग धर्म सर्वत्र फैलाया, भारत को बृहत्तर बनाया ।
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, मिला भक्तन को ज्ञान विशेष ।

धर्म की समझी उन बढ़ाई, जानी योग की भी प्रभुताई ।
भिन्न मतों में एकता जानी, भेद भाव न जानें ज्ञानी* ।
दो० भिन्न २ जो धर्म हैं, योग में सब का सार ।
योग को जाना नर जिस, पाया धर्म का पार ॥ १७४५क
धन्य २ सब ने कथा, प्रभु का सुन उपदेश ।
पूरण सद्गुरु के बिना, मिले न ज्ञान विशेष ॥ १७४५ख

९८. ईसाई धर्म और योग

एक भक्त ने तब कहा, "गुरुदेव महाराज ।
शिक्षा दीनी आप ने, भरम हरा सब आज ॥ १७४५ग
धर्म सबन की एकता, है सिखलाई आप ।
मूरखता वश लोग तो, वहते हैं संताप ॥ १७४५घ
नाम धर्म का लेय कर, करते झगड़ा नाथ ।
'धर्म वीर' कहलान हित, रंगें खून से हाथ ॥ १७४५ङ
आप गुरु हम शिष्य तिहारे, धर्म सम्बन्धी भरम निवारे ।
सब धर्मों का अब से मान, करेंगे शिक्षा आप की मान ।
कीना नाथ जी आप बखान, योग से उपजे धर्म महान ।
सब धर्मों के जो थे बानी, भये योगी वे सभी ज्ञानी ।
आज जो जग के सभ्य प्रदेश, इसाइयत उन का धर्म विशेष ।
ईसा ने वह धर्म चलाया, जग ने उस को है अपनाया ।

*बौद्ध धर्म का अष्ट मार्ग और जैन धर्म का तीन रत्न (सत्य विश्वास, सत्य ज्ञान, सत्य कर्म) यम नियमों पर आधारित हैं।

सब आंगल उस के अनुयायी, जिन की भारत में प्रभुतायी ।
ईसा ने क्या योग कमाया, ज्ञान कौन सा वह दे पाया ।
इस की हम को है जिज्ञासा, आप गुरु हम तुमरे दासा ।

दो० आप गुरु हम शिष्य हैं, जिज्ञासा चित्त होय ।
प्रश्न करें जो आप से, करें निवारण सोय" ॥ १७४६

श्रवण कीनी जब उस की बात, प्रभु जी कहा सुन लो मम तात ।
ईसा मसीह प्रभु का प्यारा, जिस ने जग से पाप निवारा ।
दुखियों को उस गले लगाया, धर्म हेत निज बलि दे पाया ।
शुद्ध बुद्ध था उस का रूप, पुरुष अलौकिक एक अनूप ।
बालपने में योग कमाया, ईश्वर का उस दर्शन पाया ।
कहा भक्त इक "दीन दयाल, आप कहें जब ईसा बाल ।
तब ही उस ने योग को धारा, अचंभा हमरे मन यह भारा ।
कहां से सीखा था उस योग, यह बात नहीं जानें लोग ।

दो० हमको तो न विदित यह, ईसा धारा योग ।
कौन गुरु योगी मिले, जिन सिखलाया योग" ॥ १७४७क
प्रभु जी ने बतलाया, सुनो प्यारे मीत ।
महापुरुष के भेद को, करत विरला प्रतीत । १७४७ख

उसका जीवन मैं बतलाऊं, रहस्यमयी कुछ भेद जताऊं ।
फिलिस्तीन इक देश प्यारा, जहां जन्मा वह स्वर्गिम तारा ।
मरियम थी उस की महतारी, यूसुफ पिता बच्चा अवतारी ।
यहूदी धर्म पुरातन जानो, उस में उपजा इस को मानो ।

बालपने से थी लिव लागी, धर्म कर्म का वह अनुरागी ।
यरूशलेम जो धर्म स्थान, होत वहां इक पर्व महान ।
फसह पर्व उसे कह पावें, वर्ष प्रति वहां सब जन जावें ।
मरियम संग यूसुफ भी जाता, ईसा भी उन संग सिधाता[1] ।

दो० ईसा वहां जो देखता, धर्म कर्म की रीत ।
रूढ़[2] धर्म को देख कर, करत न मन प्रतीत ॥ १७४८

बारह वर्ष जब आयु पाई, जनता सब थी वहां सिधाई ।
यरूशलेम से लौटे लोग, बिछुड़ा ईसा का संयोग ।
मात पिता बहु खोजन लागे, ढूंढ २ अतीव विहरागे ।
यरूशलेम पुनः मुड़ आये, देख अचंभा सब विस्माये ।
मन्दिर भीतर वह था बैठा, विज्ञ जनों के मध्य में पैठा ।
कर रहा उन से वाद विवाद, सुनाता उन को निज संवाद ।
देख सभी उस की चतुराई, भूले थे वे निज प्रभुताई ।
मात पिता उसको तब लेय, लौट आये फिर वे निज गेह ।

दो० ईसा घर में आय कर, पैतृक करता काम ।
मन उस के यह बात थी, किस विध पाऊं राम ॥ १७४९

कई वर्ष उस इमी बिताये, मन में बस इक बात समाये ।
ऐसा मिले कोई विद्वान, पावूं जिस से पूर्ण ज्ञान ।

१. लूका रचित सुसमाचार II. 4 से 47
२. धर्म कर्म की पुरानी रूढ़ीगत बातों को ।

योगी तब इक नाम युवान[1], आर्यवर्त से पहुँचा आन ।
वन २ फिरता करत प्रचार, मन को जीतो नर और नार[2] ।
यरदन नदी के रहत किनारे, दीक्षित करता जन वह सारे ।
यहूदी देख भये हैरान, कहां से आ पहुँचा युवान[3] ।
उस का करें वे बहुत विरोध, भये युवान के मन न क्रोध ।
चांद न त्यागे शीतलताई, लाख करो उस पै पथराई ।
युवान योगी था मन का शांत, ख्याति फैल गई सब प्रांत ।

दो० ख्याति उसकी श्रवण कर, ईसा आया पास ।
कहन लगा "गुरु देव जी, दीक्षा की है आस[4]" ॥ १७५०

युवान से दीक्षा ईसा पाई, दिव्य दृष्टि उसको मिल आई ।
आत्म दर्शन उस ने पाया, ईश्वर जनु उस पास था आया ।
महान गुरु अवतारी दीक्षित, दर्शन दिव्य तुरन्त समीक्षित ।
उस ने सारा जगत भुलाया, वन की ओर वह तुरत सिधाया ।
खान पान सब उस ने त्यागा, साधन योग में ही बस लागा ।
जो दर्शन उस ने थे पाये, उस के मन के मांझ समाये ।
योग युक्त ईसा हो पाया, ईश्वर का वह पूत कहाया ।
चालीस दिन तप उस ने कीना, सिद्ध भया वर ऐसा लीना[5] ।

१. 'युवान' के पिता का नाम 'जयकार आर्य' था । 'युवान' को रोमन अक्षरों में John और 'जयकार आर्य को' Zachariah लिखा हुआ बाईबल में मिलता है, यह उच्चारण भेद है।
२. मत्ती रचित सुसमाचार III 1,2
३. यहन्ना रचित सुसमाचार I 6, 20, 26
४. मत्ती रचित सुसमाचार III 13—17
५. मत्ती रचित सुसमाचार IV 1—2

दो० चालीस दिन कर योग को, समाहित कर के चित्त ।
ईसा सिद्धि पाय कर, निकला जग के हित ॥ १७५१

ईसा बन मसीह जग आया[1], परम सिद्ध वह पुरुष कहाया ।
योग की सिद्धियां उस के साथ, दीन दुःखी जन कीन सनाथ[2] ।
रोग ग्रस्त जन चल के आते, ईसा से निरोग हो जाते ।
कुष्ट रोगी व मिर्गी ग्रस्त, भूत प्रेत से अथवा त्रस्त ।
झोले से थे जो लाचार, ईसा सब का कीन उपचार ।
योग की जानो यही बढ़ाई, विश्व प्रेम में लगे ईसाई ।
पंगु को उस चलन सिखाया,[3] अंधे को था नयन दिलाया[4] ।
मृत को दीने उसने प्राण, किमि करें उस के गुण गाण[5] ।

दो० गुरु से पाया योग उस, चमत्कार बिखलाय ।
भया यीशु विख्यात जग, लोक सकल गुण गाय ॥ १७५२

दुनिया की पर रीत अजीब, हितकारी को मिले सलीब[6] ।
यहूदियों का था वह प्रदेश, प्रचारे योग युवान जिस देश ।
याजकों[7] को न यह सब भाया, कैद उन्होंने युवान कराया[8] ।
करें वे ईशा को परशान, ईसा घूमे स्थान स्थान[9] ।

---

१. मसीह—परमेश्वर का भेजा हुआ ।
२. मती रचित सुसमाचार IV 24
३. यूहन्ना रचित सुसमाचार अध्याय 5
४. यूहन्ना रचित सुसमाचार अध्याय 9
५. यूहन्ना रचित सुसमाचार अध्याय 4, 11
६. मती रचित सुसमाचार अध्याय 8, 9
७. याजकों—यहूदी गुरुओं को
८. मती रचित सुसमाचार IV 12

सलीब—फांसी

९. मती रचित सुसमाचार IV 13

ईसा[1] के थे कुछ अनुयायी, ईसा के रहें संग सहायी ।
ईसा एक दिवस चढ़ पाया, पर्वत के वह ऊपर आया ।
शिष्य मण्डल भी पाछे आया, बैठ घेर ईसा को पाया ।
ईसा ने तब दीन उपदेश, योग धर्म का जो निर्देश[1] ।

दो० यम नियम सब योग के, ईसा कीन बखान[2] ।
बात सरल वह योग की, समझें लोग सुजान ॥ १७५३

अहिंसा[3]

अहिंसक बनो सभी तुम भाई, शिक्षा ईसा यह दे पाई ।
दयावन्त जो जन जग माहीं, धन्य कहूँ उन के मैं ताहीं ।
दयावन्त ही दया को पावें, ईश्वर के वे दर जब जावें ।
हत्या करना है अपराध, दण्ड पाये वह नर बिन बाध ।
और बात मैं यह समझाऊँ, क्रोधी भी अपराधी पाऊँ ।
अपशब्द जो कहत है मुख से, छूटे नरक की न अग्नि से ।
मन से वाणी और कर्म से, त्रिविध हिंसा कही उन सब से ।
दृष्टांत देय तब उस समझाया, पुरुष मनु इक भेंट है लाया ।
स्मरण आई यदि वहां पै बात, रुष्ट है मुझ से मेरा भ्रात ।
बलि को वेदी सन्मुख त्यागे, क्षमा प्रथम भाई से मांगे ।

१. 'ईसा' संस्कृत के धातु ईश् से बना है । ईसा=ईश का अर्थ है 'स्वामी' यह नाम वास्तव में उसके गुरु युवान ने रखा था । ईसा का बचपन का नाम था 'इम्मानुएल' देखो मती I, 23

२. मती रचित सुसमाचार अध्याय 5, 6, 7

३. मती रचित सुसमाचार V 7, 21, 22, 23-27, 38-41, 44
VII 1-12

दो० क्षमा भाई से मांग कर, पूजा करे सुजान ।
इस विध ईसा ने दिया, अहिंसा विषयक ज्ञान ॥ १७५४

झगड़ा यदि है किसी के साथ, निबेड़ो झट से तुम इक हाथ ।
कहीं ऐसा न होने पाये, राजा दण्ड दे तुम्हें सताये ।
और बात इक मैं बतलाऊँ, तत्व गूढ़ तुम्हें समझाऊँ ।
अहिंसक सहन शील बन पावे, बदले की न चित्त में लावें ।
निकाले आंख बदले न आंख, दांत बदले न तोड़े दांत ।
चपट जो मारे दाईं गाल, कर दो सन्मुख बाईं गाल ।
नालिश कर जो कुरता लेवे, दोहरा भी जन उस को देवे ।
कोस एक बेगार चलावे, दो कोस जन उस संग जावे ।
मांगनहार को करो न नाहीं, मोड़ो न मुंह ऋणी से साईं ।

दो० ईसा ने इस विध कहा, निज शिष्यन के ताहीं ।
पर्वत ऊपर बैठ कर, सब जनता के मांहीं ॥ १७५५क

आगे उस ने यह कहा, सुन लो ला कर कान ।
बात काम की है बड़ी, यदि सुख चाहत जहान ॥ १७५५ख

सुन राखी तुम बात यह मीत, पड़ोसी से तुम राखो प्रीत ।
और वैरी से वैर निभाओ, जैसे से तैसा कर पाओ ।
पर तुम को मैं भिन्न बताऊँ, वैरी संग प्रीत सिखाऊँ ।
करे जो तुमको बहु परशान, उस के हेत भी मांगो दान ।
वैरी की हम चाहें भलाई, ईसा ऐसी सीख सिखाई ।
भानु का सर्वत्र उज्जाला, करता ईश्वर दीन दयाला ।

भेद भाव न इसमें आये, कर्म हमारा तिमि हो पाये ।
प्रेमी से ही केवल प्यार, विशेष न यह तो कुछ व्यवहार ।
दो० प्रीती वैरी से करे, धर्मी जानो सोय ।
ऐसे नर के सामने, वैरी मित्र होय ॥ १७५६
यह भी मुझ से सुन तुम पाओ, किसी को दोषी न ठहराओ ।
देखो केवल अपना दोष, किसी पै मत करो तुम रोष ।
अपने साथ चाहो तुम जैसा, दूसर साथ करो तुम वैसा ।
भक्तन को प्रभु जी समझाया, ईसा का उपदेश बताया ।
अहिंसा योग में है प्रधान, ईसा ने भी कीन प्रवाण ।
अहिंसा जो न पाल दिखावे, ईसाई नर न वह हो पावे ।

२. सत्य*

सत्य भी योग में है प्रधान, ईसा वह भी करत प्रवाण ।
कहा ईसा ने भक्तन ताहीं, बात साफ हो 'हां' या 'नाहीं' ।
अधिक बात क्योंकर कह पावें, कर विस्तार न सत्य छिपावें ।
दो० बढ़ चढ़ कर जो कहत है, और खात जो शपथ ।
गुप्त रखत वह सत्य को, गहत झूठ का पथ ॥ १७५७
कहे ईसा तुम शपथ न खाओ, शपथ स्वर्ग की कह न पाओ ।
ईश्वर का वहां जानो आसन, करे जो सारे जग पै शासन ।
धरा की शपथ न कर इन्सान, प्रभु के पांव की चौकी जान ।
यरूशलेम की शपथ न खाओ, पावन नगरी उसको पाओ ।

*मतो रचित सुसमाचार V 34—37

निज सिर की भी शपथ न लेखे, विचित्र प्रभु की रचना देखे ।
सको न कर इक बाल श्वेत, अथवा श्वेत को तुम अश्वेत ।
इस कारण तुम शपथ न खाओ, 'हां' या 'नाहीं' में कह पाओ ।
सत्य २ बस तुम कह पाओ, बातों में न सत्य छिपाओ ।

दो० सत्य छिपाये बात में, और लेत जो शपथ ।
चतुराई वह करत है, त्याग धर्म का पथ ॥ १७५८

ईसा ने इस विध समझाया, मार्ग सत्य का सबन बताया ।
योग से भिन्न न धर्म ईसाई, बात समझ यह सब को आई ।
प्रभुजी ने तब और बताया, निज भक्तों को उन समझाया ।

३. अस्तेय[1]

व्रत अस्तेय सुनो तुम भाई, योग में इस की है महताई ।
ईसा ने इस को प्रचारा, निज उपदेश में इमि उचारा ।
मैं तो मानूं उसको चोर, बाहिर कुछ वा भीतर और ।
छिप छिप करता सारे पाप, निज गुणों का करत आलाप ।
धर्म करे और सबन दिखावे, दान देय कर तुरही बजावे ।
करे भजन और शोर मचावे, धर्मी पुरुष न वह कहलावे ।
देत धोखा जो औरन ताहीं, स्तेन की संज्ञा वे नर पाहीं ।

दो० वे नर सारे चोर हैं, आंख में झोंकें धूल ।
ऐसे नरन पै हे मन, कर विश्वास न भूल ॥ १७५८क

1. मती रचित सुसमाचार VI—I से आगे; अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना ।

४. ब्रह्मचर्य[2]

प्रभु जो की सुन वार्ता, सब के मन सन्तोष।
कहन लगे "हे नाथ जी, चोरी बड़ा है दोष ॥ १७५९ख
आगे इस से क्या भगवान, ईसा ने था कौन बखान।
वह गुण हम भी लेवें जान, योग का इस से मिलता ज्ञान"।
प्रभु जी बोले सुन लो तात, ईसा कथी जो आगे बात।
ब्रह्मचर्य की बात बताई, शुद्धाचार की सीख सिखाई।
ईसा कहत है भक्तन जानो, व्यभिचार को दोष तो मानो।
मैं पर सूक्ष्म बात कह पाऊं, कुत्सिक दृष्टी पाप सुनाऊं।
दृष्टी पापमयी जो होवे, पापी जानो नरक वह गोवे।
क्षुद्र दोष न इसको मानो, विपद घोर का कारण जानो।

दो० एक अंग के कारणे, पड़ें नरक की आग।
धिक है ऐसे अंग को, नर होत मंद भाग ॥ १७६०क
नेत्र देह का दीप है, रखिये इसे निरोल।
स्वच्छ दीप देह निर्मला, कह दी मैंने खोल ॥ १७६०ख

आगे प्रभु जी ने बतलाया, ईसा का सुविचार सुनाया।
ईसा ने यह बात बताई, बात सबन के जो चित्त भायी।
अपनी पत्नी जो जन त्यागे, महा दोष उस नर को लागे।
त्यक्ता नार कुकर्म कमावे, सारा दोष पती पर आवे।
सदाचारी हों नर व नार, ईसा की शिक्षा का सार।

२. मती रचित सुसमाचार V 27—33, VI 22, 23

पत्नी व्रत पति लेवे पाल, पतिव्रता भी होवे नार ।
जग से हो व्यभिचार का नाश, ब्रह्मचर्य का इमि विकास ।
ब्रह्मचर्य की सीख महान, योग धर्म में इस को जान ।

दो० ब्रह्मचर्य की सीख जो, ऋषियन ने कथ पाई ।
ईसा ने उपदेश में, बैठ पहाड़ सुनाई ॥ १७६१क

५. अपरिग्रह†

और सुनो अब भक्तजन, ईसा के तुम बोल ।
योग धर्म जिस में बसे, कथन करें वही खोल ॥ १७६१ख

संग्रह करो न धन का भाई, ईसा बात साफ कह पाई ।
योग में अपरिग्रह जो आया, ईसा ने वह स्पष्ट बताया ।
गुरु योगी से शिक्षा पाई, कीनी थी उस योग कमाई ।
सत्य बात थी उस पहचानी, आत्मा की जिमि होय न हानी ।
कहा ईसा ने सुनो सुजान, धन जोड़े सो पुरुष नादान ।
धन पदार्थ नाश को पावें, कीट आदि उन को खा जावें ।
चोर आवे व उसे चुरावे, जगत में धन न टिकने पावे ।
स्वर्गिक धन की करो कमाई, पहुँच चोर की जहां न भाई ।

दो० चोर चुरावे जो धन, अथवा होता नाश ।
उस धन से क्या लाभ है, नर को करत हताश ॥ १७६२

जिस धन को न कीट ही खावे, और न जिस को चोर चुरावे ।
ऐसे धन की करो कमाई, ईसा ने यह बात सुनाई ।

†मती रचित सुसमाचार VI 19 से आगे अपरिग्रह का अर्थ है संग्रह का त्याग ।

जहां पर होगा धन बहुतेरा, वहां पर मन भी होगा तेरा ।
ज्ञान इसी से लेवो भाई, स्वर्गिक धन की करो कमाई ।
इस विध पांचो यम[1] बतलाये, भक्त जनों के मन बहु भाये ।
सार्वभौम है योग उपदेश, योग[2] दर्शन का कथन विशेष ।
किस के मन को ये न भावें, जीवन की जो राह दिखलावें ।
स्वर्ग लोक के जो सोपान, अथवा मोक्ष का देते ज्ञान ।

दो० यम नियम सभी योग के, धर्म कर्म के मूल ।
सब धर्मों के जान लो, तात्विक यही असूल ॥ १७६३क
नियमों का उपदेश भी, ईसा ने कथ दीन ।
सर्व प्रथम जो शौच है, उस को ही उस लीन ॥ १७६३ख

शौच[3]

मन वचन और कर्म की, शुद्धि शौच कहाय ।
बिन शुद्धि नहीं ईश को, नर सकत है पाय ॥ १७६३ग
कहा ईसा ने सब जन, श्रवण करो चित्तलाय ।
शुद्धि मन की कीजिये, निर्मल जिमि हो पाय ॥ १७६३घ

निर्मल मन से मिले भगवान, निर्मल मन में प्रभु का ज्ञान ।
मन निर्मल जब नर कर पाय, ईश्वर को झट मनहिं लखाय ।

१. यम अर्थात, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ।
२. योग दर्शन II 31
३. मति रचित सुसमाचार V, 8

संतोष[1]

कही ईसा ने यह भी बात, रहिये सब संतोष से तात ।
धन का करो न सोच विचार, रखिये ईश्वर चित्त में धार ।
दो मालिक को मान के देव, क्या सकता है कर कोई सेव ।
खान पान न चित्त में राखो, ईश भजन में ही तुम माखो ।
वस्त्रों का भी त्यागो ध्यान, सब बातों से बढ़ कर प्राण ।
पक्षियों तक जो भोजन देवे, क्यों कर तेरी सुधि न लेवे ।

दो० पक्षी बीज न बीजते, और न काटें खेत ।
भण्डार करें न अन्न का, ईश्वर सब को देत ॥ १७६४

चिन्ता से नहीं धन बढ़ जाता, ईश्वर देत वही जन पाता ।
क्यों वस्त्रों का करते ध्यान, वन के पुष्पों से लो ज्ञान ।
कैसा सुन्दर रूप निखारे, बढ़ते हैं वे शून्य में सारे ।
सुलेमान सम्राट महान, ऐसा नहीं पाया परिधान ।
घास पात का रूप निखारे, क्या ईश्वर न तुम्हें संवारे ।
व्यर्थ की चिन्ता है तुम लाई, सोच के देखो मेरे भाई ।
नास्तिक जन का ही यह काम, रहत सोच में काल तमाम
आस्तिक जन तो प्रभु को ध्यावे, सकल पदार्थ प्रभु से पावे ।

दो० सकल पदार्थ पात वह, भजे जो जन भगवान ।
चिन्ता कल की त्याग कर, करे प्रभु गुण गाण ॥ १७६५

यह शिक्षा ईसा ने दीनी, सीख योग की सब ने लीनी ।

1. मति रचित सुसमाचार VI 24-34

तप*

तप का भी उस दीना ज्ञान, योग में तप का खास स्थान ।
धन्य सभी वे जन लो जान, धर्म हेतु सहें कष्ट महान ।
करो तपस्या इस विध भाई, पाखण्ढ होय न उस में राई ।
देखे ईश्वर तेरे कर्म, जगत दिखावा करो न धर्म ।
उपवास करो तो रहो सचेत बने न मुख पाखण्ड के हेत ।
बहु जन सुख के मारग जाते, खुले द्वार प्रवेश वे पाते ।
पर जानो वह नाश का मार्ग, तप का नहीं वह भोग का मार्ग ।
अन्य मार्ग का जानो सार, तंग मार्ग और तंग द्वार ।
विरले जन उस पर चल पावें, जो चालें वे जीवन पावें ।

दो० जीवनदायी मग गहे, तपस्वी जो जन होय ।
विरले जन इस मग चलें, चले जो सूरा सोय ॥ १७६६

स्वाध्याय[1]

ईसा ने स्वाध्याय बताया, ज्ञान का मार्ग सबन लखाया ।
अध्ययन शील योगी जन होवे, योग शास्त्र से अनुभव गोवे ।
कहा ईसा ने मम उपदेश, प्राप्त करो सुन कर निर्देश ।
मनन करें आचरण में लावें, बुद्धिमान वे पुरुष कहावें ।
उनका जीवन तिमि सुरक्षित, दृढ़ नींव जिमि भवन आरक्षित ।
बेशक आंधी आये तोफान, देवे भवन पै चोट महान ।
बिगड़ न उस का कुछ भी पाये, नींव की दृढ़ता उसे बचाये ।

*मति रचित सुसमाचार V 10, II, VI 16-18, VII 13-14
१. मति रचित सुसमाचार VII 24-27

परन्तु सुने न जो उपदेश, अथवा आचरण न करत विशेष ।
जीवन उस का अस्थिर जानो, बालु नींव पै भवन पहचानो ।
दो० बालु की जो नींव पै, बना भवन हो मीत ।
टिके नहीं तोफान में, सोचो ला तुम चीत ॥ १७६७क

ईश्वर प्रणिधान[1]

सब से उत्तम जान लो, ईश्वर का प्रणिधान ।
यही ईसा बतलाया, दे भक्तन को ज्ञान ॥ १७६७ख
प्रार्थना की उस रीत बताई, हृदय से शुद्ध भक्ति सिखाई ।
प्रदर्शन हेत न हो यह भाई, इकान्त करो भक्ति चित्त लाई ।
निज भवन के बैठ के बीच, कपाट लेवो तुम उसका मीच ।
ईश्वर से फिर कर अरदास, स्वामी वह तू उस का दास ।
ईश्वर सर्वव्यापक भाई, विनय तेरी की हो सुनवाई ।
इष्ट पदार्थ तुझ को देवे, यदि तू उस को इस विध सेवे ।
तेरे मन की ईश्वर जाने, तेरी तोट[2] वही पहचाने ।
करो फिर मन से यह अरदास, पिता हो तुम हम तुम्हारे दास ।
दो० तुम्हीं पिता हम दास हैं, स्वर्ग तुम्हारा वास ।
पतित पावन नाथ जी, शरणी आया दास ॥ १७६८
तू है स्वर्ग लोक का स्वामी, और पवित्र हैं तू नामी ।
भू पर राज्य होय प्रभु तेरा, सब को सुख का मिले बसेरा ।

१. मति रचित सुसमाचार VI 6-15, VII 7-11
२. तोट—आवश्यकता

तेरी इच्छा ही हो पूरी, साध मेरी न रहे अधूरी ।
पेट समाता देवें अन्न, हम अपने को मानें धन्य ।
क्षमा करो अपराध हमारे, हम भी क्षमा शील हों सारे ।
क्षमा हमारे करना दोष, प्राणी हम तो नहीं निर्दोष ।
परीक्षा में हम को न लाना, पाप से हम को सदा बचाना ।
महिम सदा तेरी हम गावें, राज्य तेरे में रक्षा पावें ।

दो० अस्तुत मन से कीजिये, कर के प्रभु का ध्यान ।
ध्यान योग से मिलत है, जन को जीवन दान ॥ १७६९

प्रभु से ही तुम सब कुछ मांगो, मांगन में न लेश भी सांगो ।
मांगो और तुम्हें मिल पाये, खोजो और तुम्हें दिख जाये ।
खट खटाओ खुलेगा द्वार, अज़मा देखो तुम इक बार ।
ईश्वर दया सागर है जानो, पिता जगत का उसे पहचानो ।
पुत्र पिता से रोटी चाहे, पत्थर पिता नहीं दे पाये ।
मछली मांगे मछली पाये, सांप पिता नहीं हाथ थमाये ।
स्वर्गिम पिता की है क्या बात, वह तो दयावान साक्षात ।
हम दोषी वह दोष से न्यारा, सदा खुला है उस का द्वारा ।

दो० प्रभु जी ने इस विध कहा, ईसा का उपदेश ।
सुन कर भक्तन मन बसा, राम योगेश महेश ॥ १७७०

राम से बड़ा न जग में कोई, सब सन्तन का ईश्वर सोई ।
गुरुओं का वही गुरु महेश, भक्तन चित बसा निःशेष ।
धर्म हेत जिस लीन अवतार, बखाना धर्म का निज मुख सार ।

सब धर्मों की कीन बढ़ाई, सब सन्तों की उपमा गाई ।
सब धर्मों को एक बताया, योग में एकता को दिखलाया ।
रे मन शरण प्रभु की धार, भव से बेड़ा होगा पार ।
हरिहरानन्द को जिन तारा, रामा को जिन पार उतारा ।
चनचर जीव जिन्हों ने तारे, राजा रंक कई लाये किनारे ।
उसी प्रभु की शरण ग्राहो, शाश्वत शांति को फिर पाओ ।

दो० शरण प्रभु की ग्रहण कर, संशय रे मन त्याग ।
संत जनों के संत जो, कर उन से अनुराग ॥ १७७१

बालपने जिन वृद्धा तारी, मरण शय्या पर पड़ी उबारी ।
श्याम नारायण हरिहर राय, भक्त जनों को चरणी लाय ।
सवाईं का कुल जन समुदाय, ग्राम २ के जन जो आय ।
उन सब को जिन चरणी लाया, रुग्न जनों का रोग नसाया ।
रे मन कभी न वह प्रभु भूल, तारण हार उन की पग धूल ।
सूखा धीमर प्यारे लाल, निज दर्शन दे कीन निहाल ।
ठाकुर जौहरी चन्दन सिंह, ठाकुर दास गुलाब सिंह ।
किरपा कर वे चरणी लाये, दुख दारिद से सभी तराये ।
दुःख दारिद से तारण हार, रे मन शरण उन्हीं की धार ।
शरण प्रभु की न जो आये, भव सागर से न तर पाये ।

दो० प्रभु जी तारण हार हैं, निश्चय ऐसा धार ।
रे मन प्रभु का भजन कर, अवसर बार न बार ॥ १७७२

मुलखराज निज चरणी लाया, गोपालानन्द भव बन्ध छुड़ाया ।

ऋषि देवी जिन ऋषि बनायी, द्रौपदी से जिन कवित लिखायी ।
काक भुषुण्डी जिन का गुण गाया, कलियुग का अवतार बताया ।
गुरुओं का गुरु वर्णन कीना, प्रभुओं का भी प्रभु कह दीना ।
ज्ञान चक्षु से ब्रह्म ही चीना, त्रेता युग में था लिख दीना ।
मन मूर्ख मत कर अब सोच, प्रभु इष्टों के इष्ट हैं लोच ।
प्रभु से क्या कुछ न तू पाय, शरण गहो बस यही उपाय ।
जो भी शरण प्रभु की आया, प्रभु ने उसको नहीं ठुकराया ।

दो० शरण प्रभु की ग्रहण कर, करत यत्न से योग ।
जीवन उस का हो सफल, कहें सब सज्जन लोग ॥ १७७३

अखिल जगत के प्रभु जो स्वामी, गण्डा राम के सुत शुभ नामी ।
भागवन्ती के सुन्दर जाये, महा प्रभु जी गुरु जिन पाये ।
सुमेरु पर्वत कीना वास, भूतल पर जो थल इक खास ।
सिद्धों का जो सुन्दर धाम, सिद्ध पुरुष बहु देखे राम ।
प्रभु सिद्धों के सिद्ध सुरेश, सिद्ध करें सत्कार विशेष ।
सिद्धों से प्रभु की भई प्रीत, वनचर भी प्रभु के भये मीत ।
सिंह समान जो जीव भयंकर, भये प्रभु के वे भी किंकर ।
भालू और कपी वन वासी, भये प्रभु के दास व दासी ।

दो० सुमेरु पर्वत पर प्रभु, ठहर तपस्या कीन ।
महा प्रभु के पास रह, सेवा में चित्त दीन ॥ १७७४

गुरु सेवा मर्याद निभायी, विश्व सेव्य ने सेव कमायी ।
साधन योग बहुत कर पाये, सिद्ध पुरुष निरख विस्माये ।

कीना वस्तिन मध्य प्रवेश, जब पाया सत्गुरु आदेश ।
वस्तिन के मध्य जिन पधार, सर्वत्र कीना योग प्रचार ।
२ मन उन का बन अनुयायी, जन्म २ के वही सहायी ।
प्रभु पर पूरण कर विश्वास, जन्म २ को मिटेगी त्रास ।
ईसा का मत प्रभु बखाना, भक्तों को मिला बहु ज्ञाना ।
योग से भिन्न धर्म न खास, सब के चित्त उपजा विश्वास ।
एक भक्त ने पुनः उच्चारा, प्रश्न नाथ इक और हमारा ।

दो० प्रश्न हमारा नाथ जी, श्रवण करें भगवान ।
ईसा को कहें सकल जन, मर कर पाये प्राण ।। १७७५

क्या लीला यह हमरे नाथा, क्या सच्ची है यह सब गाथा ।
ऐसा कहीं तो न हो पाये, शव दफनाया निकल के आये ।
क्या यह है कोई करामात, अथवा है कुछ और ही बात ।
कर किरपा सब हमें बतायें, आप से बात सत्य सुन पायें ।
सुन कर यह जिज्ञासा नाथ, कहन लगे तब पुरातन गाथ ।
चिरञ्जीव तुम को बतलायें, बात योग की तुम्हें सुनायें ।
भेद योग का योगी जानें, अन्य पुरुष न लेश पहचानें ।
था यहूदी देश वह सारा, ईसा ने जहां मत प्रचारा ।
विरले ऐसे जग में लोग, सत्य को सुनने के जो योग ।
सत्य २ जब बात सुनाई, भयी ईसा से शत्रुताई ।
यहूदी लोग उमड़ के आये, ईसा को वे पकड़ के लाये ।
राजा के उन कीना पेश, फांसी का जिस दीन आदेश ।

दो० फांसी योगी को मिले, कैसा यह उपहास ।
योगी अपनी शक्ति से, धारे त्यागे श्वास ॥ १७७६

क्रूस पै ईसा को लटकाया, ईसा ने झट श्वास चढ़ाया ।
सूबेदार अनुमान लगाया, ईसा शीघ्र है मर पाया ।
दो डाकू भी थे लटकाये, वे तो अभी न थे मर पाये ।
कौन योगी की जाने बात, योगी इच्छामृत्यु तात ।
ईसा का इक भक्त प्यारा, राजा के दरबार पधारा ।
यूसुफ था उस का अभिधान, ईसा का शव मांगा आन[1] ।
सूबेदार को नृप बुलाया, कहा क्या ईसा है मर पाया ।
सूबेदार कह दीनी बात, राजा अचरज कीना तात ।
इतनी शीघ्र स्वर्ग सिधारा, डाकुओं ने न प्राण निकारा ।
दीनी लोथ यूसफ के ताहीं, यूसफ राखी कब्र के माहीं ।
पाथर आगे इक रख दीना, कबर को इस विध बन्द उस कीना ।

दो० बन्द कब्र को जब किया, देखा भक्तन नार ।
हम आवेंगी इस थल, मन में लीना धार ॥ १७७७

---

1. मरकुस रचित सुसमाचार XV 42-47
"जब संध्या हो गई तो अरिमतिया का रहने वाला यूसुफ आया। वह पीलातुस (राजा) के पास गया। और यीशु की लोथ मांगी। पीलातुस ने आश्चर्य किया, कि वह इतना शीघ्र मर गया, और सूबेदार को बुला कर पूछा, कि क्या उसको मरे हुये देर हुई? सो जब सूबेदार के द्वारा हाल जान लिया तो लोथ यूसुफ को दिला दी।
"तब उस ने एक पतली चादर मोल ली और लोथ को उतार कर उस चादर में लपेटा, और एक कब्र में जो चट्टान में खोदी गई थी रखा, और कब्र के द्वार पर पत्थर लुढ़का दिया। और मरियम गदलीनी और योसेस की माता मरियम देख रही थीं। कि वह कहां रखा गया है।

इधर ईसा ने प्राण उतारे, निकल कब्र से वह अंध्यारे ।
अपने देश की ओर सिधारा, छोड़ी कब्र गलील पधारा ।
तीजे दिन अबला वे आईं, खाली कब्र देख विस्माईं ।
नभ से उन्हें मिला संदेश, ईसा निकल गया निज देश ।
वे भी तब निज देश को आईं, अपनी बात सबन कह पाईं ।
ईसा बहु जन को मिल पाया, पर विश्वास न सब को आया[1] ।
उसको प्रेत ही कर के माना, ईसा ने तब मन अनुमाना ।
आर्यावर्त की ओर सिधारूँ, गुरु भूमि में मैं पग धारूँ ।
योगिन संग मैं योग कमाऊँ, मृत्यु पाछे स्वर्ग को जाऊँ ।

दो० इस विध मन अनुमान कर, आया भारत ओर ।
वन वस्तिन मैं वह फिरा, एक न ठहरा ठौर ॥ १७७८

इस विध प्रभु जी ने बतलाया, जिस ईसा ने धर्म चलाया ।
योग से थी उस शिक्षा पाई, योगी गुरु पा कीन कमाई ।
जो भी शरण योग की आवे, धर्मी पुरुष वही बन जावे ।
सुन कर भक्त जनों ने बात, कहा धन्य तुम जगत त्रात ।
हम जिन को विधर्मी जानें, आप ने उन के गुण बखाने ।
हम को दीना यह विश्वास, योग मूल है धर्म का खास ।
इस विश्वास को हम न त्यागें, आप गुरु हम चरणी लागें ।

1. मती रचित सुसमाचार 28.17
मरकुस रचित सुसमाचार 16.12
लूका रचित सुसमाचार 24.36 –49
यूहन्ना रचित सुसमाचार 21.4

मद मत्सर को निकट न लावें, मार्ग योग पै ही चल पावें ।

दो० योग का मार्ग ग्रहण कर, सब से राखें प्यार ।
एक पिता सब पूत हैं, ऐसा मन में धार ॥ १७७९

कहा प्रभु तुम सच कर जाना, योग महातम ठीक पहचाना ।
योग पारस है मेरे भाई, संग लगे सो स्वर्ण हो जाई ।
जिस ने योग को है अपनाया, ईश्वर शक्ति को उस पाया ।
उस में भया आकर्ष विशेष, जगत के मेटे उसी कलेश ।
संग्रह लोक उसी ने कीना, गुरु पदवी को उस पा लीना ।
गुरु जगत का कोई कहलाया, बानी धर्म कोई बन पाया ।
कोई अवतारी पुरुष कहावे, पीर पैगम्बर नाम धरावे ।
ईश्वर का कोई पूत कहाता, तीर्थंकर कोई नाम धराता ।
किसी को कहते हैं बुद्ध भाई, शुद्ध वुद्ध कोई हंस कहाई ।
संत महंत कोई ऋषि कहाये, परम हंस कोई बन पाये ।
नाम भेद पर न कुछ भेद, योग मिटावे सब का भेद ।

दो० एकता का जो सूत है, योग उसी का नाम ।
सब फैक्ट्रन में है जिमी, विद्युत करती काम ॥ १७८०क
विद्युत शक्ति एक है, करती काम अनेक ।
योग शक्ति भी एक है, उपजे मत अनेक ॥ १७८०ख
ऋषि मुनि जितने हुए, और हुये अवतार ।
सब को ही तो योग का, था केवल आधार ॥ १७८०ग

९९. योगी ऋषि वामदेव

आदि काल से ऋषि मुनि सारे, भये योग के पालन हारे ।
वामदेव ऋषि योगी ज्ञानी, जन्म २ की कथा बखानी ।
गर्भ काल में ही बतलाया, अपने जन्मों का समझाया ।
जन्म लेय कर कीना योग, सिद्ध भया सब जानें लोग ।
देह त्याग फिर मुक्ति पाई, महिमा वेदों में है गायी[1] ।
योग को युक्ति ही न जानो, परमेश्वर तुम इसे पहचानो[2] ।
योग और ईश्वर में न भेद, आनन्द अवस्था यह बिन खेद ।
ईश्वर का जहां पूर्ण प्रकाश, दुई का नहीं लेश विकाश ।

दो० एक तत्व जिस लोक में, अन्य का हो न भान ।
योग उसी को जानिये, अनुभूति जहां ज्ञान[3] ॥ १७८१क
भक्त जनों ने श्रवण कर, प्राप्त किया निर्वेद ।
"धन्य प्रभो" कहने लगे, मुख पै आप के वेद ॥ १७८१ख

कहा प्रभु ने भक्त सुजान, योग से ही सब मिलता ज्ञान ।
जो भी हो जिज्ञासु भाई, करे योग की वही कमाई ।

---

1. ऐतरेयोपनिषद II. 1.5; III. 1.4.1
वामदेव ऋषि ने गर्भ में रहते हुये ही अपने बहुत से जन्मों का अनुभव बतलाया था कि मैं लोहमय दुर्गों के समान सैंकड़ों शरीरों में बन्दी रह चुका हूं, किन्तु योग द्वारा आत्म ज्ञान हो जाने से मैं श्येन पक्षी के समान उनका भेदन कर बाहर निकल आया हूं ऐसा ज्ञान होने के कारण ही वामदेव मुक्त हुये ।
2. योग ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन होने के साथ ही ईश्वर का प्रयायवाची भी है ।
3. योग में वाचिक ज्ञान नहीं अपितु अनुभवगम्य ज्ञान की प्रधानता है ।

१००. योगी बालक नचिकेता

जिज्ञासु था इक बाल सुजान, नचिकेता उसका अभिधान ।
पिता ने उस को जब पढ़ाया, जिज्ञासु बन यम पास वह आया ।
तीन दिवस यम माथ न लाया, भूखा प्यासा ही रहा पाया ।
यम ने फिर बहु कीन प्रयास, त्यागे योग की वह जिज्ञास ।
परीक्षा में वह भया था पास, दीनी यम तब विद्या खास ।
देश इसी का पूत महान, वेद करें उस का गुण गान ।

दो० वेद कहें नचिकेत था, बालक परम सुजान ।
यम से शिक्षा पाय कर, योगी बना महान ॥ १७८२क

नाडिन का सब ज्ञान जो, दीना यम ने आप ।
ऊर्ध्व गति हो प्राण की, मोक्ष मिले बिन ताप । १७८२ख

नाड़ी एक सो एक हैं, हृदय के ही मांझ ।
सुषुम्ना सब के मध्य में, पहुँचे मूर्धा मांझ ॥ १७८२ग

प्राण सुषुम्ना मध्य चढ़ाये, ऐसा योगी मोक्ष को पाये ।
यम ने सब कुछ उसे सिखाया, नचिकेता को योग कराया[1] ।
यम जैसे जहां सद्गुरु होवें, नचिकेता से शिष्य को गोवें ।
धरती उस के कौन समान, जय भारत तू वन्द्य महान ।
वेदों से जहां ग्रंथ प्रमान, आर्यावर्त विश्व वन्द्य महान ।

१०१. योगी महर्षि त्रिशंकु

आगे प्रभु जी यह समझावें, हम तुम को कुछ और बतावें ।

1. कठ उपनिषद ॥ 3. 16, 18
"यम की कही हुई विद्या और सम्पूर्ण योग विद्या को पा कर नचिकेता ब्रह्म भाव को प्राप्त, विरज और मृत्यु हीन हो गया ।

योगी असंख्य हुये इस देश, गणना कर सके नहीं शेष[1] ।
त्रिशंकु महर्षि था इक योगी, ऋतंभर प्रज्ञा का जो भोगी ।
उच्च समाधि ज्ञान जो पाया, प्रसिद्ध वचन कह इमि सुनाया ।
दो० ज्ञान वचन उसका भया, वेदों में प्रख्यात ।
उन्मनी आवेश मांहि, कथी अनोखी बात[2] ॥ १७८३

आत्म वोध उसने था पाया, वेद वचन उस सबन सुनाया ।
आत्मा को करके उस लक्ष्य, उदात्त वचन कहा सबन समक्ष ।
"मुझ से ही है जग सब जाया, यश मेरा सर्वत्र छाया ।
सूर्य मम, मैं शुद्ध हूँ भाई, अमृतमय मम सब प्रभुताई" ।
जिस ज्ञान को उसने पाया, वचन ओजस्वी सबन सुनाया ।
भक्त जनो तुम लो यह जान, वचन करे नहीं ज्ञान बखान ।
योगी को जो अनुभव आवे, शब्द कोई न कथ वह पावे ।
अनुभव ही अनुभव को जाने, भाषा में कोई किमि बखाने ।
ऋषि त्रिशंकु का यह ज्ञान, वेदन ने जो कीन बखान ।
जब तक सूरज और हैं चांद, प्रेरक रहेगा जग के मांझ ।
दो० वेदों का सब ज्ञान जो, जान लेवो मम मीत ।
योगिन का अनुभव लिखा, योग की चाली रीत ॥ १७८४

१०२. योगी ऋषि भृगु की पंचकोष साधना[3]

भृगु ऋषी एक हुये महान, वरुण ऋषी के पुत्र सुजान ।

1. शेष -शेषनाग 2. तैत्तिरीयोपनिषद् I. 10; 3. तैत्तिरीयोपनिषद् (भृगु वल्ली) पंचकोष—अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष, आनन्दमयकोष ।

निज पिता से विद्या पाई, क्रम पूर्वक इक रीति सिखाई ।
पिता अपने को जान महान, गही शरण उस पूत सुजान ।
कहा पिता "हे पूत प्यारे, तप से सधते कारज सारे[1] ।
योग तपस्या में मन लावो, चित्त एकाग्र जिमि कर पावो ।
मिलेगा फिर तुम को सब ज्ञान, विश्व रचा जिमि सकल महान ।
योग तपस्या भृगु कर पाया, अन्नमय[2] कोष उसे लखाया ।
जीवन का आधार उस जाना, अन्न को ही उस सब कुछ माना ।
अन्न से ही सृष्टी है जायी, अन्न में ही वह पुनः समायी ।
पिता अपने को जा कह दीना, जैसा ज्ञान था उसने चीना ।

दो० निज अनुभव की बात सब, कथ उस ने तब दीन ।
संतोष पिता जतलाया, श्रवण सकल जब कीन ॥ १७८५

देख पिता उस को अधिकारी, प्रेम सहित तब गिरा उचारी ।
आगे है अभी बहुत ज्ञान, तप से ही सब लोगे जान ।
अभी योग न भया सम्पूर्ण, तप तुम्हारा अभी अपूर्ण ।
जा कर करो तपस्या भारी, योग धर्म के बन अधिकारी ।
मानी पिता की पूत ने बात, कीन योग उस दिन व रात ।
सूक्ष्मतर जग दृष्टि आया, सुन्दर से अति सुन्दर माया ।
प्राण शक्ति उस लीन पहचान, प्राणमय[3] कोष का मिला ज्ञान ।

१. महाभारत शा० 250.4 में तप का लक्षण दिया है :—
मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः ॥ अर्थात मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है ।
२. तैत्तिरोयोपनिषद III 2.1
३. तैत्तिरोयोपनिषद III 3.1

उसके हर्ष का नहीं ठिकाना, मिला जो ऐसा अद्भुत ज्ञाना ।

दो० ज्ञान जगत में जब रमे, योगी कर के योग ।
निज अनुभव किमि कथ सके, दिव्य जगत के भोग ॥ १७८६

पास पिता के भृगु सिधाया, निज अनुभव उसको कथ पाया ।
"प्राण शक्ति को मैंने देखा, प्राण व्यापत जग में पेखा ।
प्राणी प्राण से उपजे सारे, लीन प्राण में ही हों सारे ।
भगवन कृपा आप ने कीनी, सुन्दर विद्या मुझ को दीनी" ।
कहा वरुण ने "मेरे तात, पूरी न अभी जानी बात ।
और तपस्या तुम कर पावो, सूक्ष्मतर में तभी समावो ।
समुद्र ज्ञान का परम विशाल, हम तो खेलें तट पर बाल ।
कांकर पाथर ले कर जोड़ें, मन अपना इमि बहु विध मोड़ें ।

दो० ज्ञान समुद्र है परम, विस्तृत मेरे तात ।
पार न इस का पा सकें, निश्चित है यह बात ॥ १७८७क
गमन करो तप हेत तुम, जान पाओगे भेद ।
तप से मुख न मोड़ना, लाना न चित्त खेद" ॥ १७८७ख

इस विध वरुण ने उसे भिजाया, योग तपस्या हेंत पठाया ।
कीन तपस्या उस ने भारी, भृगु तब जानी बात न्यारी ।
मन का ही तो सकल पसारा, मन ने रचा विश्व यह सारा ।
एक तत्व बस मन है भाई, सृष्टि सकल उसने उपजाई ।
मन से हों सब कर्म नवीन, और उसी में फिर हों लीन ।

मनमय[1] कोष को इस विध जाना, भृगु ने मन को सब कुछ माना ।
कहा प्रभु ने भक्तन ताहीं, कार्य से कारण सूक्ष्म आहीं ।
सृष्टि को तुम कारज जानो, सूक्ष्म उसके कारण मानो ।
कारण का भी होवे कारण, और न कारण वह बिन कारण[2] ।

दो० कारण से सब कार्य हों, सूक्ष्म से हो स्थूल ।
योगी जन जब देखता, भ्रांति होत निर्मूल ॥ १७८८

अन्न जगत का है आधार, अन्न का कारण प्राण अपार ।
अन्नमय कोष व प्राणमय कोष, देख भृगु मन भया सन्तोष ।
अभी ज्ञान था भया न पूरा, गुरु का शिष्य क्यों रहे अधूरा ।
गुरु ने तप तब और कराया, प्राण का कारण भी दिखलाया ।
प्राण का कारण मन उस देखा, मनमय कोष को तब उल्लेखा ।
मन को कारण जग का जाना, और न आगे कुछ अनुमाना ।
निज अनुभव गुरु को बतलाया, गुरु ने उस को पुनः लौटाया ।
गुरु था पूर्ण योगी मीत, उस का ज्ञान प्रकाशित चीत ।
वरुण ऋषि ने कहा तुम जाओ, साधन पथ पै अभी चल पाओ ।

दो० मन कारण है प्राण का, इस में न सन्देह ।
मन का कारण जब मिले, तब आना फिर गेह ॥ १७८९

भृगु ने गुरु की आज्ञा मानी, पुनः तपस्या की उस ठानी ।
कठिन तपस्या वह कर पाया, कारण मन का दृष्टि आया ।

१. तैत्तिरीयोपनिषद III. 4.1
२. इस का तात्पर्य यह है कि जिस को हम कारण मानते है । उस कारण का जन्म भी किसी दूसरे कारण से हुआ करता है ।

मन का कारण ज्ञान को पेखा, विज्ञान[1] कोष तभी था देखा ।
विज्ञान के आगे न कुछ होई, ऐसा जान पाया वह सोई ।
ज्ञान के आगे क्या हो ज्ञान, ऐसा कर पाया वह ध्यान ।
पिता पास पर जब वह आया, उसे पिता ने पुनः लौटाया ।
विज्ञान को कारण न लो जान, योग से लोगे सत्य पहचान ।
जाओ पुनः तुम कर लो योग, ऐसा मिलेगा नहीं सुयोग ।

दो० ऐसा अवसर कब मिले, कर पाओ जब योग ।
सद्गुरु योगी जब मिले, मिलता तभी सुयोग ॥ १७९०क

मान पिता की बात को, भृगु गया तप हेत ।
घोर तपस्या जब करी, पायी पुनः उस चेत ॥ १७९०ख

आनन्द[2] भया उस के मन मांहि, आनन्द कोष में गया समांहि ।
आनन्द बीज सबन का भाई, यही बात उसको तब भाई ।
कहा प्रभु तब भक्तन ताहीं, ईश्वर सच्चिदानन्द कहाहीं ।
आनन्द रूप ईश्वर को जानो, आनन्द कोष में जाय पहचानो ।
भृगु सम साधक योग कमावे, योग करे सो ज्ञान को पावे ।
योग बिना नहीं मिलता ज्ञान, इस श्रुति[3] का यही फरमान ।
भृगु योगी फिर भये विख्यात, प्रमाण श्रुति का स्पष्ट है तात ।
करें वेद जिसका गुण गान, उस योगी से कौन महान ।

१. तैत्तिरीयोपनिषद III. 5.1 २. तैत्तिरीयोपनिषद III. 6.1
३. भृगुवल्ली का प्रसंग शिक्षा देता है कि बिना योग के ज्ञान नहीं मिलता ।

दो० योग साधन जिस ने किया, पा कर गुरु आदेश ।
गुरु कृपा से सफलता, क्यों न मिले विशेष ॥ १७९१

भक्तों ने प्रभु का मत जाना, प्रभु दिया था वेद प्रमाणा ।
जो जिज्ञासु होवे साध, चरण गुरु के ले आराध ।
साधन व तप को कर पाये, योग करे और ज्ञान कमाये ।
जन का जीवन होवे सार्थ, गुरु कृपा से पाये परमार्थ ।
सनातन रीत यही चलि आई, योग किया और मुक्ति पाई ।
प्रभु जी भी वह दिशा दिखाई, जग ने थी जो सकल भुलाई ।
वेदों का प्रमाण बताया, सन्तों का इतिहास सुनाया ।
तर्क सहित सब कुछ समझाया शास्त्रों का आख्यान जताया ।
निश्चय जग को यही कराया, योग बिना न तर कोई पाया ।

दो० योग बिना न मुक्ति है, और नहीं कल्याण ।
प्रभु जी ने समझाया, दे दे कर प्रमाण ॥ १७९२

भक्त जनों ने बहु सुख माना, प्रभुजी को सर्वज्ञ पहचाना ।
घर जाने की वेला आई, प्रभु जी बात सबन कह पाई ।
साध संगत अब सदन सिधारो, श्रवण किया जो उसे विचारो ।
सुनी बात जो मनन में लाता, जन वही आचरण कर पाता ।
सुन कर प्रभुजी का उपदेश, सबन पुकारा धन्य सर्वेश ।
प्रात समय हम फिर चलि आवें, बैठ चरणों में शिक्षा पावें ।
कर प्रणाम वे सभी सिधाये, प्रभु जी ध्यान मग्न हो पाये ।
रात विहायी प्रात हो पायी, सुन्दरता ऊषा की छायी ।

नूतन जगत जनु उपजाया, दिव्य ऊषा निज गोद उठाया ।
पक्षी गण चहचहाने लागे, शैशव के जिमि बोल सुहागे ।
दो० चहल पहल सब थां भयी, जागे जगदाधार ।
नित्य कर्म से निपट कर, आसन कीन स्वीकार ॥ १७९३क
इतने में सब आ गया, भक्तन का समुदाय ।
शरण प्रभु की ग्रहण की, सुध बुध को बिसराय ॥ १७९३ख
प्रभु चरणों में शक्ति विलक्षण, ध्यान से पावें शांति तत्क्षण ।
स्पर्श करे पग जभी सुजान, लागत उसका अन्तर ध्यान ।
अद्भुत शक्ति प्रभु के पग में, भव से पार करें जो पल में ।
पग स्पर्श ने अहिल्या तारी, प्रभु चरणों पर जग बलिहारी ।
वह जन कृत कृत्य हो जावे, जो स्पर्श प्रभु पग का पावे ।
जिस ने प्रभु के पग न ग्राहे, कोटि जन्म भी योग न पाये ।
किसी ने जब भी सिद्धि पायी, इन्हीं चरणों से शक्ति ग्राही ।
प्रभु के चरण जब कीन स्पर्श, अलौकिक भक्तों के चित्त हर्ष ।
दो० भक्तन के चित्त मोद था, दृढ़ था मन विश्वास ।
प्रभु जी ने सत्कार से, सबन बिठाया पास ॥ १७९४
एक भक्त ने विनय उचारी, भ्रांति नाथ मिटाई सारी ।
तव उपदेश मनन में लाया, अन्तर में बहु ज्ञान को पाया ।
आज प्रभु हम को बतलावें, आनन्द कोष पुनः समझावें ।
आनन्द कोष से होय महान, है ऐसा भी प्रभु कोई ज्ञान ।
सुन कर प्रभु जी भक्त की बात, विचार सहित बोले सुन तात ।

तुम जिज्ञासा जो प्रकटाई, अति सूक्ष्म वह बात है भाई ।
उस ज्ञान का जानन हारा, विरला होता योगी न्यारा ।
इक मैं वैदिक कथा सुनाऊँ, स्पष्ट बात यह जिमि कर पाऊँ ।

१०३. योग जिज्ञासु "प्राचीन योग्य" नामक ब्रह्मचारी तथा "इन्द्रयोनि" मार्ग का ज्ञान*

प्राचीन योग्य इक था ब्रह्मचारी, उस मन थी जिज्ञासा भारी ।

दो० थी जिज्ञासा चित्त में, ब्रह्म का पाऊँ ज्ञान ।
गुरु चरणों में जाय कर, हो संशय का हान ॥ १७९५क
इस विध मन में धार कर, गया गुरु के पास ।
गुरु योगी था अनुभवी, रहस बताया खास ॥ १७९५ख

प्राचीन योग्य को गुरु बतलाया, परमानन्द का मग समझाया ।
पंच* कोषों को करके पार, पाये जिमि जन ब्रह्म अपार ।
योग में उसको गुरु लगाया, उत्तम ज्ञान उसे दे पाया ।
प्राचीन योग्य तुम लेवो जान, हृदयाकाश को करो पहचान ।
मनोमय तुम पुरुष वहां जानो, अमृत हिरण्यमय रूप पहचानो ।
मन एकाग्र वहां कर पावो, आतम दर्शन कर दिखलावो ।
सुषुम्ना का यह मार्ग भाई, यहां से तालु मध्य वह जाई ।
स्तनवत तालु में जो मांस, सुषुम्ना का है मग वह खास ।
वहां से ऊर्ध्व सुषुम्ना जावे, मूर्ध देश में चढ़ दिखलावे ।

* तैत्तिरीयोपनिषद । 6 * पंचकोष । १. अन्नमयकोष २. प्राणमयकोष ३. मनोमयकोष ४. विज्ञानमयकोष ५. आनन्दमयकोष

कपाल को कर फिर वह विदीर्ण, ब्रह्माकाश में होवे शीर्ण[1] ।
"इन्द्रयोनि" यह मग विख्यात, हो ब्रह्म का यहां साक्षात ।
दो० इन्द्र योनि को योगिजन, जान ब्रह्म का द्वार ।
इसी मग से प्रयान कर, होते भव से पार ॥ १७९६

प्राचीन योग्य ने पा निर्देश, मिला जिमि था गुरु निर्देश ।
उस विध ही उस योग कमाया, उच्च समाधि को तब पाया ।
भक्तन ताहीं प्रभु कह पाया, कई ऋषियों ने योग कमाया ।
ऋषियों की यह भूमि जानो, भारत जिस का नाम पहचानो ।
यहां पै योगी भये विख्यात, गणना उन की हो नहीं तात ।
आदि काल से ऋषि-मुनि सारे, योग साधन के करने हारे ।
आर्ष अवस्था योग से पाते, शिष्यन को भी योग सिखाते ।

१०४. पिप्पलाद ऋषि द्वारा छः ऋषि कुमारों को योग की शिक्षा देना[2]

एक ऋषि का करूं बखान, पिप्पलाद ऋषि जिसका अभिधान ।
आश्रम उस का परम सुहाना, शिष्यन का जहां आना जाना ।

---

१. "यह जो हृदय के मध्य में स्थित आकाश है उसमें ही यह मनोमय अमृत स्वरूप हिरण्मय पुरुष रहता है। तालु के बीच में यह जो स्तन के समान (मांस खण्ड) लटका हुआ है (उसमें हो कर जो सुषुम्ना नाड़ी) जहां केशों का मूल भाग विभक्त होकर रहता है, उस मूर्ध प्रदेश में मस्तक को विदीर्ण कर के निकल गयी है। वह 'इन्द्रयोनि' (अर्थात परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग) है" तैत्तिरीयोपनिषद् 1.6.1

२. प्रश्नोपनिषद ।

दो० आश्रम था पिप्पलाद का, बिदुषन में प्रसिद्ध ।
जहां जिज्ञासु आय कर, होते विद्या विद ॥ १७९७क
एक बार की बात है, आ गये ऋषि कुमार ।
संख्या में थे छः जन, आ कर बैठे द्वार ॥ १७९७ख

सुकेशा सत्य-काम सौर्याणी, भार्गव व कौसल्य अभिधानी ।
छटा कबन्धी था जिज्ञासु, समित्पाणि[1] सब ज्ञान पिपासु ।
देख ऋषि उन की जिज्ञासा, योग हेतु मन में अभिलाषा ।
कहन लागे "हे ऋषि कुमारो, एक वर्ष तुम यहीं गुज़ारो ।
श्रद्धा सहित तप को कर पावो, हम से फिर तुम योग को पावो ।
ज्ञान सकल तुम को दे पावें, तुम से कुछ भी नहीं दुरावें ।
बात कुमारों ने सब मानीं, गुरु सेवा में रहे गुरु-मानी ।
एक वर्ष उन इमी बिताया, गुरु सेवा और तप कमाया ।

दो० तप साधन गुरु सेव में, रह कर पूर्ण वर्ष ।
गुरु चरणों में वेनती, कीनी पुनः सहर्ष ॥ १७९८

"हे गुरुदेव परम हितकारी, जगत वन्द्य प्रभो पापारी ।
कर कृपा हम को अपनाया, निज चरणों का शिष्य बनाया ।
प्रश्न हमारे अब सुलझावें, जो मन में वह गुरो बतावें" ।
पिप्पलाद ऋषि ने तब कह पाया, जो है जिस के मन में आया ।
प्रश्न करो तुम ऋषि कुमारो, अपने संशय सकल निवारो ।

---

१. समित्पाणी—हाथों में हवन के लिये समिधायें भेंट स्वरूप ले कर आये हुये। यह शिष्यत्व का चिन्ह है। छः ऋषि कुमारों के नाम :—
१. सुकेशा २. सत्यकान ३. सौर्यायणि गार्ग्य ४. कौसल्य ५. भार्गव ६. कबन्धी

संवत्सर भर जो तप तुम कीना, इस्थिर चित्त उससे हो लीना ।
बुद्धि ने भी स्थिरता पायी, ज्ञान मिले अब सब सुखदायी ।
भूमि प्रथम जो करे तयार, पाछे उसमें बीज दे डार ।
उत्तम फल ही वह जन पावे, विपरीत करे सो सकल नसावे ।
बिन तप के जो ज्ञान कमावे, उस का ज्ञान न शक्ति पावे ।

दो० बिन तप के जो ज्ञान है, और जो तप बिन सेव ।
दोनों ही निष्प्राण हों, विरला जाने भेव ॥ १७९९

प्रश्न करो अब जो मन आय, विचार करो फिर उत्तर पाय ।
कबन्धी ने प्रश्न यह कीना, निज संशय का उत्तर चीना ।

१. कबन्धी का प्रश्न

कहां से प्रजा सकल उपजायी, यही पूछन को मम मन आयी ।
इस का उत्तर मिले भगवान, आप से गुप्त नहीं कुछ ज्ञान[1] ।
कवन्धी को तब ऋषि बताया, सभी कुमारों को समझाया ।
"ब्रह्मा जिस से जग है जाया, इक जोड़ा उस प्रथम बनाया ।
एक 'रयि' व 'प्राण' है दूजा, इस जोड़े से सब कुछ उपजा ।
मूर्त अमूर्त सब रयि का रूप, प्राण तो केवल शक्ति स्वरूप ।
शक्ति जो आदित्य में जानो, प्राण की शक्ति ही वह मानो ।
घट में उसी शक्ति का वासा, प्राणों का सर्वत्र अधिवासा ।

दो० प्राण शक्ति है रम रही, सकल देह के मांझ ।
उसी शक्ति की साधना, करो प्रात व सांझ ॥ १८००

१. प्रश्नोपनिषद ॥. 13.

प्राणों को जो साध दिखावे, गति उत्तरायण वह जन पावे ।
तप व श्रद्धा उस की पूरी, ब्रह्मचर्या न रहे अधूरी ।
अभय गति उसको मिल पावे, अमर गति परागति वह पावे ।
आत्म रूप को वह पहचाने, जन्म मरण में पुनः न आने ।
यही निरोध अवस्था जानो, स्थिरता जीव की ब्रह्म में मानो[1] ।
इक मार्ग तुम और पहचानो, दक्षिणायन वह मार्ग जानो ।
प्राण का आश्रय जो न ग्राहवें, वे योगी इस मार्ग जावें ।
आवागमन का मग यह भाई, संसृति हेत इस की प्रभुताई ।
पितृयान भी इसी का नाम, रयि का मुख्य है इसमें काम ।
संतानेच्छ जो ऋषिजन होवें, दक्षिण मग को वे ही गोवें ।

दो० प्रश्न जो तुमने था किया, प्रजा सम्बन्धी मीत ।
स्पष्ट बात सब मैं कथी, जिस विध है प्रतीत ॥ १८०१

कबन्धी ने जब उत्तर पाया, सन्तुष्ट भया व मन हर्षाया ।
प्राणों का उस महत्व जाना, साधन मोक्ष प्राण को माना ।
प्रभु जी ने आगे बतलाया, भार्गव ने जो प्रश्न उठाया ।

२. भार्गव ऋषि कुमार का प्रश्न[2]

गुरुदेव जो प्रजा है सारी, कौन देव उस के अधिकारी ।
देवों में भी मुख्य है कौन, और कौन जो देव हैं गौन ।

१. प्रश्नोपनिषद 1. 10. "तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या द्वारा आत्मा की खोज करते हुये वे उत्तरमार्ग द्वारा सूर्य लोक को प्राप्त होते हैं। यही प्राणों का आश्रय है, यही अमृत है, यही अभय है, और यही परागति है। इस से फिर नहीं लौटते, अतः यही निरोध अवस्था है।"

२. प्रश्नोपनिषद II. I

सुन कर उस का प्रश्न विशेष, पिप्पलाद ऋषि ने सोचा लेश ।
दृष्टांत सहित उस उत्तर दीना, सरल रूप बहु ज्ञान कह दीना ।
पिप्पलाद कहा, "हे विप्र कुमार, विलक्षण घटना भई इक बार ।
प्रत्येक देव करे तकरार, मेरा देह पर है अधिकार ।
देह के रक्षक देव ये जानो, वायु अग्नि नीर पहचानो ।

दो० पृथ्वी वाणी चित्त है, चक्षू श्रोत्र जान ।
यह सब देह के देवता, देह के रक्षक मान[1] ॥ १८०२

सब ये करन लगे तकरार, प्रत्येक कहे "मैं मुख्य आधार" ।
उन का देख के कलह क्लेश, प्राण कही इक बात विशेष ।
कलह करो तुम क्यों कर भाई, देह तो मेरे आश्रित आही ।
सब ने सुन यह खिली उड़ाई, तुम ने क्या यह टांग अड़ाई ।
तुम कौन हम नहीं पहचानें, तुम्हारी सत्ता को न मानें ।
प्राण को आया सुन के रोष, उठा, वह सब की उड़ गई होश ।
बैठा, जान की जान में आई, पुनः उठा तो होश उड़ाई ।
सब ने मानी तब यह बात, प्राण के आश्रित हैं यह गात ।

दो० प्राण के आश्रित गात है, प्राण बिना कुछ नाहीं ।
अस्तुत सब करने लगे, प्राण हमारा साईं ॥ १८०३

पिप्पलाद कहा "हे ऋषि कुमार, प्राण ही देह का मुख्य आधार ।
प्राण के आश्रित सब संसार, प्राण बिना है सब निस्सार ।

१. प्रश्नोपनिषद II.2 देवता, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाणी (अर्थात् सम्पूर्ण कर्मेन्द्रियां), चित्त (अन्तःकरण), चक्षु, श्रोत्र (अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रिय समूह)।

सूर्य में भी प्राण ही जानो, मेघ भी प्राण के बिन न मानो ।
इन्द्र वायु देव ये सारे, प्राण के ऊपर निर्भर भारे ।
प्राणी का तो प्राण आधार, प्राण बिना नहीं हो कुछ कार ।
धुरी जगत की प्राण ही जानो, उस के ही सब आश्रित मानो ।
ऋक् यजु और साम ये भाई, यज्ञ सकल और सब लोकाई ।
प्राण के आश्रित ही ये सारे, बंधे धुरी में हों जिमि आरे ।

दो० प्राण के आश्रित हैं सकल, जग में जितने जीव ।
आंख कान व सकल अंग, प्राण बिना निर्जीव ॥ १८०४क

स्वर्ग लोक में देव जो, उन का प्राण आधार ।
हो कृपा जब प्राण की, प्रज्ञा मिलत अपार[1] ॥ १८०४ख

कहें प्रभु हे भक्त प्यारे, ऋषिवर्य के वचन ये न्यारे ।
उत्सुकता के भये वे कारण, श्रवण किया जब ऋषि कुमारन ।

३. कौसल्य के प्रश्न

कौसल्य कुमार वचन कह पाया, "धन्य गुरु जिस ज्ञान सिखाया ।
प्राणों का हम जाना सार, महिमा प्राण की सुनी अपार ।
एक बात मम मन गुरो आये, प्राण कहां उत्पन्न हो पाये ।
दूजी बात यह करो बखाना, देह में इसका किस विध आना ।
तीजा प्रश्न मेरा यह नाथ, रहत किमि बंट देह के साथ ।
चौथी बात बतावें स्वामी, उत्क्रमण करे किमि अन्तर्यामी ।

१. प्रश्नोपनिषद ॥.13

दो० प्रभो करे उत्क्रमण किमि, त्यागे जब यह देह ।
बाह्य विषय किमि धारता, और अध्यात्म[1] यह ॥ १८०५क
इन प्रश्नों का नाथ जी, उत्तर मिले विशेष ।
चित्त की भ्रांति सब मिटे, संशय रहे न लेश ॥ १८०५ख
श्रवण किया पिप्पलाद ने, संशय को जब मीत ।
उत्तर उस ने जो दिया, सुन लो ला अब चीत ॥ १८०५ग

पिप्पलाद ऋषि तब उत्तर दीना, संशय शिष्य का उस हर लीना ।
प्रथम प्रश्न का उत्तर जानो, आत्मा से यह उपजा मानो ।
संग देह जिमि छाया जाये, आत्मा संग प्राण बसाये ।
दूजे प्रश्न का उत्तर भाई, श्रवण करो तुम मन को लाई ।
पूछा देह में कैसे आता, मन ही इस को देह में लाता ।
देह में आ कर इमि विराजे, राजा जैसे राज में साजे ।
विभाग बनावे वह अनेक, राज्य चले जिमि सुन्दर एक ।
मुख्य प्राण बटे बहु रूप, कारज करने हेत अनूप ।

दो० इस विध लेवो जान तुम, प्राण का बहु अधिकार ।
देह में कारज यह करे, धार बहुत आकार ॥ १८०६

प्राण[2] के जानो पांच ये भेद, प्राण अपान समान अखेद ।
व्यान उदान दो और वखाने, जिन के कारज जगत पहचाने ।
प्राण रहे मुख नासिका मांझ, तथा श्रोत्र और चक्षु मांझ ।
उपस्थ-पायु में वसत अपान, मध्यकाय में रहे समान ।

१. प्रश्नोपनिषद ।।।. 1
२. पांच प्राण – १. प्राण २. अपान ३. समान ४. व्यान ५. उदान

समान अन्न का रस ले जाता, अंग २ में सम बंट पाता ।
व्यान का जानों अब तुम हाल, विचरत नाड़िन में सब काल ।
कहा शिष्यन तब "हे महाराज, ज्ञान नाडिन का दीजो आज ।
जिन में व्यान करत संचार, उन का जाने आप ही सार ।

दो० सुन कर उन की बात को, कहन लगे पिप्पलाद ।
नाडिन का तो जाल ही, देह बिछा निर्बाध ॥ १८०७

नाडिन का हम ज्ञान करावें, सुन कर सब अनुमान लगावें ।
गिनती उनकी क्या हो पावे, सूक्ष्म दृष्टि में नहीं आवे ।
हृदय में शत नाडी जानो, शत २ भाग एक के मानो ।
प्रत्येक बंटी पुनः है ऐसे, वहत्तर सहस्र इक इक जैसे ।
बहत्तर कोटि इस विध नाडी, देह में विस्तृत हैं वे सारी[1] ।
व्यान का कारज यही पहचानो, सब नाडिन में विचरत जानो ।
नाडी एक विशेष है भाई, जो सुषुम्ना कथन में आई ।
उस में बसें उदान प्राण, जिस का कारज परम महान ।
संग जीव को वह ले जावे, धर्मी जन को स्वर्ग पहुँचावे ।
पापी को भी ले के जावे, उस को नरक लोक पहुंचावे ।
जैसा करे वैसा नर पावे, उदान का कारज यही कहावे ।

दो० परवश भोगें कर्म फल, धर्म करें वा पाप ।
योगी जाने भेद को, हरता अपने ताप ॥ १८०८क

१. प्रश्नोपनिषद III.6. नाड़ियों की संख्या
100×100×72000=720000000 बहत्तर करोड़ नाड़ियां ।

दो० तुम ने पूछा प्रश्न जो, उत्क्रमण सम्बन्धी मीत ।
उत्तर मैंने दे दिया, जैसा है प्रतीत ॥ १८०८ख

अगला प्रश्न जो तुम कर पाया, बाह्य प्राण का प्रश्न चलाया ।
वह भी तुम मुझ से लो जान, सृष्टि में जहां २ हैं प्राण ।
सूरज में है प्राण महान, पृथ्वी में अपान को जान ।
मान आकाश में तूं समान, व्यान को वायु में तू जान ।
तेज उदान की संज्ञा पाये, इस विध पांचों प्राण समाये ।
आध्यात्म विषय जो कीन सवाल, उस का भी अब कथ दूं हाल ।
चित्त प्राण का संगी जानो, प्राण को चित्त की शक्ति मानो ।
प्राण जीव को ले के जावे, पर लोक में उसे पहुँचावे ।

दो० जिस प्राण की शक्ति से, जीव जाये परलोक[1] ।
महत्व उसका जानता, कौन नहीं इस लोक ॥ १८०९क
सुन कर मुनि की बात को, सभी भये प्रसन्न ।
कहन लगे "गुरु देव जी, हुये सभी हम धन्य ॥ १८०९ख

कहा प्रभु जी भक्तन ताहीं, प्राण हैं उत्तम तन के माहीं ।
प्राणों को जिस लीना साध, योग को उस ने लीन आराध ।
अब तुम प्रश्न सुनो मम मीत, भये जो उत्पन्न गार्ग्य चीत ।

४. गार्ग्य का प्रश्न

गार्ग्य कहा "हे गुरु महाराज, प्रश्न स्वप्न का पूछूं आज ।

१. प्रश्नोपनिषद् III. 10. "मरण काल में पुरुष का जैसा चित्त (संकल्प) होता है उसे वैसा ही लोक प्राप्त होता है। प्राण तेज से (उदान वृत्ति से) संयुक्त हो (उस भोक्ता) आत्मा को उस लोक को ले जाता है।"

निद्रा में हो नर जिस काल, देह में कौन जागत उस काल ।
और बतावें यह भी नाथ, सोता कौन है देह के साथ ।
कौन अवस्था में नर जावे, जन जब निद्रा में सो पावे ।
पिप्पलाद ऋषि ने उत्तर दीना, ऋषि कुमार तुम प्रश्न जो कीना ।
लो संक्षेप से जान यह बात, निद्रा में जब जाता गात ।
इन्द्रिन सकल करें विश्राम, जागत केवल तब हैं प्राण[1] ।
मन विश्राम जभी कर पावे, सुषुप्ति अवस्था वही कहावे ।

दो० मन करे विश्राम जब, अन्तर में हो लीन ।
सुषुप्ति अवस्था जानिये, दुःख सभी हों क्षीण ॥ १८१०क
दुःख सभी हों क्षीण तब, सुख का हो आभास ।
जागरत में भी आय जन, सुख का ले निश्वास[2] ॥ १८१०ख
स्वप्न अवस्था अब कहें, सुषुप्ति से जो भिन्न ।
उस में तो विश्राम नहीं, चित्त रहे बहु खिन्न ॥ १८१०ग
मन न हो विश्राम में, सिमरे अन्तर मांहि ।
निद्रा में निज कर्म वह, स्वप्न अवस्था आंहि[3] ॥ १८१०घ

तीन अवस्था अब तुम जानी, जागरत स्वप्न सुषुप्ति मानी ।
जागरत स्वप्न सुषुप्ति मांहि, प्राण कभी विश्राम में नांहि ।
देह को आहिताग्नी[4] जानो, प्राण ही देह की अग्नि मानो ।
अखण्ड यज्ञ घटहिं विस्तार, मत विसरो तुम ऋषी कुमार[5] ।

१. प्रश्नोपनिषद् IV. 3 २. प्रश्नोपनिषद् IV. 6 ३. प्रश्नोपनिषद् IV 5
४. आहि ताग्नि—जहां यज्ञाग्नि की स्थापना होती है। ५. प्रश्नोपनिषद् IV.3,4,

प्राण आहवनीय अग्नि भाई, गार्हपत्य अपान हो जाई ।
अन्वाहार्य-पचन तो हो व्यान, आहुति डालत है समान[1] ।
इष्ट फल है कथा उदान, करे जो ब्रह्म लीन यजमान ।
मन ही तो यजमान कहावे, प्राणों से दिव्य यज्ञ करावे ।
कैसा सुन्दर है यह देह, अखण्ड हवन सहित यह गेह ।

दो० इस विध अपने प्राण को, जो जाने यज्ञ रूप ।
श्वास २ प्रभु को भजे, प्रभु में हो तद्रूप ॥ १८११क
आहुति सांस निसांस को, समझे जो नर विज्ञ ।
घट मांहि वह यज्ञ रचे, योगी बने सुविज्ञ ॥ १८११ख
पिप्पलाद मुनि ने इस विध, अद्भुत शिक्षा दीन ।
धन्य २ सब जन कहें, धन्य मुनि प्रवीन ॥ १८११ग

५. सत्य काम का प्रश्न 'ओं' की उपासना[2]

सत्यकाम तब वचन उचारा, "नाथ प्रश्न मम भी इक भारा ।
प्रयाण काल जो ओं ध्यावे, कौन लोक में नर वह जावे" ।
सुन कर उस का प्रश्न महान, गुरु योगी तब दीना ज्ञान ।
ओम् उपासन उसे बताई, ब्रह्म गति की दिशा दिखाई ।
ओम त्रिमात्रिक लो तुम जान, तीन गती भी लो पहचान ।
पर अपर जो ब्रह्म बखाना, ओम् उपासन मुख्य विधाना ।
ओम् आलंबन ले कर भाई, किस ने परमगति नहीं पाई ।

१. आहवनीय, गार्हपत्य, अन्वाहार्यपचन, ये यज्ञ की अग्नियों के नाम हैं ।
२. प्रश्नोपनिषद V

अब हम तुम को यह बतलावें, मात्रा सहित गति जतलावें ।
एक मात्रा जो ओम् ध्याता, लौट पुनः इस जग में आता ।
उत्तम कर्म करे यहां आई, श्रद्धा सहित धर्म सुखदाई ।

दो० एक मात्रा में ओम् का, करता जो अभिध्यान ।
लौट जगत में वह पुनः, करे धर्म और दान[1] ॥ १८१२क

फल द्विमात्रा का सुनो, जो सिमरे मन मांहि ।
सोम लोक सुख भोग कर, पुनः जगत में आंहि[2] ॥ १८१२ख

त्रिमात्रा से जो करत ध्यान, परम पुरुष को चित्त में आन ।
सूर्य लोक को जन वह जाता, तेज रूप में स्वयं समाता[3] ।
नर मुक्ति को इमि वह पाता, त्याग सांप जिमि केंचुल जाता ।
ऐसा ज्ञानी अमर हो जाये, शांत अजर अभय पद पाये ।
पिप्पलाद ऋषि ने यह कह पाया, वेद वचन भी उन्हें सुनाया ।
भक्तों ने जब सब सुन लीना, प्रभु जी को उन तब कह दीना ।
नाथ कृपा कर हमें बतावें, ओं की मात्रा को समझावें ।
सारी बात न मन में आई, जो पिप्पलाद मुनि कथ पायी ।

दो० जो पिप्पलाद मुनि कहा, निज शिष्यन के तांहि ।
आप कथें प्रभु सरल कर, हम अज्ञन के पांहि ॥ १८१३

प्रभु जी ने उनको बतलाया, भाव ऋषि का तब समझाया ।
मात्रा शब्द की मात्रा नाहीं, ओम् व्यापक है सब थाहीं ।
मात लोक में जो रम पावे, मात्रा एक कथन में आवे ।

१. प्रश्नोपनिषद् V.3 २. प्रश्नोपनिषद् V.4 ३. प्रश्नोपनिषद् V.5

प्रथम लोक में जो जन ध्यावे, और न उस के आगे जावे ।
एक मात्रा बस उसका ध्यान, और है सीमित उस का ज्ञान ।
ऐसा पुरुष लौट के आवे, जग में जन्म को वह नर पावे ।
लोक लोकान्तर और व्योम, सब लोकों में व्यापक ओम् ।
ऐसा ज्ञान ध्यान जिस कीना, दो मात्रों में वह जन लीना ।
स्वर्ग लोक को वह नर पावे, भोग स्वर्ग सुख यहां फिर आवे ।
त्रिमात्रक का अब लेवो ज्ञान, सीमा रहित है जिस में ध्यान ।

दो० पारब्रह्म वह ओम् है, आदि न जिसका अन्त ।
अक्षर पुरुष असीम जो, वेद कहें बे-अन्त ॥ १८१४क
त्रिमात्रक उसको जान कर, करे जो उस का ध्यान ।
लौट जगत न आय वह, ज्योति-ज्योत समान[1] ॥ १८१४ख

इस विध प्रभु जी ने समझाया, भक्तन की तब समझ में आया ।
वेद का ज्ञान दुरूह जो तात, गुरु बतावे खोल के बात ।
गुरु बिन वेद का मिले न ज्ञान, योगी गुरु दे ज्ञान का दान ।

६. सुकेशा का प्रश्न[2]

आगे नाथ सुनाई गाथ, सुकेशा ने फिर कहा "हे नाथ ।
मेरा प्रश्न भी है महाराज, उत्तर उस का पावूं आज ।
राज कुमार कौशल का आया, उस ने मुझ से पूछ यह पाया ।
क्या तुम्हें उस पुरुष का ज्ञान, जिस में षोडश कला महान ।
सुन कर मैंने कहा कुमार, मैं नहीं जानूं उस का सार ।

१. अर्थात् उस की आत्म-ज्योति, अखण्ड ब्रह्म-ज्योति में समा जाती है ।
२. प्रश्नोपनिषद VI

नाथ मेरे मुझे बतलावें, षोडश कला का ज्ञान करावें ।
कौन पुरुष है वह भगवान, जिस में षोडश कला महान" ।
पिप्पलाद कहा हे ऋषि कुमार, कहूँ तुम्हें मैं इस का सार ।
षोडश कला जो पुरुष महान, भीतर देह के गुप्त वह जान ।
कला षोडश तुम उस की जानो, मुझ से सुन कर सभी पहचानो ।

दो० षोडश कला संयुक्त जो, गूढ़ पुरुष हैं भाई ।
सब देहन में बसत वह, महिमा कथी न जाई ॥ १८१५

षोडश कला का करूं वखान, सर्व प्रथम तुम जानो 'प्राण' ।
उस से 'श्रद्धा' और 'आकाश', 'वायु' 'तेज' 'धरा' का भास ।
'इन्द्रिय' 'मन' 'अन्न' 'वीर्य' 'तपस्या', 'मन्त्र' 'कर्म' यह 'लोक' समस्या ।
अन्तिम 'नाम' उसी की रचना, षोडश कला सम्पूर्ण वचना ।
इस विध ऋषि ने सब बतलाईं, षोडश कला उन्हें समझाईं ।
पुरुष की शक्ति ये तुम जानो, अण्ड ब्रह्माण्ड व्यापक मानो ।
इन का करने हेत प्रकाश, योग विद्या का भया विकाश ।
पिप्पलाद ऋषि ने सब समझाया, षोडश कला का ज्ञान कराया ।

दो० षोडश कला सम्पूर्ण तो, स्वयं ब्रह्म सर्वेश ।
योगेश्वर भगवान जिमि, कृष्ण चन्द्र परमेश ॥ १८१६

योग से कला का होत विकास, योग से 'प्राण' कला प्रकाश ।
योग से 'श्रद्धा' उपजत भाई, योग से शुद्ध तत्व-समुदाई* ।

सोलह कलायें :—प्रश्नोपनिषद VI. 4
प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम ।

* तत्व समुदाई=आकाश आदि ।

योग से 'इन्द्रियां' शक्ति पावें, योग से 'मन' चित्त वश में आवें ।
योग से 'अन्न' का पूर्ण भोग, बने जन 'वीर्य' वान कर योग ।
'तप' में सिद्धि योग से होवे, 'मन्त्र' सिद्ध भी योग से होवे ।
'कर्म' में कौशल योग से पावें, योगी 'लोक' संग्रह कर पावें ।
'नाम' की सिद्धि योगी धारे, नाम सहारे जन्म संवारे ।
सर्व कला का योगी स्वामी, योगी ईश्वर अन्तर्यामी ।

दो० इस विध कीना नाथ जी, षोडश कला उपदेश ।
योग बढ़ावे सब कला, न्यूनता रहे न लेश ॥ १८१७क

इस उत्तम उपदेश को, श्रवण किया चित्त लाय ।
समय भया नित्य कर्म का, विदा सभी हो पाय ॥ १८१७ख

प्रभु जी भी नित कर्म में लागे, जगतनियन्ता नेम में पागे ।
रात भयी स्वरूप सम्भाला, ध्यान में बीता रात्रि काला ।
प्रातकाल था प्रभु जी जाना, ऋषिकेश की ओर सिधाना ।
विदायी हेत भक्त बहु आये, जाने को भी संग कुछ आये ।
गाड़ी पर उन दीन विदायी, बरसावें अश्रु जन समुदायी ।
भाग्यवान थे भक्त वे सारे, प्रभु के संग जो रेल पधारे ।
विरह-वन्त जो वहां रह पायें, सिमर २ मन में पछतायें ।
शून्य लगे उन को संसारा, शून्य लगे सब घर वा बारा ।
शून्य लगे सब हाट बाज़ार, शून्य लगे सब कारोबार ।

दो० शून्य लगे उन को सभी, अमृतसर प्रदेश ।
दया निधि जहां से विदा हो कर गये विदेश ॥ १८१८

निज मन में जन सब पछतावें, ऋषिकेश का भाग्य सराहवें ।
जहां विराजें गे अब नाथ, तीर्थ भूमि को करें सनाथ ।
तारन हार प्रभु भगवान, उन से हो सब का कल्याण ।
तीरथ को सुतीरथ करते, भक्त जनों के सब अघ हरते ।
प्रभु को सिमर २ नर नार, पावन करें ध्यान की धार ।
ऋषिकेश पहुँचे भगवन्ता, उन को मिले आन कई सन्ता ।
सन्त जनों का वह प्रदेश, योगी जन जहां रहें विशेष ।
प्रभु का आश्रम सर्व विशिष्ठ, सन्त रहें जहां ईश्वर निष्ठ ।

दो० ईश्वर निष्ठा से रहें, करें योग व ध्यान ।
निश दिन प्रभु के आश्रम, प्राप्त करें जन ज्ञान ॥ १८१९क
प्राप्त करें जन ज्ञान को, बैठ प्रभु के पास ।
गुरु मुख से सब पाय कर, शांत करें जिज्ञास ॥ १८१९ख

१०५. अवतारों का प्रसंग

एक दिवस कुछ साधु आये, प्रभु जी से थे वे मिल पाये ।
आसन दे प्रभु कीन स्वागत, सत्कारें स्वयं प्रभु अभ्यागत ।
साधु जनों ने आश्रम देखा, योग साधन का केन्द्र पेखा ।
सन्तोष सबन ने बहु जतलाया, योग विद्या से प्रेम दिखाया ।
कहें सभी इक दूजे ताहीं, परम उपयोगी संस्था आहीं ।
ऐसा केन्द्र न कहीं देखा, जैसा यहां पै आ के पेखा ।
आचार्य वर्य से शिक्षा पायें, सुनें ध्यान से जो बतलायें ।
ऐसा अवसर न नित्य पावें, हाथ से क्यों कर इसे गंवावें ।

इस विध सब के मन में आई, कर अनुमान प्रभु प्रभुताई ।
दो० सज्जन ही पहचानते, प्रभु की महिम अपार ।
जाने केवल जौहरी, अमूल्य मणी का सार ॥ १८२०
एक साधु ने बात चलाई, उत्सुकता निज उस दिखलाई ।
कहन लगा वह "हे मम नाथ, हम चाले हैं बद्री नाथ ।
उस तीर्थ की महिम बतावें, ईश्वर की कुछ बात सुनावें ।
सुना है योगी सब पहचानें, सार धर्म का योगी जानें ।
हम तो तीर्थन में भ्रमाते, दर्शन मात्र से सुख पाते" ।
सुन कर उसकी ऐसी बात, कहन लगे प्रभु हे मम तात ।
बद्री नाथ की बात चलाई, जहां चाले तुम मिल सब भाई ।
हम उसकी बहु महिमा जानें, नारायण की तप भूमि मानें ।

१०६. नर–नारायण अवतार[1]

दो० नारायण की तप भूमि, बद्रिकाश्रम जान ।
प्रकट भये इस लोक में, जो अवतार महान ॥ १८२१क
सुन कर प्रभु की वाणी को, प्रश्न किया तब साध ।
"नारायण अवतार की, कहें बात इक आध ॥ १८२१ख
कहें बात इक आध प्रभु, मिले जो सुन्दर ज्ञान ।
किस हेतु उन तप किया, कथा जो आप महान" ॥ १८२१ग
प्रभु कहा सत युग में भाई, दक्ष प्रजापति की थी जाई ।
'मूर्ति' उस का राखा नाम, धर्म की पत्नी भई ललाम ।

1. श्री भद्भागवत महापुराण I.3; II.7; XI. 4.

धर्म वा मूर्ति की सन्तान, प्रकटा जग में नर-नारायण ।
त्याग जगत वह वन को आया, उच्च हिमालय आसन लाया ।
योग साधन व तप को कीना, दीर्घ काल रह उस में लीना ।
घोर तपस्या उस की जान, देव लोक भी भया हैरान ।
इन्द्र देव ने मन तब आनी, परीक्षा मैं इस की लूं ठानी ।
काम देव को उसी पठाया, अप्सरा आदि संग जो लाया ।

दो० अप्सराओं को लेय कर, वसंत ऋतु भी संग ।
कामदेव तब आ गया, तप को करने भंग ॥ १८२२

सब ने आ कर ऋषि को घेरा, दीर्घ काल वहां लाया डेरा ।
विलक्षण कौतुक सब कर पाये, ऋषि प्रभावित जिमि हो जाये ।
क्रीड़ा कर २ वे सब हारे, पांचों बाण काम ने मारे ।
हिम पर जिमि चिंगारी आये, और न हिम का कुछ कर पाये ।
तिमि काम के बाण वे भारे, कुण्ठित ऊपर ऋषि के सारे ।
दीर्घ काल जब कीन प्रयास, अन्त में नाशी सब की आस ।
भय उन के तब मन उपजाया, ऋषि शाप का डर चित्त छाया ।
गर्व रहित परम निःसहायी, गया काम तब मुनि के तायी ।
दया मुनि के चित्त तब आई, ऋषि ने वाणी कह यह पाई ।

दो० देख काम को कांपता, और संगी भी दीन ।
कहन लगे ऋषिवर्य तब, शांत मुद्रा में लीन ॥ १८२३क
कांप रहा था काम तो, और भी साथ वसंत ।
देव सुन्दरियां कांपतीं, हो न शाप से अन्त ॥ १८२३ख

आये थे वे वश करण, भये स्वयं वशी भूत ।
योगी नर की शक्ति से, कार्य भया न सूत ॥ १८२३ग
लेश क्रोध न दीखता, ऋषिवर्य के मांहीं ।
तभी ऋषि ने प्रेम से, कहा सबन के तांहीं ॥ १८२३घ
काम देव वा देवियो, और महा ऋतुराज ।
स्वागत आप सबन का, करते हैं हम आज ॥ १८२३ङ

मेरा अतिथ्य करें स्वीकार, बिन इस के न जाना बाहर ।
आप अतिथि हम हैं यजमान, अतिथि पूजें जिमि वेद विधान ।
सुन कर ऋषिवर्य की वाणी, भयी सबन के चित्त ग्लानी ।
कहन लगे सब बांधे हाथ, कर के नतमस्तक इक साथ ।
हे विभो तुम मायातीत, लेश विकार न आप के चीत ।
आप के चरणों को सब ध्यावें, आत्माराम जो नर कहलावें ।
तुम महान हम अल्प नादान, दूर किया हमारा अज्ञान ।
हम अपराधी दयालु आप, हरो आप प्रभु हमरे पाप ।
क्षमा शील तुम कीनी दाया, नाथ प्रबल आप की माया ।

दो० हम अपराधिन पर प्रभो, कीना न कुछ क्रोध ।
उलटी दया दिखाय कर, दीना हम को बोध ॥ १८२४

भय मानत था मैं मन माहीं शाप से डरता था मैं साईं ।
शंकर की किमि बात भुलाऊँ, अनंग भया मैं मन पछताऊँ ।
मुझ पै विजय थी शंकर पाई, क्रोध पै पर न भयी प्रभुताई ।
क्रोध लेश न आपके चित्ता, नतमस्तक मैं इसी निमित्ता ।

योगिन के भी आप योगेश, दोष हमारा गिना न लेश ।
तुम नारायण महा अवतारी, सृष्टी रची आप की सारी ।
हम सब आप की रचना स्वामी, रचनहार किमि होवे कामी ।
विचित्र बात न इसमें कोई, क्रोध के वश जो तुम न होई ।

दो० काम क्रोध मद मोह वश, लोभ के जन अधीन ।
आप निरञ्जन हैं प्रभो, मैं सन्मुख हूं दीन" ॥ १८२५क
इस विध विनय सुनाय कर, काम भया नत माथ ।
दीनि विदायी तब मुनी, वरद हाथ रख माथ ॥ १८२५ख

कहा प्रभु तब साधुन ताहीं, काम गया फिर स्वर्ग के मांहि ।
देवन को सब बात सुनाई, तब जानी सब ने प्रभुताई ।
नारायण को उन पहचाना, सृजनहार सृष्टि का जाना ।
नरनारायण जहां तप कीना, बद्रीनाथ प्रसिद्ध हो लीना ।
बना सुतीर्थ वह विख्याता, दर्शन हेतु जहां जग आता ।
प्रेरक थल वह सब के ताहीं, शिक्षा देवे हम को साईं ।
जब अवतारी जग में आवें, योग साधन वे कर दिखलावें ।
बिना योग नहीं हो कल्याण, यही सिखाया नर नारायण ।

दो० नारायण की सीख यह, नर तन को जन पाय ।
योग तपस्या जब करे, देह से मोक्ष कमाय ॥ १८२६क

सुन कर प्रभु की बात को, साध भये प्रसन्न ।
कहन लगे हे नाथ जी, आज भये हम धन्य ॥ १८२६ख

तीर्थ बद्री नाथ का, मिला यहां फल आय ।
पाया अद्भुत ज्ञान जो, कथन किमि हो पाय ॥ १८२६ग

नाथ हमारे मन अब आई, जगत नियन्ता की प्रभुताई ।
आप योग से जानें नाथ, हमें बताकर करें सनाथ ।
कब २ ईश्वर लीन अवतार, विशिष्ठ कीन जब २ कुछ कार ।
श्रवण करें हम चित्त लगाई, शुद्ध भये जिमि अन्तर्ताई ।
प्रभु जी ने उनको फरमाया, प्रश्न साध का था मन भाया ।
कहें नाथ हे साध प्यारे, भले लगे हैं वचन तिहारे ।
प्रभु की महिमा जो नित गावे, माया के वश वह न आवे ।
श्रवण करे जो प्रभु की गाथा, मिटें ताप और भये सनाथा ।

दो० प्रभु की लीला जो कथे, और सुने जो नित्य ।
तीन ताप उस के मिटें, और प्रभु रहें चित्त ॥ १८२७

जगत अनादी और अनन्त, प्रभु अवतार भये बेअन्त[1] ।
उनकी संख्या न कोई जाने, प्रभु ही अपनी महिम पहचाने ।
मैं कर दूं कुछ एक बखान, जग को जिन का है कुछ ज्ञान ।
जब २ भीर पड़ी जग ऊपर, प्रभु प्रकटे तब तन से भू पर ।
धर्मी जनों की कर रखवार, गहें धर्म की वे पतवार ।
धर्म ही प्रभु को सब से प्यारा, सृष्टि का इक धर्म सहारा ।

१. श्री मद्भागवत XI. 4.2. "जो व्यक्ति अनन्त हरि के सम्पूर्ण अनन्त कर्मों की गिनती करना चाहता है वह अत्यन्त अदूरदर्शी और बालकों की ऐसी बुद्धि रखता है। बहु काल में किसी प्रकार चाहे पृथ्वी के रज कण गिने भी जा सकते हों, परन्तु सर्वशक्तिधाम भगवान के गुण कर्मों की गणना नहीं की जा सकती।"

१०७. सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार अवतार

प्रभु का सनकादि अवतार, जिस का ब्रह्मचर्य आधार ।
ब्रह्मचर्य को उन अपनाया, योग का उच्च आदर्श दिखाया ।

दो० ब्रह्मचर्य अपनाय कर, कीना साधन योग ।
प्रकट भया चित्त आत्मा, यश गायें सब लोग ॥ १८२८

प्रलय काल सब ज्ञान था नाशा, आत्म ज्ञान का भया विनाशा ।
सनकादी ने आत्मा चीना, सब ऋषियों को ज्ञान था दीना ।
आत्म ज्ञान धर्म आधार, सनकादी ने कीन प्रचार ।
आत्मज्ञान बिना क्या धर्मा, आत्म ज्ञान बिना न कर्मा ।
आत्म ज्ञान बिना नहीं यज्ञ, आत्म ज्ञान बिना अल्पज्ञ ।
आत्म ज्ञान बिन न आचार, आत्म ज्ञान आचार आधार ।
योग बिना नहीं आत्म ज्ञान, सनकादी बतलाया आन ।
योग करे नर ज्ञान को पाये, आत्म भानु उदय हो आये ।

दो० सनक सनन्दन ही तभी, और जो सनत्कुमार ।
सनातन रूप बनाय कर, प्रकटे जगदाधार ॥ १८२९क
योग शिक्षा उन से सभी, ऋषियों ने थी लीन ।
लुप्त भया जो योग था, शिक्षा उसकी दीन ॥ १८२९ख

---

१. श्री मद्भागवत पुराण II. 7.5 "मैंने नाना प्रकार के लोकों की सृष्टि करने के लिये प्रथम जो सन् अर्थात तपस्या की, उससे भगवान सनक, सनन्दन सनातन, सनत्कुमार- इन चार सन् रूपों से उत्पन्न हुये। एवं पूर्व कल्प के प्रलय काल में जो आत्म तत्व नष्ट हो गया था। उन्होंने सम्पूर्ण ऋषियों को उसी का उपदेश दिया, उनके निकट सुनते ही बहु आत्म ज्ञान ऋषियों को हृदय में देख पड़ा।"

दो० सुन कर प्रभु की बात यह, चकित भये वे साध ।
प्रभु कृपा जब ही करें, मिटे ज्ञान की बाध ॥ १८२९ग

प्रभु कृपा से मिलता ज्ञान, प्रभु कृपा से मोह का हान ।
प्रभु कृपा जब ही हो जाये, ज्ञान का भानु उदय हो पाये ।
साध बोला फिर पुनः सुजान, आगे का प्रभु दीजो ज्ञान ।
और अवतार हरि कब धारा, हेतु कौन बना तब भारा ।

१०८. वाराह अवतार

कहा प्रभु इक अवसर आया, सृष्टि का नव कल्प हो पाया ।
ब्रह्मा कीन बहुत प्रयास, होत न मानव सृष्टि विकास ।
अपने तन दो काय बनाये, मनु दूजा शतरूप सुहाये ।
मैथुन सृष्टि भयी विस्तारा, मनु से मनुजों का प्रसारा[1] ।

दो० मनु से मानव का भया, जग में तब विस्तार ।
एक समस्या पर रही, सर्वत्र जल प्रसार ॥ १८३०क
रहने को भी भूमि न, धरा के ऊपर नीर ।

---

१. श्री मद्भागवत पुराण III 12. 52-56 "इस प्रकार दैव की ओर दृष्टि कर के यथोच्चित विचार कर रहे ब्रह्मा जी का शरीर स्वयंमेव दो खण्ड हो गया। इसी से लोक में शरीर को 'काय' कहते हैं। उन दोनों खण्डों से एक पुरुष और एक स्त्री उत्पन्न हुई। पुरुष तो बिराट स्वायंभुव मनु हुये ॥53॥. और स्त्री शतरूपा रानी हुई, शतरूपा, महात्मा स्वयंभुव मनु की स्त्री हुई, तब से प्रजा, मिथुन धर्म (मैथुन) के द्वारा वृध्वि को, प्राप्त होने लगी ॥54॥ स्वायंभुव मनु के शतरूपा रानी से पांच सन्तान हुये। प्रियवृत और उत्तानपाद, ये दो पुत्र और आकूति देवहूति, एवं प्रसूति, ये तीन कन्या ॥55॥ मनु ने आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से और देवहूति का विवाह कर्दम प्रजापति से, एवं प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति से कर दिया, इन तीनों कन्याओं के वंश से जगत परिपूर्ण हो गया।"

नीर २ ही सब जगह, मानव भया अधीर ॥ १८३०

मनु ने ब्रह्मा से तब बोला, हे कर्ता मम मन है डोला ।
रहने का तो थल है नाहीं, प्रजा विस्तार किमि हो पाहीं ।
ब्रह्मा ने तब बहुत विचारा, था जल का पर वेग अपारा ।
उस पर वश न उस का चाले, अनेक यत्न उसने कर डाले ।
हार के उसने प्रभु ध्याया, सहायक बन के वह ही आया ।
उस के तन से निकल इक रूप, अंगुष्ठ मात्र जिस का स्वरूप ।
तुरत हस्ती सम भया आकार, कैसा अद्भुत यह व्यापार ।
उसे निरख सब भये हैरान, कैसा जीव यह उपजा आन ।

दो० ऐसा जीव अनूप था, रूप वराह समान ।
ब्रह्मा भी चकचौंध थे, बड़ा रहस्य महान ॥ १८३१

यह था प्रभु का ही अवतारा, जग के हित था रूप यह धारा ।
पृथ्वी का हो जिमि उद्धार, ऐसा रूप धारा करतार ।
भूधर सम उस का आकार, वराह रूप में तेज अपार ।
लोक लोकान्तर में मुनि मानी, स्तुति करें मिल परम ज्ञानी ।
जल भीतर प्रभु करें कलोल, घुर २ शब्द में बोलें बोल ।
जीव जन्तु जल के विस्माये, कुछ भागे कुछ निकट भी आये ।
कइयों ने था कीन विरोध, उपजा जब उन चित्त क्रोध ।
एक भयंकर दैत्य था भारी, युद्ध की उसने कीन तैयारी ।
रूप दैत्य का था अनहोना, नेतर चमकें पिघला सोना ।

दो० उस के नेत्र देख कर, ऋषि मुनि विस्माय ।
कीन दुसाहस दैत्य जिस, 'हिरण्याक्ष' कथ पाय ॥ १८३२क
लीला धारी नाथ ने, उस का देख दुसाहस ।
कर विदीर्ण उसको दिया, सबन मिला आश्वास ॥ १८३२ख
हिरण्याक्ष का मारणा, जगत भया विख्यात ।
करनी उस अवतार की, शास्त्र वर्णें तात[1] ॥ १८३२ग

इस विध हरि बहु क्रीड़ा कीनी, देव जनों ने सुख से चीनी ।
योग माया तब हरि रचायी, अपनी करनी सबन दिखायी ।
भू नीचे ऊपर था नीर, जिस कारण था मनुज अधीर ।
उलट गयी फिर सारी बात, ऐसी हरि कीन करामात ।
जल नीचे व भू भई ऊपर, देख उछले सब मानव भू पर ।
ब्रह्मा का भया स्वप्न साकार, कौन जाने था किस प्रकार ।
मनु और मनुजों ने सुख माना, गाया ऋषि मुनियों संग गाना ।
युगांतर कारी थी यह घटना, स्वयं ईश्वर आ बदली रचना ।

दो० ईश्वर स्वयं पधार कर, बदला रचना रूप ।
सेवक सिमरन जब करे, पावे भक्ति अनूप ॥ १८३३क
वर्णन प्रभु जी ने करी, यह वराह की गाथ ।
भये कृतार्थ साध जन, जोड़ें अपने हाथ ॥ १८३३ख

१. श्री मद्भागवत पुराण III 13. 18-19 "ब्रह्मा की नासिका के छिद्र से सहसा एक अंगुष्ठ भर का वाराह शावक निकल पड़ा। ब्रह्म के देखते ही देखते वह वाराह शिशु आकाश में ही हाथी के बराबर हो गया। यह एक महाअद्भुत व्यापार हुआ ॥19॥
हिरण्याक्ष—स्वर्ण के समान चमकती हुई आंखों वाला।

कहें सभी "हे अन्तर्यामी, हम जानें तुम पूर्ण स्वामी ।
जिस विध आप ज्ञान कथ पाये, हम को जो हैं शरण में आये ।
श्रद्धा बढ़ी सबन तव चरणी, तुम योगी हम सेवक शरणी ।
कर कृपा अब पुनः सुनावो, अन्य अवतार की लीला गावो ।
श्रवण हमारे नहीं अघाते, वचन अमीरस तव बरसाते" ।
प्रभु जी उन की सुन कर वाणी, कहन लगे फिर जन कल्याणी ।
अवतारों की जो गावे गाथ, अथवा सुने जो मिल के साथ ।
होता उन सब का कल्याण, मिलत भक्ति और बढ़ता ज्ञान ।
इस कारण आवो कह पावें, अन्य अवतार का चरित सुनावे ।

दो० कथा कहें अवतार की, लोक लोक विख्यात ।
देव लोक भूलोक में, बिना रोक जो जात ॥ १८३४

१०९. देवर्षि नारद अवतार[1]

देव लोक में उसका जाना, और पुनः भू लोक पै आना ।
उसकी थी यह बात साधारण, कहलाया देवर्षि इस कारण ।
नारद भी उसका ही नाम, प्रसिद्ध भये जिस के बहु काम ।
दीना ज्ञान जगत को तात, भक्ति योग जो है विख्यात ।
साधु जन सुन प्रभु की बात, कहन लगे "हे जग के त्रात ।
नारद के अवतार की गाथ, भक्ति योग भी उस के साथ ।
बखानें आप सकल हे नाथ, जिमि लागे कुछ हमरे हाथ ।
हम को रुची भयी महाराज, विचित्र लीला श्रवण की आज ।

१. श्री मद्भागवत पुराण I. 3.8

दो० ईश्वर लीला श्रवण की, उपजी रुचि विशेष ।
योग द्वारे आय कर, रहे न संशय शेष ॥ १८३५क
इस विध विनय सुनाय कर, बैठे वे नत माथ ।
श्री प्रभु जी कहने लगे, आगे की तब गाथ ॥ १८३५ख
लीला पति लीला कथें, अपनी ही सब गाथ ।
साध जनों की संगति, सुने विस्मय के साथ ॥ १८३५ग
युग अवतारी महाप्रभु, युग २ दूसर रूप ।
हेत जगत के वे धरें, प्रकटें चरित अनूप ॥ १८३५ग

कहें प्रभु हे साध सुजान, नारद लीला कीन महान ।
ब्रह्मा से था नारद जाया, अमैथुन सर्ग कथन में आया ।
देवों के उस काज संवारे, संकट आये जब उन पर भारे ।
ऋषि मुनियों को दीना ज्ञान, संशय घेर लिया जब आन ।
जो भी शास्त्र खोल के देखो, नारद को उस माहीं उल्लेखो ।
ब्रह्मर्षि राजर्षि महान, देवर्षि से पाते ज्ञान ।
सब के चित्त की चिन्ता जान, भक्ति योग का देत वह ज्ञान ।
भक्ति योग से पा कर शान्ति, होते कृत कृत्य सब इक भान्ति ।

दो० सब भांति सब मानते, नारद का उपकार ।
विख्यात त्रिलोकी में इमि, है उस का अवतार ॥ १८३६
भक्ति योग सुनो चित्त लाई, बात विशेष जो उस कथ पाई[1] ।
उसी ज्ञान को चित्त में धार, मुक्त भये हैं जीव अपार ।

१. श्री मद्भागवत पुराण VI. 16 18-25 (नारद महोपनिषद्)

कहे नारद नर भक्ति पावे, आत्म तुष्टी जिस से आवे ।
कीर्ति हरि की मुख से गावे, पवित्र जग को भी कर पावे ।
जिस वाणी पै हरि का नाम, तीर्थ समान वह पावन धाम ।
साधु जनों की पावन वाणी, हरिजन गायें सुनें सन्मानी ।
जिस में हरि लीला न आई, वह तो काकतीर्थ[1] है भाई ।
ब्रह्मज्ञानी परहंस महान, रमें न उस में हंस समान ।
अटपटी भी बेशक होवे, हरि का नाम जहां पर गोवे ।
उसी में लेवें रस सुजान, ऐसा नारद देवे ज्ञान ।

दो० हरि रसिक तहां ही रमें, जहां हो हरि का नाम ।
हरि का नाम न हो जहां, भक्त का वहां न काम ॥ १८३७क
भक्ति हीन जो कर्म है, बन्धन का वह रूप ।
ब्रह्म ज्ञान भी भक्ति बिन, हो न शुद्ध स्वरूप ॥ १८३७ख
ईश्वर अर्पण सब कर्म, करता भक्त सुजान ।
दुःख रूप संसार से, इस विध पाता त्राण ॥ १८३७ग
नारद का उपदेश यह, शास्त्र करें बखान ।
पालन इस का जो करत, पावत सुख महान ॥ १८३७घ

और नारद ने यह बतलाया, रूप त्याग का उस समझाया ।
भक्ति को जो जन कर पाते, हरि चरणों में ध्यान लगाते ।

१. काकतीर्थ —अर्थात् विष्ठा खाने वाले काकों के समान मलीन विषय भोगी कामियों का मन उस वाणी में रमता है, मानससर में रहने वाले हंसो के समान उज्ज्वल ब्रह्म ज्ञानी परम हंस उसमें नहीं रमते ।
श्री मद्भागवत I. 5 10

कर्म सकल से होंय निवृत्त, केवल भक्ति में ला चित्त ।
नित्य नैमित्तिक करते त्याग, दोष न उन को लेश भी लाग ।
भक्ति में इमि रहत जो लीन, मर कर पाय जब देह नवीन ।
भक्ति से नहीं होये वियोग, अद्भुत जानो भक्ति योग ।
भक्तिरस जिस चाखा स्वाद, जन्म के भी न त्यागे बाद ।
बहु भक्ति जब जन कर पावे, वैकुण्ठ धाम हरि के जावे ।
इस विध नारद है समझाया, भक्ति योग से मोक्ष बताया ।

दो० मोक्ष होता न कर्म से, भक्ति से ही होय ।
रोग उपजे जिस वस्तु से, निरोग करे न सोय[1] ॥ १८३८क

हरि चर्चा में मन लगे, हरि से ही कर हेत ।
नौका रूप हरि भक्ति है, हे विषयी चित्त चेत ॥ १८३८ख

कहे नारद जब मैं भजूं, ईश्वर को सप्रेम ।
दर्शन देवें चित्त में, विलक्षण हरि का नेम ॥ १८३८ग

सज्जन जिमि पुकारिये, आकर खडता पास ।
ऐसे ही हरि आय कर, मन वंधावे आस[2] ॥ १८३८घ

---

१. प्राणियों को जिस वस्तु के खाने से रोग उत्पन्न होता है। वह रोग उसी वस्तु के खाने से सिवाय बढ़ने के कभी शांत नहीं होता। वैसे ही ये जितने कर्म हैं सो जन्म मरण के जाल में फंसाने वाले हैं, यदि कोई चाहे कि कर्म द्वारा कर्म बन्धन से मुक्त हो तो असम्भव है। हां यदि वही कर्म प्रभु अर्पण कर दिये जायें तो अवश्य मोक्ष दायक हो सकते हैं। जो कर्म भगवान के अर्पण कर दिये जाते हैं। वे भक्ति योग युक्त ज्ञान को उत्पन्न करते हैं इस लिये मोक्ष दायक हैं।" श्री मद्भागवत । 5.33-35

२. श्री मद्भागवत । 6. 33 "जब मैं प्रेम से परमेश्वर की लीला गाता हूं, तब मंगल कीर्ति पूज्यपाद परमेश्वर शीघ्र हृदय में दर्शन देते हैं जैसे किसी को बुलाने पर कोई शीघ्र आ जाये।"

अनुभव नारद निज बतलाया, भक्ति योग दिग् दर्श कराया ।
भक्ति योग जो चित्त लगाय, प्रभु का दर्शन वह जन पाय ।
फिर भी नारद कीन सचेत, निर्मल मन होवे इस हेत[1] ।
काम क्रोध आदि से हीन, हो जभी मन प्रभु में लीन ।
देते प्रभु दर्शन इक बार, प्रीत बढ़ाने हेत अपार ।
फिर करो अभ्यास निरन्तर, नित्य मिलें प्रभु आ कर अन्तर ।
इस विध प्रभु जी ने बतलाया, नारद का उन ज्ञान सुनाया ।
साधु जनों ने सुख को माना, अहो भाग्य उन अपना जाना ।
श्रवण करें यह मन में चाह, कहा "प्रभो तव ज्ञान अथाह ।
हमें और अब आप बतावें, हरि की लीला को कथ पावें ।

दो० लीला धारी नाथ ने, लीना जो अवतार ।
जग रक्षक भगवान ने, प्राकृत देह को धार" ॥ १८३९

श्रवण करी जब उन की वाणी, लगे कथन प्रभु महादानी ।
अवतार हरि के भये अनेक, श्रवण करो ला चित्त और एक ।

११०. सिद्धेश्वर कपिल अवतार[2]

कपिल देव का करूं बखान, सांख्य शास्त्र प्रवर्तक जान ।

१. श्री मद्भागवत । 6. 21-22 "जिन का अन्तः करण भली भांति काम क्रोध आदि से हीन निर्मल नहीं हुआ, ऐसे कच्चे योगी मेरा दर्शन नहीं पाते ।"
"अविपक्वकषायाणं दुद र्णेऽहं कुयोगीनान्"
"और यह एक बार जो मेरा दर्शन हुआ है सो केवल मुझ में प्रेम बढ़ाने के लिये, क्योंकि मेरा प्रेमी भक्त धीरे २ सम्पूर्ण काम-क्रोध आदि से शून्य हो जाता है ।

२. श्री मद्भागवत III. 7. 3; III 25; III 26.

तत्वों का उस दीना ज्ञान, आत्म ज्ञान भी कीन प्रदान ।
देवहूती के गर्भ से जाये, कर्दम ऋषि के पूत कहाये ।
निज माता को दीना ज्ञान, कीना उस को मोक्ष प्रदान ।
साधु बोले, "प्रभो महान, हमें बताईये वही ज्ञान ।
सांख्य शास्त्रा की महिमा भारी, हम को देवें विद्या सारी ।

दो० निज माता को कपिल ने, जो कुछ दीना ज्ञान ।
श्रवण करें हम आप से, ला कर पूर्ण ध्यान" ॥ १८४०

साधुन से तब बोले दयाल, हो कर कृपा सागर कृपाल ।
कर्दम कीन जब वन प्रस्थान, माता कपिल से प्रार्था ज्ञान ।
कहे माता "हे पुत्र प्यारे, विश्व वन्द्य तुम ज्ञानी भारे ।
निज माता को तारो स्वामी, ज्ञान देय कर अन्तर्यामी" ।
सुन कर माता की जिज्ञास, कपिल बंधाई उस को आस ।
कहा कपिल हे मात प्यारी, योग से मिटती भ्रांति सारी ।
योग से दुःख की हो निवृत्ति, योग से सुख में न प्रवृत्ति ।
योग से दोनों का ही हान, मोक्ष दायक है योग ज्ञान ।

दो० आत्म निष्ठा योग से, तुम लो जब आराध ।
जन्म मरण के फंद से, मुक्त होवो बिन बाध ॥ १८४१

माता ने तब वचन उचारे, कैसा योग वह पुत्रा प्यारे ।
वह ही योग मुझे बतलाओ, रहस्य गूढ़ जो है समझाओ ।
तेरी मात मोक्ष को पावे, लाख चौरासी में न आवे ।
कहा कपिल "हे मात प्यारी, चित्त बंधावे बन्धन भारी ।

वही करता जब बन्ध निवारण, चित्त मोक्ष का बनता कारण ।
बन्ध मोक्ष दोनों का कारण, चित्त की शक्ति नहीं साधारण ।
विषयों में जब चित्त हो लीन, पड़े बन्धन में जन तब दीन ।
ईश्वर से जब हो अनुराग, मोक्ष का मिलता तभी सुराग ।
दो० हेतु बन्ध वा मोक्ष का, चित्त को लो पहचान ।
विषयों से वैराग्य कर, हरि में धारो ध्यान" ॥ १८४२

कहा माता "हे पुत्र प्यारे, सुन्दर हैं ये वचन तुम्हारे ।
ऐसी कृपा तुम कर पाओ, विषयों से वैराग्य कराओ ।
कौन उपाय मैं अपनाऊं, विषयों से विमुख हो जाऊं" ।
कपिल कहा "हे मात प्यारी, तुझ में है सब सन्मति भारी ।
जग हेतु तुम प्रश्न उठाया, जानूं जो सो सुनो उपाया ।
मैं हूं यह वा मेरा यह है, सकल विषयन बसेरा यह है ।
अहंता ममता को जन त्यागे, विषय सकल तब उस से भागे ।
सम अवस्था में रह पावे, समता ही तो योग कहावे ।
काम क्रोध से मुक्ति पावे, लोभ मोह भी निकट न आवे ।
दो० ऐसी अवस्था पाय कर, दुःख सुख मांहि समान ।
राग द्वेष जन न करे, योगी बने महान" ॥ १८४३

माता ने तब वचन उचारा, हे सुत ज्ञान तुम्हें है भारा ।
त्याग करे जब जन अहंकार, वासना का नद होता पार ।
यह मम बुद्धि बात है आई, बात बताओ अब यह भाई ।
ईश्वर से किमि उपजे प्यार, जिस विध पाय जन मोक्ष द्वार ।

बात कपिल के मनहिं सुहायी, ज्ञान में जननी रुचि दिखलाई ।
मुमुक्षु जन ही हो बड़भागी, होत ज्ञान का वही अनुरागी ।
कहा मात को "हे मातारी, बात तुम्हारी लागे प्यारी ।
एक बात मैं तुम्हें बताऊँ, गुण वैराग्य का मैं समझाऊँ ।
जिसके मन वैराग्य का वास, आत्म दर्श वह पावे खास ।
हो माया तब पराक्रम हीना, देखत योगी ध्यान में लीना ।

दो० माया के प्रभाव से, मुक्त होय जब साध ।
ईश्वर चित्त में दीखता, भक्ति बढ़त अबाध ॥ १८४४क
सर्वव्यापक ईश में, हो उस का अनुराग ।
आत्म दर्शन पाय कर, भक्त बने महाभाग ॥ १८४४ख

भक्ति से ही ज्ञान को पावे, भक्ति ज्ञान का मग दिखलावे ।
आसक्ति छोड़ भक्ति अपनावे, जीवन सफल वही कर पावे" ।
कहा माता "हे कपिल प्यारे, सत्य वचन सब लगें तुम्हारे ।
कठिन बात पर यह बहु लागे, आसक्ति को जन कैसे त्यागे ।
आसक्ति अक्षय पाश मैं जानूं, जीव चराचर इस वश मानूं ।
तुमसे ज्ञान वही मैं पाऊँ, पाश आसक्ति जिमि दुराऊँ" ।
कपिल कहा तब "हे मातारी, बात सत्य है सभी तुम्हारी ।
आसक्ति पाश न शीघ्र छूटे, बिन छूटे न बन्धन टूटे ।
एक बात पर मैं बतलाऊँ, सरल उपाय इक मैं कथ पाऊँ ।

दो० कठिन काम भी तब सधे, मिले जो सरल उपाय ।
दृढ़ पाश जो सिंह का, मूषक काट दिखाय ॥ १८४५क

आसक्ति है जो जन करत, माया से मम मात।
कर पाय जब साध संग, लेय मुक्ति वह पात[1]" ॥ १८४५ख
सुन कर वाणी कपिल की, बोली उस की मात।
"साध का लक्षण तुम कहो, समझ सकूँ जिमि तात ॥ १८४५ग

साध कौन जिसको हम मानें, साध कौन जिस को सन्मानें।
साध कौन जो संग छुड़ावे, साध कौन जो मुक्त करावे।
उसी साध का भेद बतावें, जिस के संग परम सुख पावें"।
माता की सुन युक्त यह बात, कपिल कहा "लो सुन मम तात।
गुण साध के तुम्हें बताऊँ, जो कुछ जानूं मैं समझाऊँ।
सहन शीलता साध में भारी, दयावानता परम न्यारी।
प्राणिमात्र से हित प्रवृत्ति, शुभ चिन्तक वा शान्त प्रकृति।
अजात-शत्रु वह सब का मीत, लेश द्वेष न उस के चीत।

दो० शुभ चिंतक सब जीव का, शत्रुता से दूर।
ऐसा जन ही साध हो, हृदय जिस के नूर ॥ १८४६क
शीतलता जिस मन बसे, जिमि कहें वेद पुराण।
भक्ति करे भगवान की, त्याग सकल अभिमान ॥ १८४६ख

अनन्य भक्त हो साध सुजान, उस के चित्त सदा भगवान।
भूल के सारे जग के नाते, उस का चित्त प्रभु रस राते।

१. श्री मद्भागवत III.25.20 "पण्डितगण कहते हैं आसक्ति व संग आत्मा को फंसाने वाला अक्षय, पाश है सही, पर वही आसक्ति व संग यदि सज्जनों में किया जाये तो खुला हुआ मोक्ष का द्वार है।"

अखिल कर्म व देह अभिमान, त्याग के सिमरे जो भगवान ।
प्रभु लीला को कथे निरन्तर, भक्ति रञ्जित जिस का अन्तर ।
इसी कारण से तीनों ताप, सकें न दे जिस को संताप ।
साध उसी को लो तुम जान, उस के संग से लाभ महान ।
संगत साध की जब मिल पावे, भगवच्चर्चा रस सरसावे ।
श्रवण करें जब भगवचर्च्चा, और करें मिल भगवद् अर्चा ।
श्रद्धा बाढ़े प्रभु के चरणी, भक्ति मिले जो शास्त्र वरणी ।

दो० श्रद्धा भक्ति जब बढ़े, करें हरि गुणगाण ।
वैराग्य भाव तब ऊपजे, मिले योग का ज्ञान ॥ १८४७क
मिले योग का ज्ञान जब, मोह का होय अन्त ।
जीव करे अभ्यास को, जान पाय भगवन्त ॥ १८४७ख

हे माता मैंने कथ पायी, संगत साध की जो प्रभुताई ।
साध की संगत जब जन पावे रंग भक्ति का तब चढ़ जावे" ।
सुन कर कपिल का यह उपदेश, माता मन भया हर्ष विशेष ।
साध रूप जिस पुत्र पाया, काटी जिस ने उस की माया ।
कहन लगी "हे पुत्र प्यारे, पूछूं बात इक और दुलारे ।
योग भक्ति तुम जो बतलाई, और कथी जिस की प्रभुताई ।
उस भक्ति का करो बखान, जिस विध मेरा हो कल्याण ।
क्या भक्ति का लक्षण तात, मुक्ति किमि हो उस से प्राप्त ।
भक्त के लक्षण भी कथ पावो, गति उस की को खोल बतावो ।
अल्प-बुद्धि हूँ मात तुम्हार, इसे लगावो तात किनार ।

दो० कपिल पूत निज मात को, दो ऐसा उपदेश ।
जन्म मरण के फंद से, यह छूटे बिन क्लेश" ॥ १८४८

माता की सुन सुन्दर वाणी, बोला कपिल देव महाज्ञानी ।
जो है प्रश्न किया तुम मात, मैं बतलाऊं वह सब बात ।
लक्षण भक्ति का इमि जानो, हरि में प्रीत स्वभाविक मानो ।
हृदय शुद्ध में हरि का वासा, परमानन्द महान आवासा ।
ऐसा भक्त मुक्ति को पावे, लिंग देह भी क्षय हो जावे ।
अन्न जिमि जब नर है खाता, देह जठरानल उसे पचाता ।
भक्ति जठरानल सम मानो, वासना का क्षय उस से जानो ।
भक्त के मन तो होवे नहीं, मुक्ति की भी इच्छा ताहीं ।

दो० कर्म सकल जिस कर दिये, समर्पण ईश्वर पास ।
ऐसा जन क्यों कर करे, मुक्ति की भी आस ॥ १८४९क
इच्छा चाहे न करे, लगती मुक्ति हाथ ।
भक्ति के प्रभाव से, हरि रहें उस साथ ॥ १८४९ख

इच्छा त्याग जो हरि भज पावे, जीवन मुक्त वह नर कहलावे ।
सिद्धि सकल हो उस की दासी, वह सिद्धि से रहत उदासी ।
वैकुण्ठ भोग की भी न चाह, आनन्द मिले पर उसे अथाह ।
निष्काम भक्त की बात अनोखी, त्रय काल वह रहत संतोखी ।
हरि से उस का नाता ऐसा, मात पिता भाई बन्धु जैसा ।
काल भी उस का क्या कर पावे, काल का भी जब काल बचावे ।
काल चक्र से रहत निःशंक, सदैव बसे वह हरि के अंक ।

हे माता ! मैं क्या बतलाऊँ, हरि भक्त के गुण किमि गाऊँ ।

दो० हरि भक्त तो मोक्ष का, भी राखे न ध्यान ।
हरि भक्त हरि प्रेम में, भूल जाये सब ज्ञान ॥ १८५०

सुन कर माता यह उपदेश, चकित भई वह मनहिं विशेष ।
प्रेम में उस ने आपा भूला, भक्ति में उस का चित्त झूला ।
ईश्वर सम जिस पुत्र जाया, सुख अपार उस इस विध पाया ।
पर्याप्त काल जब इमि विहाना, कपिल देव तब मन अनुमाना ।
माता को अब देवूं ज्ञान, सृष्टि का जिमि भया निर्माण ।
सोच कहा उस "हे मातारी, यह सृष्टि है जितनी सारी ।
इस के रहस्य को लो तुम जान, उत्तम है यह बहुत ज्ञान ।
इस को जो जन धारे चित्त, बोध मिले उसे इसी निमित्त ।
प्रकृति सम्बन्धी सकल ज्ञान, रज तम आदि गुणों का भान ।
और जो तत्व सारे मात, आज करो उन का साक्षात ।

दो० तत्वों को जन जान कर, पावे आत्म बोध ।
सृष्टि का सब रहस्य तब, मिले उसे कर सोध[1] ॥ १८५१

पुरुष अनादि ही तुम जानो, प्रकृति से वह भिन्न कर मानो ।
निर्गुण रूप ज्योति स्वरूपा, विश्व सकल उस मांही रोपा ।
पुरुष संग जब प्रकृति लागी, लीला करन हेतु अनुरागी ।
कीनी पुरुष ने वह स्वीकार, सृष्टि उपज पड़ी तत्काल ।
प्रकृति से सभी सृष्टि जायी, निज अनुरूप गुणों उपजायी ।

१. श्री मद्भागवत III 26. I—51

निरख पुरुष प्रकृति का रूप, मूढ़ भया वह ज्ञान स्वरूप ।
प्रकृति के सब कर्म जो न्यारे, वश अहंकार हो स्वीकारे ।
पुरुष अकर्ता ही तुम जानो, साक्षी रूप उसी को मानो ।
यह तो केवल है अहंकारा, अकर्ता जिस कर्ता कर डारा ।

दो० वह पुरुष अहंकार वश, मान कर्ता निज तांहि ।
सुख दुख में हो लीन तब, बन्धन में पड़ जांहि" ॥ १८५२

कहा प्रभु जी साधुन तांहि, निज माता को कपिल बतांहि ।
"आत्म रूप पुरुष मातारी, भोगत बंधन में दुःख भारी ।
मनन करे यदि प्राकृत रूप, और समझ पावे निज रूप ।
मुक्ति में नहीं लागे ढील, प्रकृति सके नहीं उसको कील" ।
कहा माता "हे पुत्र प्यारे, मुझ को तुम बतलाओ सारे ।
सम्पूर्ण प्रकृति के तत्व आद, मुक्त होऊं मैं तव प्रसाद" ।

चौवीस तत्व

कहा कपिल "हे मात प्यारी, प्रकृति चौबीस तत्व की सारी ।
उन तत्वों को मैं बतलाऊँ, प्रकृति इस विध कथन में लाऊँ ।

दो० प्रकृति के सब तत्व जब, रहें ध्यान दिन रात ।
पुरुष बन्धन में न पड़े, रहे स्वतन्त्र मात[1] ॥ १८५३

१. चौबीस तत्व इस प्रकार हैं :— १. पृथ्वी २. जल ३. तेज ४. वायु ५. आकाश ये पांच महातत्व ६. गन्ध ७. रस ८. रूप ९. स्पर्श १०. शब्द ये पांच महातत्वों के गुण ११. श्रोत्र १२. त्वक् १३. चक्षु १४. जिह्वा १५. घ्राण १६. वाक् १७. पाणी १८. चरण १९. पायु उपस्थ ये दस ज्ञानेन्द्रियां व कर्मेन्द्रियां, २१. मन २२. बुद्धि २३. अहंकार २४. चित्त ये अन्तः को इन्द्रियां अर्थात अन्तःकरण इन चौवीस तत्वों के अतिरिक्त अर्थात प्रधान से अलग पचीसवां तत्व काल (२५) है।

महातत्व तुम पांच लो जान, पृथिवी जल और तेज महान ।
वायु और आकाश ये दो, पांच तत्व ये स्मरण कर लो ।
महातत्वों के गुण बतलाऊं, गन्ध रूप वा रस कह पाऊं ।
स्पर्श और तू शब्द भी ज़ान, यही तत्वों के गुण प्रधान ।
दश इन्द्रियों को तुम तो जानो, श्रोत्रा त्वक् चक्षू पहचानो ।
जिह्वा घ्राण वाक् और पाणी, चालें चरणों से बहु प्राणी ।
पायु उपस्थ भी इन्द्रिन जान, दश इन्द्रिन का यह है ज्ञान ।
अन्तः करण को भी बतलाऊं, चार भेद जो जान मैं पाऊं ।

दो० मन बुद्धि अहंकार चित्त, अन्तः करण ये चार ।
चौबीस तत्व सब कहे, माता करो विचार ॥ १८५४

चौबीस तत्व प्रधान कहावें, एक तत्व अब और बतावें ।
काल को ही वह तत्व जान, जिस के वश है सभी जहान ।
हे माता मैंने बतलाया, प्रकृति का बहु भेद जताया ।
पुरुष को भी मैंने कथ पाया, जिस के वश है सब यह माया ।
इसको सांख्य ज्ञान कथ पाऊं, संख्या मांझ असंख्य ले आऊं[1] ।
और सुनोगी क्या मातारी, सृष्टी तो है परम न्यारी ।
इसका कौन भेद कथ पावे, ज्ञानी निरख २ विस्मावे ।
कहा माता ने "पुत्र प्यारे, तुम ने कहे भेद बहु भारे ।
एक बात अब और बताओ, रचना का भी क्रम समझाओ ।

१. भावार्थ—ईश्वर की असंख्या सृष्टि का वर्णन २५ तत्वों की संख्या द्वारा वर्णन करना ही "सांख्य शास्त्र" है ।

दो० किस क्रम से यह तत्व सब, प्रकट भये मम पूत ।
आगे का विस्तार फिर, कथन करो सह सूत" ॥ १८५५

सुन माता की तार्किक वाणी, बोला कपिल जो था बहु ज्ञानी ।
सुन माता मैं तुम्हें बताऊं, क्रम जो पूछा वह समझाऊं ।
प्रकृति पुरुष का हो जब मेल, पुरुष की शक्ति करत बहु खेल ।
प्रकृति मांझ उपजत प्रकाश, महत्तत्व का होत विकास ।
मात रूप प्रकृति को जानो, पिता समान पुरुष पहचानो ।
उनसे जो संतति हो पाये, सृष्टी वही जगत कहलाये ।
सर्व प्रथम महत्तत्व जाया, तब उस से अहंकार उपजाया ।
भये तीन अहंकार के रूप, वैकारिक तैजस तामस गूप ।

दो० त्राय रूप अहंकार के, सृष्टि करे अनूप ।
उसका वर्णन अब सुनो, कहूँ ज्ञान अनुरूप ॥ १८५६क
एक बात यह जान लो, सहस्र शीर्ष अनन्त ।
संकर्षण वा जिसको कहें, वह अहंकार बे अन्त[1] ॥ १८५६ख

प्रथम वैकारिक को लो जान, उस से ही मन उत्पन्न मान ।
कामना का मन में हो वास, स्वामिन सर्व इन्द्रिन का खास ।
कथ अनिरुद्ध इसे ही पावें, शनैः २ वश योगी लावें[2] ।
'तैजस' में विकार जो आवे, 'बुद्धि' तत्व तभी उपजावे ।

१. श्री भद्भागवत III. 26. 25 "इस अहंकार को ही पण्डितगण साक्षात 'संकर्षण' संज्ञक सहस्रशिर वाले 'अनन्त देव' कहते हैं।"

२. श्री भद्भागवत III. 26. 28 "तत्व दर्शीजन इस 'मन' तत्व को ही इन्द्रियों के स्वामी अनिरुद्ध कह कर मानते हैं।"

'तामस में जब होय विकार, उत्पन्न शब्द हो उस ही काल ।
फिर शब्द आकाश उपजाये, बन आकाश से श्रोत्र पाये ।
जानो वायु आकाश विकार, त्वक् का उस से फिर विस्तार ।
वायु से फिर अग्न उपजावे, अग्न से जल फिर भू हो पावे ।

दो० वायु इमि आकाश से, अग्न वायु से जान ।
अग्नी से ही जल भया, जल से पृथ्वी मान ॥ १८५७क
चक्षू निर्मित तेज से, जल से रसना जान ।
पृथ्वी से भी जान लो, भया घ्राण निर्माण ॥ १८५७ख

इस विध तत्व सभी उपजाये, पृथ्वी आदि सब बन पाये ।
मिल पाये नहीं वे सब तत्व, भिन्न रहा सब का अस्तित्व ।
पुरुष ने कीना जब प्रवेश, मिल कर भये तब इक निःशेष ।
उपज भया विशेष वह अण्ड, इस विध निर्मित भया ब्रह्माण्ड ।
उस का पुनः भया विस्तार, लोक लोकान्तर का प्रसार ।
यह सनातन पुरातन रचना, किमि होवे इस की बहु कथना ।
यह सब ज्ञान कपिल कथ पाया, निज माता को उस समझाया ।
साधो सांख्य शास्त्र यह जानो, श्रवण किया जो मनन में आनो ।

दो० सांख्य शास्त्र जिन जगत को, दीना ले अवतार ।
कपिल देव भगवान की, महिमा अतीव अपार ॥ १८५८क

१११. दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, यज्ञ, ऋषभ, पृथु और मत्स्य अवतार

हे साधो मैंने कथा, सार रूप यह ज्ञान ।

श्रवण करो अब जो कहूँ, दे कर पूर्ण ध्यान ॥ १८५८ख

ईश्वर जब भी ले अवतार, सदैव अनुपम उसके कार ।

VI दत्तात्रेय अवतार

ऋषी अत्री के पुत्र जाया, था अनुसूया गोद खिलाया ।
दत्तात्रेय के नाम व रूप, आत्मिक विद्या कथी अनूप ।
प्रह्लाद आदि को दे उपदेश, भ्रांति उन की हरी निःशेष[1] ।

VII हयग्रीव अवतार

मधु दैत्य के मारन कारण, 'हय ग्रीव' हरि रूप स्वीकारण ।
वेदन का उन कीन उद्धार, हने थे दानव जो उस काल[2] ।

VIII हंस अवतार

'हंस' रूप भी हरि ने धारा, आत्म ज्ञान की बही तब धारा[3] ।

IX यज्ञ अवतार

'यज्ञ' नाम से भी हरि आये, रुचि नन्दन तब वे कहलाये ।
आकूति उनकी पूज्या मात, विराभु इन्द्र पद साक्षात ।
दो० इन्द्र पदवी ग्रहण कर, करें जगत रखवार ।
भीड़ पड़े जब जगत पर, हरि धारें अवतार[4] ॥ १८५९

X ऋषभ अवतार

नाभि नृप के भी घर जाये, ऋषभ देव इमि नाम धराये ।
मेरू देवी थी मातार, निर्मल ज्ञान उन कीन प्रसार[5] ।

---

१. श्रीमद्भागवत IV. 1. 15-33
२. श्रीमद्भागवत XI. 4-17
३. श्रीमद्भागवत XI. 4-17
४. श्रीमद्भागवत IV. I. VIII. I.
५. श्रीमद्भागवत V. 4, 5

XI पृथु अवतार

ऋषियों की हरि सुनी पुकार, आये पृथु का रूप थे धार ।
गौ रूप उन धरा बनायी, पृथ्वी से दुह औषध पायी[1] ।
तब से भया धरा का नाम, "पृथ्वी" जहां हम रहें तमाम ।

XII मत्स्य अवतार

युग एक ऐसा भी आया[2], जल ने धरा को पूर्ण डुबाया ।
विनाश सकल जगत का देख, राजा मनु मन कीन उल्लेख ।
नौका में अब मैं चढ़ पाऊँ, जो बचे सो वही बचाऊँ ।
ऐसा ही उस तब था कीना, बृहत् नौका में सब धर लीना ।

दो० वस्तु सकल मनु लेय कर, बैठा नौका मांझ ।
फैला जल था जगत में, अन्धकार जिमि सांझ ॥ १८६०

जल का वहां अथाह प्रवाह, तोफ़ान महान का था न थाह ।
नौका संभल सके न लेश, अधीर भया तब मनु विशेष ।
मन में हरि को ही तब ध्याया, रक्षक बिन प्रतीक्षा आया ।
हरि ने 'मत्स्य' रूप महा धारा, नौका को तब आन संभारा ।
हरि न लेते यदि अवतार, नौका बह जाती मंझधार ।
नौका का तो होता नाश, मानव का भी सकल विनाश ।
मनु संग मानवता बच पायी, लोक प्रजा की पुनः चलाई ।
हे साधो अब स्वयं विचारो, हरि कृपा को चित्त में धारो ।

१. श्रीमद्भागवत IV. 15
२. श्रीमद्भागवत IV. 15; VIII. 24

दो० हरि कृपा यदि नहीं करें, जगत किमि बच पाये ।
भीड़ पड़े जब जगत पर, हरि की शक्ति बचाये ॥ १८६१

११२. नृसिंह अवतार

जग का होता नाश न देखें, ह्रास धर्म का हरि न पेखें ।
एक समय ऐसा भी आया, नास्तिकता ने धर्म दबाया ।
शक्ति दैत्यों की बढ़ पायी, मन मानी उन बहुत चलायी ।
हिरण्यकशिपु उन का सरदार, गर्व का पुतला जो साकार ।
सब जनता को दीन आदेश, मेरी पूजा करो विशेष ।
मैं ही जग का स्वामी एक, करे अर्चन नर नार प्रत्येक ।
मैं ईश्वर मैं जग का स्वामी, पूज्यपाद मैं अन्तर्यामी ।
मुझ से भिन्न मत पूजो देव, करे जनता मम अर्चन सेव ।
भूल गया वह बात ज़रूर, गर्व का होता है सिर चूर ।

दो० इसी तथ्य को भूल कर, कीन कुकर्म अनेक ।
बीज हरि ने तब बोया, उस के नाश का एक ॥ १८६२

उस के घर एक पुत्र जाया, जो प्रह्लाद भक्त कहलाया ।
उस ने सब को दीन उपदेश, हरि की पूजा करो विशेष ।
हरि कर्ता हरि ईश्वर जानो, अन्तरात्मा वही पहचानो ।
सर्वव्यापक है जगदीश, भजें उसी को सकल मुनीश ।
कौन भला उस से बढ़ होई, उस के सम भी कहीं न कोई ।
श्रवण करी जब पिता ने बात, उस का तो जल उठा ही गात ।
मेरा पुत्र मम प्रतिकूल, अति अपराधमयी यह भूल ।

पिता ने बहुत उसे समझाया, गुरुओं ने भी ज़ोर लगाया ।
दो० सकल गुरु जन यही कहें, मानो बालक बात ।
अखिल विश्व में तव पिता, से न बढ़ कर तात ॥ १८६३

हिरण्यकशिपु को ही सन्मानो, हरि का नाम न मुख पर आनो ।
हिरण्यकशिपु की शक्ति महान, हे बालक तुम लो पहचान ।
देव हैं उसके सकल अधीन, ब्रह्मा विष्णु शिव भी वश कीन ।
जिस को ईश्वर कह तुम मानो, हिरण्यकशिपु से बड़ा न जानो ।
यह शिक्षा प्रह्लाद न माने, हरि को ही निज इष्ट पहचाने ।
बार बार वह यही सुनावे, 'हरि भजो, हरि भजो' कह पावे ।
हिरण्यकशिपु तब मन अनुमाना, पुत्र अपने को शत्रु माना ।
इस का अभी करूं संहार, शत्रु अल्प भी करत खवार ।
इस शत्रु को मार मुकाऊँ, हो निशंक फिर राज चलाऊँ ।

दो० लेय वह अपने खड्ग को, करन लगा प्रहार ।
स्मरण किया तब भक्त ने, जग का सिरजन हार ॥ १८६४क
निमेष मात्र में तब प्रभु, प्रकटे लें अवतार ।
नृसिंह रूप महा काय में, दे दर्शन करतार ॥ १८६४ख

प्रह्लाद भक्त का कीन त्राण, हिरण्यकशिपु के लीने प्राण ।
हरि भक्त के हरि सहायी, यह तो हरि की है प्रभुतायी ।
अत्याचारी दुःख को पावे, हरि भक्त को हरि बचावे ।
युग २ में हरि यही दिखाया, अवतार हरि का जब हो पाया ।
पापी दल का करें संहार, भक्त जनों की करें संभार ।

इस विध प्रभु जी ने बतलाया, प्रह्लाद चरित कथन में लाया ।
हरि का भक्त सिमरे जिस काल, करें भक्त की हरि संभार ।
निर्भय रहत भक्त इस हेत, भक्तों की हरि राखें चेत ।
दो० भक्तों की हरि चेत लें, प्रकट भयें तत्काल ।
भीड़ पड़े जब भक्त पर, आ कर करें संभार ॥ १८६५
साधु जनों ने बहु सुख माना, श्रवण किया जो प्रभु बखाना ।
कहा "नाथ अब और बताओ, हरि चरित कुछ और सुनाओ ।
श्रवण हमारे नहीं अघावें, चाह राखें कि सुनते जावें ।
ऐसा अवसर फिर कब आवे, पूरण योगी जो मिल पावे ।
सार वस्तु जो सकल बतावे, बुद्धि की सब भ्रांत मिटावे ।
सुन कर प्रभु जी उन की वाणी, फिर बोले वे जन कल्याणी ।
हे साधो हम अब बतलावें, रहस्यमयी इक बात सुनावें ।

११३. वामन अवतार[1]

हरि लीना इक युग अवतार, लीला कीनी बहुत अपार ।
दो० लीला प्रभु की क्या कहें, जो प्रकटी उस काल ।
ज्ञान सहित जन सिमर ले, भये मुक्त तत्काल ॥ १८६६
ऐसी लीला प्रभु प्रकटाई, देवों को जो भयी सहाई ।
दैत्यों का था जग में राज, बलि राजा था महाधिराज ।
छिप कर देव कहीं थे रहते, अदिति के जो थे सुत कहाते ।
माता का दुःख कथा न जाये, रात दिवस वह रोय बिताये ।

१. श्रीमद्भागवत VIII.18

देवों के हित तप तब कीना, हरि ने दर्शन आ कर दीना ।
भक्तिमती थी वह मातार, हरि के चरण गिरी तत्काल ।
हरि कहा मैं सब दुःख जानूं, भक्त दुःखी इस काल मैं मानूं ।
भक्तन हित अब लूं अवतार, सुत बनूंगा तव मातार ।

दो० तेरा सुत मैं आ बनूं, देवों का लूं पक्ष ।
देव सिंहासन फिर गहें, देखें सकल समक्ष ॥ १८६७

अदिति माता तब पुत्र जाया, वामन रूप हरि बन आया ।
कश्यप और अदिति मन चाव, सुत के रूप हरि गोद खिलाव ।
वालपने बहु लीला करता, मात पिता मन मोद था भरता ।
विराट रूप कभी दिखलाता, वामन रूप कभी बन पाता ।
विश्व कभी उस में दिख पाता, नन्हा बालक कभी हो जाता ।
देव सकल देख विस्माते, लघु भ्राता से प्रेम दिखाते ।
अपनी दशा को कर फिर याद, चित्त में होते खिन्न अगाध ।
वामन उन के मन की जान, प्रकट करे निज रूप महान ।

दो० इस विध शक्ति लेय कर, प्रकटे जगदाधार ।
बलि के तब दरबार में, आ पहुँचे करतार ॥ १८६८

लघु रूप था उनका प्यारा, ब्राह्मण वेश था तन पै धारा ।
देख सकल सभा विस्मायी, तेज की मूर्ति कहां से आयी ।
वामन के ब्रह्म तेज के आगे, सकल सभासद झुकने लागे ।
राजा ने निज आसन त्यागा, वामन के वह चरणी लागा ।
कहा "विप्र करें क्या सेवा, निशंक कहो तुम हे भू देवा" ।

कहा वामन "हम ब्राह्मण भाई, आश्रम हेतं चले हैं आई ।
भूमि का कुछ दीजो दान, आश्रम का जहां हो निर्माण" ।
बलि कहा "तुम जितनी चाहो, उतनी भूमि हम से पाओ" ।
वामन बोला "हे महाराज, बहुत भूमि से क्या है काज ।

दो० काम नहीं बहु भूमि से, अपने त्रय ही पाग ।
नाप लेऊं बस भूमि को, सफल भये तब याग" ॥ १८६९

"तथा अस्तु" बलि ने कह दीना, वामन का न भेद उस चीना ।
अद्भुत भया कौतुक तत्काल, वामन भया विराट विशाल ।
इक्क पग से उस भू को नापा, दूजे से आकाश को मापा ।
तीजा राखा बलि के माथ, कीने देव तुरन्त सनाथ ।
हरि के कौतुक क्या बतलावें, शेष शारद भी कथ न पावें ।

११४. परशुराम अवतार

धर्म हेतु हरि लें अवतार, करते पापियों का संहार ।
युग त्रेता में क्षात्र वर्ग, उपद्रव का रच पाया सर्ग[1] ।
जमदग्नी के हरि तब गेह, परशुराम का धारा देह ।
इक्कीस बार उन कर के क्रोध, लीना क्षत्रियों से प्रतिशोध ।

दो० रक्षक ही जब हो गये, भक्षक जग के मीत ।
लेय परशु हरि आ गये, भये सभी भयभीत ॥ १८७०

इस विध हरि ने धर्म बचाया, क्षात्राधम को मार मुकाया ।
बाकी काम फिर राम पै त्याग, जाय वन में तप करने लाग ।

१. श्री मद्भागवत IX. 15

चौदह कला तब राम अवतारी, क्षत्री कुल प्रकटे पापारी ।

११५. श्री रामचन्द्र अवतार

राक्षसगण का कीन संहार, सागर पार भी कीन प्रहार ।
सेतु बांधा सागर ऊपर, अब तक कीना न किसी भूपर ।
ऐसी थी उन की प्रभुताई, लोक लोकान्तर ख्याति छाई ।
देव भये उन के अनुयायी, राक्षस परास्त भये दुःखदायी ।
चौदह भुवन में उनकी शान, मिले न ऐसा पुरुष महान ।

दो० पुरुषोत्तम मर्याद के, राम भये विख्यात ।
सींव धर्म की बांधि उन, किस की और बसात ॥ १८७१

प्रभु जी जब इतना कथ पाये, साधु जन थे बहुत हर्षाये ।
वे तो थे सब राम के प्यारे, राम २ थे रटते सारे ।
कहा प्रभु मैं यह बतलाऊँ, राम को मैं सर्वत्र पाऊँ ।
जग में ऐसा द्वीप न कोई, राम की मूर्ति जहां न होई ।
जहां तक जानूं मैं गोसाईं, राम के भक्त मिलें सब थाईं ।
राम २ कह भजने वालें, असंख्य कोटि जग में जन भारे ।
राम भजा जिस ने सप्रीत, सुखी भया सब काल वह मीत ।
दुःख दरिद्र को हरने हारा, राम प्रभु का नाम प्यारा ।

दो० त्रेता युग में राम ने, लीना था अवतार ।
पापी तो तब थे हने, हने पाप सब काल ॥ १८७२

११६. श्रीकृष्ण अवतार

हे साधो अब हम बतलावें, द्वापर काल में चल के आवें ।
अधर्म बढ़ा उस काल में ऐसा, था देखा न कभी भी जैसा ।
काम क्रोध लोभ अहंकार, व्यापा इनसे सकल संसार ।
जो थी राम मर्याद चलाई, काल चक्र ने सकल दुराई ।
पुत्र पिता को न सन्माने, माता और भगिनी न जाने ।
भाई न भाई को पहचाने, भांजे को न मामा माने ।
भैंस उसी की जिस को लठिया, राजा प्रजा भये सब हठिया ।
आतंक भया सर्वत्र प्रधान, सज्जन सब थे दुःखी महान ।

दो० सज्जन गण जब जगत में, दुःख में सब प्रकार ।
देख धर्म की हान तब, कृष्ण भये अवतार ॥ १८७३

सोलह कला हरि ले आये, योगेश्वर वे कृष्ण कहलाये ।
योग सिद्धि उन संग ही रहती, क्षण २ निज अस्तित्व दिखाती ।
बालपने बहु लीला कीनी, कुशासन को चुनौती दीनी ।
मात पिता को मुक्त कराया, कंस की कैद से उन्हें छुड़ाया ।
उस के गुप्तचरों को मारा, कंस सभा में कंस पछाड़ा ।
कंसपिता को दीन सिंहासन, जो था बन्दी कंस के शासन ।
कंसश्वसुर से कीना युद्ध, चढ़ के आया जो हो क्रुद्ध ।
सागर मध्य इक राज्य बसाया, यश द्वारिका पुरी का छाया ।

दो० द्वारिका पुरी बसाय कर, नाना को दे राज ।
धर्म स्थापन कार्य में, लगे कृष्ण महाराज ॥ १८७४क

पक्ष धर्म का लेय उन, कीना फिर संग्राम ।
धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में, दीना ज्ञान तमाम ॥ १८७४ख

गीता का जो ज्ञान सुनाया, उस में है सब कुछ ही आया ।
महायोगी का वह उपदेश, प्रकटा द्वापर में इस देश ।
हे साधो मैंने कथ पाये, अवतार हरि के जो मन भाये ।
और बताओ क्या बतलाऊँ, ऐसा संग कभी ही पाऊँ ।
साधु संग मुझे बहु प्यारा, हरि चर्चा जो करने हारा ।
कथन करूं मैं नहीं अघाऊं, हरि के गुण मैं सदा सुनाऊं ।
सुन कर साधु जनों ने वाणी, वेद वचन सम उन सन्मानी ।
कहा एक ने "हे महाराज, मिला भाग्य से अवसर आज ।

दो० ऐसा अवसर न मिले, पुनः २ भगवान ।
योगिराज के चरण में, सुनें बैठ जब ज्ञान ॥ १८७५

आप हमें अब नाथ बतावें, उपदेश कृष्ण के सकल सुनावें ।
सुना है हम ने यह भगवान, कृष्ण दीना जो जग को ज्ञान ।
वेद वेदांग का है वह सार, उस में शिक्षा भरी अपार" ।
सुन कर प्रभु जी साध की बात, कहा सुनो अब ध्यान से तात ।
जगद् गुरु तुम कृष्ण को जानो, योगी पूरण उस को मानो ।
उस से बड़ा न भया अवतार, सकल कला जो आया धार ।
अज्ञान अंधेरा था जग छाया, ज्ञान का दीपक ले वह आया ।
शैशव में बहु क्रीड़ा कीनी, शिक्षा गोप जनों को दीनी ।
भरमों में थे जो भरमाये, उन के सब उस भरम दुराये ।

दो० बहु भ्रमों में थे भ्रमे, गोकुल के तब लोग ।
वहमों में वे मग्न सब, विदित न उन को योग ॥ १८७६क
देवों को बहु पूजते, रहते उनसे भीत ।
कुपित देव जो हो गये, कहां जायेंगे मीत ॥ १८७६ख

इन्द्रयज्ञ का अवसर आया, वृन्दावन बहु सज धज पाया ।
नन्द राव बहु कीन तयारी, उस से प्रश्न किया बनवारी ।
पिता जी मुझ को भी बतलाओ, किस हेतु यह सब कर पाओ ।
नन्द राव ने कहा "सुन तात, उत्सव देखोगे तुम प्रात ।
इन्द्र देवता को हम मानें, जो वर्षा को जग में आनें ।
पूजा जो हम कर न पावें, उस के कोप से बहु दुख आवें ।
वर्षा न हो सभी नसावें, पशु हमारे भी मर जावें ।
अथवा आता बहुत तोफान, सब का हो जिस से नुकसान ।

दो० इन्द्र देव के कोप से, सब जनता भय भीत ।
बहु सामग्री लाय कर, उसे मनावें मीत" ॥ १८७७क
कृष्ण देख अज्ञानता, अज्ञ जनों की मीत ।
कहन लगा निज तात से, सादर सहित प्रीत ॥ १८७७ख

हे पिता मैं तो यह जानूं, कर्म प्रधान जगत को मानूं ।
हमारा भाग्य हमारे साथ, क्या है बधा इन्द्र के हाथ ।
इन्द्र किमि दुःख सुख दे पावे, अपना कर्म ही आगे आवे ।
जन कर्म से जन्म को पावे, और कर्म ही मृत्यु लावे ।
कर्म का फल ही हो प्रधान, इस के नहीं कुछ और समान ।

त्याग करो तुम सकल भ्रांत, भय को छोड़ बसो फिर शांत ।
कोई किसी को न दुःख देवे, जैसा करे जन वैसा लेवे ।
शत्रु मित्र आदिक जानूं, निज कर्मों से उपजे मानूं ।
दो० कर्म करें जब शुभ हम, और करें न पाप ।
सुख स्वभाविक ही मिले, समझ पाय क्या आप ॥ १८७८
और बात भी मैं बतलाऊँ, वर्ण धर्म को मैं कथ पाऊं ।
चार वर्ण विधाता कीने, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हैं चीने ।
चौथा शूद्र वर्ण मैं जानूं, कर्म प्रधान सबन को मानूं ।
पठन पाठन है ब्राह्मण करता, क्षत्रिय रक्षा में चित्त धरता ।
वैश्यों की है वृत्तियां चार, कृषि कार्य गोरक्ष व्यापार ।
चौथा धन आदान प्रदान, धन करता सब कारज जान ।
शूद्र सेवा वृत्ति अपनाये, सेव करे बहु पुण्य कमाये ।
हम तो वैश्य गौओं को पालें, कारज हमरे इस से चालें ।
दो० गौ सेवा हमरा कर्म, गौ को मानो देव ।
जिस से मिले आजीविका, उस का वह ही देव ॥ १८७९क
इन्द्रयज्ञ को त्याग कर, करो गोवर्धन याग ।
गोधन की जिमि वृद्धि हो, उन्नत हमरा भाग ॥ १८७९ख
बात धारो यह दृढ़ मम तात, और न भूलो ज्ञान की बात ।
वर्षा तो नहीं इन्द्र अधीना, प्रकृति का यह नियम है चीना[1] ।

१. श्री मद्भागवत X. 23. 24 "रजो गुण की प्रेरणा से मेघगण सब कहीं जल बरसाते हैं। उसी से अन्न और अन्न से ही सब जीवों की जीविका चलती है। इसमें भला इन्द्र का क्या लेना देना है, वह भला क्या कर सकता है।"—श्री कृष्ण

तीन गुणों से सृष्टी चाले, सात्विक राजस तामस भाले ।
राजस कर्म प्रकृति का तात, वर्षा लावे सत्य यह बात ।
आप बात मेरी जो मानें, सब गोवर्धन को सन्मानें ।
जो धरती हमें धारण करती, जिस पर गौ भी हमरी चरती ।
वह धरती हमरी मातारी, उस से मिली सामग्री सारी ।
इस से करें उसी की पूजा, त्याग करें सब कारज दूजा ।

दो० गौओं को दें अन्न हम, पूजें धरती मात ।
उत्सव मानें मिल सभी, मति मेरी यह तात ॥ १८८०

कहा प्रभु जी, साध प्यारे, कृष्ण चन्द्र के वचन न्यारे ।
सब जनता ने कर स्वीकार, गोर्वधन पूजा की तत्काल ।
इस विध कृष्ण चन्द्र ने भाई, कर्म की महिमा सबन बताई ।
शुभ कर्म का दीन उपदेश, निर्भयता का कीन आदेश ।
और प्रसंग सुनो मन लाय, सीख कृष्ण से जिमि मिल पाय ।
कृष्ण चन्द्र देता बहु ज्ञान, करते उस का सब जन मान ।
गोपी गोप उस के सब मीत, उस से करते थे सब प्रीत ।
तीव्र धार प्रीत चल पाई, अनेकों कवियों ने यह गाई ।

दो० गोपी गोप थे बह चले, प्रीत की धारा मांझ ।
कृष्ण चन्द्र ने बोध हित, कहा तभी इक सांझ[1] ॥ १८८१

हे साजन मैं बात बताऊं, भक्ति का कुछ रहस्य सुनाऊं ।
जैसी प्रीति तुम दिखलावो, बदले में न वैसी पावो ।

१. श्री मद्भागवत X. 32.17—22

देना न मुझ को कुछ दोष, और न करना मुझ पै रोष ।
मैं कारण इस का बतलाऊँ, जिस विध दोष से मुक्ति पाऊँ ।
प्रीत के रूप तीन पहचानूँ, अधम मध्य और उत्तम जानूं ।
प्रेमी अधम वही कहलाते, प्रीत जो स्वार्थ हित कर पाते ।
सौहार्द और धर्म न लेश, ऐसे प्रेमी अधम विशेष ।
प्रेमी अधम जो हो जग माहीं, उस की प्रीत ओस के नाईं ।

दो० स्वार्थहित जो नर करे, साची न वह प्रीत ।
ऐसे जन के तो बसे, लेश धर्म न चीत ॥ १८८२क

मध्य प्रेम की अब सुनो, बात बताऊँ खोल ।
करे प्रेम जिमि मात पित, बिन बदले बिन मोल ॥ १८८२ख

बिन बदले के प्रेम जो होई, साचा प्रेम कहें सब कोई ।
सज्जन गण इस प्रेम को मानें, ऐसे प्रेमी को सन्मानें ।
सबन करत मुझ से तुम प्रेम, मेरा मांगें सब जन क्षेम ।
निश्छल प्रीत की यह ही रीत, सत्य धर्म सहित यही प्रीत ।
इस से अगला प्रेम बखानूं, उत्तम प्रीत की रीत जो मानूं ।
उत्तम प्रेमी के प्रकार, बतावूं मैं वे तुम को चार ।
स्वरूप मस्त इक प्रेमी भाई, द्वैत भाव न चित्त में लाई ।
वह करता है सब से प्यार, मान के आत्मा को आधार ।
दूजा प्रेमी है कृत कृत्य, भया हो जग से जो निवृत्त ।
वह सब प्रेम के स्तर से ऊपर, प्रीत करे न किसी से भू पर ।

दो० प्रीत करत न जगत से, उदासीन हो रहत ।

उत्तम प्रेमी जानिये, धुरी धर्म की वहत ॥ १८८३क
तीजा प्रेमी जानिये, लेश न करता ध्यान ।
कोई करे या न करे, उसकी प्रीत महान ॥ १८८३ख

प्रीत में नीति जिस है खोई, ऐसा प्रेमी विरला कीई ।
प्रेम में आपा उस विसराया, अहं भाव उस सकल भुलाया ।
श्रवण करो अब चौथी प्रीत, प्रेम करूं तुम से जिस रीत ।
प्रेमी प्रेम को न दिखलावे, उलटा प्रेमी को ठुकरावे ।
यह विलक्षण रीत सुनाऊं, इस में हित जो होय बुझाऊं ।
निज प्रेमी मैं राखूं दूर, दीख पड़ूं पर कभी ज़रूर ।
याद करे मुझे मन वह आप, सहता रहत वियोग संताप ।
दरिद्र खो पाये जब दाम, उसे न सूझे दूजा काम ।
मैं भी मिल कर छिप २ जाऊं, प्रेमी का मन वश कर पाऊं ।

दो० दर्शन अपना देय कर, होता हूं मैं लोप ।
प्रीत मेरी की रीत यह, समझ करो मत कोप[1] ॥ १८८४

कृष्ण चन्द्र यह सीख सुनाई, निज प्रीत की रीत बताई ।
हे साधो मैंने बतलाया, कृष्ण चन्द्र जो ज्ञान दे पाया ।
और जिज्ञास जो हो मन मांहि, पूछ लेवो अब मेरे पांहि ।

१. श्री मद्भागवत X 32.20 "मैं तो प्रेम करने वालों से भी प्रेम का वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिए। मैं ऐसा केवल इसी लिए करता हूं कि उनकी चित्त वृत्ति और भी मुझ में लगे, निरन्तर लगी ही रहे। जैसे निर्धन पुरुष को कभी वहुत सा धन मिल जाये और फिर खो जाये, तो उसका हृदय खोये हुये धन की चिन्ता से भर जाता है, वैसे ही मैं भी मिल मिल कर छिप छिप जाता हूं।" —श्रीकृष्ण

कृष्ण चन्द्र ने ज्ञान भण्डारा, दिल को खोल बांट उन डारा ।
उन का वचन इक इक मम मीत, मनहर सुखमय ज्ञानमय गीत ।
बंसी ज्ञान की कृष्ण बजाई, सुनी जिसने उस सुध विसराई ।
ऐसा ज्ञान उसने दे पाया अंगुल पर था देश उठाया ।
निर्बल कीने सबल महान, अर्जुन विकल में फूंके प्राण ।

दो० अर्जुन डूबा शोक में, देख युद्ध का रूप ।
कृष्ण चन्द्र के वचन सुन, शक्ति पायी अनूप ॥ १८८५

सुन कर प्रभु जी की वह वाणी, इक साधु कहा "हे महादानी ।
अर्जुन को क्या कृष्ण बताया, जिस से उस का शोक नशाया ।
वह सब बात हमें बतलावें, शोक न मन हम भी तब लावें" ।
कहा प्रभु "हे मीत प्यारे, भले लगे हैं वचन तुम्हारे ।
ग्रस्त शोक जो सब संसार, श्रवण करे इस ज्ञान का सार ।
मोह व शोक से हो कर मुक्त, कर के बुद्धि योग से युक्त ।
रह कर जग में जग से न्यारा, कर्म करे प्रभु अर्पण सारा ।
संगति त्याग कर्म कर पावे, भव बंधन से वह छुट जावे ।

दो० कृष्ण चन्द्र की बात को, कथन करूं मैं मीत ।
श्रवण करो तुम ध्यान से, बात में ला कर चीत ॥ १८८६क
कृष्ण चन्द्र महाराज थे, योगेश्वर भगवान ।
ज्ञान योग का देय कर, किया जगत कल्याण ॥ १८८६ख

रहस्य कर्म का कृष्ण सुनाया, कर्म को योग का अंग बताया ।
भक्ति योग का दीना ज्ञान, सन्यास योग भी कथा महान ।

ध्यान योग का क्रम बतलाया, विश्वरूप दर्शन दे पाया ।
अर्जुन की तब भ्रांति छूटी, मोह निद्रा सब उस की टूटी ।
हाथ में ले तब धनुष व बाण, युद्ध में उतरा पुरुष महान ।
हे साधो मैं अब बतलाऊँ, योग कृष्ण का मैं कथ पाऊँ ।
कर्म योग को प्रथम बताऊँ, भक्ति आदि को पाछे गाऊं ।
कर्म जीव का धर्म महान, करो समर्पित वही भगवान ।
ईश्वर अर्पण कर्म कर पावे, कर्म योगी वह नर कहावे ।

दो० फल की इच्छा त्याग कर, कर्म करे नर नार ।
देह रमे तो कर्म में, मन में हरि का प्यार ॥ १८८७

ना ही जीव कर्म को त्यागे, ना ही फल इच्छा चित्त लागे ।
ना ही कोई दुष्कर्म कमावे, न शुभ कर्म से मुंह मुड़ पावे ।
निष्फलता में दुःख न माने, होय सफल न चित्त अभिमाने ।
हानि में न होय उदास, लाभ की राखे न चित्त आस ।
हानि लाभ में रहे समान, ऐसे योगी को अधिमान ।
मन में जो न हो अभिमानी, न अपमान में हो परेशानी ।
मृत्यु से भी नहीं डर पावे, जीवन से भी तंग न आवे ।
शीतोष्णा को सम कर जाने, कृष्ण उसे ही योगी माने ।

दो० कृष्ण चन्द ने जगत को, दीना योग ज्ञान ।
भ्रांत मति सब जगत की, हर लीनी भगवान ॥ १८८८

कर्म योग को जो अपनावे, कर्म कुशलता बहु विध पावे ।
कर्म करे जब साथ हों नाथ, लागे फिर क्यों लाभ न हाथ ।

रहे जगत में कमल की नाईं, राग द्वेष न उस मन माहीं ।
उद्विग्न होय न मन में लेश, खुश उस से हर जीव विशेष ।
ऐसा योगी जो जग माहीं, कर्म योगी वह जन कहलाहीं ।

११७. श्रीकृष्ण चन्द्र का भक्ति योग

भक्ति योग की सुनिये बात, कृष्ण चन्द्र जो कही साक्षात ।
अनन्य भाव से हरि को ध्यावे, हरि भक्त नर वही कहलावे ।
चित्त में रहे हरि का ध्यान, बुद्धि में हो हरि का ज्ञान ।
वाणी पै हो हरि का नाम, भक्ति अनन्य मिले सुख धाम ।

दो० मन वाणी और बुद्धि से, शरण हरि की होय ।
स्मरण करे न और कुछ, भक्ति योगी सोय ॥ १८८९

नर सुकर्मी हरि को ध्यावें, आर्त होय कोई शरणी आवें ।
कोई जिज्ञासु भाव अपनावें, अर्थार्थी कोई चलि आवें ।
चौथा भक्त जानो तुम ज्ञानी, प्रभु से भिन्न रहे न प्राणी ।
हरि की शरण गहे सब काल, भक्ति में सुध खो तत्काल ।
ऐसे भक्त को हरि संभालें, उस के पाप ताप सब टालें ।
शीघ्र होय धर्म युत भारी, भक्त की राखें हरि सुध सारी ।
भक्त का नाश नहीं त्रिकाल, कथा कृष्ण स्वयं यह हाल ।
हरि परायण भक्त जो होय, हरि के ही वह लोक को गोय ।

दो० गमन करे हरि लोक को, रहे हरि के संग ।
नाश होवें न भक्त का, कृष्ण कथा प्रसंग ॥ १८९०क

इधर उधर की छोड़ जो, गहे हरि की शरण ।
पाप रहित उस के बनें, धर्म कर्म आचरण ॥ १८६०ख

कृष्ण चन्द्र यह भी समझाया, भक्ति का आधार बताया ।
श्रद्धा भक्ती का आधार, श्रद्धा युत जिस का आचार ।
उत्तम भक्त वही कहलावे, कृष्ण उसे युक्ततम कह पावे[1] ।
श्रद्धा से हो प्राप्त ज्ञान, श्रद्धा बिन जन दुःख बहु पान ।
संशय युक्त जो हो नर नार, उस के जीवन पै धिक्कार ।
उसका जीवन नाश हो जाये, जीवन बाद भी सुख न पाये ।
श्रद्धा सहित सिमरे भगवान, पाये समग्र प्रभु का ज्ञान[2] ।
ऐसा ज्ञान वह जन पा जाये, जानन योग न शेष रह पाये ।

दो० असंख्य जनों के मध्य में, विरला करता ध्यान ।
ध्यानिन के भी बीच में, विरला पावे ज्ञान ॥ १८६१क

विरला पावे ज्ञान वह, श्रद्धा जिस मन मांहि ।
बिन श्रद्धा के हो सके, ज्ञान कभी भी नांहि ॥ १८६१ख

११८. श्रीकृष्ण चन्द्र का सांख्य योग

सुनो अब सांख्य योग की बात, जिस विध होवे ज्ञान प्राप्त ।
सब के घट में ईश का वास, अजर अमर अविनाशी खास ।
उस को मार सके नहीं कोय, अग्नी भी नहीं दाहे सोय ।
जल से वह नहीं गीला होय, वायु से नहीं सूखे सोय ।
निराकार वह ज्योति स्वरूप, उस का कौन कहे रंग रूप ।

१. गीता VI. 47 २. गीता VII. 1

देख सके सो ज्ञान को पाय, बिन देखे न ज्ञानी कहाय ।
गुण उसके तुम ऐसे जानो, जन्म मरण से ऊपर मानो ।
अनादि तत्व विलक्षण सोय, उस का आदि न जाने कोय ।
शाश्वत और पुरातन होई, देह मरे पर मरे न सोई ।

दो० मरे न देह के संग जो, अजर अमर इक रूप ।
नित्य सनातन पुरुष वह, देही देह में गूप ॥ १८९२क
एक देह को त्याग कर, धारे देह नवीन ।
नूतन वस्त्र धारता, जिमि नर फेंक मलीन ॥ १८९२ख

यह अव्यक्त अचिन्त्य अविकारी, अचरजमय यह तत्व भारी ।
अचरज से इसे कोई देखे, अचरज से कोई इसे उल्लेखे ।
अचरज सहित सुने कोई बात, को सुन कर भी न समझे तात ।
उस अव्यक्त का जानन हारा, विरला पुरुष सांख्य का प्यारा ।
सांख्य योगी के गुण वतलायें, अर्जुन को जो कृष्ण सुनायें ।
सांख्य योगी की बुद्ध निसक्त, कर्मों में न होय आसक्त ।
ग्यारह इन्द्रियां करत अधीन, वासना से नहीं चित्त मलीन ।
ज्ञान निष्ठ वह पुरुष हो पाय, लक्षण उस के इस विध गाये ।

दो० लक्षण कहे भगवान ने, सांख्य योगी के मीत ।
श्रवण करो तुम ध्यान से, हो पावें प्रतीत ॥ १८९३क
कही प्रभु जब बात यह, साधु भये सतर्क ।
धारा उन सन्यास था, मिला प्रभु से तर्क ॥ १८९३ख

सन्यासी को हो बुद्धि शुद्ध, धृति युक्त वह जन प्रबुद्ध ।

शब्दादि सब विषय विहीन, राग द्वेष में लेश न लीन ।
विविक्त देश में वह रह पावे, लघु आहारी भी हो जावे ।
काया व मन कस के राखे, ध्यान योग में निश दिन माखे ।
काम क्रोध आदि को त्यागे, शांत भाव से योग में लागे ।
शांति में ही सुख को माने, इस विध ब्रह्म को वह पहचाने ।
ब्रह्म भाव में रहता लीन, सन्यासी वही योग प्रवीन ।
सम भाव में वह रह पावे, हर्ष शोक न चित्त में लावे ।

दो० समता राखे चित्त में, हर्ष शोक न आस ।
ईश्वर में होय आस्था, धारा जिस सन्यास ॥ १८९४

हे साधो मैं ने बतलाया, सांख्य योग का ज्ञान कराया ।

११९. श्रीकृष्ण चन्द्र का ध्यान योग

अब बतलाऊँ तुम को साईं, ध्यान योग जिमि कृष्ण बताईं ।
करे निरन्तर जो अभ्यास, चित्त का कर इक देश न्यास ।
ध्यान योग के रस में राता, परम पुरुष को वह जन पाता ।
इन्द्रियों का जो करे निरोध, मन का अन्तर में ही रोध ।
मूर्धा में निज रोक के प्राण, ओंकार में धार के ध्यान ।
सिमरे सदा ही जो भगवान, उस योगी के कौन समान ।
उस योगी की उपमा नाहीं, समझो मुझ से तुम यह साईं ।

दो० ध्यान योग कर ध्यान में, सिमरे हरि का नाम ।
प्राप्त करे भगवान को, रहे उसी के धाम[1] ॥ १८९५

1. गीता VIII. 8, 12, 13, 14

शुद्ध देश में कर के वास, दृढ़ कर आसन का अभ्यास ।
सिर ग्रीव और धड़ सम धार, बैठे योगी इस प्रकार ।
नासिकाग्र पर दृष्टि जमावे, हरि परायण बैठ दिखावे ।
इस विध कर के सदा अभ्यास, शांति परम पाये जन खास ।
अन्तर में जभी मन टिक पावे, युक्त अवस्था वही कहावे ।
कामना सभी होंय तब शांत, सकल मिटे जन की विभ्रांत ।
चित्त अवस्था ऐसी पावे, दीप शिखा निर्वात लखावे ।
योग सेवन कर चित्त उपराम, आत्म दर्शन सुख का धाम ।

दो० आत्म दर्शन जब भये, सुख ऐसा जन पाय ।
बुद्धि में आनन्द बसे, कथन में जो न आय[1] ।। १८९६

सुख उस से नहीं बढ़ कर होय, आत्म दर्शन से जन जो गोय ।

ज्ञान योग

अब कहूं मैं ज्ञान की बात, जिस में ईश्वर हो साक्षात ।
ज्ञानी जन दुर्लभ जग माहीं, जो देखे सर्वत्र साईं ।
बहु जन्म की साध स्वरूप, पावे जन यह ज्ञान अनूप ।
वायु जिमि फैली सब थाईं, तिमि पदार्थ सब हरि माईं ।
पदार्थ तो सब नाश स्वरूपा, हरि अविनाशी ही इक रूपा ।
पारब्रह्म अनादि सोई, नहीं असत वह न सत होई ।
सत असत दोनों से ऊपर, उपमा मिले न उस की भू पर ।
हाथ पैर उस के सब थाईं, आंख मुंह और सिर भी आईं ।

1. गीता VI 10-20

उस के कान सर्वत्र जानो, व्यापक ईश्वर इस विध मानो ।
दो० सब इन्द्रिन के काम को, करे वह इन्द्री हीन ।
भरता वह सब विश्व का, गुण भोक्ता गुण हीन ॥ १८९७

चल सके वह चाले नहीं, दूर रमे वह हृदय माहीं ।
सुक्षम से भी सूक्षम सोई, स्थूल न उस के सम है कोई ।
हो कर एक अखण्ड स्वरूप, प्रकटाता वह नाना रूप ।
हृदय मध्य वह बसे सुबोध, ज्ञान से हो उस का प्रबोध ।
न कोई रंग न उस का रूप, ज्योतियों का भी ज्योतिस्वरूप ।
ध्यान योग से जाने कोई, सांख्य योग से जाने कोई ।
कर्म योगी भी उस को पावे, जाने वही जिसे स्वयं जनावे ।
गुरु वचनों पर कर विश्वास, भक्त बने जो जन कोई खास ।
वह भी उस को है पा जाता, जो पाता सो मुक्त हो जाता ।
दो० ईश्वर को जन पाय कर, करता मुक्ति लाभ ।
रहत जगत के बीच भी, वह योगी अमिताभ[1]" ॥ १८९८

१२०. ज्ञानी की पहचान

श्रवण करी जब प्रभु की वाणी, भये प्रसन्न वे साधु मानी ।
प्रश्न किया इक जन तत्काल, "नाथ मेरा इक और सवाल ।
ईश्वर को जो योगी जाने, और ज्ञान को मन में आने ।
उस के कुछ लक्षण बतलायें, ज्ञानी की पहचान कह पायें ।
सुन कर प्रभु जी उस की बात, कहन लगे सुन लो तुम तात ।

1. परम तेजस्वी

कृष्ण चन्द्र जो मुख से गायी, वह गीता की बात चलायी[1] ।
अन्तर में जब ज्ञान समावे, बाहर उस का रूप लखावे ।
दीपक घर में जब प्रकाशे, झरोखों से प्रकाश विकाशे ।

दो० दीपक के प्रकाश वत, ज्ञान का हो प्रसार ।
ज्ञानी के प्रति कर्म से, बहे ज्ञान की धार ॥ १८९९

ज्ञानी के मैं कर्म बताऊँ, कहा कृष्ण जो वही सुनाऊँ ।
होता ज्ञानी निरभिमानी, दंभ की वहां न लेश निशानी ।
हिंसा से वह बच के चाले, क्षमा भाव निरन्तर पाले ।
सरल भाव को वह अपनावे, गुरु जनों की सेव कमावे ।
शुद्ध रहे तन मन से भाई, धर्म कर्म में ही स्थिरताई ।
निग्रहित करता तन मन अपना, रहत विरक्त समझ जग सपना ।
जन्म मरण और व्याधि जग में, दोष अनेकों दुःख हैं जिस में ।
इन पै करता नित्य विचार, आसक्त नहीं गृह पुत्र दार ।

दो० नित्य रहत वह एक चित्त, इष्टानिष्ट न देख ।
अनन्य भाव से हरि भजन, शुद्ध देश को पेख ॥ १९००

अध्यात्म ज्ञान में रमता नित्य, तत्व दर्शन में जिस का चित्त ।
ऐसा योग करे जो कोई, ज्ञानी पुरुष कहावे सोई ।
साधो मैंने तुम्हें बताया, रहस्य ज्ञान का कथ समझाया ।
कोइ विरला यह जाने भेद, बिन जाने नहीं मिटता खेद" ।
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, बोला इक "हे प्रभो आदेश ।

1. गीता XIII. 7-11

सत युग त्रेता द्वापर नाथ, सभी युगों की कथ दी गाथ ।
युग २ के अवतार बखाने, जगत हेत जो जग में आने ।
उन सब ने जो कीने काम, सब कुछ तुम बतलाया राम ।

दो० सब अवतार जो जग भये, सतयुग त्रेता द्वाप ।
उन की सुन्दर गाथ को, कीना वर्णन आप ॥ १६०१क

दो० हे नाथ अब प्रश्न यह, भयंकर है अब काल ।
जगत दुखी बहु विध भया, ऐसा यह कलि काल ॥ १६०१ख

१२१. कलियुग में धर्म का लोप

कलियुग में सब प्रजा दुखारी, धर्म की हानि भी बहु भारी ।
सत्य धर्म का भया विनाश, कपट ने डस लीना विश्वास ।
दया धर्म न रहा जग माहीं, अत्याचार भये सब थाहीं ।
दुर्बल को सब इमि दबावें, प्राण जिमि उस के ले पावें ।
चोरी चाले दिन दिहारे, लूट मची है हाट द्वारे ।
साध भये हैं मन के चोर, ऐसा कलियुग का है ज़ोर ।
विषयों का प्रभाव निराला, ब्रह्मचर्य का निकला दिवाला ।
परिग्रह की जो लागी होड़, व्यर्थ भरें जन घर धन ज़ोड़ ।
इस विध धर्म के जो उपदेश, पालन करे न कोई जन लेश ।

दो० धर्म कर्म उपदेश जो, ग्रंथन में सब गुप्त ।
उन पर चलता न कोई, धर्म भया इमि लुप्त ॥ १६०२क

मन की शुद्धि नहीं रही, वाणी भी न शुद्ध ।
कर्म पापमय हो गये, नष्ट भयी है बुद्ध ॥ १६०२ख

सन्तोष भया जग से है दूर, नर नारी सब लोभ में चूर ।
सुख की नींद नहीं जन सोवें, चिन्ता में नर नारी रोवें ।
तप जो धर्म का मुख्य आधार, उस का बिगड़ा रूप अपार ।
पाखण्ड ने लीना तप का स्थान, धर्म द्रोही है बना जहान ।
स्वाध्याय को जग ने त्यागा, वासनिक ग्रंथों में है लागा ।
वेदों को हैं भूले लोग, शास्त्र हो गये घुन के भोग ।
ईश भजन है जग ने त्यागा, सिनिमा थेटर में चित्त लागा ।
हे नाथ अब आप बतायें, कौन धर्म को आन बचायें ।

दो० धर्म कर्म के अंग जो, भया सबन का लोप ।
कौन बचावे धर्म को, सब थां लीला पोप" ॥ १९०३क
ऐसा कह कर साध वह, बैठ गया हो मौन ।
कहन लगे गंभीर हो, प्रभु ज्ञान के भौन ॥ १९०३ख

"हे साधो तुम ने कथ पाया, धर्म कहीं है छिप के धाया ।
कलियुग का प्रभाव यह जानो, दोषी न तुम जगत को मानो ।
रात्रि काल जभी चल आये, अंधकार तब जग में छाये ।
तिमिर जगत को लेवे घेर, दूर भये जब होये सवेर ।
सूर्य जभी उदय हो पावे, तिमिर का न कहीं नाम लखावे ।
सूर्य बिना नहीं तिमिर विनाश, बिन ईश्वर नहीं कलि का नाश ।
कलि में ईश्वर का अवतार, करे धर्म का पुनः उद्धार ।
अधीर बने न जग घबराये, होगा सब कुछ समय के आये ।

दो० धर्म जगत की नींव है, ईश्वर स्वामी जान ।

नींव हिले जब जगत की, स्वामी बहुरे आन" ॥ १६०४क
सुन कर सुन्दर वचन ये, कही साध ने बात ।
"योगी ऐसे आप हैं, तीन काल साक्षात ॥ १६०४ख
हमें जनावें आप यह, हरि कब लें अवतार ।
किस रूप में प्रकट हो, करें जगत उद्धार ॥ १६०४ग

छिपी आप से बात न कोई, हमरे मन निश्चय यह होई ।
इस संशय का करें निवारण, तुम योगी शरणागत तारण ।
अहो भाग्य हम योगी पाया, निज मुख से जिस ज्ञान सुनाया ।
पार्थ पाया जिमि कृष्ण महाराज, तिमि मिले हमें आप हैं आज ।
संशय रहित यहां से जावें, कामना यह हम आज मनावें ।
बस अब प्रश्न यही है शेष, ज्ञान मिले प्रभु हमें विशेष" ।
सुन कर प्रभु जी उस की बात, कहन लगे सुन हे मम तात ।
प्रश्न कठिन तुम ने है कीना, मन अपना किस बात में दीना ।

दो० प्रश्न करो न मीत यह, रहे गुप्त यह बात ।
ईश्वर के सब भेद तो, जाने ईश्वर तात ॥ १६०५

भेद न ईश्वर निज बतलावें, प्रथम करे व फिर प्रकटावे ।
ईश्वर आ कर जब चलि जाता, जगत तभी कुछ बोध है पाता ।
जब २ ईश्वर जग में आया, उसे कोई न जानन पाया ।
ईश्वर निज को न प्रकटावे, अपने संग निज माया लावे ।
माया भीतर छिप के रहता, जग न उस के बोध को पाता ।
भानु को जिमि मेघ छिपावे, हरि माया में तिमि लुकावे ।

दिनकर दिन कर्ता तो होई, मेघ कारण नहीं दीखे सोई ।
ऐसे ही हरि जग में आवें, धर्म स्थापित वे कर पावें ।
पर न जगत उन्हें पहचाने, निज महिमा को प्रभु ही जाने ।

दो० निश्चित ही यह जानिये, प्राणी नहीं समर्थ ।
जान सके पहचान कर, हरि आवें जिस अर्थ ॥ १६०६

विरला कोई जीव सुभागी, अनन्य चित्त से हरि अनुरागी ।
उसे जनावें अपना रूप, सकल जगत से रह कर गूप ।
एक बात पर निश्चित साईं, योग शक्ति हरि संग ले आईं ।
योग से धर्म स्थापित होई, योग से बढ़ कर न बल कोई ।
कलियुग में तो घोर अंधेरा, पाप ने बढ़ २ कीन बसेरा ।
मन मैले और बुद्ध मलीन, कलि ने सकल जगत के कीन ।
ये सब निर्मल होवें तब ही, योग साबुन ला धोवें जब ही ।
योग ही हरि की शक्ति जानो, यही सुदर्शन कृष्ण का मानो ।

दो० जग में लावें योग जब, ले कर हरि अवतार ।
पाप कटे व धर्म बढ़े, बस यह निश्चय धार ॥ १६०७क

प्रभु कथी यह वारता, राखा निजहिं गोप ।
इन्द्र आदि सब देवता, खड़े जो नभ के टोप ॥ १६०७ख

नभ वाणी

दिव्य ध्वनि उन की भई, "धन्य धन्य अखिलेश ।
ध्वजा धर्म की आप ने, गही प्रकट योगेश ॥ १६०७ग

कलियुग में अवतार ले, धर्म की खींची लीक ।
धर्म शरण अब आप की, नाशें कर्म अलीक" ॥ १६०७घ

यह वाणी सब ने सुन पायी, उतर गगन से थी जो आयी ।
साधु भये चकित बहु भारी, जान गये प्रभु हैं अवतारी ।
प्रभु ने फिर कुछ बात चलाई, साधुन को नभ ध्वनि विसराई ।
प्रभु ने उनको दीन विदायी, सायं वेला होने आई ।
भये प्रभु समाधि आसीना, महा प्रभु के ध्यान में लीना ।
महाप्रभु से भया साक्षात, प्रभु ने कथी तभी यह बात ।
"नाथ आप की आज्ञा मान, रह रहा हूँ मैं जग में आन ।
यदि आप की आज्ञा पाऊं, आप के चरणों में फिर आऊं ।
मेरा जीवन आप अधीना, आप गुरु मैं बालक दीना ।

दो० आज्ञा मुझ को दीजिये, जिस में मम कल्याण ।
मांगू केवल एक वर, बख्शें चरणी ध्यान" ॥ १६०८क

१२२. श्री महाप्रभु का सन्देश

महा प्रभु ने श्रवण कर, कही राम से बात ।
"वत्स निरन्तर हम बसें, साथ तुम्हारे तात ॥ १६०८ख

हम ने तुम को था पठा, जगत हेत हे लाल ।
बीज धर्म का बो दिया, तुम ने है इस काल ॥ १६०८ग

समय पाय अब यह बढ़े, करना ठीक सम्भाल ।
तू ने रहना जगत में, जब तक है कलि काल ॥ १६०८घ

धर्म शरण अब आप की, मेरा यह सन्देश ।
मैं तुम्हारे संग हूँ, चाहो बसो जिस देश ॥ १९०८ङ

कुछ काल तुम पुनः चलि आओ, उच्च हिमालय में रह पाओ ।
यहां से ही सब जग को देखो, योग धर्म को बढ़ते पेखो ।
योग धर्म अब जग विस्तारे, पाप कर्म को क्षय कर डारे ।
देवासुर सम यह संग्राम, पावें देव विजय को राम ।
तुम संग्राम के हो अधिनायक, सन्त जनों के तुम सुखदायक ।
तेरे ऊपर जग का भार, सावधान रह करो संभार ।
बस अब बेशक चल तुम आना, सुमेरु पर्वत पर रह पाना ।
जगत को न सब होय प्रतीत, रहस्य न प्रकटे यह है रीत ।

दो० गुप्त रूप से जगत का, चलता है सब काम ।
ज्ञानी पाये ज्ञान को, जगत मोह में राम" ॥ १९०९क
सद्गुरु का आदेश सुन, समाधि खोली राम ।
रहन लगे तब सोच में, करना था जो काम ॥ १९०९ख

शिष्य वही जो गुरु को माने, उस का सब संकेत पहचाने ।
लाये न वह लेश भी अन्तर, गुरु की बात सुने जिमि मन्तर ।
प्रभु जी वही नीति अपनाई, अक्षरशः सब ध्यान में लाई ।
कई दिवस उन कीन विचार, अन्त में मन में लीना धार ।
ऋषिकेश उन मुलख बुलाया, पास राख उस को समझाया ।

१२३. श्री मुलखराज को आज्ञा

"हे तात, जब से तुम आये, जब से प्रभु जी चरणी लाये ।

तुम तो रहे समाधि आसीन, बहिर मुखी नहीं वृत्ति कीन ।
बाहिर के अब नयन उघारो, आश्रम के सब काम संभारो ।

दो० आश्रम का सब काम जो, तुम्हें सौंप के तात ।
मिले हमें विश्राम अब, यही कहनी थी बात ॥ १६१०क
शुद्ध हमारा रूप तुम, लेश नहीं है भेद ।
कार्य करो उत्साह से, मन में मान न खेद ॥ १६१०ख

करो जगत में योग प्रचार, जीव जन्तु का हो उपकार ।
योग से उन की बुद्ध हो शुद्ध, योग से आत्म जोत प्रबुद्ध ।
योग से पाप कर्म का नाश, करो जगत में योग विकास ।
करना न कभी चित्त मलीन, रहो जीवन में सदा अदीन ।
प्रभु की शक्ति सदा रहे संग, जानो निज को प्रभु का अंग ।
प्रभु कर्ता प्रभु करने हारे, इसी भाव से कर्म हों सारे ।
जग को प्रभु का रूप ही जान, सेव करो बिन मान थकान ।
इस विध करे कर्म जो कोय, प्रभु किरपा जन पावे सोय ।

दो० कर्म करे जग हेत जो, चित्त न राख स्वार्थ ।
प्रभु भक्ति मन में बसे, जन पावे परमार्थ ॥ १६११क
गुरु भक्ति और योग की, महिम करो विस्तार ।
सन्मारग जग को मिले, भये दूर अहंकार ॥ १६११ख
जगत विसारा योग को, गुरु भी योग विहीन ।
साधन से सब च्युत भये, कथनी में वे लीन ॥ १६११ग

तन से रोगी मन में सोगी, जनगण भये हैं बहु विध रोगी ।

उन के कष्ट निवारण हेत, कर्म करो चित्त में ला चेत ।
दश वर्ष तक समाधि लगाई, शक्ति उस से बहु विध पाई ।
उस शक्ति का सद् उपयोग, जन हित करना कर्म है योग ।
कर्म योग वही कर पावे, ध्यान योग कर चित्त टिकावे ।
ध्यान का देना तुम भी दान, जनता का करना कल्याण ।
जिस पर रहेगा तेरा हाथ, उसके रहेंगे प्रभु भी साथ ।
जो भी आश्रम में चलि आवें, शिक्षा वह जन तुम से पावें ।

दो० आश्रम में जब आय कर, जिज्ञासा दिखलाय ।
सब विध शिक्षा योग की, वह जन तुम से पाय ॥ १६१२क
साधन जो हठ योग के, यम नियम भी संग ।
सीखें जन सब आय कर, योग के आठों अंग ॥ १६१२ख
यही हमारी सीख है, ब्रह्मचर्य व्रत धार ।
सेवा में रत रह अब, करो योग प्रचार" ॥ १६१२ग

इस विध सीख प्रभु जो दीनी, शिरोधार्य वह मुलख ने कीनी ।
प्रभु जी को तब दण्डवत कीना, अमृतसर का राह फिर लीना ।
ऋषिकेश कुछ काल बिताय, अमृतसर तब प्रभु जी आय ।
भक्त सभी दर्शन हित आवें, कर दर्शन वे सुख को पावें ।
प्रभु आशिष सब को दे पायी, और इक सुन्दर गाथ सुनाई ।

१२४. मंगल मुग्ध-ज्ञानी उपाख्यान

भक्त जनो तुम को बतलायें, पथ भ्रष्ट बहु जन जग पायें ।
बातों तक बस उन का ज्ञान, जानें वे नहीं योग ध्यान ।

ईश्वर ही निज को वे मानें, निज से ऊपर न कोई जानें ।
ऐसे संग से बच के रहना, योग भक्ति व ज्ञान को पाना ।

दो० एक समय की वारता, नर मंगल अभिधान ।
इक वेदान्ती संग रहा, सुनता जिस से ज्ञान ॥ १६१३

"एक ब्रह्म दूसर न कोई", सुनता नित्य यही था सोई ।
ग्रन्थों को वह पढ़ने लागा, अहं भाव बहु मन में जागा ।
संध्या वन्दन सब कुछ छोड़ा, कर्म काण्ड से मुख उस मोड़ा ।
ईश्वर ही वह निज को जाने, राम कृष्ण सम निज को माने ।
सीधे मुंह न करता बात, यदि पूछो "कहां रहते तात" ।
"मैं तो हूँ सब जग में रहता", उत्तर ऐसा वह दे पाता ।
खाने को जब कोई कह पावे, "खावें हम नहीं" यह बतलावे ।
भक्षा-भक्ष सभी वह खाता, "हमें दोष नहीं" कह वह पाता ।
भोग भोगे वह ऐसे वैसे, कहे "कृष्ण से कम हम कैसे" ।
पूछें "बच्चे कितने भाई", कहे "सब सृष्टि मैं उपजाई" ।

दो० ऐसे उत्तर देत वह, जो बिन-अर्थ व्यर्थ ।
व्यसन करत वह सकल ही, कह कर निजहिं समर्थ ॥ १६१४

कहा प्रभु जी भक्तन ताहीं, ऐसे जन जग में कम नाहीं ।
कोरा ज्ञान कुबुध उपजावे, केवल कथनी भ्रम प्रकटावे ।
बिन साधन जो ज्ञान की बात, वह जानो सम रोग ही तात ।
मंगल मन उपजा वह रोग, हंसी करें उस की सब लोग ।
अपना रोग वह न पहचाने, निज अहंकारी दोष न जाने ।

अपने को जो समझे ज्ञानी, वह अभिमान की बड़ी निशानी ।
योग साधन से जो हो ज्ञान, उस से उपजे नहीं अभिमान ।
योगी दिव्य रूप जब देखे, कर्ता वह न निज को पेखे ।
विराट रूप उसे दिख पावे, जिस में लीन स्वयं हो जावे ।

दो० दर्शन रूप विराट का, योगी पावे जोय ।
अर्जुन सम शरणी भये, सद्गुरु की ही सोय ॥ १९१५क
मंगल ज्ञानी-मुग्ध जो, सुनी सुनाई बात ।
रट २ कर पागल भया, ऐसे नर बहु तात ॥ १९१५ख

जब से योग धर्म विसराया, मुग्ध-ज्ञान जग में बहु छाया ।
मुग्ध ज्ञान में जन हो चूर, करत फिरत है बहुत गरूर ।
खान पान में सब से आगे, सेव धर्म न संग उस लागे ।
ध्यान भजन में पूरा कोरा, कथनी में पर वह न थोरा ।
ऐसा मग नर न अपनावे, जिस से अधः पतन हो जावे ।
मंगल उसी दशा में पागा, मोह का भूत उसे था लागा ।
निज समान न किसी को माने, कटाक्ष सबन पर करना जाने ।
एक दिवस इक योगी देखा, ध्यान में बैठा उस को पेखा ।

दो० योगी को वह देख कर, बैठ गया उस पास ।
निज खोली जब आंख उस, कहा मंगल सह हास ॥ १९१६

"यह तुम करते क्या महाराज, आंख मूंद क्या करते काज ।
बकवत आसन था तुम लाया, किस ने तुम को यह सिखलाया" ।
कहा योगी "हम करते ध्यान, ईश्वर का इमि मिलता ज्ञान ।

ऋषि मुनियों का मार्ग योग, अनुसरन करें उसका हम लोग ।
इससे मिलता आनन्द महान, योग करें हम लो तुम जान" ।
सुन मंगल ने टोकी बात, कहा "साधो तुम को न ज्ञात ।
सुख के हेतु समाधि लगाना, यह तो केवल समय गंवाना ।
जो सुख विषयों में मिल पावे, वह सुख आंख मूंद न आवे ।
कृष्ण जाने था सुख का भेद, हम व कृष्ण में क्या हैं भेद ।
ध्यान से और ज्ञान न पावो, "अहं ब्रह्म" वाणी पै लावो ।

दो० "अहं ब्रह्म" कथनी कथे, सकल विषय हों संग ।
लोक वा परलोक मांझ, बहे तभी सुख गंग" ॥ १६१७

योगी ने जब यह सुन पाया, उस के मन में तब यह आया ।
भ्रांतमति यह रहे भ्रमाना, सार वेदान्त का इस न जाना ।
पूछे साधु "हे मम भाई, तुम ने क्या कुछ कीन कमाई" ।
कहन लगा "निष्क्रिय हम भाई, क्रिया-हीन क्यों करें कमाई" ।
साधु ने मन में अनुमाना, इस ने धर्म का सार न जाना ।
दुर्मति इसने है कहीं पायी, इस कारण दुर्गति को जाई ।
कहा साध "हे मीत प्यारे, उलटे हैं सब भाव तुम्हारे ।
सद्गति इससे न हो पावे, नरक चौरासी में जन जावे ।

दो० नरक चौरासी में पड़े, शुभ कर्मन से हीन ।
कर्म करो तुम धर्मयुत, बात मेरी को चीन" ॥ १६१८क
कहा मंगल ने साध से, "राखो ज्ञान संभाल ।
तुम से बढ़ कर ज्ञान है, पास मेरे इस काल ॥ १६१८ख

नरक चौरासी भी नहीं, दुखदायी मम मीत ।
विष्टा का भी कीट जो, करे निज तन से प्रीत" ॥ १६१८ग

साधु सुनी जब ऐसी बात, त्याग चला उसको बिन बात ।
एक दिवस की बात बतावें, मंगल रोग में पड़ा चिल्लावे ।
जनता सहानुभूति हित आई, पूछे "क्या कुछ लीन दवाई" ।
कहन लगा वह "औषध लीनी, लगी न इक भी वैद्य जो दीनी ।
मेरा अंत काल है आया, हाय न मुझ को किसी बचाया" ।
ऐसा कह कर रोने लागा, फूट फूट चिल्लाने लागा ।
लोग सभी तब भये हैरान, कहन लगे "कहां तेरा ज्ञान ।
अजर अमर तू निज को जाने, अन्त काल निज का क्यों माने ।
ब्रह्म से भिन्न जन दूसर नाहीं, मृत्यु से फिर क्यों घबराईं ।

दो० जनगण को तू देत था, ब्रह्म-ज्ञान हे मीत ।
धैर्य धरो अब लेश तुम, ला कर उस को चीत" । १६१६

कहे मंगल "यह मम बस नाहीं, भयंकर रूप मुझे दिख पाहीं ।
काटन को सब मुझ को आयें, वे देखो मुझ को ले जायें" ।
लोग कहें "को लेवन हारे, तू ब्रह्म व ब्रह्म वे सारे ।
ब्रह्म को ब्रह्म कहां ले जाये, यह तो समझ न हमरी आये" ।
खीज के मंगल बोला वाणी, "मेरी विपदा न तुम जानी ।
मेरे पाप कर्म बहु भारे, सन्मुख आवें मेरे सारे ।
मैंने सब को था भरमाया, धोका जग को बहु दे पाया ।
ज्ञान की बातें कर के भाई, कीने पाप कर्म दुखदाई ।

यम के लोक में होत हिसाब, कर्मों की जहां खुली किताब ।
हाथ बांध विनती कर पाऊँ, उपाय करो जिमि मैं बच पाऊं ।

दो० करो उपाय मित्रवर, विनती करूं हजार ।
ऐसी औषध दीजिये, प्राण बचें इक बार" ॥ १९२०

भक्तन ने जब यह सुन पाई, प्रभु जी ने जो कथा सुनाई ।
स्वीकार भयी सब को यह बात, कर्म बिना नहीं बनती बात ।
सद्गति शुभ कर्म से होवे, कथनी से जन कुछ न गोवे ।
कहा प्रभु जी भक्तन ताहीं, मंगल जब वह कष्ट में आहीं ।
लोगों ने तब वैद्य बुलाया, जिस ने उस का रोग दुराया ।
निरोग भया तब फिर रट लायी, "अहं ब्रह्म हूँ" सबन सुनाई ।
पापी पाप सभी कर पाता, फल से लेश न वह भय खाता ।
फल तत्काल न पाप का पावे, इस से पापी डर न खावे ।

दो० फल तत्काल न मिलत है, विधना के घर देर ।
पापी बात न जानता, वहां पर नहीं अन्धेर ॥ १९२१

जनता ने नृप को बतलाया, मंगल का सब हाल सुनाया ।
ज्ञानी बन वह ज्ञान सिखाता, पाप कर्म वह सब कर पाता ।
राज पुरुषों ने तब आ घेरा, उस के द्वार पै डाला डेरा ।
छान बीन जब घर की कीनी, तस्करी की बहु वस्तु चीनी ।
मदिरा आदिक मादक द्रव, मिल पाये उस पास वे सब ।
मंगल को उन बन्दी कीना, कारावास राजा ने दीना ।
मौखिक ज्ञान नहीं चल पावे, कर्म गति अपना रंग लावे ।

कहा प्रभु जी भक्तन ताहीं, ऐसे ज्ञानी बहु जग माहीं ।

दो० ऐसे ज्ञानी बहुत हैं, धर्म कर्म से हीन ।
साधन जानें लेश न, बनें सिद्ध प्रवीन ।। १६२२क

पूछा भक्तन "नाथ जी, बात बतावें एक ।
वाचक ज्ञानी जगत में, किस विध भये अनेक" ।। १६२२ख

यह संशय जब प्रभु सुन पाये, सब के सन्मुख तब मुस्काये ।
कहा प्रभु यह प्रश्न है ऐसा, कीन भुषुण्डी गरुड़ से जैसा ।
भक्तन ने तब विनय उचारी, नाथ बात यह कब की सारी ।
प्रभु बोले तब भक्तन ताहीं, त्रेता युग की वार्ता आहीं ।
प्रसंग भुषुण्डी इक कह पाये, जब गरुड थे मिलने आये ।
"कलियुग में दुःख होंय घनेरे, घर घर क्लेश मिलें बहुतेरे" ।
गरुड़ कहा तब 'हे ऋषि राज, कलियुग में क्यों दुःख का साज ।
इसका कारण भी वतलावें, भावी के जिमि ज्ञान को पावें ।

दो० कलियुग में क्यों कर भये, घर घर दुःख महान ।
निर्णित उत्तर दीजिये, मिले समग्र ज्ञान" ।। १६२३

सुन कर गरुड़ का संशय ऐसा, कहूं उत्तर उस दीना जैसा ।
"विष्णु वाहन ! मैं कथ पाऊं, कलियुग की मैं बात बताऊं ।
कलियुग में गुरु उपजें ऐसे, चहें झुंड के झुंड शिष जैसे ।
धन हरें पर दोष नहीं हरें, दोषी शिष तो दुःख में पड़ें ।
पात्र कुपात्र सभी स्वीकारें, बिन साधन ही ज्ञान उचारें ।
दूजी बात न वे कर जानें, ब्रह्म २ ही एक बखानें ।

भीतर माया बाहर ज्ञान, कलियुग की है यही पहचान ।
विपदा की वह होवे मूल, नर नारी सब पावें शूल ।

दो० माया वश ही जानिये, कलियुग के सब लोग ।
धन लोभी गुरु जन भयें, हरें न शिष्ष का शोक" ॥ १६२४

प्रभु जी ने इस विध बतलाई, मंगल की यह कथा सुनाई ।
पुनः प्रभु सब को कह पाये, कलियुग का तब कोप नशाये ।
योग साधन जब जन अपनावें, साधन योग के जब कर पावें ।
यम नियम को धर्म लें मान, कर्म में प्रकटे सारा ज्ञान ।
कथनी करनी में न हो भेद, मिटे तभी जगती का खेद ।
जग में सुख का होय संचार, सतयुग का तो योग आधार ।
सतयुग तभी जगत में आवे, मानव योग को जब अपनावे ।
हे भक्तो यह मन में धारो, योग को ही तुम सब सत्कारो ।

दो० योग धर्म सत्कार कर, शुभ करो तुम काम ।
पाप ताप सब दूर हों, भला करेंगे राम ॥ १६२५क

१२५. श्री प्रभु जी द्वारा दो शरीरों की रचना एक का परित्याग और दूसरे द्वारा महाप्रभु जी के पास प्रस्थान

इतनी बात बताय कर, ध्यान भये प्रभु लीन ।
कौन जाने क्या वार्ता, प्रभु जी प्रभु* से कीन ॥ १६२५ख

प्रभु के चित्त थी एक उमंग, सद्गुरु का कब करेंगे संग ।

* महाप्रभ

इतना काल जो दूर बिताया, सद्गुरु आज्ञा से कर पाया ।
विरह की वेदन अब उपजायी, वस्तु लगे न कोई सुहायी ।
सद्गुरु रूप रहत सन्मुख, जग से भये प्रभु खास विमुख ।
महाप्रभु के गुण प्रभु गाते, निशिदिन याद उन्हें कर पाते ।
कहें "नाथ मुझे पास बुलाओ, पूर्ववत अब फिर ले जाओ ।
तेरी ऊंची पर्वत धार, चढ़ूं नाथ मैं किस प्रकार ।
नद नदियां हैं बहु मग माहीं, शीतल जल नहीं पग ठहराहीं ।

दो० ऊँचे पर्वत हैं प्रभो, मग में विघ्न अनेक ।
पहुँच सकूं किमि पास तव, उपाय न सूझत एक ।। १९२६

वायु की अति शीतलतायी, मग की दूरी और चढ़ायी ।
स्मरण आये जब सारी बात, कांप मेरा तब उठता गात ।
स्वयं आन कर तुम ले जाओ, शीघ्र दास को पास बुलाओ ।
मग में प्रभो हिमानी चादर, उसे लांघ को पहुँचे तव दर ।
हिमानी नदियां तीव्र गामी, कौन लांघेगा उन को स्वामी ।
प्रभो बुलावो अपने पास, यह चित्त भया है अति उदास ।
तुम से दूर वास दुखदायी, सद्गुरु दास के बनो सहायी ।
पास बुलावो मुझ को नाथ, विनय करूं दो जोड़ के हाथ ।

दो० पास बुलावें आपने, राखें दूर न नाथ ।
सुमेरु पर अब ले चलें, उड़ा कर अपने साथ" ।। १९२७

प्रभु जी इस विध याद में रहते, स्मृति तीव्र सद्गुरु की वहते ।
चलते फिरते गुरु का ध्यान, करते राम गुरु गुण गान ।

तीव्र लिव गुरु चरणी जागी, बेतार तार अलौकिक लागी ।
गुरु सुमेरु पर थे रहते, राम अमृतसर सिमरन वहते ।
लौकिक बाट दूर की भाई, अलौकिक क्षण में आवाजाई[1] ।
इक दिन महाप्रभु चलि आये, राम को कुछ रहस्य बताये ।
गुरु संग पा कर भयो सन्तुष्टि, राम की इच्छा की भी पुष्टि ।
तब से राम ने नेम बनाया, निरोग किया जो जन चलि आया ।
शरणागत जन का सकल क्लेश, ले कर भोगें प्रभु निःशेष ।
काक भुषुण्डी की जो वाणी, कीनो सत्य प्रभु महादानी ।

दो० भविष्य वाणी जो काक की, भई होता माहिं ।
सत्य कीनि वह नाथ ने, कलियुग जनता ताहिं ॥ १९२८क
शरणागत के भाग्य को, निज तन पर प्रभु धार ।
सुखी करें संसार को, काक की यही पुकार ॥ १९२८ख

रोग बहु प्रभु निज घट लीने, शरणागत जन सुखी बहु कीने ।
अन्य के भाग्य लिखा जो रोग, निज तन पै प्रभु लेवें भोग ।
प्रभु की लीला प्रभु ही जानें, देव दनुज सब रहें भ्रमानें ।
मनुष्य प्रभु को किमि पहचाने जिसे जनावें वह ही जाने ।
बिन जाने जन यही बखाने, योगी के तन रोग हैं आनें[2] ।
एक रोग जब लेते भोग, अन्य रोगी का लेते रोग ।

१. अर्थात दोनों स्थान एक दूसरे से बहुत ही दूर थे परन्तु योग सिद्धि द्वारा एक क्षण में साक्षात हो जाता था ।

२. श्री प्रभु जी ने अनेकों भक्तों के रोग अपने तन पर ले लिये । शरणागत, कृपा-पात्र भक्त तो इस बात को जानते थे, कि अनाथनाथ श्री प्रभु जी अन्य जीवों के कष्टों को अपने तन पर ले कर भोग रहे हैं । परन्तु अन्य लोग तो यही कहते कि योगी को रोग कैसा ।

यह क्रम कई मास तक चाला, सुखी किये जन बहुत दयाला ।
सेवा का जिस अवसर पाया, उदय भाग्य उस का हो आया ।
अनन्य भक्त जो मुलख समान, उन के चित्त में था सब ज्ञान ।
लेश न मन में वे विस्माय, सेव करें प्रभु की चित्त लाय ।

दो० सेवा प्रभु की करत थे, लेश न उन चित्त खेद ।
परब्रह्म प्रभु राम का, प्राप्त किया उन भेद ॥ १९२९

एक दिवस प्रभु पास बुलाये, अनन्य भक्त जो उन लख पाये ।
भावी का कुछ भेद बताया, सब को उन का कार्य जताया ।
हम चलें हैं सद्गुरु पास, वहुर आयें जब काल हो खास ।
ध्यान भजन में तुम रह पाना, माया में नहीं चित्त लगाना ।
जग में विस्तृत होगा योग, तुम सब देना मिल सहयोग ।
योग की यही खास निशानी, प्रभु आश्रित हि रहे सन्मानी ।
माया का जो आश्रय ग्राहे, पथ से भटक वह योगी पाये ।
योग के मग में तब कठिनाई, माया की जब हो प्रभुताई ।

दो० माया के प्रभाव से, भ्रष्ट होत है योग ।
माया ठगनी जानिये, ठग लेती बहु लोग ॥ १९३०क
माया से सतर्क रह, सिमरो तुम भगवान ।
अभ्यास करो दृढ़ रह कर, शिथिल भये न ध्यान ॥ १९३०ख

दृढ़ ध्यान से योगी जानो, दृढ़ ज्ञान से योगी जानो ।
दृढ़ भक्ति से योगी जानो, दृढ़ सेवा - रत योगी मानो ।
दृढ़ नेम रत होता योगी, दृढ़ प्रेम - रत होता योगी ।

दृढ़ निश्चय रत होता योगी, दृढ़ संकल्प से होता योगी ।
योग से आत्मा का उद्धार, योग से हो आनन्द अपार ।
योग से देह स्वस्थ रह पाये, योग से जन प्रतिष्ठ कमाये ।
योग से बढ़े जगत में सुख, नशे लोक का योग से दुःख ।
योग परलोक सुधारे तात, स्मरण रहे यह मेरी बात ।

दो० सभी भक्त जन योग को, करें लगा कर चित्त ।
सीख मेरी यह सबन को, सिमरो प्रभु को नित्त ॥ १९३१

भक्तन को प्रभु दीन विदायी, सुभद्रा पास तभी चल आई ।
गुप्त भेद कुछ प्रभु बताया, जग जननी दृढ़ साहस पाया ।
सकल सम्बन्धी तब चलि आये, डूबे शोक में वे दिख पाये ।
कहा प्रभु उन सब के ताहीं, स्थिर नहीं है कुछ जग माहीं ।
आवागमन जगत का धर्मा, जायें निज के ही संग कर्मा ।
मैं अब तुम को त्याग के जाऊँ, अन्त बात बस यह कह पाऊँ ।
शोक करे न कोई मम ताहीं, सीख योग की अब अपनाईं ।
अजर अमर तुम देही जानो, गीता के तुम ज्ञान को मानो ।

दो० अजर अमर यह आत्मा, अविकारी भी मान ।
शोक करे फिर जन यदि, उसका काचा ज्ञान ॥ १९३२क
इतने वचन उचार कर, बन्द किये प्रभु नयन ।
देव आये तब उतर कर, प्रभु से बोले बयन ॥ १९३२ख

"हे नाथ हम हैं आभारी, राखो तुम मर्याद हमारी ।
नींव योग की तुम रख डारी, धर्म की सुधि भी तुम संभारी ।

हम जानें संकल्प तुम्हारा, सद्गुरु संग का कीन विचारा ।
हम बाधा न इस में देवें, धर्म की नौका को प्रभु खेवें ।
हम तो थे दिव लोक सिधाये, हमें जगत में फिर तुम लाये ।
योगिन के घट दीन स्थान, प्रभु रखना अब पूर्ण ध्यान ।
निज मग को न योगी त्यागें, आसुरी कर्मों में न पागें" ।
श्रवण करी जब प्रभु यह बात, कहन लगे सुन लो सब तात ।
सतयुग तक मैं इस जग माहीं, धर्म धुरी को पकड़ूं साईं ।

दो० सतयुग के आरम्भ तक, राखूंगा मैं ध्यान ।
योग धर्म की आड़ में, असुर न पावें मान ।। १९३३

जो योगी निज पथ को त्यागे, यम नियम में जो नहीं लागे ।
माया से जो करेगा प्यार, अभ्यास वैराग्य त्याग आधार ।
उस योगी की दुर्गत होवे, सुख का श्वास न लेश वह गोवे ।
देवन को प्रभु दे विश्वास, दशम द्वार चढ़ाया श्वास ।
दो देह प्रभु तभी बनाये, इक आकाशीं उड़ता जाये ।
दूजा था भूतल के ऊपर, सकल संबन्धिन से जो घिर कर ।
सब शिष गण भी खड़े थे पास, सब के मुख थे परम उदास ।
नभ में देव करें जयकार, उमड़ी जनता प्रभु के द्वार ।
नर नारी सब शोक ग्रस्त, दर्शन करते जोड़ के हस्त ।
जिस सुना प्रभु देह को त्यागा, वज्र पात सम उस को लागा ।
काम सकल जनता विसराये, प्रभु दर्शन हित चलि २ आये ।

दो० अमृतसर के लोग सब, सुन कर दुख की बात ।

किंकर्तव्य विमूढ़ हुये, भये शिथिल थे गात ॥ १९३४क

बसंत पंचमी का दिवस, सन तीस और आठ[1] ।

प्रभु जब लीला यह रची, नवोन थी आयु साठ[2] ॥ १९३४ख

सूचना सकल नगर ने पायी, जनता चलत निरन्तर आयी ।
जिस २ सुना वही चलि आया, प्रभु आकर्षण सब को लाया ।
मानव क्या देव भी आये, रूप धार सब संग मिल पाये ।
प्रभु गुण गान करें सब लोग, कहें "वे लाये वन से योग ।
योग की गंगा का प्रवाह, कौन प्रवाहित आन अथाह ।
जो भी इन की शरणी आया, शुद्ध बुद्ध वह जन हो पाया ।
मन के दोष व तन के रोग, दूर भये जिन कीना योग ।
स्मरण करो प्रभु की प्रभुताई, वृद्धा थी जिन एक बचाई ।
दर्शन शैशव में दे पाया, मृत्यु लोक से उसे बचाया ।

दो० शैशव काल में थे प्रभु, स्मरण किया उस नार ।
लाये प्रभु को पास उस, गोदी में प्रभु धार ॥ १९३५क

दर्शन मात्र से तभी, लौटे उस के प्राण ।
को जाने क्या शक्ति थी, प्रभु में छिपी महान" ॥ १९३५ख

कहें अन्य जन 'सुन लो भाई, प्रभु की प्रकट जगत प्रभुताई ।
ग्राम सवाईं हम हो आये, सुन्दर गुफा जहां मन भाये ।
उसी गुफा में प्रभु तप कीना, और अचंभा जनता चीना ।
बन्द गुफा वा रात्रि काल, निकले सूक्ष्म रूप वे धार ।

१. सन 1938 २. नवोन साठ=51 वर्ष

गगन मण्डल में उड़ के भाई, चले गये वे जग सुखदायी" ।
बोला एक "हम जानें बात, इन से सांप खेलें दिन रात" ।
बोला अन्य "जानूं मैं भाई, अन्धी कन्या दृष्टी पायी" ।
कहा और ने सुन लो मीत, जिन लाई इन चरणी प्रीत ।
सिद्ध पुरुष वही बन पाये, ऐसे सुनने में बहु आये ।

दो० बहुत पुरुष हम ने सुने, सिद्ध बने विख्यात ।
प्रभु चरणों से प्रीत कर, जन्म सुधारा तात ॥ १९३६क
कहा एक ने हम सुना, हरानन्द का नाम ।
सिद्धों में प्रसिद्ध जो, बसत हिमालय धाम ॥ १९३६ख
कहा एक ने "मैं कहूं, राम रत्ती की बात ।
कुलटा को देवी किया, यह जगत विख्यात" ॥ १९३६ग

एक बोला "हम यह बतलावें, बात दूर को क्यों कथ पावें ।
मुलख राज को देखो मीत, प्रभु चरणों में जब से प्रीत ।
वर्षों से है हालत ऐसी, देह की भी सुध हो न जैसी" ।
एक कहा "ये ईश्वर प्यारे, इन की चरणी लगे जो सारे ।
सब धुल पाये उनके पाप, इन के भक्त को लगत न शाप" ।
कहे एक "सच बात है भाई, मैं जानूं इन की प्रभुताई ।
गोपाला नन्द था इन का प्यारा, उसने गुरु था प्रथम जो धारा ।
उसने शाप बहुत दे पाये, प्रभु ने सकल वे शाप दुराये ।

दो० गुरु था क्रोधी बहुत वह, दीने थे जिस शाप ।
शरण प्रभु की आ गया, प्रभु दुराये आप" ॥ १९३७क

एक सज्जन ने तब कहा, "सुन मेरी भी बात ।
राम लाल के रूप में, थे ईश्वर साक्षात ॥ १९३७ख
हाथी गेट जो योगी आया, देख था हम ने उस को पाया ।
सुन्न समाधी बहु दिन लायी, प्रभु जी ने वह जा खुलवायी ।
चरणों में प्रभु के गिर पाया, प्रभु तब उस को गले लगाया ।
शिक्षा दे कर दीन विदायी, जनता थी आश्चर्य में आई" ।
एक पुरुष तब आगे आया, उस ने निज अनुभव बतलाया ।
"इनको मैं तो ईश्वर मानूं, जीवन दाता अपना जानूं ।
इन मेरे हैं प्राण बचाये, त्याग वैद्य डाक्टर थे पाये ।
भयंकर रोग से मुझे छुड़ाया, मानूं यम पुर से लौटाया ।
दो० जीवन देते न यदि, आज न होते प्राण ।
किस मुख से मैं कह सकूं, प्रभु की दया महान" ॥ १९३८क
एक पुरुष ने तब कहा, "तप बल इन का खास ।
घोर वनों में ये रहे, सिद्ध जनों के पास" ॥ १९३८ख
एक पुरुष तब फिर कह पाया, "शिव रूप था इन गुरु पाया ।
सुमेरु पर्वत जिन का वासा, आधा वर्ष चढ़ावें श्वासा ।
सेवा उन की प्रभु कमाई, उन से पूर्ण शक्ति पायी" ।
इक सज्जन ने और सुनाया, "अनेकों को प्रभु सिद्ध बनाया ।
नर्बदा तीर प्रभु रह पाये, योगी सिद्ध अनेक बनाये ।
मन्त्र योग भी प्रभु सिखाया, प्रभु के ज्ञान का अन्त न आया" ।
कहा एक ने "सुन लो बात, बात सकल यह सत्य है तात ।

नाग देश में प्रभु पधारे, नागों ने बहु मन्त्र मारे ।
प्रभु पर असर करें न लेश, प्रभु जानें बहु मन्त्र विशेष ।
दो० सब मन्त्र प्रभु जानते, भय न उन को लेश ।
मन्त्र प्रभु पै करत जो, होत दुःखी विशेष" ॥ १९३९
कहा एक ने "सच यह बात, प्रभु पै मन्त्र चलें नहीं तात ।
राजा रणसिंह मन्त्र चलाया, प्रभाव प्रभु पै न हो पाया ।
शरण तभी चल के वह आया, शिष्य प्रभु का था बन पाया" ।
कहा एक ने "मित्र प्यारे, उपकार किये सब पै इन भारे ।
उपदेशामृत से करत कृतार्थ, रचे आश्रम इन बहु धमार्थ" ।
इस विध अनेक लोग जो आये, प्रभु के गुण उन बहु विध गाये ।
मेघ शोक के सब मन छाये, स्तुति वचन भी सब कह पाये ।
अति सब का था चित्त भराया, दुःख सबन के मन पै छाया ।

१२६. आकाश मार्ग द्वारा महाप्रस्थान

दो० सब के मन में दुःख था, बहुर न मिले सुयोग ।
जग कर्ता जग उतरे, धन्य किये जिन लोग ॥ १९४०
शोक सबन के मन था छाया, जिस सुना वही चलि के आया ।
प्रभु की प्रीत सबन मन ऐसी, सकें न वर्णन कर जो जैसी ।
हे मन अब तुम चल कर देखो, मार्ग गगन में प्रभु उल्लेखो ।
दूसर देह जो प्रभु बनाया, शक्ति योग से वह रच पाया ।
देह वही ऋषिकेष पधारा, हिमगिरि की तब ओर सिधारा ।
भक्त जनों को दर्शन दीने, कईयों के प्रभु दुःख हर लीने ।

कईयों को प्रभु दीना ज्ञान, कई जनों से लीना मान ।
कीने भक्त अनेक कृतार्थ, सब का सिद्ध भया परमार्थ ।

दो० भक्तन के परमार्थ को, सिद्ध कीन भगवान ।
गगन मार्ग को ग्रहण कर, चले जिमि चढ़ यान ॥ १६४१

भक्त एक तब मग में आया, नदी किनारे आसन लाया ।
नारायण दास था उसका नाम, केवल योग साधन था काम ।
ध्यान में उस ने सब कुछ देखा, नयन उघाड़े प्रभु को पेखा ।
गगन मण्डल में प्रभु थे प्यारे, चांद आदि जिमि होंय सितारे ।
जटा-जूट का सुन्दर वेश, त्याग के वस्ती चले परेश ।
नारायण ने कीन प्रणाम, वचन कहे तब प्रभु अभिराम ।
हे भक्त मत अचरज मानो, हमारा अब तुम गमन पहचानो ।
वह देह वहां त्याग के आए, धाम गुरु के हैं चल पाये ।

दो० धाम गुरु के हम चले, धार के देह नवीन ।
लौटेंगे हम भक्त वर, जब गुरु कहें प्रवीन ॥ १६४२

साधन रत तुम काल बिताया, इस कारण यह दर्शन पाया ।
हम को तो वह भक्त प्यारा, योग करे जग से रह न्यारा ।
तुम को योग की है जिज्ञासा, श्रवण करो हो शांत पिपासा ।
खेचरी का मैं ज्ञान कराऊँ, सिद्धि योग की सिद्ध कराऊँ ।
जब तक ही जग में रह पाओ, केवल योग में चित्त लगाओ ।
कर्म न योग से दूसरा भारी, निश्चित मति है भक्त हमारी ।
योग करे नर मुक्ति पावे, बहुर जन्म में वह न आवे ।

यावज्जीवन योग कमाना, चंचल मन को वश में लाना ।
दो० चंचल मन वश लाय कर, ईश्वर का धर ध्यान ।
प्राप्त करे तब योगीजन, अति जो गूढ़ ज्ञान ॥ १९४३
जीवन के क्षण बहुत न भाई, इक इक क्षण में करो कमाई ।
श्वास श्वास जो आता जाता, मृत्यु के वह निकट है लाता ।
योगी श्वासों को ले साध, श्वास-श्वास से ईश आराध ।
काल ग्रस्त न वह हो पावे, देह त्याग मुक्त हो जावे ।
इस विध प्रभु जी ने कथ पाया, खेचरी का तब भेद बताया ।
प्रभु नारायण इक टक देखे, अपना भाग्योदय वह पेखे ।
प्रभु जी ने जब लीन विदायी, निज नारायण सुध विसरायी ।
पुनः स्वस्थ वह जब हो पाया, उठ सीधा प्रभु धाम को धाया ।
आय वहां दुःखद दृश्य देखा, शोक ग्रस्त जनता को पेखा ।
दो० शोक ग्रस्त जन देख कर, और सिमर उपदेश ।
अचंभे में वह था पड़ा, लीला परम विशेष ॥ १९४४
प्रभु को जाते उस था देखा, और यहां कुछ और ही पेखा ।
प्रभु को मनहिं माथ झुकाया, माया का किस पार है पाया ।
शोक ग्रस्त सकल नर नारी, शव यात्रा की भयी तैयारी ।
सुन्दर एक विमान बनाया, प्रभु का देह उस मांझ सजाया ।
इष्ट जनों ने उसे उठाया, मुलख राज भी कंधा लाया ।
नर नारिन का बहु समुदाय, संग चला ध्वनि राम लगाय ।
राम ध्वनि जग में विस्तारी, जय जय राम कहें नर नारी ।

प्रकटे राम कलियुग अवतारी, अद्भुत लीला उन विस्तारी ।

दो० कलियुग में देह धार कर, सुमेरु में कर योग ।
आश्रम योग बनाय कर, तार अनेकों लोग ॥ १९४५क
दो देह निर्माण कर, सुधासर त्याग के एक ।
दूसर से प्रभु चल दिये, सद्गुरु की ले टेक ॥ १९४५ख

जिस देह को प्रभु जी त्यागा, संस्कार उसी का होने लागा ।
लोगों ने न रहस्य को जाना, निधन प्रभु का सब ने माना ।
अमृतसर का जन समुदाया, दूर दूर से चल कर आया ।
सब के मन में थी अभिलाषा, अन्तिम दर्शन की इक आशा ।
अग्निसात जनता ने कीना, प्राकृत देह जो प्रभु तज दीना ।
नगर-नगर में फैली बात, योगेश्वर राम ने त्यागा गात ।
जिस किसी ने यह सुन पाया, उस ने ही बहु शोक मनाया ।
प्रभु के गुण का करते गान, "जग को दीना योग का दान ।

दो० जगत विसारा योग था, बहुत समय से मीत ।
दृढ़ दीनी प्रभु आन कर, योग धर्म की प्रीत ॥ १९४६

कलियुग में उन योग कराया, चंचल मन वश में हो पाया ।
सन्मार्ग पर शिष्य लगाये, धर्म कर्म जिन कर दिखलाये ।
जो जन चल कर चरणी आया, मोह ममता से उसे छुड़ाया" ।
कथन में लाते सब यह बात, "वे थे ईश्वर ही साक्षात ।
छोड़ गये जग में निज नाम, स्मरण करें सब उन के काम ।
उन के दर्शन भी सुखकारी, नित्य करें उठ कर नर नारी ।

उन के सद् उपदेश महान, वेद वचन से न्यून न जान ।
युग युगान्तर जब चलि जायें, ऐसे पुरुष तब जग में आयें ।
दो० राम राम सम राम ही, और न राम समान ।
त्रेता प्रकटे राम थे, कलि में भी भगवान ॥ १६४७क
द्वापर में घन श्याम ने, लीना था अवतार ।
राम लाल कलि में भये, योग शक्ति घट धार" ॥ १६४७ख
सकल जगत प्रभु कीर्ति गाता, सिमर प्रभु को इस मिस पाता ।
देव लोक से देव निहारें, प्रभु की महिमा को सत्कारें ।
देव प्रभु को जाते देखें, सुमेरु पर फिर प्रभु को पेखें ।
ऋषि मुनियों ने ध्यान में देखा, पुनः राम का आना पेखा ।
मन उन के प्रसन्नता भारी, राखें भीतर जिसे संभारी ।
वन के जीव जन्तु भी सारे, मन आह्लादित थे बहु भारे ।
अलौकिक हर्ष सबन मन छाया, भयी प्रभु की सब पर दाया ।
वन के वृक्ष व झरने सारे, आज आह्लादित थे बहु भारे ।
जिससे जड़ चेतन जग जाया, आज वही फिर वन में आया ।
दो० वस्तिन को कर शून्य जब, लौटे प्रभु वन मांहि ।
निरख प्रभु का रूप तब, जड़ चेतन हर्षाहिं ॥ १६४८

१२७. श्री महाप्रभु जी के पास पहुंचना

राम प्रभु जब वन में आये, जड़ चेतन सब थे हर्षाये ।
सुमेरु पहुँचे अन्तर्यामी, जीवन दाता सब के स्वामी ।
चल कर गुरु के पास वे आये, आ कर चरणों में लिपटाये ।

महाप्रभु समाधि आसीना, दण्डवत राम ने आ कर कीना ।
आज राम मन हर्ष विशेष, पीड़ विरह की रही न लेश ।
महा प्रभु तब नैन उघारे, "राम आये हो" कह सत्कारे ।
राम के मुख पै वचन न आवे, गुरु के चरण ही देखत जावे ।
उठे समाधि से भगवान, सब ऋषियों ने लीना जान ।
प्रभु दर्शन हित कीन पयान, भये एकत्रित उसी स्थान ।

दो० एकत्रित सब ऋषिजन भये, महाप्रभु के पास ।
निरख राम को भी वहां, मन में हर्षित खास ॥ १९४९

सत्कार राम का सब ने कीना, राम से भी बहु मान को लीना ।
आज समागम भया विशेष, संशय नहीं था इस में लेश ।
जगदाधार राम थे आये, देव लोक से देव सिधाये ।
देवन चित्त जिज्ञास विशेष, लोक में काम अभी बहु शेष ।
अभी तो असुर ही थे प्रधान, देवों का न कुछ भी मान ।
इसी बात की उन्हें प्रतीख, महा प्रभु क्या देते सीख ।
जो कुछ महाप्रभु कह पायें, राम वही आचरण में लायें ।
राम समर्थ परम भगवान, गुरु के सन्मुख दीन महान ।

दो० गुरु के सन्मुख दीनता, हो कर सर्व समर्थ ।
जो समझे इस भेद को, गहे गूढ़ वह अर्थ ॥ १९५०

ऋषि मण्डल जब सब जुट पाया, महाप्रभु ने तब फरमाया ।
"राम लाल ने देह को धार, कीना योग धर्म प्रचार ।
बस्तिन में कुछ वर्ष गुजारे, जन गृहस्थी कई इस तारे ।

हम से पा कर अब आदेश, आया है फिर इस प्रदेश ।
तपस्या इस बहुत है कीनी, सिद्धि उच्च योग पा लीनी ।
अब यह उच्चतर सिद्धि पावे, कर्म अनूपम कर दिखलावे ।
दीर्घ काल ही तुम अब जानो, इसका यहां पर रहना मानो ।
हमरे संग हो इस का वासा, जग से पाप का इमि हो नासा ।
दो० पाप जगत से नष्ट हों, राम करे वह काम ।
अद्भुत शक्ति लेय कर, प्रकट भया जग राम" ॥ १९५१

१२८. देह निर्माण योग

एक तपी तब ही कह पाया, "नाथ मुझे है ऐसा भाया ।
एक देह इस बस्तिन त्यागा, दूजे से तव चरणी लागा ।
क्या सच्चा यह अनुभव मेरा, मेरे भ्रम का करें निबेरा" ।
तपी का सुन वचन निर्भीक, महाप्रभु कहा "बात यह ठीक ।
राम मांहि बहु सिद्धि जानो, कलियुग का अवतार यह मानो ।
ऋषि भुशुण्डी जो लिख पाया, राम सत्य वह कर दिखलाया[1] ।
जग में प्राकृत देह त्यागा, आय मेरु मम चरणी लागा" ।
सुन कर महाप्रभु की वाणी, तपी बोला "हे जग कल्याणी ।
उस योग का दीजिये ज्ञान, जिस से देह का हो निर्माण ।
दो० किस विध देह निर्माण हों, योग से हमरे नाथ ।

१. देखें काक भुशुण्डी कृत भविष्यवाणी "इकावन वर्ष की आयु में भौतिक शरीर त्याग कर द्वितीय (योग) तन धारण कर मेरूगिरि के स्वर्ण शिखर में रह कर इससे भी अधिक उन्नत स्थिति प्राप्त कर फिर दूसरा शरीर धारण कर कल्पांत तक यह इसी स्थिति में विराजेंगे" ।

उस विद्या का ज्ञान जो, दे कर करें सनाथ" ॥ १९५२

सुन कर तपी की यह जिज्ञासा, कहा प्रभु "सुन सह विश्वासा ।
राम लाल ही तुम्हें बतावें, इस विद्या का रहस्य सुनावें" ।
राम लाल से कही तब बात, निवृत्ति शंका की कर तात ।
राम लाल सुन कर गुरु वाणी, वाणी गुरु की उस सन्मानी ।
कीना गुरु को तब प्रणाम, बात कथी मुख से अभिराम ।
"पूज्य तपी मैं बहुत न जानूं, गुरु सन्मुख क्या ज्ञान बखानूं ।
गुरु वचनों का कर के मान, कह दूं जो कुछ मुझ को ज्ञान ।
देह निर्माण की पूछी बात, योग से होते निर्मित गात ।

दो० योग से होते निर्मित, तात अनेकों गात ।
देही तो हो एक ही, देह बनें बहु तात" ॥ १९५३

सुन कर राम लाल की बात, कहा तपी ने तब "हे तात ।
इतनी बात तो मैं भी जानूं, योग से देह बनें मैं मानूं[1] ।
संयम[2] योगी जब कर पावे, उस में ऐसा समरथ आवे ।
प्रकृति का सब जान के भेद, देह रचता वह बिन ही खेद ।
परन्तु मुझ को यह बतलावें, सब देह कर्म किमि कर पावें ।
देही[3] एक किमि बट पावे, बहुत देहों में किमि समावे ।
उस का प्रश्न सुना राम लाल, दीना उत्तर उसे तत्काल ।

१. "योगीश्वर : शरीराणि करोति विकरोति च" ॥ अर्थात योगीश्वर शरीरों को रचता है और पुनः उन शरीरों का संहरण कर लेता है ।
२. संयम—ध्यान, समाधि की उच्चतम अवस्था ।
३. देही—देह का स्वामी, जीवात्मा ।

"हे तपस्वी मैं बतलाऊँ, चित्त निर्माण की बात सुनाऊँ ।
योगी करता चित्त निर्माण, निर्मित देह में पावे स्थान ।

दो० निर्मित देह में चित बसे, जो इमि निर्मित होय ।
सिद्ध योगी ही कर सके, गुरु कृपा पा सोय[1] ॥ १९५४

निर्माण चित्त का देह में वास, देह लेवें सब ही तब श्वास ।
इस विध योगी रूप बनावे, अनेक रूप जगत लख पावे ।
बहु रूप जिमि कृष्ण बनाये, गोपों संग जो रास रचाये ।
अथवा राज्य सभा जब जावे, पकड़ दुर्योधन की न आवे ।
सिद्ध योगी की शक्ति महान, प्रकृति उस की दासी जान[2] ।
देह अनेकों चित्त अनेक, देही बसे इक देह में एक ।
उस देह जो चित्त बस पावे, वह नायक सब का कहलावे ।
वह "प्रयोजक" चित्त कहलाता, वश में सब को है कर पाता ।

दो० सब चित्तों को वश रखत, चित्त प्रयोजक जान ।
सब देहों के कर्म इमि, वश योगी के मान[3]" ॥ १९५५

---

१. देखें योग दर्शन IV 4.
निर्माणचित्तान्य स्मितामात्रात् । अर्थात अस्मितामात्र से निर्माण चित्त होते हैं ।

२. देखें आत्म पुराण अध्याय 9 श्लोक 722
अप्रमत्तः पुमान योगी जगदुत्पति नाशने ।
समर्थोभवति श्रीमान् ईश्वरोऽत्र यथैव हि ॥
अर्थात्—जैसे जगत की उत्पति में और विनाश में श्रीमान ईश्वर समर्थ है वैसे ही प्रमाद से रहित योगी पुरुष भी जगत की उत्पति विनाश में समर्थ होता है ।

३. देखें योग दर्शन IV. 5. 'प्रवृति भेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम्'
अर्थात्—योगी का पहला जो एक चित्त है वह उन सर्व चित्तों का नायक (प्रयोजक) होने से योगी के अभिप्राय अनुसार ही उन चित्तों की प्रवृत्तियां होती हैं ।

सुन कर प्रभु जी की यह बात, तपी बोला तब "हे प्रिय तात ।
तुम योगी हो सिद्ध महान, तुम को योग का पूर्ण ज्ञान ।
एक बात अब और बताओ, मेरी भ्रांति दूर हटाओ ।
योगी के जो देह अनेक, कर्म करें क्या सब वे एक ।
अथवा भिन्न कर्म कर पावें, मुझ को इस का ज्ञान करावें" ।
प्रभु जी सुन कर उस की वाणी, कहन लगे "हे तपी सन्मानी ।
आप का प्रश्न बहुत अनुकूल, मैं हूँ गुरु चरणों की धूल ।
अनुभव गुरु कृपा से पाया, जिस ने मुझ को यही लखाया ।
हर इक देह का निश्चित काम, कर्म करें भिन्न देह तमाम ।
निश्चित कर्म का जब अवसान, त्याग करे निज देह वह प्राण ।

दो० कर्म करे प्रति देह ही, अपना २ तांत ।
कर पूर्ण उस कर्म को, शांत होत वह गात ॥ १९५६क
शांत होय इक गात ही, दूजा रहत सचेत ।
गुरु योगी की हो दया, सिद्धि मिले जन हेत" ॥ १९५६ख

१२९. योग तथा कर्म विवेचन

सुन कर प्रभु की रहस्यमय वाणी, तपी प्रमाणित वह सब जानी ।
जिज्ञास पुनः उस ने जतलायी, उस के मन में जो थी आयी ।
कहा योगी "मैं किमि बखानूं, तेरी उपमा किमि मुख आनूं ।
तुम ने खोल के भेद बताया, अब तक जो न था सुन पाया ।
योग की शक्ति सुनी महान, आज मिला मुझ को बहु ज्ञान ।
योगी ईश्वर सम मम तात, नवीन रचे जब चाहे गात ।

त्याग करे जिस देह को चाहे, ऐसा अद्भुत समरथ पाये ।
एक भानु के बिम्ब अनेक, रचे योगी तिमि देह अनेक ।
दो० रच के देह अनेक जो, पुनः करत संहार ।
करता योगी सूर्य जिमि, करत किरण प्रसार ॥ १९५७
इक बात मुझे और बताओ, जो पूछूं मुझ को समझाओ ।
देह अनेकों जो बन जावें, योगी का क्या हित कर पावें ।
आत्मिक लाभ क्या मिल पावे, किस विध मोक्ष निकट चलि आवे ।
योगी तो कैवल्य को माने, सिद्धियों को वह गौन ही जाने" ।
सुन कर उस का तर्क यह खास, कथन किया प्रभु निज विश्वास ।
"श्रीमान मैं ज्ञान जो पाया, अनुभव सद्गुरु सब करवाया ।
उसी बात को अब बतलाऊं, अन्य वचन मुख पै न लाऊं ।
सिद्धि योग की हो उपकारी, उस योगी को जो सुविचारी ।
सत्य बात तुम है कथ पायी, कैवल्य हेत हो योग कमायी ।
दो० कैवल्य हेत जो योग हो, वही योग प्रवाण ।
भ्रष्ट भये वह साध जन, जिस को न यह ज्ञान ॥ १९५८
सिद्धि कैवल्य में हो सहायी, सद्गुरु बात यही समझायी ।
निर्मित देह जब जन कर पावे, सञ्चित का बहु क्षय हो जावे" ।
सुन कर प्रभु जी की यह बात, कहा तपी ने तब हे तात ।
कर्मक्षय का कौन बखान, खोल के कथन करो वह ज्ञान ।
कर्म कौन जो जन्म में लावें, सञ्चित कौन कर्म कहलावें ।
कौन कर्म करे कोई योगी[1], फल का होय न जिस विध भोगी ।

१. अथवा—ऐसा कर्म करे क्या योगी

सुन कर प्रभु जी उस की वाणी, कहन लगे "तुम खुद बहु ज्ञानी ।
तीन कर्म तुम ने कथ पाये, प्रारब्ध वा सञ्चित जो बतलाये ।
क्रियमान कर्म भी वर्णित कीना, सुन्दर प्रश्न है यह बहु चीना ।

दो० प्रश्न आप का श्रवण कर, दृढ़ भया यह भास ।
योग बिना न मोक्ष हो, यह सत्य विश्वास ॥ १९५९

प्रारब्ध कर्म ही जग में लावें, सुख दुःख उन से ही जन पावें ।
सञ्चित कर्म असीम भण्डार, क्रियमान करत जिसका विस्तार ।
तीनों कर्म योग से नाटें, जन्म मरण को योगी पाटें ।
योगी कर बहु देह निर्माण, भोगत सञ्चित शीघ्र सुजान ।
कर्मों का भण्डार लखाये, योगी भोग के क्षय कर पाये ।
एक बात मैं सत्य बखानूं, योगी को निर्मोही मानूं ।
योगी कर्म करे सब ऐसे, संस्कार पड़ें न मन पै जैसे ।
नूतन कर्म नहीं बन पावें, पूर्व के सब क्षय हो जावें ।

दो० पूर्व के जो कर्म हों, क्षय वे सब हो जायें ।
योगी जन के कर्म तो, फल न लेश उपजायें ॥ १९६०

पुण्य पाप कर पावें लोग, छुड़ावे पुण्य पाप से योग[1] ।
पुण्य पाप के जो संस्कार, वासना के वे बनें आधार[2] ।

१. देखें योग दर्शन "कर्माशुल्काकृष्णं योगिन स्त्रिविध मितरेषाम्" IV.7
अर्थात्—योगी का कर्म अशुक्ल अकृष्ण होता है, दूसरे सकामी पुरुषों का तीन प्रकार का—पाप, पुण्य और पापपुण्याति मिश्रित होता है।

२. योग दर्शन IV. 8

वासना वन्धन का हो हेतु, राहु मानो वा इस को केतु ।
वासना से जब हो निर्मुक्त, जन्म मरण से होवें मुक्त ।
सुन कर प्रभु जी का उपदेश, भयी तपी मन जिज्ञास विशेष ।
कहा उसने "हे योगि महान, वासना का तुम कीन बखान ।
वासना का किमि होवे अन्त, अनादि कथें इसे सब सन्त[1] ।
जिस का आदि नहीं है भाई, उस का अन्त किमि हो पाई" ।
श्रवण किया जब उस का सवाल, दीना उत्तर दीन दयाल ।
"सन्देह नहीं है इस में तात, वासना अनादि सच यह बात ।

दो० अनादि काल से आ रही, जीव संग यह वास ।
फिर भी इसका अंत हो, मेरा यह विश्वास ॥ १९६१

अनश्वर न तुम इसको मानो, पुरुष समान न अमर पहचानो ।
इसका अन्त वही कर पाये, इसके जो आधार हटाये ।
चार आधार इस के जानो, हेतु फल आश्रय पहचानो ।
चौथा आलंबन है आधार, श्रवण करो इन सब का सार[2] ।
धर्म अधर्म जो कर्म कहाते, वासना के 'हेतु' बन पाते ।
इन का क्रम ऐसे पहचानो, धर्म अधर्म सुख दुःख मानो ।

---

१. योग दर्शन IV. 10. तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्
अर्थात्—वासनायें अनादि हैं, आशिष (जीवन इच्छा) के नित्यत्व के कारण ॥

२. योग दर्शन IV. II. हे तुफलाश्रयालम्वनैः संगृहीत त्वादेषामभावे तदभावः ॥
अर्थात्—हेतु, फल, आश्रय और आलंबन से वासनाओं के संगृहीत होने से इनके (हेतु) फल, आश्रय और आलंबन अभाव में वासना का भी अभाव होता है।

१. हेतु—धर्म, अधर्म
२. फल—जाति, आयु, भोग।
३. आश्रय—वासनिक मन
४. आलंबन—रूप, रस आदि पदार्थ।

सुख से राग होत है भाई, दुःख से द्वेष उदय हो जाई ।
राग द्वेष से फिर पहचानो, शुभाशुभ कर्म होय मानो ।
शुभाशुभ जो कर्म होंय, धर्माधर्म के हेत ।
धर्माधर्म से जान लो, सुख दुःख ही जन लेत ॥ १९६२क
सुख दुःख से फिर होत है, राग द्वेष मम मीत ।
राग द्वेष से आ बसे, धर्माधर्म जन चीत[1] ॥ १९६२ख
धर्माधर्म वा राग द्वेषा, सुख दुःख का है जो सब लेखा ।
यह संसार का चक्र जानो, योग बिना नहीं मुक्ति मानो ।
वासना का यह इक आधार, संसार चले सब इस प्रकार ।
अब मैं 'फल'[2] का करूं बखान, जाति आयु भोग वे जान ।
कर्म का फल सदैव पहचान, निष्फल कर्म जायें न मान ।
वासना[3] का अब 'आश्रय' जानो, वासनिक मन ही वह पहचानो ।
रूप रसादि पदार्थ जोय, वासना के 'आलंबन'[4] सोय ।
वासना का हो तभी अभाव, हेतु आदि का मिटे जो भाव ।
दो० हेतु आदि जो हैं कथे, वासना के आधार ।
योग साधन कर के नशें, मिले कैवल्य द्वार" ॥ १९६३

१. धर्म से सुख और अधर्म से दुःख होता है। फिर उस सुख से राग और दुख से द्वेष होते हैं। फिर राग द्वेष से शुभ अशुभ कर्मों द्वारा धर्म अधर्म होते हैं। फिर उस धर्मा धर्म से सुख दुःख होते हैं। पुनः उस सुख दुःख से राग द्वेष होते हैं। फिर राग द्वेष से धर्मा धर्म/धर्माधर्म से सुख दुःख, सुख दुख से राग द्वेष, राग देष से धर्माधर्म। इस प्रकार धर्म अधर्म सुख दुख राग देष, इन षट् अरों वाला संसार चक्र निरन्तर चल रहा है।

२. धर्माधर्म के परिणाम जाति, आयु, भोग ही "फल" कहलाते हैं।

३. साधिकार मन वासना का आश्रय है।

४. शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदि पदार्थ वासना का आलंबन है!

श्रवण किया प्रभु का उपदेश, भया तपी मन हर्ष विशेष ।
महा प्रभु से कीन निवेदन, "शिष्य पढ़े तव सभी हैं वेदन ।
इसका ज्ञान अथाह मैं मानूं, अनुभव इस का पूर्ण जानूं ।
ऐसा ज्ञान विरला जन पावे, अनुभव से जो चित्त में आवे ।
हे शिव शंकर, भोले नाथ, आज भया हूँ परम सनाथ ।
तव शिष्य जो प्रसंग सुनाया, मेरे मन का भरम मिटाया ।
योग से वासना का हो अन्त, यह तो स्पष्ट भया भगवन्त ।
ऐसे योग का दीजो ज्ञान, जिस से मिले मोक्ष का दान" ।
सुन कर बात तपी की सारी, महा प्रभु तब गिरा उच्चारी ।
हे तपीश्वर सत्य तुम जाना, राम लाल को ठीक पहचाना ।
इस का चित्त निर्मल सम्पूर्ण, "विशेष-दर्शी" मैं जाना पूर्ण[1] ।

१३०. कैवल्य का साधन

दो० राम लाल को तब कहा, महा प्रभु सप्रीत ।
"वह साधन अब तुम कहो, हो कैवल्य जिस रीत" ॥ १९६४

राम लाल ने कर प्रणाम, कहा प्रभु से "हे सुख धाम ।
अनुशासन गुरु चरण का मान, कह दूं मुझ को जैसा ज्ञान ।
हे तपी मैं पुनः बखानूं, निज को न कुछ ज्ञानी मानूं ।
गुरु चरणों का ध्यान लगाऊँ, जो कुछ सीख वहां से पाऊँ ।
उसका ही मैं करूं वखान, श्रवण करो देकर कुछ ध्यान ।

१. जो चित्त और आत्मा के भेद (विशेष) का साक्षात्कार करने वाला (दर्शी) है वह विशेष दर्शी कहलाता है। योग दर्शन VI. 25

कैवल्य[1] तभी जन को हो पाये, स्वरूप-प्रतिष्ठा जब हो जाये ।
समाधि में जन होवे लीन, विवेक ख्याति में प्रवीन ।
धर्म मेघ वह होवे समाध, सत्य का पूर्ण ज्ञान अगाध ।

दो० धर्म मेघ समाधि में, सत्य का पूर्ण ज्ञान ।
संस्कारों का दहन हो, सब विध हो निर्वाण[2] ॥ १९६५क

पांच क्लेश जो हैं कथे, शुक्ले कृष्ण वा कर्म ।
ये सब तब निवृत्त हों, योगी जाने मर्म ॥ १९६५ख

अनन्त ज्ञान के कारणे, मल विक्षेप आवरण ।
लुप्त योगी के चित्त से, विलक्षण सब आचरण ॥ १९६५ग

परवैराग्य में स्थित हो, योगी का तब चित्त ।
कृत कृत्य सभी गुण भये, समाप्त भया सब वृत्त ॥ १९६५घ

हे साधो मैं कथ दिया, जो था मुझ को ज्ञान ।
सब ऋषियन ने तब कहा, "सत्य राम तव ज्ञान" ॥ १९६५ङ

एक ऋषि ने तब कथ पाया, "राम ज्ञान तुम सत्य सुनाया ।
और भी हो यदि कुछ वक्तव्य, मुमुक्षु जन का जो कर्तव्य ।

---

१. योग दर्शन IV. 34. आत्मा का अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होना कैवल्य है।

२. यह समाधि मेघ के समान कैवल्य फल देने वाले अशुक्लाकृष्ण धर्म की वृष्टि करती है इस लिये इसको धर्म मेघ समाधि कहते हैं।

योग दर्शन IV. 30 "धर्म मेघ समाधि की प्राप्ति में अविद्यादि पांचों क्लेश अपनी वासनाओं सहित नष्ट हो जाते हैं। क्लेशों की निवृत्ति होने पर क्लेश मूलक शुभाशुभ कर्माशय भी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार क्लेश व कर्मों की निवृत्ति होने से जीता हुआ भी विद्वान मुक्त है, कर्म रूप बन्धनों से रहित हुआ विद्वान कहीं भी जन्मादि को प्राप्त नहीं होता।

वह प्रसंग भी दो बतलाय, भ्रांति लेश जो रहन न पाये ।
कहा राम तब "हे ऋषि दयाल, जग हित ही तुम कीन सवाल ।
कौन बात जो आप न जानें, ऋषि सर्वज्ञ हों वेद बखाने ।
आप का सुन कर मैं अनुरोध, बात कथूं सद्गुरु चित्त शोध ।
मोक्ष के साधन मैं कथ दीन, अभ्यास किया जिस मुक्ति लीन ।
एक बात पर है मन मेरे, विघ्न योग में होत घनेरे ।
विघ्न टरें तो सिद्धि होवे, विघ्नित जन न कुछ भी गोवे ।
विघ्न-विनाशक सद्गुरु दाया, बिन दाया किस मोक्ष है पाया ।
सत्य वचन शास्त्र का मानूं, अनुभव से भी इस को जानूं ।
गुरु मूर्त है ध्यान की मूल, पूजा मूल है गुरु पग धूल ।
गुरु का वचन ही मन्त्र मानूं, गुरु कृपा से मुक्ति जानूं ।

दो० बिन कृपा गुरु देव की, मुक्ति से जन दूर ।
मुक्ति लागे हाथ उस, गुरु पग पूजे धूर" ॥ १९६६क

इतने वचन सुनाय कर, राम भये तब मौन ।
महाप्रभु के चरण पर, जा गिरे सुख भौन ॥ १९६६ख

महा प्रभु निज रूप संभारा, राम लाल महा प्रभु पग धारा ।
संगत विदा भयी तब सारी, सभा विसर्जित हो गई न्यारी ।
राम लाल गुरु आशिष पाई, लगे समाधि में सुखदायी ।
राम प्रभु का जीवन न्यारा, जग से था उन कीन किनारा ।
प्राकृत नाता जग से त्याग, धर्म स्थापन हेत वह लाग ।

१३१. श्री प्रभु जी की भक्त वत्सलता

सकल जगत की करें संभार, भक्तन हित कभी देह लें धार ।
शरीर कई वे लें प्रकटाय, भक्तों को सदा होंय सहाय ।
कहें भक्त "प्रभु हैं जग बीच, कौन कहे उन की भई मीच ।
प्रत्यक्ष से बढ़ कर क्या प्रमाण", बात कहे यह सकल जहान ।

दो० "हम ने देखे हैं प्रभु, आशिष हम को दीन" ।
कोई कहे "प्रभु आ मिले, जब मैं था दुःख लीन" ॥ १६६७

कोई कहे "प्रभु हैं जग माहीं", कोई कहे "प्रभु सबनी थाहीं" ।
कोई कहे "मुझ को मिल पाये, उन के वचन थे मधुर सुहाये ।
हमरे संग रहे कुछ काल, दीन जनों पै प्रभु जी दयाल" ।
कोई कहे "मम पूत जिवाया, गिरा था छत से उसे बचाया" ।
जल मग्न कोई भक्त निकाला, गिरता २ कोई सम्भाला ।
यम के लोक से किसे लौटाया, औषधि दे कर किसे बचाया ।
किसी निर्धन को धन दे आये, किसी के कारज सिद्ध कराये ।
भक्ति भाव से जो कोई ध्याता, प्रभु के दर्शन वह जन पाता ।

दो० प्रभु के दर्शन पाय कर, और स्पर्श कर चरण ।
भक्त सबन थे जानते, हम तो प्रभु की शरण ॥ १६६८क
ऐसे भक्त अनेक थे, चित्त बसे जिन हर्ष ।
एक समय में थल कई, प्रभु जी देते दर्श ॥ १६६८ख
ऐसे भी कुछ भक्त थे, सदा रहें प्रभु संग ।
क्षण एक नहीं बिछुड़ते, बन के प्रभु के अंग ॥ १६६८ग

भक्त बने जो प्रभु के अंगा, सदा रहें प्रभु उन के संगा ।
जग में रहें पर जग से न्यारे, ऐसे भक्त प्रभु को प्यारे ।
सेवा रत जो भक्त रह पाते, प्रभु जी के वे चित्त सुहाते ।
साधन करत जो मन को लाय, प्रभु को वह भी भक्त सुहाय ।
योग करावे वा कर पाये, प्रभु को जन वह भी बहु भाये ।
सत्याचरण हो जिस का ठीक, धर्म के मग पै जो निर्भीक ।
भक्त वही प्रभु को बहु प्यारा, प्रभु से पावे पूर्ण सहारा ।
दयावान जो हो जग माहीं, जाने प्रभु को ही सब थाहीं ।
दीन जनों का बने सहाय, प्रभु के चित्त वह भक्त सुहाय ।

दो० भक्त प्रभु के चित्त में, प्रभु भक्तन के चित्त ।
ऐसा योग अनूपम, प्रचारा जगत निमित्त ॥ १९६९क
प्रभु थे बसते हिमगिरी, भक्त बसें घर माहीं ।
फिर भी प्रभु के दर्श हों, भक्तन को सब थाहीं ॥ १९६९ख

योग युक्त बहु भक्त थे रहते, शुद्ध रूप तन मन को वहते ।
तन से शुद्ध और मन से शुद्ध, सन्तोष से रंजित उनकी बुद्ध ।
तन मन से बहु तप कर पावें, निशिदिन जिमि प्रभु दर्श दिखावें ।
शास्त्राध्यपन करें सब कोई, इष्ट देव से प्रीति होई ।
भक्ति भाव से प्रभु की पूजा, इस से बड़ा न कारज दूजा ।
नेम यही पालें सब सज्जन, निरखें सब में प्रभु भव भंजन ।
संयम से ही भक्त रह पायें, दूषित भाव न मन में लायें ।
कामिनी कांचन से रह दूर, योग करें प्रभु-जन भरपूर ।

दो० माया मोह को त्याग कर, धार प्रभु को इष्ट ।
भक्ति जिन के चित्त बसत, प्रभु जी हरें अनिष्ट ॥ १९७०क
भक्त शिरोमणि मुलख जी, योग युक्त दिन रात ।
सिमरत प्रभु को एक चित्त, बसत प्रभु उस गात ॥ १९७०ख

१३२. श्री प्रभु जी का अभिन्न रूप–श्री मुलख राज

प्रभु का ही वह दूजा रूप, मुलख मुलख में भया अनूप ।
योग शक्ति प्रभु की चलि आई, घट मुलख के वही समाई ।
प्रभु का कारज मुलख संभाला, उस आदेश प्रभु का पाला ।
सिगरे भक्त मुलख पग लागे, जो थे प्रभु जी के अनुरागे ।
सकल आश्रम का कारज भार, पड़ा मुलख पर आ इक बार ।
कठिन काम कई सन्मुख आये, मुलख कभी जो सोच न पाये ।
समस्या एक से एक कठोर, सुगम न जिस का पाना छोर ।
मुलख राज के सन्मुख आये, मुलख न चित्त में पर घबराये ।

दो० मुलखराज के थे धनी, राम लाल भगवान ।
एक रूप जो त्याग कर, व्याप रहे हर स्थान ॥ १९७१

मुलख ने शक्ति प्रभु से पायी, सन्मुख आती जब कठिनाई ।
स्मरण मात्र प्रभु का कर पाते, प्रभु सहायी बन कर आते ।
मुलख कहें प्रभु करते काम, स्मरण मात्र से बहुरें राम ।
प्रभु सर्वज्ञ प्रभु हर थाईं, क्षण में बहुरें प्रभु गोसाईं ।
राम लाल ही करते काम, हम तो उन के दास तमाम ।
जग से कर के राम किनारा, भक्त जनों के बने सहारा ।

एक रूप है राम संहारा, बहु रूप उन निज कर डारा ।
मुलख राज दिव्य आंख से पेखें, राम प्रभु को संग ही देखें ।

दो० राम लाल प्रभु साथ रह, करते कारज नित ।
विरह खेद फिर भी बसे, सदा मुलख के चित्त ॥ १९७२

मन मुलख के विरह सतावे, 'राम आओ' निशिदिन कह पावे ।
"नित आओ नित दर्शन देवो, इस बालक को गोद में लेवो ।
कुटुम्ब जाल सब बंधन नाथ, आप से ही मैं भया सनाथ ।
क्षण एक न मुझे बिछोड़ो, प्राणनाथ न मुख को मोड़ो ।
नित आओ प्रभु नित ही आओ, बालक को आ गले लगाओ" ।
इस विध करत २ आलाप, खो जाता सुधि को वह आप ।
दिव्य लोक में वह चलि जाता, अद्भुत दृश्य देख के आता ।
देखे अद्भुत सृष्टि न्यारी, रचना एक से एक ही प्यारी ।

दो० रचना सब ही देख कर, स्मरण प्रभु का होय ।
देख पाय सब नाथ का, दिव्य सिंहासन सोय ॥ १९७३

दिव्य लोक में दिव्य सिंहासन, विराजे जिस पै प्रभु ला आसन ।
देव लोक के सारे देव, करें प्रभु की भाव से सेव ।
आरती पूजा प्रभु की होवे, मुलख देख मन विस्मय गोवे ।
लोक लोकान्तर के सब देव, मानें प्रभु को वे अधिदेव ।
पूजें प्रभु के चरण पुनीत, प्रभु से आशिष गहें सप्रीत ।
ध्यान समाधि से उठ पाया, मन मुलख के तब यह आया ।
प्रभु की पूजा करते देव, और निरन्तर करते सेव ।

हम भी मूर्ति क्यों न थापें, और निशिदिन भजन आलापें ।

दो० प्रभु की मूर्ति थाप कर, करें प्रभु की सेव ।
भक्त करें मिल आरती, प्रभु देवन के देव, ॥ १९७४

प्रभु देवन के हैं अधिदेव, युग २ में होय उन की सेव ।
द्वेश विदेश हों उनके धाम, पूजें जहां पर जन प्रभु राम ।
प्रभु को पूज कृपा जन पावें, लोक लोकान्तर सुख अपनावें ।
मुलख राज ने भक्त बुलाये, मति अपनी उनको कह पाये ।
निज ध्यान की बात बतायी, "देव भी पूजें प्रभु सुखदायी ।
हम भी एक सिंहासन थापें, मूर्ति रूप जहां प्रभु जी व्यापें ।
आरती पूजा सब कर पावें, प्रभु जी से दिव आशिष ग्राहवें ।
प्रभु का विग्रह दिव्य महान, उस को मत मन लौकिक मान ।
सगुंण रूप प्रभु जी अवतारी, कौन गिने उन के गुण भारी ।

दो० प्रभु के सगुंण रूप को, सिमरे जो नर नार ।
दर्शन श्रद्धा से करे, उतरे भव से पार ॥ १९७५

प्रातः सायं करे जो दर्शन, पग करे जो प्रेम से पर्शन ।
आरती पूजा जो कर पावे, प्रभु की कृपा वह अपनावे ।
शुद्ध बुद्ध है प्रभु का रूप, त्रिगुणातीत विज्ञान स्वरूप ।
प्रभु ने ले कर यहां अवतार, कीना जगत का उन उद्धार ।
योग ज्ञान जग को सिखलाया, वेद का मार्ग सबन बताया ।
सब साधन के प्रभु जी मालक, चर वा अचर जगत के पालक ।
योग रूप स्वयं वे स्वामी, घट २ के प्रभु अन्तर्यामी ।

मृत्यु रूप है जगत पसारा, रूप प्रभु है मोक्ष का द्वारा ।
चरण प्रभु के मोक्ष हैं दायी, शरणागत के बनें सहायी ।
दो० प्रभु का आसन इक बने, आश्रम के इस मांझ ।
पादुक प्रभु की जहं रमे, पूजें प्रातः सांझ" ॥ १९७६क

१३३. आश्रम में प्रभु मूर्ति की प्रतिष्ठा

मुलख की सुन कर वार्ता, भक्तन के मन चाव ।
भाव भक्ति वश जो कहा, पड़ा बहुत प्रभाव ॥ १९७६ख
सब भक्तन के मन बसी, मूर्ति प्रभु की दिव ।
प्रभु को पादुक भी रमी, मंगलकारी शिव ॥ १९७६ग
देव लोक में सुन रहे, देव मुलख की बात ।
धन्य २ कहने लगे, नभ में आ साक्षात ॥ १९७६घ
भक्तों ने बहु सुख को मान, कीना आसन का निर्माण ।
देव लोक से देव भी आये, भक्तन के संग जो मिल पाये ।
जयकारों से आश्रम गूंजा, विधि विधान से कीनी पूजा ।
प्रतिष्ठित प्रभु का भया स्वरूप, छवि मन्दिर की परम अनूप ।
भक्त जनों ने फूल चढ़ाये, दिव्य पुष्प देवन बरसाये ।
सुन्दर भजन भक्तों ने गाये, मुलख के मन न चाव समाये ।
मस्ती में आ उस जब गाया, मेरु से चल ऋषि दल आया ।
संग प्रभु महाप्रभु भी आये, समय अनोखा को कथ पाये ।
दो० भक्तों की तब भक्ति भी, दश गुण भयी विशेष ।
समय अनोखा वन्ध गया, आय न कथनी लेश ॥ १९७७

तन की सुधि सब ने विसराई, प्रभु मूरत में ही लिव लाई ।
नृत्य करे कोई भक्त प्रवीन, भजन उच्चारे कोई नवीन ।
प्रभु मूर्त कोई इक टक देखे, 'प्रभु प्रभु' कोई मुख से लेखे ।
श्वास प्रश्वास एक का चाले, दूजा न निज देह संभाले ।
किसी की सुन्न समाधि लागी, सुधि सम्पूर्ण उस की भागी ।
महाप्रभु की भयी जब दाया, सुख अलौकिक भक्तन पाया ।
प्रभु आगमन की यह पहचान, भक्ति रस वहां बहे महान ।
पहर दो तक रह उस स्थान, कीना तब महा प्रभु पयान ।
ऋषि मुनि भी संग प्रभु चाले तन की सुधि तब भक्त संभाले ।

दो० उस अलौकिक ठौर पर, जहां प्रतिष्ठित मूर्त ।
भक्त बैठें जब आय कर, चढ़े ध्यान में सूर्त ॥ १८७८

मुलख राज चित्त भया प्रसन्न, भक्त सकल भी भये थे धन्य ।
प्रभु की मूरत जब से थापी, शक्ति अलौकिक वहां पर व्यापी ।
वातावरण भया आकर्षक, प्रभु रहें वहां जन मन हर्षक ।
जो भी जन वहां चल कर आता, शांति लाभ वही कर पाता ।
कन २ दिव्य वहां का जापे, सुन्दर एक छटा थी व्यापे ।
भासत सब को ही था ऐसे, प्रभु खड़े हों ही संग जैसे ।
बाहिर से जो चल कर आता, प्रभु को मानो सन्मुख पाता ।
प्रभु की ऐसी दया अपार, सके न जन पा पारा वार ।

दो० प्रभु की दया अपार है, प्रभु की महिम अपार ।
कोटि यत्न कर जन थके, पाये न पारावार ॥ १८७९

इस विध मन्दिर था बन पाया, भक्तन के हित प्रभु रचाया ।
सायं प्रातः होती अर्चा, प्रभु कृपा की दिन भर चर्चा ।

१३४. जनता का श्री मुलख राज जी की शरण में आना

जो जन शरण मुलख की आता, प्रभु की महिमा सुन के जाता ।
मुलख बताते सारी बात, कलि में ब्रह्म भया साक्षात ।
अनन्त कलां जिस ने प्रकटाईं, राम लाल वह जग का साईं ।
ब्रह्मा विष्णु शंकर जान, प्रभु के अंश ही सबन पहचान ।
लीला अनन्त प्रभु दिखलाई, भक्त जनों को जो सुखदायी ।
बालपने प्रभु बुढ़िया तारी, राम रत्ती युव काल उबारी ।
हरि हरानन्द सिद्ध बनाया, सिद्धों में जिस का यश छाया ।
दो० सिद्धों में जो सिद्ध होय, करता प्रभु की सेव ।
याथातथ्य† वह जानता, प्रभु शक्ति का भेद ॥ १९८०
साध उद्दण्डी उस ललकारे, प्रभु की शक्ति के ही सहारे ।
मारवाड़ में जब वह आया, नास्तिक जन को भक्त बनाया ।
प्रभु ने तारी रामा बाई, अनोखी सिद्धि जिस ने पाई ।
स्वर्ग लोक में जो चलि जाती, दिव्य पुष्प वह वहां से लाती ।
प्रभु भक्ति की वह अनुरागी, अखण्ड समाधि उस को लागी ।
तपश्चर्या से होय निरास, हरनामदास भया प्रभु का दास ।
प्रभु ने उस को पार लगाया, दिव्य लोक में उसे पहुँचाया ।

† याथातथ्य—ठीक ठीक

अयोध्या की अवधूता तारी, जो थी किसमत की अति मारी ।
नागा बुढ़िया प्रभु बचायी, पीड़ जिसे थी बहु दुःख दायी ।
मुलख करत इस विध गुण गान, प्रभु की लीला कथे महान ।

दो० जो जन चल कर आ गये, मुलख राज की शरण ।
मुलख राज उन को कहे, प्रभु भव पीड़ा हरण ॥ १६८१

मुलख राज मुलख के स्वामी, प्रसिद्ध भये सब जां शुभ नामी ।
दूर दूर से जन चलि आवें, प्रभु की कीर्ति सुन कर जावें ।
प्रभु मूर्ति का करते दर्शन, चरण पादुक का करें स्पर्शन ।
जो जन इस विध आ सत्कारें, कोटि जन्म के पाप निवारें ।
मुलख राज का आश्रम वासा, ऐसे जैसे पुष्प सुवासा ।
बीते सेवा में दिन सारा, योग ज्ञान का करत पसारा ।
ध्यान में बैठ भक्त जब देखें, मुलख में वे प्रभु मूर्ति पेखें ।
प्रभु में भी थे मुलख समाये, गूढ़ रहस्य यह विरला पाये ।
मुलख को भी प्रभु थे प्रकटाते, तुमरे घट में हम हैं आते ।

दो० प्रभु दिखाते मुलख को, तेरा तन न तेरा ।
तेरे तन में मैं बसूं, तेरा तन यह मेरा ॥ १६८२

रहत मुलख मन प्रभु का नाम, शत २ बार करत प्रणाम ।
कहे "प्रभु दीन दुनी के वाली, सब जन उनके दर के सवाली ।
निमानों के वे मान हैं जानो, न्योटों की वे ओट पहचानो ।
अनन्त कला हैं ले कर आये, गिनती में किमि को गिन पाये" ।
प्रभु लीला इमि करे बखान, रात दिवस का भेद न जान ।

भक्त जनों को कहे "सुन भाई, समझो प्रभु की तुम प्रभुताई ।
जानो कौन है देह को धार, जग हित आया जगदाधार ।
तारण हित जग को है आया, प्रभुता असीम संग में लाया ।

दो० असीम शक्ति को लेय कर, आया जगदाधार ।
भक्त जनों का धर्म यह, गहें शरण तत्काल ॥ १९८३

जिस जिस ने प्रभु शरण ग्राही, प्रभु से रक्षा उस ने पायी ।
तन मन से वह भया सुखारी, घोर विपद भी प्रभु निवारी ।
मृत्यु मुख से भी बच पाया, जिस पर प्रभु जी कीनी दाया" ।
इस विध मुलख था करत सचेत, भक्त जनों के हित वह हेत ।
श्रवण करें सब मुलख की बात, मुलख को मानें प्रभु साक्षात ।
वयोवृद्ध व बालक सारे, श्रवण करें उपदेश ये भारे ।
प्रभु महिमा को मन में लावें, प्रभु के गुण सब मिल कथ पावें ।
गीत प्रभु के सब जन गाते, आरती प्रभु की मिल कर पाते ।

दो० प्रभु को आरती करत सब, प्रभु से बढ़त प्रीत ।
मुलखराज* की भक्ति वश, भक्ति बढ़े यह रीत ॥ १९८४

भक्ति लता तब बहु विस्तारी, ऋतु वर्षा में जिमि हरियारी ।
मुलख राज मन मेघ दयाल, अमृत वृष्टि करत हर काल ।
मुलख राज को सब जन मानें, 'स्वामिन्' कह उन को सन्माने ।
स्वामी मुलख मुलख के स्वामी, प्रसिद्ध जगत में योगी नामी ।
जगद्वन्द्य वे गुरुवर भारी, योग भक्ति उन के मन न्यारी ।

*अर्थात् स्वामी मुलख राज की भक्ति को देख जनता के मनों में भी भक्ति की वृद्धि होती है।

योग महिमा उन जग विस्तारी, प्रभु भक्ति घर २ प्रचारी ।
घर २ प्रभु का चित्र थापा, घर २ भक्ति का रस व्यापा ।
प्रभु महिमा घर २ विस्तारी, बन जनता गई प्रभु पुजारी ।

दो० मुलखराज गुरु देव जी, राम लाल जी इष्ट ।
योग भक्ति व ज्ञान थे, घर २ भये प्रविष्ट ॥ १९८५

घर घर होने लागी पूजा, सायं प्रातः काम न दूजा ।
योग ध्यान व पूजा करते, अन्तः करण का मल इमि हरते ।
कलि युग से कलि काल नसाया, भक्ति ने मनु सतयुग लाया ।
जिसने प्रभु की भक्ति पायी, और मुलख की शरण ग्राही ।
उसके भाग्य का भानु चमका, पाप दबा व पुण्य था दमका ।
देव भी उसके बने सहायी, जिस ने प्रभु की भक्ति पायी ।
सब सुख उस के दर चलि आवे, प्रभु प्रतिमा जो नर घर लावे ।
प्रतिमा का प्रभाव निराला, इस ने सब का मन रंग डाला ।

दो० योग भक्ति से मन रंगे, रूप प्रभु का देख ।
मस्त भये नर नार बहु, बढ़ी प्रेम की रेख ॥ १९८६

अमृतसर जिमि वर्णन कीना, लवपुर में भी तिमि प्रभु कीना ।
मन्दिर में प्रभु प्रतिम सुहावे, सकल नगर दर्शन हित आवे ।
पा कर प्रभु के दर्शन सुन्दर, कहें अलौकिक यह इक मन्दिर ।
प्रभु मूर्ति में कर्षण ऐसा, वर्णन में न आवे जैसा ।
दर्शन कर भक्ति बढ़ पावे, कुछ जनता सुध बुध विसरावे ।
प्रभु के ध्यान में हो आसीन, समाधि में कई होत विलीन ।

साकार प्रभु के दर्शन पावें, निराकार में लय हो जावें ।
प्रभु का रूप साकार विलक्षण, जन जाने जो होय सुलक्षण ।

दो० शुभ लक्षाण नर नार जो, प्रभु को जानें सोय ।
दिव्य दर्शन को पाय कर, चित्त एकाग्र होय ॥ १९८७

चित्त एकाग्र उस का होय, प्रभु को प्रेम से माने जोय ।
जो मांगे सो प्रभु से मांगे, अन्य से मांगन से भी सांगे ।
जाने प्रभु की शक्ति अपार, जग जीवन के प्रभु आधार ।
करें मूक को प्रभु वाचाल, पंगुहिं बख्शें सुन्दर चाल ।
मुलख राज यह सब पहचाने, प्रभु की शक्ति सबन बखाने ।
प्रभु की शक्ति जानन हारे, अमृतसर में भक्त बहु प्यारे ।
बैठ करें जो प्रभु का ध्यान, मिलें ध्यान में प्रभु जी आन ।
जिमि आदेश प्रभु का पावें, जीवन नौका तिमि चलावें ।
नारिन की भी संगत भारी, ध्यान बितावे वेला सारी ।
ऋषि देवी व द्रौपदी नार, ध्यान भजन ही उनका कार ।
गुरु माता का करतीं संग, जिस का मन रंगा प्रभु रंग ।

दो० गुरु माता को देखतीं, प्रभु का ही वे रूप ।
सेव करें मन लाय कर, श्रद्धा बढ़े अनूप ॥ १९८८

गुरु माता जब ध्यान लगाती, पति के दर्शन तत्क्षण पाती ।
त्याग पति फिर गये इक बार, रचा न उस का घर व द्वार ।
उस की एक भी नहीं सन्तान, प्रकट दुखी वह नार महान ।
दुःख में भी पर थी बलवान, उस का संबल पूरण ज्ञान ।

पति को मानत वह भगवान, अहर्निश करती जिस का ध्यान ।
प्रभु की पूजा करत निरन्तर, प्रभु की भक्ति बसी उस अन्तर ।
प्रभु का दर्शन पाने हेत, जाती आश्रम होय सचेत ।
प्रणाम प्रभु को वह कर पाती, प्रभु को माला पुष्प चढ़ाती ।
प्रभु पादुक को माथ झुकाय, मूंद आंखें फिर मिनत मनाय ।
दो० आंखें मूंद मनावती, कौन जाने किस हित ।
करत जो दर्शन मात का, भक्ति बढ़त उस चित्त ॥ १९८९

१३५. ऋषिकेश आश्रम में प्रभु मूर्ति की विधिवत प्रतिष्ठा

अमृतसर और लवपुर माहीं, पूजा प्रभु की भये सब थाहीं ।
ऋषिकेश फिर मुलख पधारे, देव लोक में बजे नगारे ।
ऋषिकेश ऋषियन की भूमि, युग २ से जो भक्तन चूमी ।
जहां पर साधु रहें अनेक, खेत्र बड़े हैं एक से एक ।
जहां प्रभु का आश्रम भारी, मुलख पधारे वहीं पापारी ।
संग वे प्रभु की मूर्ति लाये, शकुन भये जब वे आ पाये ।
मुलख राज तब कीन आयोजन, ब्राह्मणगण हित कीना भोजन ।
साधुन का भण्डारा कीना, निमन्त्रण जनता को भी दीना ।
यज्ञ रचाया इक बहु भारी, धूम पड़ी नगरी में सारी ।
दो० सब नगरी मिल आ गई, साधु आये अशेष ।
बैठी ब्राह्मण पंक्ति, था यह यज्ञ विशेष । १९९०क

मुलख राज यजमान थे, करते सब की सेव ।
योग धर्म मर्याद का, मुलख जी जानें भेव ॥ १६६०ख

जभी मुलख यह यज्ञ रचाया, पुरोहित बन के ब्रह्मा आया ।
यज्ञशाला का करूं बखान, तत्काल भया जिस का निर्मान ।
भूमिखण्ड आंगन में देखा, सोलह हाथ समचौरस पेखा ।
शुद्ध माटी उस पर बिछवाई, गोमय से तब कीन लिपाई ।
खंभे गाड़ के घेरा डाला, बीस खंभों की वह यज्ञ शाला ।
डाली छत सुन्दर आकार, चारों दिक थे प्रवेश द्वार ।
ध्वजा पताका वहां सजाये, पल्लव सुन्दर तुरत लगाये ।
सुभूषित कीनी तब यज्ञशाल, रेखें कुंकुम हल्द की डाल ।

दो० रेखा कुंकुम हल्द की, मैदा श्वेत भी संग ।
कुशल हस्त इक देव ने, सुन्दर डाला रंग ॥ १६६१

समिधा आम पलाश की लाये[1], चार विधि के द्रव्य जुटाये[2] ।
चार विधि के द्रव्य ये जानो, प्रथम सुगन्धित पदार्थ मानो ।
दूजे पौष्टिक द्रव्य कहायें, अन्न दूध घृत कथन जो आयें ।
तीजे मिष्ट पदार्थ होंय, शक्कर शहद छुहारे जोंय ।

१. यज्ञ के लिये पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, विल्व आदि की समिधा उपयोगी होती हैं।

२. यज्ञार्थ चार प्रकार के द्रव्य ये है :—
१. प्रथम—सुगन्धित, जैसे कस्तूरी, केशर, अगर, तगर श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि :
२. द्वितीय—पुष्टिकारक जैसे घृत, दूध, फल, कन्ध, अन्न, चावल, गेहूं, उड़द आदि।
३. तीसरे—मिष्ट जैसे शक्कर, शहद, छुहारे, दाख आदि।
४. चौथे—रोगनाशक जैसे गिलोय आदि औषधियां।

चौथा द्रव्य वह औषध जान, रोग नाशक जो होय महान ।
होम द्रव्य ये चार प्रकार, एकत्रित कीने सब प्रकार ।
इन से स्थाली पाक बनाया, भोग पदार्थ जो मन भाया ।
हवन सामग्री व घृत लाये, आहुति देने हेत जुटाये ।

दो० इस विध सकल जुटायकर, प्रतिमा प्रभु की थाप ।
स्तुति वाचन करने लागे, पण्डित जन मिल आप ।। १९९२

प्रभु की प्रतिमा सब मन भायी, इक टक निरखे जन समुदायी ।
मन ही मन सब माथ झुकावें, इष्ट देववत उन्हें मनावें ।
प्रभु सिंहासन सुन्दर भारा, था चन्दोवा उस पै प्यारा ।
जरी व रेशम के रोमाल, बिछे सिंहासन पर इक सार ।
आसन पै प्रभु प्रतिमा साजे, जग मग जोती सन्मुख राजे ।
बार बार मुलख चलि आवे, साष्टांग प्रभु को वह कर पावे ।
उसके मन में दृढ़ विश्वास, करेंगे प्रभु सब कारज रास ।
प्रभु जी यह है यज्ञ रचाया, पूरण करेगी प्रभु की दाया ।

दो० प्रभु के आश्रित मुलख था, करत प्रभु का काज ।
प्रभु के आश्रित जो बसे, सफल उसी का साज ।। १९९३

सकल आयो जन जब हो पाया, पुरोहित ने तब सबन बुलाया ।
यज्ञ कुण्ड के चारों ओर, यजमान सहित बैठे उस ठौर[1] ।

१. यज्ञ के चार अधिकारी पण्डित इस प्रकार होते हैं।
१. उद्गाता—इस का आसन पूर्व में।
२. होता—इस का आसन पश्चिम में।
३. अध्वर्यु—इसका आसन उत्तर में।
४. ब्रह्मा—इसका आसन दक्षिण में।

दक्षिण में पुरोहित विराजा, ब्रह्मा पदवी पर जो साजा ।
पूर्व में उद्गात आसीन, 'होता' पश्चिम दिक् में लीन ।
उत्तर दिक् अध्वर्यु विराजे, मुलख राज दक्षिण दिक् साजे ।
वह था ब्रह्मा संग आसीन, यजमान के आसन भक्ति लीन ।
सब जन होय एकाग्र चित्त, कर्म करें मिल यज्ञ निमित्त ।
तब वेद विधि से कीना यज्ञ, वेद पाठी थे पण्डित तज्ञ ।

दो० विद्वज्जन जब मिल करें, शुद्ध विधि से काज ।
श्रद्धा भी जब मन बसे, सात्विक जानो साज । १९९४

सात्विक कर्म का फल महान, सात्विक गुण सर्वोत्तम मान ।
सात्विक कर्म से देव प्रसन्न, सात्विक कर्म करे नर धन्य ।
सात्विक कर्म सुखों का मूल, सात्विक कर्म न त्यागो भूल ।
सात्विक कर्म ही धर्म कहाय, सात्विक कर्म से जन सुख पाय ।
सात्विक कर्म दुःखों का नाश, सात्विक कर्म शुद्ध बुद्ध प्रकाश ।
सात्विक कर्म से नाशे पाप, सात्विक कर्म न लागे शाप ।
सात्विक कर्म से मन हो शांत, सात्विक कर्म से दुरत भ्रांत ।
सात्विक कर्म योग उपजाय, सात्विक कर्म से सिद्धि पाय ।

दो० योग युक्त हो मुलख ने, रचा यह सात्विक यज्ञ ।
श्रद्धा देखी आ गये, राम लाल सर्वज्ञ ।। १९९५

अग्नि स्वरूप राम थे आये, मध्य अग्नि के परम सुहाये ।
तेजोमय उन का बहु रूप, वेश भी उन का दिव्य स्वरूप ।
मुलख आहुति डाल जो पाये, राम लाल निज हस्त ग्राहे ।

परम उदार प्रभु महादेव, स्वीकार करें भक्त की सेव ।
सेवा भक्त की प्रभु अपनावें, प्रेम सहित जो भी दे पावें ।
प्रभु सम कौन है दीन दयाल, भये प्रकट जो मध्य यज्ञ शाल ।
मुलख राज मन प्रेम बढ़ाया, सफल यज्ञ भी उन कर पाया ।
सफल यज्ञ वह ही कहलावे, जहां इष्ट प्रकट हो आवे ।

दो० राम लाल जहां इष्ट हों, और मुलख यजमान ।
यज्ञ करें आ विज्ञ जन, प्रकटें खुद भगवान ॥ १९९६क
ऐसा अवसर तो मिले, जग को युग पश्चात ।
प्रभु धर्म के हेत जब, प्रकट भयें साक्षात ॥ १९९६ख
नर नारायण रूप ही, मुलख और प्रभु राम ।
योग उद्धारण हेत उन, रचना कीन तमाम ॥ १९९६ग
नर रूप श्री मुलख जी, करें आश्रम की कार ।
नारायण श्री राम जी, सब की करें संभार ॥ १९९६घ
यज्ञ सम्पूर्ण जब भया, आरती सब ने कीन ।
सुमेरु से ऋषि आये जो, आशिष उन ने दीन ॥ १९९६ङ
महा प्रभु भी थे भये, आन सम्मिलित होय ।
राम लाल भगवान का, मान करे हर कोय ॥ १९९६च

सब देवों ने कीना मान, ऋषि मुनि कहें "हो कल्याण" ।
दिव्य दुन्दुभी बाजन लागी, सुनें भक्त ध्यान अनुरागी ।
दिव्य पुष्प देव बरसावें, मुलख राज की महिमा गावें ।
देव कहें "जय मुलख प्यारे, जय जय राम के तुम दुलारे ।

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल - मुलखराज जी महाराज

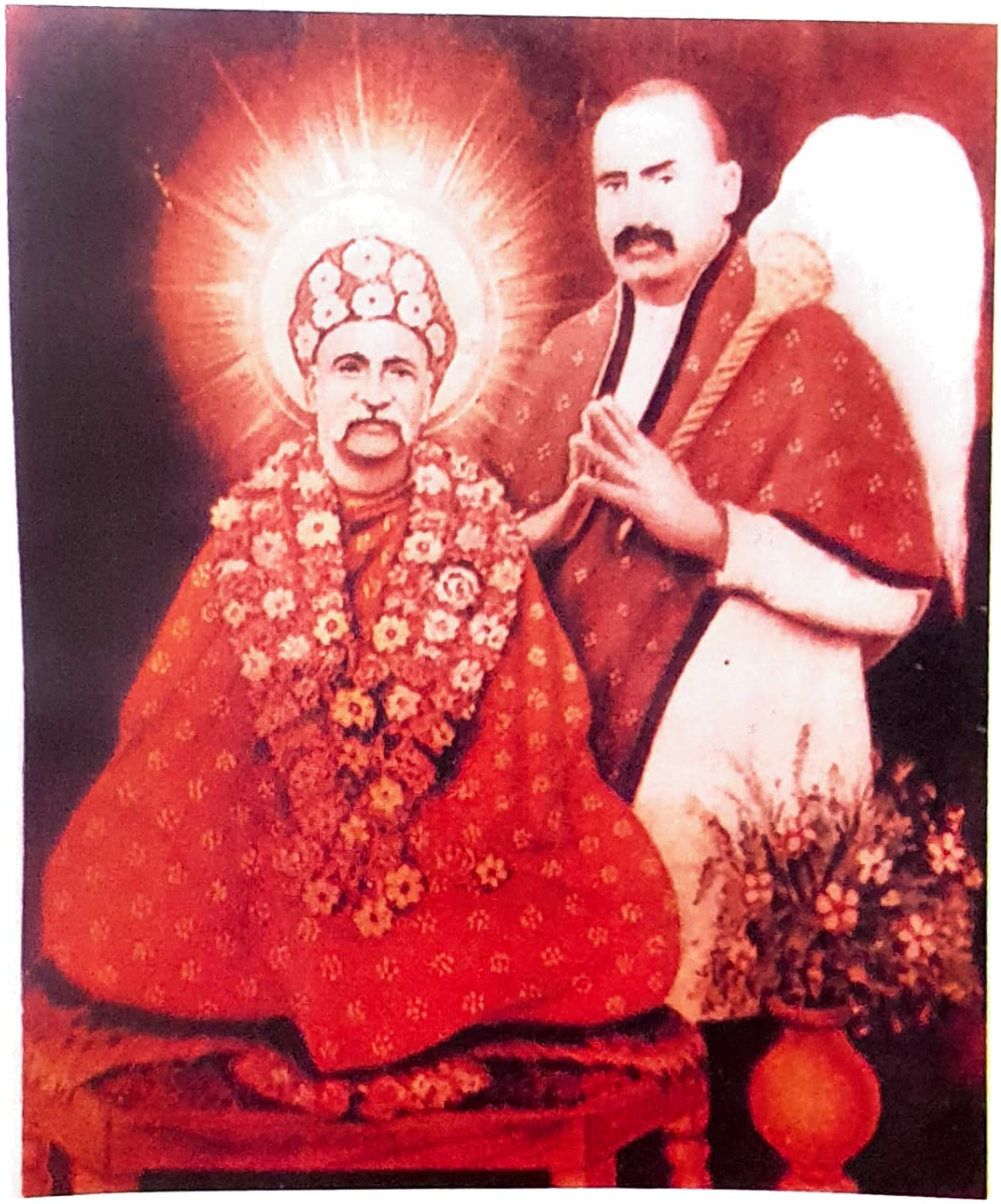

नर नारायण रूप ही, मुलख और प्रभुराम।
योग उद्धारण हेत उन, रचना कीन तमाम॥ दोहा १९९६ ग

राम लाल के चरण सरोज, दान करें तुम को बहु ओज ।
जय जगत के भूषण प्यारे, अरोड़ वंश के ध्रुव तुम तारे ।
जग के सुख से कीन किनारा, वरणा सेवा-व्रत असिधारा ।
तव बुद्धि कल्याणी नार, पाया राम लाल भरतार ।

दो० राम लाल की प्रीत में, तव बुद्धि लव लीन ।
जय जय जय हो मुलख तव, भक्ति महार्णव लीन ॥ १९९७

जय तेरी हो मुलख स्वामी, भक्त राम के जो निष्कामी ।
सकल जगत के सुख तुम त्यागे, सद्गुरु राम की चरणी लागे ।
आश्रम की मर्याद अनुसार, सेवा करत सेवा व्रत धार ।
जय मुलख हो जय जय राज, देवों के बनें तुम से काज ।
जय जय जय हो हे शुभ नामी, देव शरण तव योग के स्वामी ।
राम लाल कलि काल में आये, अपने संग तुम को भी लाये ।
योग शक्ति तुम्हें दे कर दान, सुमेरु गिरि उन कीन पर्यान ।
तुम पर ही अब आस हमारी, तिमिर हरो जग से तिमिरारी ।

दो० तिमिर जगत का दूर हो, ज्ञान का हो प्रकाश ।
शुभ कर्मन का राज हो, अशुभ का हो विनाश ॥ १९९८

योग धर्म जग में विस्तारे, बनें योगी जग में जन सारे ।
देवों का हो जगत में मान, योगी के घट देव अधिमान ।
सत्य अहिंसा को जग माने, योगी को हर इक सन्माने ।
सदाचारी होवें नर नार, नाशे चोरी व व्यभिचार ।
माया से होवे नहीं प्रीत, त्याग की जानें सब जन रीत ।

तन मन से सब होवे शुद्ध, सन्तोषी हो जन गण की बुद्ध ।
तप का जीवन सब अपनावें, वेद वाणी को मिल कर गावें ।
प्रभु का भजन करें सब कोई, जगत में जीवन ऐसा होई ।

दो० सब जन जीवन जगत में, ऐसा करें व्यतीत ।
मन वचन और कर्म से, जैसी वेद की रीत ॥ १९९९

मुलख राज तुम कीना योग, त्याग जगत के सारे भोग ।
दीर्घ काल समाधि लगाई, शिक्षा राम से बहु विध पाई ।
स्थान देवों के जो घट माहीं, पूजे तुम ने सभी गोसाईं ।
तुम देवों के हो प्रिय स्वामी, देव आराधे तुम निष्कामी ।
शक्ति अनेक जो नर घट माहीं, जागृत तुम ने हैं कर पाहीं ।
देव स्वर्ग के व जग-वासी, तेरे तप बल के विश्वासी ।
जय जय कार तेरी कह पावें, तेरे सब ही गुण गण गावें ।
जय जय पुनः कहें हम देव, हम सब रहेंगे प्रभु की सेव ।

दो० प्रभु की सेवा में रहें, करें प्रभु का काम ।
धर्म स्थापन हेतु ही, प्रकटे जग में राम ॥ २०००क
देव कारज के हेतु ही, प्रकटे जग में राम ।
सभी राम के दास हम, नाथ हमारे राम ॥ २०००ख

जय जय जय तेरी हो राम, जय जय मुलख राज अभिराम ।
जय जय जय देवन सुखदायी, देवों के तुम सदा सहायी" ।
इस विध मुलखराज के आगे, देव प्रकट हो स्वर्ग को पागे ।
ऋषि पुरातन तब चलि आये, प्रभु की अस्तुत सब कर पाये ।

मुलख राज को दीन सन्देश, "समझो राम जगत अखिलेश ।
इनका नाम जपो सब काल, मन में इन का रूप संभाल ।
इनका काम करो चित्त लाय, राम बनें तोय सदा सहाय ।
प्रकटें राम भक्त के कारण, लोप रहें वा दुःख निवारण ।

दो० दुःख निवारण कारण, वे प्रकटें जग आन ।
गुप्त रहें सब काल वा, उन की महिम महान ॥ २००१

राम प्रकटें जग में जग हेतु, भव जल पर वे बांधें सेतु ।
असुरों के गढ़ पर प्रहार, कर के करें वे असुर संहार ।
घमण्ड रूप दश शीष को मार, सीता मति का करें उद्धार ।
जग में राम राज्य तब छाये, योग धर्म प्रचारा जाये ।
मुलखराज तुम राम सहायी, भरत बना था जिस विध भाई ।
बिगड़े काम उस सभी सुधारे, अब भी नौका तेरे सहारे ।
उठो समाधि को अब त्यागो, सेव धर्म प्रचार में लागो ।
वे देखो प्रभु राम खड़े हैं, महा प्रभु महादेव खड़े हैं ।
उन की शक्ति तेरे साथ, तेरे सर पर उन का हाथ" ।
मुलख राज तब आंख उघाड़ी, जय जय कार भयी बहु भारी
सब जनता प्रतीख में ठाड़ी, मुलख उठें और होये उठाली ।

१३६. श्री मुलख राज जी का प्रवचन

दो० मुलख राज ने देख कर, सब जनता आसीन ।
हाथ बांध वह खड़ भया, नम्र भाव में लीन ॥ २००२

मुलख राज ने वचन उच्चारे, साधु ब्राह्मण सब सत्कारे ।

नगर के मुखिया जन कथ पाये, जो थे प्रेम सहित वहां आये ।
धन्यवाद उस सब का कीना, "मान दिया हम को" यह चीना ।
कहा सज्जन सब आप ज्ञानी, शास्त्रों की सन्मानें वाणी ।
जब धर्म पाताल को जावे, प्रकट हो प्रभु जग में आवे ।
लेवे धर्म का ही प्रभु पक्ष, नाश भये तब अधर्म समक्ष ।
कलियुग का यह घोर है काल, अधर्म की वृद्धि धर्म बेहाल ।
जग में अत्याचार प्रधान, सत्य धर्म का कहीं न मान ।

दो० दया धर्म का मूल जो, और सत्य आचार ।
इन दोनों का नाश है, कलियुग में इस काल ॥ २००३

चोर बने मुखिया जग माहीं, साध की पूछे बात को नाहीं ।
सदाचार का भया विनाश, लंपट बने जग में जन खास ।
नारी का सन्मान न होई, समझें मोल की वस्तु सोई ।
ऐसा काल घोर यह आया, फांद लिया सब को है माया ।
बचा न उस के पाश से कोई, कौन है जो न मोल बिकोई ।
माया से भया सब का प्यार, लदा है उस का सब सर भार ।
कलिमल कीने सभी मलीन, रहा न शुद्ध न कोई अदीन ।
भक्षाभक्ष न जाने कोई, शुद्ध आचार विचार न होई ।
कलियुग ऐसा मल विस्तारा, बुद्ध पै सब की परदा डारा ।

दो० दूध जिमि है बिगड़ता, ऐसे बिगड़े बुद्ध ।
देर न लागत लेश भी, दीखे विरला शुद्ध ॥ २००४

सुख का सांस न लेवे कोई, सन्तोष किसी के मन न होई ।

अन्य की संपत देख के लेश, ईर्षा से चित्त जले विशेष ।
विषयों का बढ़ गया प्रभाव, तप का सर्वथा भया अभाव ।
संयम जैसी वस्तु मीत, विसर गई जिमि बात अतीत ।
शास्त्र कथे जो धर्म विशेष, पढ़े सुने न कोई भी लेश ।
नास्तिकता है जग में छायी, भूले ईश्वर को जन भाई ।
रहा न ईश्वर में विश्वास, अहंकार भरे जन आम व खास ।
नहीं करें प्रभु में चित्त लीन, भई है दुनिया धर्म से हीन ।

दो० सत्य धर्म के लोप को, देख प्रभु कलि काल ।
अनन्त कला वे धार कर, प्रकटे दीन दयाल ॥ २००५क
राम लाल का नाम धर, प्रकट भये भगवान ।
योग योगेश्वर कृष्ण ही, आये बन कर राम ॥ २००५ख
गंडा राम के सुत प्रभु, योगेश्वर करतार ।
ब्राह्मण वंश में नाथ ने, लीना कलि अवतार* ॥ २००५ग
ब्रह्म तेज धर वे प्रभु, करें जगत उद्धार ।
योग दण्ड को धार कर, करें धर्म निस्तार ॥ २००५घ

सुमेरू पर्वत पर उन कीना, बस्तिन में फिर योग आ दीना ।
कई भक्त उन सिद्ध बनाये, सेवक कई उन के तर पाये ।
योग साधन आश्रम निर्माण, कर के कीना फिर प्रस्थान ।
सुमेरू पर्वत पर देह धार, समाधि में रहें प्रभु दयाल ।

*श्री मद्भागवत पुराण में भी कलियुग में प्रभु का अवतार ब्राहमण वंश में होना ही लिखा है ।

व्याप रही जग में प्रभु शक्ति, लाभ उठावें जिन चित्त भक्ति ।
प्रतिमा प्रभु की जो यहां थापी, उस में भी प्रभु शक्ति व्यापी ।
भक्ति भाव जो आ दिखलाये, श्रद्धा से जो शीश झुकाये ।
अशिष प्रभु की वह जन पाये, उस का कार्य सिद्ध हो जाये ।

दो० आश्रम में प्रभु रूप जो, करे जो उस का ध्यान ।
श्रद्धा से पूजन करे, उसे मिलें भगवान ॥ २००६

प्रभु की मूर्ति को जो माने, और जो उस पै श्रद्धा आने ।
कामना उस जन की हो पूरी, रहे न उस की साध अधूरी ।
प्रभु को पूजे जो घर माहिं, भक्ति मिले परिवार के ताहिं ।
भक्ति भवन में हो आसीन, ध्यान में होवें सब जन लीन ।
ध्यान से मन होवे जब शुद्ध, ज्ञान प्रदीपित तब हो बुद्ध ।
ज्ञान से मुक्ति को जन पावें, अथवा उच्च लोक को जावें ।
प्रभु जी की यह कृपा भारी, गृहस्थी बने मुक्ति अधिकारी ।
चमत्कारी है प्रभु का रूप, भक्ति से फल पायें अनूप ।

दो० प्रभु की भक्ति जन करे, सद्य मिले फल ताहिं ।
धर्म अर्थ वा काम को, भक्त मोक्ष भी पाहिं ॥ २००७

मोक्ष मिले जो प्रभु को ध्यावे, मोक्ष मिले जो योग कमावे ।
मोक्ष मिले जिस की शुद्ध बुद्ध, मोक्ष मिले जो ज्ञान प्रबुद्ध ।
मोक्ष मिले जो धर्म कमावे, मोक्ष मिले जो सतगुरु पावे ।
मोक्ष मिले प्रभु शिक्षा पाल, मोक्ष मिले जब प्रभु हों दयाल ।
मोक्ष मिले निर्लेप ध्यान, मोक्ष मिले प्रभु को पहचान ।

मोक्ष मिले वैराग्य हो पूरा, मोक्ष मिले भव में जो शूरा ।
मोक्ष मिले ऐसे नर तांहि, काटे बंधन जीवन मांहि ।
मोक्ष मिले न उस के तांहि, जो आसक्त हो माया माहिं ।

दो० प्रभु की भक्ति जो करे, और रहे निर्लिप्त ।
जीवन मुक्त वह जानिये, बसे जगत में तृप्त ॥ २००८

योगी जीवन मुक्त कहावे, योगी लिप्त न कहीं हो पावे ।
जग में होवे उस का वासा, कमल पुष्प जिमि जल अधिवासा ।
कमल न जल में डूबन पावे, योगी भी न भव बह जावे ।
योगी रहत माया में ऐसे, तैरत नाव है जल पै जैसे ।
नाविक राखे ध्यान विशेष, छिद्र होय न नाव में लेश ।
छिद्र से सदा उसे बचावे, प्रवेश न भीतर जल कर पावे ।
योगी भी तिमि रहत सचेत, घुसे न माया किसी भी हेत ।
नव छिद्र हैं घट के माहीं, भय के कारण सब इस ताहीं ।
माया के वे प्रवेश द्वार, योगी रोक रखे इक सार ।
योगी माया में रह पावे, माया भीतर लेश न जावे ।

दो० योगी का घट नाव सम, माया नीर स्वरूप ।
बाहर का दृश्य और है, भीतर और ही रूप ॥ २००९

माया तीन गुणी है जानो, दैवी शक्ति इसे पहचानो ।
इस में लीन सभी हो जावें, तरे वही जिसे प्रभु तरावें ।
राम प्रभु अब जग में आये, माया से बहु भक्त तराये ।
अधम से अधम जो अधम भी आया, शरण गही वह भी तर पाया ।

ग्रहण करी जिस ने प्रभु टेक, जीवन सफल उस ही का एक ।
बैठ ध्यान जो प्रभु का करता, प्रभु कृपा से भव से तरता ।
चलते फिरते करे जो ध्यान, प्रभु कृपा से बढ़ता ज्ञान ।
शयन समय जो करता ध्यान, मिलें स्वप्न में प्रभु तब आन ।
उठ कर प्रथम करे जो ध्यान, सुखी रहे दिन भर यह जान ।
कार्य आरंभ करे प्रभु ध्याय, प्रभु कृपा से सफलता पाय ।

दो० हर दम प्रभु को स्मरण कर, हर दम प्रभु को ध्याय ।
हर दम प्रभु उस भक्त के, रहते संग सहाय ॥ २०१०

आज मिला यह अवसर भारी, आय जुटी जो जनता सारी ।
साधु पुरुष पण्डित विद्वान, रहें नगरी जो पुरुष महान ।
आकर सब ने दर्शन दीना, सबन हमें आभारी कीना ।
प्रकट करूं मैं शतश आभार, सद्भाव मेरा करें स्वीकार" ।
यह कह मुलख ने जोड़े हाथ, हाथ जोड़े जनता भी साथ ।
हर्ष ध्वनि सब ने कर पाई, "मुलख तुम्हें हो शतश वधाई" ।
नभ से भी तब आई आवाज, "मुलख वधाई तुम को आज ।
तीर्थ स्थल पर तुम ने आज, एक बृहत्तर कीना काज ।
आज वधाई, आज वधाई, खुशी त्रिजगती में हैं छायी" ।

दो० देव वधाई देय कर, चले गये निज धाम ।
साध संगत उठ चल पड़ी, सिमर प्रभु का नाम ॥ २०११क
आश्रम सबन में इस विध, प्रभु प्रतिमा प्रतिष्ठ ।
ध्यान भजन योगी करें, होय योग में निष्ठ ॥ २०११ख

१३७. श्री मुलख राज जी द्वारा योग प्रचार

मुलख राज उपदेशते, भक्तन को सब काल ।
अमृत प्रभु के प्रेम का, बरसाते हर हाल ॥ २०११ग

लवपुर में थे मुलख जी जाते, महिमा प्रभु की सबन सुनाते ।
भक्ति योग का करें बखान, शरणागत को देते ज्ञान ।
श्रद्धा सहित जो चल कर आते, ध्यान समाधि उन से पाते ।
मुलख राज रहें सदा कृपाल, शरण में आये जो जिस काल ।
देते उसे तत्काल ज्ञान, भव दुःख का हो जिस विध हान ।
शक्ति मुलख जो प्रभु से पाई, मुलख जनता में इमि वितराई ।
जिमि शशि सूरज का प्रकाश, देकर करत उज्ज्वल आकाश ।
भूमण्डल से तिमिर हो चूर, कीन मुलख अज्ञान को दूर ।

दो० जन मन के अज्ञान को, योग से कीना दूर ।
मुलख के मुख पै ज्ञान का, देखें सब जन नूर ॥ २०१२

फिर छेहरटे मुलख थे आते, आश्रम में बहु काल बिताते ।
नगर डगर से जन चलि आवें, मुलख से पूर्ण ज्ञान को पावें ।
प्रभु की देख के मूर्ति भारी, टेकत मस्तक जनता सारी ।
आरती की जब वेला आवे, मुलख की मस्ती को लख पावे ।
प्रभु की याद में सुध बिसार, बहावें गीत में मधु की धार ।
काल का जाना को जन जाने, रात रात भर चलते गाने ।
राम लाल प्रभु आ कर देखें, निज भक्तों की भक्ति पेखें ।
रात की आरती होती प्रात, अनोखी भक्ति की क्या बात ।

दो० काल की गणना न रहे, चढ़े जो भक्ति रंग ।
घटन अनोखी घटत हैं, भक्त जनों के संग ॥ २०१३

अमृतसर के जन जब *जानें, भक्त शिरोमन मुलख हैं मानें ।
राम लाल के परम प्यारे, आठ पहर प्रभु सिमरन वारे ।
जिन के मुख से सब ही काल, बहती रहत है अमृत धार ।
उमड़ २ तब वे चलि आवें, दर्शन कर निज भाग्य सिहरावें ।
अमृतसर का जन समुदाय, अमृत पान करे वहां आय ।
रोगी रोग मुक्त हो जाते, सोगी मन का सोग दुराते ।
जिज्ञासु की जो ज्ञान पिपास, मिटती आन मुलख के पास ।
नवयुवक कई आ बलवान, योग का पाते अद्भुत ज्ञान ।
प्राण वे भीतर रोक दिखाते, छाती ऊपर शिल कुटवाते ।

दो० नवयुवक कई आन कर, करते देह बलवान ।
बिन शक्ति नहीं कुछ बने, सत्य बात यह मान ॥ २०१४

मुलख भी थे खुद बहु बलवान, देह पीन अति शक्ति मान ।
युवकों को देवें उत्साह, सशक्त बनो हो बेपरवाह ।
जीवन में कभी हार न मानो, प्रभु की शक्ति निज संग जानो ।
देह बनावो वीर कहावो, धर्मवीर की पदवी पावो ।
कर्मवीर जब विरद संभालें, धर्म कर्म सब ही जन पालें ।
राम कृष्ण जिमि धर्म बचाया, शिव ने आ जिस विध कर पाया ।
राणा व गोविन्द सिंह सारे, धर्म वीर ही थे ये भारे ।
युवक जनों का कर्म महान, धर्म हेतु वारें निज प्राण ।

इस विध मुलख दिशा दिखलाते, युवकों को कर्तव्य बताते ।
योग का देते उन को ज्ञान, योग को मानो धर्म महान ।

दो० योग धर्म का मूल है, अष्ट अंग लो जान ।
अष्ट अंग जो पालता, धर्मी वही सुजान ॥ २०१५

यम नियम और आसन पाले, प्राणायाम सिद्ध कर डाले ।
प्रत्याहार करे जन जोय, योगी जानो नर वह होय ।
करे धारणा योगी होय, ध्यान लगावे योगी सोय ।
उच्च अवस्था योगी मानो, समाधि में जिस को तुम जानो ।
अष्ट अंग ये जानो प्यारे, धर्म इसी को कहते सारे ।
जग ने जब यह धर्म विसारा, राम लाल प्रभु देह तब धारा ।
आश्रम योग चलाये भारे, सीखें साधन जन गण सारे ।
योग शक्ति का कर संचार, दान करें दिव्य दर्श अपार ।

दो० दिव्य दर्शन का दान कर, सिद्ध किये नर नार ।
राम लाल जग में किया, पुनः योग उद्धार ॥ २०१६क
अष्ट अंग जो योग के, राखो सदा समक्ष ।
करत करत अभ्यास ते, योग में हो जन दक्ष ॥ २०१६ख

मुलख राज इस विध समझाते, प्रेम से सब युवक सुन पाते ।
यम का भी उन्हें देते ज्ञान, अहिंसा सत्य वे लेते जान ।
अस्तेय का पालन करो जरूर, ब्रह्मचर्य से बनोगे शूर ।
अपरिग्रही नर वही कहावे, लालच बहुत न जो कर पावे ।
है लालच होती बुरी बला, यह दूर रहे तो तभी भला ।

यह सब बात मुलख बतलाते, नियम योग के भी समझाते ।
नियम में सारा काल बितावो, अमूल्य समय न व्यर्थ गंवावो ।
राखो शौच कर्म का ध्यान, उठ के प्रात करो असनान ।
साधन योग व स्नान ध्यान, ये सब प्रातः कर्म लो जान ।

दो० प्रातः काल जन जाग कर, शौच कर्म कर पाय ।
तन मन को वह शुद्ध कर, ईश्वर को ले ध्याय ॥ २०१७

मन से रहे सदा संतोषी, दिन भर कर्म करे निर्दोषी ।
ईर्षा लेश न चित्त में लाये, देख सुखी को दुःख न पाये ।
कर्तव्य कर्म से मुख न मोड़े, तप में अपना तन मन जोड़े ।
तपमय जीवन जिस का होवे, जग में वही सफलता गोवे ।
शास्त्र का नित्य करे जो पाठ, जाने योग के अंग वह आठ ।
श्रद्धा उस के मन उपजावे, श्रद्धा से फिर सिद्धि पावे ।
प्रभु के चरण रहें चित्त मांहि, नियम योग के पांच ये आंहि ।
आठों अंग ये योग वखाने, धर्म कर्म जन इन को जाने ।

दो० योग धर्म प्रभु राम ने, दीना जग को आन ।
पालन उस का जो करे, धर्मी नर वह मान ॥ २०१८

नित्य निरन्तर जन थे आते, मुलख राज से शिक्षा पाते ।
सन्देश प्रभु का मुलख सुनाते, योग मार्ग में सबन लगाते ।
प्रभु की लीला वे नित गाते, सरस भजन उन के मन भाते ।
मुलख राज इमि प्रभु दिवाना, शलभ जिमि शमह पै मस्ताना ।
मस्त होय विरह वचन उच्चारे, "आओ प्रभु, आओ प्रभु" पुकारे ।

वचन दिया जो उसे निभाओ, आओ प्रभु तुम नित २ आओ ।
हम ने तो था यह अनुमाना, होगा शीघ्र प्रभु तव आना ।
युग बीते पर तुम न आये, सबर हमारा मन किमि पाये ।
आओ प्रभु तुम शीघ्र आओ, बालक को आ संग ले जाओ ।

दो० संग बालक को ले चलो, जिधर गये हैं आप ।
विरह वेदन न सह सके, तव सेवक संताप ॥ २०१६

हे प्रभो अब मत तड़पाना, जल से बिछुड़ी मीन बचाना ।
चातक तृषित को आय संभालो, बिलंब प्रभु अब और न घालो ।
हम जानें तुम अन्तर्यामी, सुध फिर लेते क्यों न स्वामी ।
खेती सूखी आन बचाओ, इस हृदय का ताप बुझाओ ।
थल कौन जहां तुम नहीं रहते, फिर क्यों प्रकट नहीं हो जाते ।
आतुर भक्त पुकारें स्वामी, विरहित बहु हम अन्तर्यामी ।
गज की सुनी थी तुरत पुकार, क्यों देरी अब हमरी वार ।
द्रौपदी ने इक बार पुकारा, पल में मिला था उसे सहारा ।
कौन कर्म जिन से तड़पाओ, पुकार हमारी न सुन पाओ ।
आओ प्रभो तुम शीघ्र आओ, दर्शन दीजो विलंब न लाओ ।

दो० विलंब प्रभु किस हेत है, दीजो हमें बताय ।
चित्त हमारा धैर्य को, और न कुछ धर पाय" ॥ २०२०

इस विध काल था मुलख बिताता, प्रभु सिमरन पल २ कर पाता ।
बीस वर्ष प्रभु संग बिताये, विरह वेदन अब खूब सताये ।
प्रभु हेत जिस घर को छोड़ा, मात पिता से लीन बिछोड़ा ।

घर गृहस्थी सारी त्यागी, प्रभु चरणी ही प्रीति लागी ।
देह का भी जिस मोह त्यागा, प्रभु चरणी ही मन अनुरागा ।
प्रभु को मात पिता कर जाना, वन्धु बान्धव प्रभु को माना ।
धन दौलत बस प्रभु पग धूली, प्रभु हित जिस सब दुनिया भूली ।
जिस के सत्गुरु प्रभु हृदयेश, प्रभु को जाने ब्रह्म महेश ।
प्रभु को सिमर २ सब काल, प्रभु रूप भया जो स्वयं अपार ।

दो० उस मुलख के चित्त का, वर्णन सकत न होय ।
सागर का इक छोर ही, देख सके हर कोय ॥ २०२१

चित्त मुलख का सागर जानों, प्रेम के नीर से पूर्ण मानों ।
प्रभु का रूप जो मन में आये, प्रेम उमंग उत्तंग उठ पाये ।
प्रीत संगीत की एक तरंग, करती प्रकट अलौकिक रंग ।
आपा मुलख भुलावे सद्य, नशा चढ़ा हो पी जिमि मद्य ।
देहाध्यास सम्पूर्ण भूले, प्रभु के प्रेम में लेवे झूले ।
मुश्किल से फिर सुध संभाले, कर्म करे प्रभु आज्ञा पाले ।
आंखों में रहे मस्ती छाय, चढ़ी खुमारी उत्तर न पाय ।
जिस पै मुलख निज दृष्टि डाले, भक्ति के रंग में रंग डाले ।

दो० भक्ति के रंग में रंगे, नज़र एक ही डाल ।
जादू था उस नज़र में, अथवा योग कमाल ॥ २०२२

१३८. श्री मुलख राज का भक्तों को उपदेश

भक्त कई दिन भर चलि आयें, निज जिज्ञासा प्रकट सुनायें ।
योग संबन्धी पूछें बात, होय प्रभु का किमि साक्षात ।

हठ योग क्या हो लय योग, मन्त्र योग का क्या प्रयोग ।
राज योगी की क्या पहचान, अन्तर उपजे किस विध ज्ञान ।
तत्व विजयी नर किमि हो पावे, आठ सिद्धि किस योग से आवे ।
कलियुग में क्या संभव योग, अथवा देह किमि रहे निरोग ।
गृहस्थी कर सके क्या योग, इस विध प्रश्न करें आ लोग ।
मुलख राज सब की सुन पाते, धीरज से सब को समझाते ।
कहते "खेद की है यह बात, योग भुलाया सब ने तात ।
ऋषियों की हम हैं सन्तान, विसरा हम को अपना ज्ञान ।

दो० ऋषियन का यह ज्ञान है, चिर पुरातन मीत ।
भूल चुके हैं भारती, गहें विदेशी रीत ॥ २०२३

रीति अपनी सकल भुलाई, आंगल भाषा है अपनाई ।
शौचाचार सकल है त्यागा, तोड़ फैंका है गल का धागा ।
जो तारें मर्याद सिखावें, उन को हम क्यों गल में पावें ।
ऐसे जग के बने विचार, त्यागा प्राचीन आचार ।
हिन्दू भये हैं चोटी हीन, धर्म कर्म से छुट्टी लीन ।
परतन्त्रता को कर स्वीकार, छोड़ दिया सब धर्म विचार ।
ऐसा काल भयंकर देख, धर्म की हान व संकट पेख ।
कलातीत जो ब्रह्म अपार, धारा उस जग में अवतार ।
गण्डाराम के गृह वे आये, माता भागवन्ती के जाये ।

दो० अमृतसर के नगर में, संतसिंह के कूच ।
राम लाल के नाम से, प्रकटे ब्रह्म अनूप ॥ २०२४

धर्म हेतु प्रभु जग में आये, योग शक्ति को संग में लाये ।
बालपने से भये वैरागी, साधन योग की ही लिव लागी ।
बात यही धारी चित्त माहीं, योगी पूर्ण मिले गुरु सांई ।
देश देशान्तर दौरा लाया, योगी पूर्ण एक न पाया ।
मन में प्रभु ने तब अनुमाना, योग का लोप भया मैं जाना ।
जग में योगी न कोई पाऊं, आदि नाथ को गुरु अपनाऊं ।
आदि नाथ को ही गुरु धार, करूं जगत में योग प्रचार ।
योग बिना सब विचरें ऐसे, प्राणी प्राण बिना हों जैसे ।
उस का जीवन विफल निदान, योग बिना जो धारे प्राण ।

दो० योग बिना जीवन विफल, विफल प्राण बिन देह ।
विफल धर्म बिन कर्म ही, सकल विफल बिन नेह । २०२५क

ऐसा मन में धार कर, गये हिमालय मांझ ।
आदि नाथ को खोज वे, सेव करें दिन सांझ ॥ २०२५ख

ईश्वर ने गुरु ईश्वर धारा, जग आय फिर योग प्रचारा ।
एक छोर से दूजे छोर, पृथ्वी पै भई योग की भोर ।
योग का उदय भया मार्तण्ड, फैला योग सकल ब्रह्माण्ड ।
संस्कारी जन जहां जग माहीं, भया आकर्षण सब के ताहीं ।
ग्रहण शरण प्रभु को उन कीन, दीक्षा योग की सब ने लीन ।
मैं† भी था प्रभु नगरी रहता, उस आकर्षण को था वहता ।
उलझन में दिन रात बिताता, देख परन्तु कुछ न पाता ।

†श्री स्वामी मुलख राज जी अपने विषय में बतला रहे हैं ।

कौन शक्ति का था आकर्ष, कभी उदासी कभी था हर्ष ।
सोच सोच बुद्धि चकराई, सुधि मैं अन्त प्रभु की पाई ।
लक्ष्य जीवन का सन्मुख आया, चरणों में मैं जा गिर पाया ।

दो० चरणों में मैं जा गिरा, भूल गया सब लोक ।
जीवन के पा लक्ष्य को, विसर गया कुल शोक ॥ २०२६क
रात दिवस का भेद भी, रहा न मन में नेक ।
उदय भया चित्त भानु था, अस्त न हो क्षण एक ॥ २०२६ख

प्रभु जी कीना शक्ति पात, भूल गया मैं जग के नात ।
भया मुझ को बस यह प्रतीत, प्रभु जी मात पिता मम मीत ।
प्रभु से ही सम्बन्ध है साचा, जग का नाता सारा काचा ।
दिखाया प्रभु जी अपना रूप, जग से राखा जो उन गूप ।
दिव्य रूप जो प्रभु दिखाया, उस में मैं बस खो ही पाया ।
मानस मत्स्य बन्धा उस पाश, जगत प्रति वह भया हताश ।
सकल आश उस जग की त्यागी, केवल दिव्य दर्श लिव लागी ।
इक २ कर भये वर्ष व्यतीत, नित्य बढ़त प्रभु चरणी प्रीत ।
मैं ने इमि दश वर्ष बिताये, प्रभु के रूप में ही लिव लाये ।

दो० दश वर्ष उपरान्त फिर, प्रभु उठाया आप ।
मानव के वश कुछ नहीं, करे करावे आप ॥ २०२७

प्रभु विदाई जग से लीनी, मुझ को सेवा वृत्ति दीनी ।
प्रभु के भक्त जो रहे धनेरे, आय जुटे वे आश्रम मेरे ।
प्रीत प्रभु से बढ़त निरन्तर, प्रभु कृपा में लेश न अन्तर ।

प्रभु जी रहें सदा सब संगा, भये भक्त जन प्रभु के अंगा ।
प्रभु की शरण रहत जो प्राणी, करते रक्षा प्रभु महादानी ।
स्मरण करे जो प्रभु सप्रीत, बनें सहायक प्रभु यह रीत ।
तन का रोग व मन का सोग, हरते प्रभु जी बख्श के योग ।
आश्रम में सब जन यह लेखें, प्रभु की व्यापक शक्ति पेखें ।

दो० कण २ में प्रभु व्यापते, ऐसा जन लख पांय ।
भक्त जनों के नाथ जी, हृदय में बस जांय । २०२८क
प्रभु की पूजा प्रेम से, करत जो नर व नार ।
मनोरथ उस का पूर्ण हो, प्रभु की दया अपार" ॥ २०२८ख
स्वामी जी ने इस विध, कथन करी जब बात ।
भक्त कहें प्रभु धन्य हैं, हमें मिले साक्षात ॥ २०२८ग
स्वामी जी के रूप में, वे ही राम अनूप ।
शक्ति में नहीं भेद कुछ, बेशक भिन्न स्वरूप ॥ २०२८घ

विदा भक्त तब सब हो पाये, प्रभु की प्रीत न मनहिं समाये ।
रात बिताई फिर चलि आये, आकर चरणी शीश झुकाये ।
कहा भक्त इक "हमरे नाथ, उपदेशामृत से भये सनाथ ।
आप से हम को मिला जो ज्ञान, उस का किस विध करें बखान ।
रामलाल भगवान पधारे, योग से जीव अनेकों तारे ।
वही आप के गुरु महादानी, उनके सद्गुरु शिव कल्याणी ।
शिव हैं आदी योगी नाथ, उन को सभी झुकावें माथ ।
अमर ज्ञान इक शिव ने दीना, अमर कथा जिस को जग चीना ।

अमर कथा वह हमें सुनायें, वर्णित उसमें जो बतलायें ।

१३९. अमर कथा–शिव भवानी संवाद

दो० कौन कथा भगवान वह, अमर कथा जो नाथ ।
जन श्रुती यह हम सुनी, अमर भयें सुन गाथ ॥ २०२९

कौन ज्ञान उस में बतलाया, रहस्य कौन जो शिव समझाया ।
कौन युक्ति जो शिव बतलाई, अमर भया किमि जिस सुन पाई ।
गूढ़ बात निज मुख कथ पायें, आज हमें प्रभु यह समझायें" ।
सुन कर भक्तन की जिज्ञास, मुलख कथी तब बात यह खास ।
"भक्तो मैं तुमको बतलाऊँ, अमर कथा की गाथ सुनाऊँ ।
अमर कथा में ज्ञान अनूप, कथा योग इस में बहु रूप ।
सुने ज्ञान यह जो चित्त लाय, योग युक्त वह जन हो जाय ।
अमर करे जन को ही योग, सत्य बात यह जानें लोग ।

दो० अमर कथा में योग का, शंकर कीन बखान ।
प्रश्न भवानी था किया, शिव ने दीन ज्ञान ॥ २०३०क
सुन मुलख की बात यह, कहा भक्त ने "नाथ ।
प्रश्न कौन सा था किया, पार्वती निज नाथ ॥ २०३०ख

हम भी नाथ प्रश्न सुन पावें, शिव का उत्तर भी बतलावें ।
प्रसंग सकल यह लेवें जान, मिले योग का जिस विध ज्ञान" ।
सुन कर मुलख ने भक्त की बात, कहा सुनो ला चित्त हे तात ।
पार्वती के चित यह आई, जन्म बहु मैं भोग हूँ पाई ।
योगी मिला अब है भरतार, करे चौरसी से जो पार ।

सत्य बात उमा चित्त लाई, हो पत्नी पति की अनुयायी ।
पार्वती कहा 'हे प्रिय नाथ, सदा रहूँ मैं आप के साथ ।
यह संग छूटे न त्रिकाल, मार सके नहीं मुझ को काल ।
अजर अमर जिमि मैं हो जाऊं, ऐसा योग आप से पाऊं ।

दो० योगी स्वामी पाय कर, मार सके क्यों काल ।
शिव पत्नी यदि भव बहे, जग का क्या हो हाल ॥ २०३१

मैं आप से योग को पाऊं, अजर अमर जिस विध हो जाऊं ।
ऐसा योग मुझे बतलावें, हित मेरा प्रभु चित में लावें' ।
सुन कर शिव ने यह प्रिय वाणी, कहा "उमा हे जग कल्याणी ।
प्रश्न तुम्हारा मुझ को भाया, मोक्ष पाने का जो चित लाया, ।
जा एकान्त यह ज्ञान बताऊं, और न जहां हो तब समझाऊं ।
इस ज्ञान का जन अधिकारी, जग में विरला ही मम प्यारी ।
तुम को मैं यह ज्ञान सिखाऊं, जहां जग में सुनसान को पांऊं" ।
लेय शिवा शिव तभी पधारे, स्थान अनेकों देख उन डारे ।

दो० लांघ अनेकों सागर, और द्वीप अनेक ।
श्वेत द्वीप में आय कर, पर्वत देखा एक ॥ २०३२क
उस पर्वत के श्रृंग पर, बैठ स्थान एकान्त ।
वर्णन कीनी शिव तब, अमर कथा हो शान्त ॥ २०३२ख

शिव बोला "हे प्राण प्यारी, श्रवण करो अब कथा न्यारी ।
एकाग्र मन से सुन यह वानी, सुन कर फिर यह मनन में लानी ।
ब्रह्म आद सब देव अशेष, उन्हें दिया जो ज्ञान विशेष ।

वही ज्ञान तुम को बतलाऊँ, मार्ग योग मैं सरल दिखाऊँ ।
"ओं" का मन्त्र चित्त तुम धार, प्रणव बनाओ योग आधार ।
इस को मन्त्र राज पहचान, वेद का बीज इसी को मान ।
सिद्ध गन्धर्व ऋषि समुदाय, जाप करें इस का लिव लाय ।
इस मन्त्र का दिव्य प्रकाश, सूरज बहु जिमि उदें आकाश ।
अन्तः करण का करता शोध, मिलता इस से अन्तर बोध ।

दो० इसी मन्त्र के जाप से, ज्ञान पाय जन शुद्ध ।
विश्व रूप का दर्श कर, शीघ्र बने नर बुद्ध ॥ २०३३

जन्म मरण यह मन्त्र दुरावे, योगी का यह ध्यान दृढ़ावे ।
मोक्ष साधन हित जानो प्यारी, मन्त्र राज यह महा तम हारी" ।
सुन कर शिव की सुन्दर वाणी, बोली पार्वती कल्याणी ।
"प्राण प्रिय मुझे ध्यान बताओ, समाधि स्थित जिमि तुम हो पाओ ।
योगी योग युक्त जिमि होवें, ध्यान लगा जिमि मुक्ति गोवें ।
मैं भी वैसे ध्यान लगाऊँ, बैठ समाधि मुक्ति पाऊं ।
कृपा आप की हो जो नाथ, साधन योग से बनूं सनाथ ।
ध्यान समाधि में हो लीन, कर्म करूं सब ही मैं क्षीण ।

दो० कर्म करूं सब क्षीण मैं, मिले जन्म न बहुर ।
तव चरणों में चित्त रमे, देखे और न ठौर" ॥ २०३४

सुन कर पार्वती की वाणी, शिव बोले "हे जग कल्याणी ।
ध्यान योग की बात चलाई, श्रवण करो इस को मन लाई ।
संशय इस में नहीं है लेश, ध्यान करे क्षय पाप अशेष ।

अन्तः करण करे यह शुद्ध, ध्यान से होय उजागर बुद्ध ।
साकार रूप का कर के ध्यान, ईश्वर दर्शन मिले यह जान ।
रूप साकार चित्त जो लाय, ध्यान निरन्तर ही कर पाय ।
ज्ञान उदय हो उस मन मांहि, निराकार अनुभव में आंहि ।
देह रहित ईश्वर का ज्ञान, साक्षी रूप जो बसत जहान ।
निर्द्वन्द्व वा अरूप अनन्त, अनुभव करते योगी सन्त ।
अनन्त का अन्त न कोई पाय, योगी का चित्त वहीं समाय ।
इस विध ईश्वर का हो ज्ञान, योग से ही यह सम्भव जान ।

दो० निराकार में चित्त को, करे लीन सब काल ।
उस योगी को जानिये, ज्ञान मिले तत्काल ॥ २०३५क
पारब्रह्म की प्राप्ति, योग बिना न होय ।
योगी अपने ध्यान से, प्राप्त करे ब्रह्म सोय" ॥ २०३५ख
श्रवण करी जब पार्वती, पति की निश्चित बात ।
प्रश्न किया उस ने पुनः, ईश्वर से साक्षात ॥ २०३५ग

"देवों के तुम देव स्वामी, सब घट वासी अन्तर्यामी ।
कौन स्थान करूं मैं ध्यान, दीजो यह मुझ को प्रभु ज्ञान ।
कर कृपा मुझ को बतलावें, जन्म मरण से मुझे बचावें ।
साधन यह मृत्युञ्जय स्वामी, मुझे सुनावें अन्तर्यामी ।
बुद्धि अल्प है मेरी कान्त, भ्रांत मति मम करिये शांत ।
श्रवण करी जब शिव यह वाणी, उन जिज्ञासा बहु सन्मानी ।
मोक्ष साधन को जो जन चाहे, योगी से बहु आदर पाये ।

पार्वती को बोले स्वामी, "शुद्धमती तुम हो निष्कामी" ।
दो० शुद्धमती जो जन भये, जगत प्रति निष्काम ।
मुमुक्षु उस को जानिये, शांति का शुद्ध धाम ॥ २०३६
स्थान ध्यान का तुम्हें बताऊँ, उत्तम अंग उसे कह पाऊँ ।
शीर्ष देश में करिये ध्यान, जो है ज्ञान का मुख्य स्थान ।
अंग प्रधान यह देह में जानो, ज्ञान का केन्द्र इस को मानो ।
ईश्वर जो सर्वज्ञ स्वरूप, भासत यहीं भानु के रूप ।
सहस्त्रों रश्मि का वहां भान, होय न उस के भानु समान ।
उस में लीन होय जब चित्त, पड़े न बन्धन कर्म निमित्त ।
जीव को करत यह अमर ध्यान, उपजे जग में नहीं फिर आन ।
दिव्य ज्ञान को वह जन पाये, दिव्य लोक से लौट न आये ।
दो० उत्तमांग में ध्यान कर, अमर होय बिन खेद ।
अमर गति उस को मिले, पा कर गुरु से भेद ॥ २०३७
पा कर गुरु से योग का ज्ञान, विषय करें न चित्त को म्लान ।
दक्षिण मार्ग का कर त्याग, उत्तर मार्ग में चित्त लाग ।
कर के ग्रहण निर्धूम प्रकाश, जीव जाय सब लांघ आकाश ।
दक्षिण मग न योगी जावे, आवागमन में जो ले आवे ।
करे वह उत्तर को स्वीकार, जो पहुँचावे उस को पार ।
उस मार्ग का निर्देशक एक, योगी सद्गुरु जिस की टेक ।
भटके नहीं वह साधक लेश, ग्रहण करे जो गुरु उपदेश ।
रहे पकड़ जो गुरु का अंग, लेश न त्यागे उस का संग ।

वही जन पहुँचे उस प्रदेश, स्खलन का जहां न संशय लेश ।
दो० उत्तर मार्ग को गहे, दिन सम जहां प्रकाश ।
अनहद का संगीत भी, गूंजे उस आकाश ॥ २०३८

पाप ताप से मुक्ति पावे, उत्तर मार्ग जो अपनावे ।
पार्वती मैं सत्य बखानूं, उत्तर मार्ग उत्तम मानूं ।
इस मार्ग पर चलता सोई, मुक्ति का जो इच्छुक होई ।
जिस की साधना होय सकाम, उस का नहीं इस मग पै काम ।
सकामी अधो मार्ग अपनावे, जन्म मरण में फिर २ आवे ।
अधो मार्ग में मन्द प्रकाश, वहां पै धूम्र सम आकाश ।
वहां पै ज्योति चांद समान, दीखत नहीं उस मग पै भान" ।
सुन कर शिव का यह उपदेश, पार्वती कहा "हे हृदयेश" ।
दो० इतनी वाणी श्रवण कर, उमा कहा "हृदयेश ।
कृतकृत्य मैं हूँ भयी, सुन कर तव उपदेश ॥ २०३९

एक बात मुझ को बतलावें, योगी की कुछ महिम सुनावें ।
जो योगी यह मग अपनावे, जग में कर्म कैसे कर पावे ।
उस योगी का रूप बतावें, शक्ति उस की कथन में लावें ।
योगी शक्तिमान महान, ऐसा नाथ मेरा है ज्ञान" ।
सुन उमा की यह जिज्ञास, शिव बोला "तव सत्य विश्वास ।
योग करे सो शक्ति पावे, परिश्रम जन का व्यर्थ न जावे ।
योगी विष्णु रूप पहचानो, विष्णु से न भिन्न तुम मानो ।
योगी की जो सेव कमावे, उत्तम से फल उत्तम पावे ।

दो० योगी जन की सेव से, पार लगें नर नार ।
सेवक योगी राज का, कुल का तारण हार ॥ २०४०

योगी का जो करता दर्शन, करता योगी का पग पर्शन ।
उस का भाग्य कौन कथ पावे, पास उसी सब वैभव आवे ।
जात पात का भेद न होवे, योग करे सो सिद्धि गोवे ।
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य सुजान, अथवा शूद्र कोई इन्सान ।
जिस को गुरु योगी मिल पाये, करे योग वह पुण्य कमाये ।
योग से पुण्य धर्म को पावे, योग से पाप सकल बह जावे ।
योग से दुःख दर्द का हान, योग से पावें आत्म ज्ञान ।
योग से होवे चित्त निर्दोष, योग से ही जन पावे मोख ।
योग समान मैं क्या कथ पाऊं, हे उमा ! मैं तुझे बताऊं ।

दो० तुझे बताऊँ भामिनी, योगी सुख का सार ।
योगी के घट देव सब, योगी ज्ञान भण्डार ॥ २०४१

योगी रहता ब्रह्म में लीन, योगी के संग दीन अदीन ।
योगी रहत जो निश दिन युक्त, उस की शरण से जन हो मुक्त ।
जो योगी की शरण में जाये, मन वांछित फल बह नर पाये ।
योगी की प्रतिक्षण हो दाया, धन्य भया जो शरणी आया ।
गोमय की जिमि अग्न निरन्तर, योगी दया में पड़े न अन्तर* ।
उदय श्रेयस वह जन पावे, योगी की जो सेव कमावे ।

*जैसे गोमय (गोबर) को अग्नि में दबाने से सदैव अग्नि की प्राप्ति होती है तथैव योगियों की सेवा से अनवरत फलों की प्राप्ति होती है। (स्कन्ध पुराण नगर खण्ड २६२ अध्याय ६८ श्लोक)

महिमा का क्या हो विस्तार, योग की शक्ति का नहीं पार ।
हे देवी मैं तुझे बताऊँ, योग करो बस यह समझाऊं ।

दो० योग करो बिन खेद तुम, शिक्षा मेरी मान ।
सनक सनंदन आदि जो, करें योग यह जान ॥ २०४२क
जग में ऋषि मुनि जो भयें, और भयें अवतार ।
होगा उन को योग का, केवल एक आधार ॥ २०४२ख

योग से उपजत ज्ञान की जोत, ऋद्धि सिद्धि का हो उद्योत ।
योग करे वृत्तियों का रोध, योग से ही मिलेगा बोध ।
योग से ममता का हो क्षय, योग से चित्त वृत्ति का लय ।
योग से शाश्वत ब्रह्म ध्यान, योग से नाद का उपजे ज्ञान ।
योग से शब्द ब्रह्म का भास, योग से दशम द्वार में श्वास ।
योग से बहुर जन्म न होय, अमरत्व को जन योग से गोय ।
परमार्थ का है योग विधाता, योग ही जन को मुक्ति दाता ।
योग समान न अन्य उपाय, पार्वती मम निश्चित राय ।

दो० मेरा निश्चित ज्ञान यह, और यही विश्वास ।
योग बिना न मुक्ति हो, योग है विद्या खास ॥ २०४३क
उन्मनी की वह दशा, दशम द्वार जब चित्त ।
चित्त आकर्षित हो नहीं, किसी भी और निमित्त ॥ २०४३ख

हे उमा मैं तुम्हें बताऊं, मन वश की मैं रीत लखाऊँ ।
तामस कर्म का कर परित्याग, जीव जाय शुद्ध कर्म में लाग ।
ज्ञान के पथ पर वह चलि पाय, तामस मति उस की बह जाय ।

योग का मार्ग भये प्रशस्त, मोक्ष लगे फिर उस के हस्त ।
स्वयं तरे वह जग को तारे, उस के संगी लगें किनारे ।
देह गेह की ममता त्याग, चित्त रहे हरि भक्ति लाग ।
योग परायण इमि जो जीव, कर्म की लांघत वह जन सीव ।
कर्म करे प्रभु में चित्त युक्त, जन्म के बन्धन उस के लुप्त ।

दो० जन्म २ के बन्ध सब, शिथिल भयें अविलंब ।
योग युक्त जो जन रहे, गुरु का ले अवलंब ॥ २०४४

मन चंचल यह परम अपार, उस को जीते जो नर नार ।
उसका भाग्य उदय हो आवे, अश्वमेध से बढ़ फल पावे ।
मन की विजय न सरल है कार्य, इस को विजय करे जन आर्य ।
जिज्ञासु मुक्ति का जो होई, गुरु की शरण खोजे जन सोई ।
योगी सद्गुरु जब मिल पावे, उस का मन तब वश में आवे ।
मन के जीतन की जो रीत, मिले वह गुरु से करत जो प्रीत ।
गुरु योगी जो सर्व समर्थ, त्याग किया जिस ने जग अर्थ ।
और कीनि भव-वृत्ति त्याग, योग में ही जिस का अनुराग ।
ईश्वर का रहे सदा ध्यान, चित्त बसे जिस के दृढ़ ज्ञान ।
ऐसे गुरु की शरण जो जाय, चंचल चित्त को वश कर पाय ।

दो० चंचल चित हो वश तब, गुरु करावें योग ।
गुरु शरणी जो जन रमे, त्याग तमो गुणी भोग ॥ २०४५

गुरु का करे निरन्तर संग, मन रंगे गुरु ज्ञान के रंग ।
गुरूपदेश धार मन मांहि, श्रद्धा राखे सद्गुरु तांहि ।

सेव करे निश दिन चित्त लाय, मन वश ऐसा शिष्य कर पाय ।
जो उपदेश गुरु कथ पावें, अथवा जो आदेश सुनावें ।
उस का पालन जो कर पावे, वह शिष्य मन को वश में लावे ।
गुरु की चरणी कर जो वासा, गुरु से सीख चढ़ावे श्वासा ।
योग साधन हो जिस की नीति, गुरु से सीखी हो जिमि रीति ।
ऐसा जिस का होय आचार, मन जीतन का जाने सार ।

दो० सीख गुरु से लेय कर, करे निरन्तर योग ।
मन वश हो उस साध का, कहते सब इमि लोग ॥ २०४६

मन की क्या कथे कोई बात, मन तो चंचल है साक्षात ।
मन में उठें बवण्डर भारी, यत्न आय न कोई भी कारी ।
जागे सोय यह करे हताश, चंचल मन पै नहीं विश्वास ।
एक जगह मन टिक न पावे, बन्दर सम इत उत ही धावे ।
मुंह जोर जिमि अश्व पहचानो, तिमि मन का स्वभाव भी जानो" ।
कहे मुलख हे संगत सारी, करे जन की मन बहुत खवारी ।
बात यही शिव थी समझाई, पार्वती के चित्त जो आई ।
चंचल मन वश में तब आवे, गुरु की शरणी जब जन जावे ।

दो० गुरु की संगत बिन गहे, बली न मन हो शांत ।
गुरु मन्त्र को धार कर, शांत भये मन भ्रांत ॥ २०४७

१४०. वास्तविक दण्डी कौन ?

मुलख की वाणी सुन जब पाई, संगत के मन बात समाई ।
सचमुच मुलख मुलख के भूपा, रामलाल के शिष्य अनूपा ।

गुरु चरणों पै चित्त को वार, मुलख भया है जग से पार ।
मुलख का मन इस के आधीन, गुरु कृपा से इन वश कीन ।
एक बात हम इन से जानें, इन से कर के प्रश्न पहचानें ।
एक उठा तब बोल सुजान, आप ने दीना वहु विध ज्ञान ।
एक बात और बतलाइये, उचित हो तो तब समझाइये ।
लेते साध जो दण्ड को धार, उस दण्ड से किमि लें मन मार ।
मन किमि दण्ड की मार सहारे, दण्ड से किमि जन मन को मारे ।

दो० दण्ड धार कर हाथ में, किमि मन वश हो जाय ।
ज्ञान देवें यह नाथ जी, स्पष्ट बात हो पाय ॥ २०४८

संगत की सुन कर यह वाणी, उन के मन की मुलख पहचानी ।
खोज सत्य की जिस चित्त होय, प्रश्न करे जन इस विध सोय ।
श्री मुख से तब मुलख उचारा, दूर भये जिमि संशय भारा ।
"सज्जन वृन्द ! इक बात बखानूं, दण्डी न दण्ड से मैं मानूं ।
शिव था उमा को जो बतलाया, वही प्रसंग था प्रभु सुनाया ।
वह तुम को मैं अभी बताऊं, भ्रांति मन की सकल दुराऊं ।
दण्डी वह जो मनोदण्ड धारे, कर्मदण्ड को जो सत्कारे ।
वाग्दण्ड भी राखे पास, त्रिदण्डी ऐसा समझो खास* ।

दो० दण्ड तीन को धार कर, योगी बने सुजान ।
दोष निवारे दण्ड से, दण्डी वही पुमान ॥ २०४९क
दण्ड तीन को धार कर, निरञ्जन का पा ज्ञान ।

*वास्तविक दण्डी वही हैं जिस ने मन, कर्म और वाणी को वश में किया हो ।

ब्रह्म रूप हो वीचरे, संयमी वीर पुमान ॥ २०४९ख

संयमी जन जग में रह पावे, कर्म दोष न उसे सतावे ।
निर्भय हो कर विचरे सोई, दण्ड की महिमा जाने कोई ।
कर्म की शृंखल करे समाप्त, मोह पाश से होय न व्याप्त ।
ऐसा जन फिर मुक्ति पावे, बिन दण्ड मुक्ति हाथ न आवे ।
मोक्ष की जिस को हो जिज्ञास, सिद्ध पुरुष के जा कर पास ।
सेव करे चित्त को वह लाय, मोक्ष का मार्ग उस से पाये ।
सिद्ध पुरुष जन को सिखलावें, मोक्ष का मार्ग सरल बतावें ।
यम नियम जिस के आधीना, सिद्ध पुरुष वह जन प्रवीना ।
यम नियम पर चाले जोय, ईश्वर भक्त जो सज्जन होय ।
सिद्धि शीघ्र उस के पथ आवे, जीवन मुक्ति वही जन पावे ।

दो० ईश्वर भक्ति से मिले, मुक्ति सहज स्वभाव ।
करे कर्म जन धर्म-युत, उच्च रहे मन भाव ॥ २०५०क
सद्गुरु से जन ज्ञान ले, जिमि दीप से जोत ।
लीन होय फिर ज्ञान में, अन्तकरण उद्योत ॥ २०५०ख
लय योग की साधना, करे जीव को मुक्त ।
लय होय जन ज्ञान में, मिले जो सद्गुरु युक्त ॥ २०५०ग

योगी गुरु ही मुक्ति दाता, योगी जन का भाग्य विधाता ।
गुरु की हो जब कृपा खास, वस्तु दुर्लभ आये पास ।
गुरु कृपा बहु गुण उपजावे, गुण सम्पन्न जन मुक्ति पावे ।
समदृष्टि कर्तव्य परायण, चित्त बसे जिस के नारायण ।

मुक्त भये वह जन गुणधारी, कथी कथा थी यह त्रिपुरारी ।
अमर कथा इस का अभिधान, अमल* करे भये अमर सुजान ।
अमर कथा का अमर ज्ञान, पढ़े सुने जो ला कर ध्यान ।
मनन करे फिर सह अभ्यास, दशमें द्वार चढ़ावे श्वास ।
ऐसा जन अमरत्व पावे, बहुर जन्म में वह न आवे ।

दो० अमर कथा उपदेश को, श्रवन करे ला ध्यान ।
अमर भये वह साध जन, साध के मन व प्राण ॥ २०५१

सुन कर मुलख से दिव्य उपदेश, संगत के चित हर्ष विशेष ।
बोल उठे सब एक आवाज, "धन्य भये सब ही हम आज ।
धन्य धन्य मुलख महाराज, कृतार्थ कीना सब को आज ।
अमृत पान हम ने कर पाया, कर्णरन्ध्र से चितहिं समाया ।
धन्य धन्य हो राम तुम्हारी, जिन के शिष्य ऐसे अवतारी ।
किरपा दृष्टि जो इक डाल, जड़ चेतन को करें निहाल ।
जय राम जय राम हे लाल, जय जय जय जय परम दयाल ।
जय जय जय जय किरपा नाथ, दीन जनों को कीन सनाथ ।
जय जय जय कलि युग अवतारी, जय जय जय हो सदा तुम्हारी ।
जय जय जय सुत गण्डा राम, भागवन्ती के नयन अभिराम ।
जय जय जय अमृतसर जाये, जय जय जय भक्तन हित आये ।
जय जय जय साधुन के प्यारे, बालपने तुम वनहिं सिधारे ।

दो० जय तुम्हारी राम हो, जय मुलख हे राज ।
जय जय जय जन सब कहें, सकल जगत में आज ॥ २०५२

*अमल करना=आचरण करना

जय हो राम सकल सुख दाता, जय जय जय हे जगत विधाता ।
जय राम जिन वृद्धा तारी, जय राम जिन रामा उबारी ।
जय राम हरिनन्द अपनाया, राम रती वरदान को पाया ।
मार्ग वाम का खोला पोल, भक्तन चित्त तुम रहत अडोल ।
राजा रण सिंह शरण लगाया, नाग जनों को तुम अपनाया ।
भेद भाव कुछ चित्त न लाया, आप ही जानो अपनी माया ।
उच्च हिमालय कीन पयान, गुरु मिलें चित्त ठानी बान ।
महा प्रभु खुद चल के आये, स्वागत में जिन कदम बढ़ाये ।

दो० उच्च हिमालय में तुम, रह कर सद्गुरु पास ।
भूले नहीं अनाथ जन, आन बंधाई आस ॥ २०५३क
जय तुम्हारी हो प्रभु, जय मुलख जी राज ।
राम तराया मुलख को, मुलख तारे जग आज ॥ २०५३ख
जय जय जय जय राम की, जय जय जय योगेश ।
जय जय गण्डा राम सुत, जय जय जय मुलखेश" ॥ २०५३ग

१४१. सेवक का श्री सद्गुरुदेव मुलखराज जी महाराज की शरण में आना ।

इस विध भक्त भक्ति रस पागे, जय जय जय सब बोलन लागे ।
सुधासर भया सुधा रस पूर, भक्ति के रस जन गण चूर ।
मुलख राज की कीर्ती छायी, कथें सुनें सब लोग लुगायी ।
"सेवक" ने भी कुछ सुन पाया, चल कर इक दिन चरणि आया ।
लवपुर आश्रम था वह प्यारा, जहां मुलख जी था पग धारा ।

सब भक्तों ने था यह जाना, मुलख राज का लवपुर आना ।
श्रद्धा सहित वे चल के आये, चरणी सब ने शीश झुकाये ।
प्रभु का था इक उच्च सिंहासन, नीचे मुलख का लागा आसन ।
सन्मुख भक्त विराजे सारे, सेवक बैठा एक किनारे ।

दो० एक किनारे बैठ कर, पाये प्रभु के दर्श ।
रूप प्रभु का देख कर, मन में उपजा हर्ष ॥ २०५४क
मन में उपजा हर्ष था, विसर गया कुछ चेत ।
अनुभव नूतन था भया, क्या जानूं किस हेत ॥ २०५४ख

मुलखराज का तेज स्वरूप, गौर वर्ण और सुन्दर रूप ।
सरल वेश व मधुर स्वभाव, निरख पड़ा चित्त बहु प्रभाव ।
देह गेह की सुधी विसारी, वृत्ति रमी प्रभु रूप में सारी ।
भक्तन संग श्री मुलख संवाद, सुन कर चित्त में भया आह्लाद ।
कहा मुलख ने भक्तन ताहिं, "श्रवण करो तुम सब चित्त लाहिं ।
जब २ धर्म नाश हो जावे, प्रभु अवतार लेय कर आवे ।
कलि युग में जब धर्म नसाया, धरा को पाप ने आन दबाया ।
आचार विचार का भया विनाश, धर्मी सज्जन हुये हताश ।
घर घर बढ़ा पाप का कोप, सदाचार का सब जां लोप ।
विद्वान बने मायानुरागी, क्षत्रिन ने निज वृत्ति त्यागी ।
लोभी वैश्य भये भरपूर, हट गये शूद्र सेव से दूर ।
वर्णव्यवस्था दुर्ग जो भारी, उन की उखड़ी चार दीवारी ।
चातुर्वर्ण के टूटे बांध, पाप लगावे खुल कर सांध ।

दो० व्यवस्था चातुर्वर्ण की, स्नातन जिस की लीक ।
कलियुग में खण्डित भयी, विस्तृत कर्म अलीक ॥ २०५५

घोर समय जब चल कर आया, धर्म हेतु प्रभु रूप धराया ।
ब्राह्मण कुल में लीन अवतार, राम लाल धरा देह करतार ।
विद्या पढ़ी बने विद्वान, योगी भये वे सिद्ध महान ।
देश देशान्तर में फिर जाय, बहु जिज्ञासु सिद्ध बनाय ।
अमृतसर फिर कीना वास, राज रंक भये उन के दास ।
उन की शरणी जो जन आया, योग साधन में उसे लगाया ।
साध्य असाध्य रोग निवारे, कीन सुखी शरणागत भारे ।
योग से जग के पाप दुराये, सत्य अहिंसा नियम बताये ।

दो० सत्य अहिंसा नेम जो, कथन करें सद्ग्रंथ ।
रामलाल भगवान ने, वही दिखाया पंथ ॥ २०५६

राम की शरणी जो जन लागा, भया वह योग पंथ अनुरागा ।
लीना उस यम नियम को धार, आसन योग कीन स्वीकार ।
प्राणायाम से भयी प्रीत, प्रत्याहार की मानी रीत ।
धारणा ध्यान समाधि लगाई, प्रभु चरणों में प्रीत दृढ़ाई ।
मार्ग योग अनुपम भाई, महिमा निगमागम है गाई ।
ऐसा योग था जग ने भूला, भूला योग माया में झूला ।
प्रभु जी कीना योग उद्धार, भया जगत में फिर प्रचार ।
योग का नाम पड़ा जग कान, योग महत्व लीना जान ।

दो० लीना फिर था जगत ने, योग महत्व जान ।

योग योगेश्वर नाथ के, गहे चरण तब आन ॥ २०५७
जो जन शरणी चल कर आया, योग मार्ग को उस अपनाया ।
भरम जगत के प्रभु दुराये, ज्ञान पाया शरणि जो आये ।
जगती चरण प्रभु के लागी, भ्रांत मति जग की सब भागी ।
योग धर्म से भयी प्रीत, नाशी सकल मती विपरीत ।
कीने आश्रम प्रभु स्थापित, योग ज्योति जिमि रहे प्रकाशित" ।
कहा मुलख ने "लो सब जान, प्रभु की शरण को उत्तम मान ।
प्रभु का जाप करो सप्रेम, सकल भये जिमि मंगल क्षेम ।
निर्बल के प्रभु बल बलवन्ता, सहायक सखा सुखद दुखहन्ता ।
निःसहायों के वे मीत सहायक, भाग्यहीन के भाग्य विधायक ।
गुणहीनों के प्रभु ही गुण हैं, दरिद्र के धन दानी महा हैं ।

दो० कुल अकुलीन के हैं प्रभु, पंगुर के कर पांव ।
अंधे की वे ज्योति हैं, संग बसें सब ठांव ॥ २०५८क
भूखों के मां बाप हैं, निराधार आधार ।
भव जल के प्रभु सेतु हैं, सब विधि सुख के सार ॥ २०५८ख
पतित हो पावन सब विधि, प्रभु का कर गुण गाण ।
पत राखी जिन मुलख की, चरणों का दे दान ॥ २०५८ग

जो भक्त मम बात को माने, प्रभु को परब्रह्म कर जाने ।
प्रभु से करे सहज अनुराग, जले न जग की फिर वह आग ।
कलि का दोष निकट न आवे, प्रभु के नाम से कलि भय खावे ।
यम नियम सब गुण वह पावे, वाम विधि भी बाध न लावे ।

प्रभु पग का ले एक सहारा, रहे न दर दर भटकन हारा ।
कामतरु प्रभु को कर जानो, सर्व सुखों के दाता मानो ।
कौन आस पूजे न उन से, सधे जन का परमार्थ जिन से ।
ऐसे प्रभु से चित्त चुराना, निज हित से है द्रोह कमाना ।

दो० अपने हित के वासते, करो प्रभु से प्रेम ।
योग भक्ति का धार लो, दृढ़ जीवन में नेम ॥ २०५९

प्रभु से बड़ा न जग में कोई, प्रभु कृपा जब असमति होई ।
सब देश सब काल निरन्तर, प्रभु बसहिं तब जन के अन्तर ।
सर्वज्ञ प्रभु को जो जन ध्याये, पाप कर्म किमि वह कर पाये ।
सभी भक्तन को मम उपदेश, प्रभु प्रकटे कलि में इस देश ।
रामलाल शुभ उनका नाम, भक्तों का करें पूरण काम ।
उन को सब जन चित्त में लायें, उन की ही सब शरण ग्राहें ।
मानव जन्म का लाभ लो जान, प्रभु जी की कर के पहचान ।
धन्य कहो तुम मिल सब भाई, धन्य प्रभु भक्तन सुखदाई" ।

दो० "धन्य धन्य" तब सबन ने, कहा "धन्य प्रभु राम" ।
नत मस्तक सब जन भये, जान प्रभु सुख धाम ॥ २०६०

मुलखराज का सुन उपदेश, उपजी चित्त में भक्ति विशेष ।
इस 'सेवक' जा माथ झुकाया, नाम धाम अपना बतलाया ।
योग प्रति जिज्ञास जतायी, बात मेरी उन सब सुन पायी ।
संग मुझे भी उन तब लीना, [1]स्टेशन को प्रस्थान जो कीना ।

१. रेल गाड़ी का लाहौर स्टेशन ।

गाड़ी में वे भये अस्वार, अमृतसर को गये पधार ।
मैं लौटा निज होस्टल[1] आया, विलक्षण मन में हर्ष समाया ।
पड़ा विलक्षण इक प्रभाव, मन में उपजे अद्भुत भाव ।
"योग कमाऊं, योग कमाऊं" यह धुन इक मैं मन में पाऊं ।

दो० बैठे उठते सोवते, रहत यही मन भाव ।
योग साधन मैं सीख लूं, रहे यही चित्त चाव ॥ २०६१

आश्रम में मैं जाने लागा, योग साधन का हो अनुरागा ।
साधन सीखे बहु उस काल, वर्णूं अब निज मन का हाल ।
जीवन से मैं भया विरागा, उन्मना बस रहने लागा ।
जग के काम भये निःसार, योग से पाऊं जीवन सार ।
प्रभु से प्रीत उपजी तत्काल, लागत जग प्रभु बिन अन्धयार ।
प्रभु सिमरूं तब मन प्रकाशा, प्रभु बिन मन का तिमिर आकाशा ।
प्रभु कृपा बहु भई उस काल, समक्ष रहें प्रभु ही सब काल ।
प्रभु का तेजस रूप ललाम, बना था तन प्रभु का शुभ धाम ।
मन भया प्रभु में खुद को भूल, तन भी भया मन के अनुकूल ।

दो० तन मन दोनों थे भये, प्रभु सिमरन में लीन ।
सूझत काम न दूसरा, भयी वृत्ति अति क्षीन ॥ २०६२

जागत सोवत धुन इक लागी, तन मन हो जिमि लागी आगी ।
दशा न हो वर्णन अनुरागी, बुद्ध अलौकिक धुन में पागी ।
चांद जिमि चातक को मोहे, पंकज को जिमि भानु सोहे ।

१. सैन्ट्रल ट्रेनिंग कालेज लाहौर का होस्टल । जहां लेखक विद्यार्थी था ।

कुरंग जिमि हो राग अनुरागी, शलभ पड़े जिमि दीपक आगी ।
चुम्बक लोह का जो संबंधा, बंधा तिमि मैं प्रभु के बंधा ।
प्रेम का बंधन कठिन अपार, सूक्ष्म दृढ़ जिमि नायलन[1] तार ।
मन की गति को मन ही जाने, अन्य कोई न उसे पहचाने ।
मन खोजी मन खोजन हार, मन देखे मन मांहि अपार ।

दो० गुरु कृपा से जब भये, मन में ईश्वर प्यार ।
बिंबित तब मन में भये, निरंजन का दीदार ॥ २०६३

दिव्य दीदार प्रभु का पाया, प्रभु ने एक रहस्य बताया ।
"मुलखराज सद्गुरु को पाओ, योग हेत शरणी तुम जाओ" ।
दिव्य बात यह मनहिं समायी, आतुरता वह कथी न जायी ।
छेहरटे[2] मांझ गया तब दास, स्वामी[3] से निज कही जिज्ञास ।
प्रभु दर्शन की बात बतायी, निज अनुभूति कथन में लायी ।
"कर कृपा मुझ को अपनाओ, भटक रहे को राह दिखलाओ ।
मंझधार से इसे निकारो, डूब रहा हूँ मुझे उबारो ।
पाप भरा यह पापी तारो, दर आये को न दुत्कारो ।
अन्तर्यामी जानो मन की, पत राखो इस शरण पड़े की ।

दो० पत राखो इस दास की, सुनिये मम अरदास ।
जगद्गुरु इक आप हैं, पूर्ण करिये आस" ॥ २०६४

विनय इमी जब मैं कथ पाई, किरपा मन में स्वामी लाई ।

१. NYLON !
२. योग साधन आश्रम छेहरटा (अमृतसर)
३. श्री स्वामी मुलखराज जी महाराज ।

आश्रम में मुझ को ठहराया, सेव हेत कुछ कर्म बताया ।
क्षण २ देते थे उपदेश, निर्मल मन जिमि भये मम लेश ।
मन मलिन किमि योग कमावे, निर्मल हो तो स्थिर हो पावे ।
सतगुरु किरपा जिस पर करते, सेव कर्म दे मनोमल हरते ।
बिन सेवा नहीं बनती बात, सेव करे शुद्ध बुद्ध, मन, गात ।
पूरण सद्गुरु सेव बतावें, सेवक के जिमि दोष दुरावें ।
करें सुपातर पातर धोय, वस्तु पड़े तब मलिन न होय ।

दो० निर्मल बुद्धि होय जन, निर्मल मन का कोष ।
सद्गुरु फिर जो सीख दें, रहे शुद्ध निर्दोष ॥ २०६५क
सुन्दर वेला देख फिर, पास बुलाया नाथ ।
गुरु मन्त्र की सीख दी, इष्ट देव भी साथ ॥ २०६५ख

"इष्ट देव में चित्त टिकाना, मन्त्र श्वासों में जप पाना ।
भूल कुसंग में कभी न जाना, संगत साध की को अपनाना ।
ध्यान भजन का त्याग न करना, विषयों को न चित्त में धरना ।
प्रभु पै रखना दृढ़ विश्वास, जग से रखनी लेश न आस ।
आत्मा का कर स्वयं उद्धार, माया करे न तुम को खवार ।
प्रभु की शरण गहो सब काल, रक्षक बनें जो तीनों काल ।
दीन दुनी के वाली नाथ, सौंपो निज जीवन उन हाथ ।
समर्थ प्रभु तव करे संभाल, जगत करे जब तुम्हें निढाल ।

दो० जगत भयंकर जानिये, भटके जीव अनाथ ।
रक्षक प्रभु पहचानिये, पग २ रहते साथ" ॥ २०६६

सुन्दर शिक्षा सद्गुरु दीनी, मौन भाव से जो मैं लीनी ।
बैठ गया तब जाय एकान्त, चित्त भये जिस विध मम शांत ।
नभ की वाणी तब सुन पाई, ओं उच्चारण की ध्वनि आई ।
मधुर ध्वनि और मधुरालाप, तीन बार वह भया था जाप ।
शांत भयी जब थी नभ वाणी, दर्शन दीने प्रभु महादानी ।
त्रिकुटी में वह तेज स्वरूप, वर्णित हो नहीं उन का रूप ।
जीवन का वह रूप सहारा, सत्य वचन था गुरु उच्चारा ।
प्रभु का रूप जो अन्तर आया, गुरु किरपा से संबल पाया ।

दो० प्रभु का दर्शन क्या मिला, मिला कल्पतरु आय ।
पूर्ण भयी मम कामना, चित्त टिका इक थाय ॥ २०६७क
गुरु कृपा से थी मिली, दिव्य निधि खुद आय ।
गुरु कृपा जब होत है, पापी भी तर जाय ॥ २०६७ख

गुरु कृपा से ईश मिलाप, गुरु कृपा से प्रकटे आप ।
गुरु कृपा श्रद्धा उपजावे, गुरु कृपा नर भक्ति पावे ।
गुरु कृपा से मिलता ज्ञान, गुरु कृपा सन्मुख भगवान ।
गुरु कृपा नर ऋद्ध सिद्ध पावे, गुरु कृपा सन्तोष उपजावे ।
गुरु कृपा से इष्ट मिलाप, गुरु कृपा नाशे संताप ।
गुरु कृपा से नर अधिकारी, गुरु कृपा बहु मंगल कारी ।
गुरु कृपा मन थिर हो जाये, गुरु कृपा सद्बुध उपजाये ।
गुरु कृपा क्या करे न काम, गुरु कृपा से मिलते राम ।

दो० गुरु कृपा से मिलत हैं, राम भक्त को आय ।

धन्य भया यह जीव भी, सद्गुरु कृपा पाय ॥ २०६८

गुरु पाया मन थिर हो आया, गुरु पाया स्वरूप लखाया ।
गुरु पाया मन्त्र प्रकटाया, गुरु पाया तो भरम नशाया ।
गुरु पाया चल ज्ञान भी आया, गुरु पाया संदेह दुराया ।
गुरु पाया जीवन मग पाया, गुरु पाया भविष्य लखाया ।
गुरु पाया कणकण प्रकाशा, गुरु पाया मन मोह विनाशा ।
गुरु पाया जग जाल छुटाया, गुरु पाया गुरु का हो पाया ।
गुरु पाया मन धीरज आया, गुरु पाया कर्तव्य लखाया ।
गुरु पाया मैं रक्षक पाया, गुरु पाया जिस गले लगाया ।

दो० गुरु रक्षक जब मिल गये, धैर्य भया मन मांहि ।
दशा विलक्षण जो भयी, कथन करूं किस तांहि ॥ २०६९क
दोषनिधि भी जन भये, गुरु लें यदि संभाल ।
दुर्गति से वह जन बचे, छुये न उस को काल ॥ २०६९ख
लखाया सद्गुरु बहु विध, हैं वे रक्षण हार ।
भुज शरणागत की गहें, समर्थ गुरु करतार ॥ २०६९ग

आस मेरी पूर्ण हो पाई, तब आश्रम से लीन विदाई ।
लौट के लवपुर में मैं आया, नित्य कर्म में चित्त लगाया ।
प्रभु जी संग रहें हर काल, ऐसा था कुछ भया हवाल ।
चित्त भया प्रभु का अनुगामी, सृष्टी सिगरी के जो स्वामी ।
वे हैं कर्ता सर्व समर्थ, चित बसा बस मम यह अर्थ ।
प्रभु भावे बस होता सोई, जन के बस कुछ भी न होई ।

प्रभु की माया अपरम्पारा, रचा उसी ने सकल पसारा ।
पल में सकल रचे संसार, पल में प्रलय करे इकबार ।
पल में तोड़े पल में जोड़े, भक्त प्रभु से मुख न मोड़े ।

दो० भक्ति वश मन देखता, प्रभु की महिम अपार ।
जग का सिरजन हार वह, राम प्रभु करतार । २०७०

सिरजन हार वह पालन हार, उस के वश में सब संसार ।
उस के वश में देव व दानव, उस के वश में सिगरे मानव ।
उस के वश में लोक लोकेश, उस के सन्मुख किस की पेश ।
आज्ञा उसकी में सब कोई, टाल सके को ऐसा होई ।
मुर्दों में वह डाले जान, आवें लौट निकले जो प्राण ।
उस की किरपा जब जन पावे, सिद्ध पुरुष जग में हो जावे ।
आज्ञा उस की सब से ऊपर, टाल सकें न कोई भी भूपर ।
उस भगवान के सभी अधीन, लागें प्रिय जो हों जन दीन ।

दो० प्रभु सन्मुख जो दीन हो, भूले निज अभिमान ।
प्रिय प्रभु का होत वह, सब से पाता मान ॥ २०७१

प्रभु किरपा से पावे मान, प्रभु किरपा करे मुक्त सुजान ।
प्रभु किरपा से उपजत ज्ञान, प्रभु किरपा से सिद्धि महान ।
मानव के कुछ वश न होई, प्रभु किरपा जिमि होता सोई ।
मानव के यदि वश में आये, इक पल में सब कुछ वह पाये ।
प्रभु की शक्ति को जो ध्यावे, पापों से वह जन बच पावे ।
प्रभु की शक्ति को जो ध्यावे, भक्ति में वह ही रम पावे ।

प्रभु की शक्ति को जो ध्यावे, प्रभु का प्यारा वह हो जावे ।
प्रभु की शक्ति को जो ध्यावे, भव दुख क्यों कर वह सह पावे ।

दो० प्रभु की शक्ति ध्याय कर, करे जो प्रभु से प्यार ।
प्रभु में ही तो मन बसे, होय न जीव खवार । २०७२क
रे मन करता क्यों नहीं, प्रभु चरणों से प्यार ।
तेरा पर कुछ वश नहीं, मेरे पाप अपार ॥ २०७२ख

जो मैं अपने पाप निहारूं, लज्जा से न आंख ऊघारूं ।
विपरीत कर्म सब भांति मेरा, फिर भी कहूँ मैं प्रभु का चेरा ।
मंद कर्म किमि अपने गाऊं, शक्ति निज में वह न पाऊं ।
नारद शारद शेष भी आवें, दोष मेरे सब गिन न पावें ।
यम नियम हैं कहे प्रभु सारे, मैं बैठा हूँ दूर किनारे ।
निज में एक भी गुण न लाऊं, किस विध प्रभु के सन्मुख जाऊं ।
अहिंसा को क्या पाल दिखाया, मैं तो जग से वैर बढ़ाया ।
सच से मुझ को लागे भय, छिपावूं अपने दोष अनय ।

दो० अपने दोष अनीति मैं, रखूं गुप्त यह सोच ।
जग को बोध न हो जिमि, यश मिले मोय पोच ॥ २०७३

बहु विध कीने जो हैं पाप, उन्हें दुराऊं यत्न यह आप ।
जो जन कहें कुछ मेरे दोष, सच पर आवे मुझ को रोष ।
जो नहीं मेरा यश बखाने, मन मेरा उसे शत्रु माने ।
शिक्षा क्या है प्रभु की ऐसी, उलटी चाल चले तू जैसी ।
प्रभु कहें अस्तेय को पालो, चोरी की मत आदत डालो ।

पर हैं तेरे खेल न्यारे, छिप २ करता कारज सारे ।
देख किसी की वस्तु सुन्दर, झपट पड़ो जिमि हो तुम बन्दर ।
संयम में न रह तुम पावो, फिर भी प्रभु के शिष्य कहावो ।

दो० प्रभु की दीन दयालुता, बेशक परम अपार ।
दोष दुरावें भक्त के, कृपा उर में धार ॥ २०७४क
तू भी पर कुछ चेत कर, प्रभु की शिक्षा पाल ।
सन्मार्ग को ग्रहण कर, करो आत्म उद्धार ॥ २०७४ख

तेरे कर्म हैं उलटे सारे, वासनिक भाव भरे हैं भारे ।
ब्रह्मचर्य व्रत प्रभु सिखाया, क्या तुम ने वह पाल दिखाया ।
प्रभु की सीख परिग्रह त्यागो, माया जाल में मत तुम पागो ।
तू ने संचय जाल बिछाया, दृढ़ पाश में निजहिं फंसाया ।
प्रभु की सीख मानो जब नाहीं, कैसा शिष्य बता मुझ पाहीं ।
माखी डूब मधु में जाये, तिमि परिग्रह तुम्हें डुबाये ।
मुक्ति की तो बात रही दूर, घुट घुट मरे तू यहीं ज़रूर ।
लायी न चित्त में प्रभु की सीख, फंस गये कोई सुने न चीख ।

दो० प्रभु की शिक्षा भूल कर, पड़ा मोह के जाल ।
बीती आयु बहुत है, अब तो होश संभाल ॥ २०७५

शौच की शिक्षा प्रभु जी दीनी, मन्दमति ने वह नहीं चीनी ।
घट मैला और चित्त मलीन, अन्त रोयेगा बन कर दीन ।
अब भी लो कुछ होश संभाल, सीख प्रभु की को लो पाल ।
प्रभु जी बड़े हैं दीन दयाल, शरणागत के वे प्रतिपाल ।

तन मन को तुम राखो शुद्ध, निर्मल हो जिस विध तव बुद्ध ।
निर्मल बुद्ध है सुख का मूल, रे मन इस को मत तू भूल ।
कहें प्रभु संतोष लो धार, ईश्वर इच्छा कर स्वीकार ।
इस शिक्षा को नहीं अपनाया, इक इक तिल पै गिड़गीड़ाया ।

दो० सीख प्रभु की भूल कर, होता नर परशान ।
क्यों भूला आदेश को, रे मन तू अनजान ॥ २०७६

योग का मार्ग तप का मार्ग, उत्तम जानो यह सन्मार्ग ।
प्रभु जी यह था मग अपनाया, जग को भी था यही सिखाया ।
रहता तू है तप से दूर, विषयों के मद में हो चूर ।
प्रभु की सीख न यदि अपनाये, सद्गति किस विध तव हो पाये ।
धर्म हेतु प्रभु जग में आवें, धर्म का जग को पाठ पढ़ावें ।
जन न उस पै ध्यान जो देवे, मन के ही जो काम को सेवे ।
प्रभु का कोप उसी पै होवे, प्रभु का दण्ड पाय तब रोवे ।
प्रभु ने जग को कहा लो जान, शास्त्र के हों वचन प्रमाण ।
योग शास्त्र का करो अध्ययन, श्रवण करो गीता के बयन ।
श्रवण करे जो नित चित्त लाय, गीता के उपदेश सुहाय ।
योग से होगी उस की प्रीत, प्रभु कथी स्वाध्याय की रीत ।

दो० रे मन तू इस रीत से, लीना क्यों मुख मोड ।
गीता के अध्ययन बिन, मिले न निर्मल ठौड ॥ २०७७क
प्रभु बताया योग का, मार्ग उत्तम जान ।
मार्ग पर जो न चले, न निज पहुँचे स्थान ॥ २०७७ख

योग का मार्ग प्रभु बताया, चले वही जिस पर प्रभु दाया ।
प्रभु विमुख न प्राणी चाले, गिर विषयों में जीवन घाले ।
योग धर्म में वह जन आये, प्रभु भक्त जो बन दिखलाये ।
प्रभु भक्ति जो कथन में आती, ईश्वर का प्रणिधान कहाती ।
प्रभु समर्पित तन मन होवे, प्रभु प्रेम में जागे सोवे ।
प्रभु समर्पित होंय सब काम, निकसे मुख से हर दम राम ।
आवे जावे श्वास प्रश्वास, प्रकट करे प्रभु में विश्वास ।
रोम २ हो प्रभु का प्रेम, रोमाञ्चित हो हर दम यह नेम ।
बसे दृष्टी में राम स्वरूप, अन्य न आवे सन्मुख रूप ।

दो० ईश्वर का प्रणिधान यह, समझ लवो मन मोर ।
प्रभु समर्पित होय रहो, हित है इस में तोर । २०७८क
पापी दुर्जन जन भये, पाप हो जिस का काम ।
उस को भी लें शरण में, ऐसे प्रभु हैं राम ॥ २०७८ख
पाप निवारें भक्त के, लगे न उस का दाम ।
शरण पड़े की पत गहें, ऐसे प्रभु हैं राम ॥ २०७८ग
दुःखी जीव जो जगत में, विधना जिस के वाम ।
करें सुखी उस जीव को, ऐसे प्रभु हैं राम ॥ २०७८घ
जन्म जन्म का जो दुःखी, यदि आये प्रभु धाम ।
कष्ट कटें उस जीव के, ऐसे प्रभु हैं राम ॥ २०७८ङ
रे मन निशि दिन जपत रह, राम प्रभु का नाम ।
उन सम तो को हैं नहीं, जैसे प्रभु हैं राम ॥ २०७८च

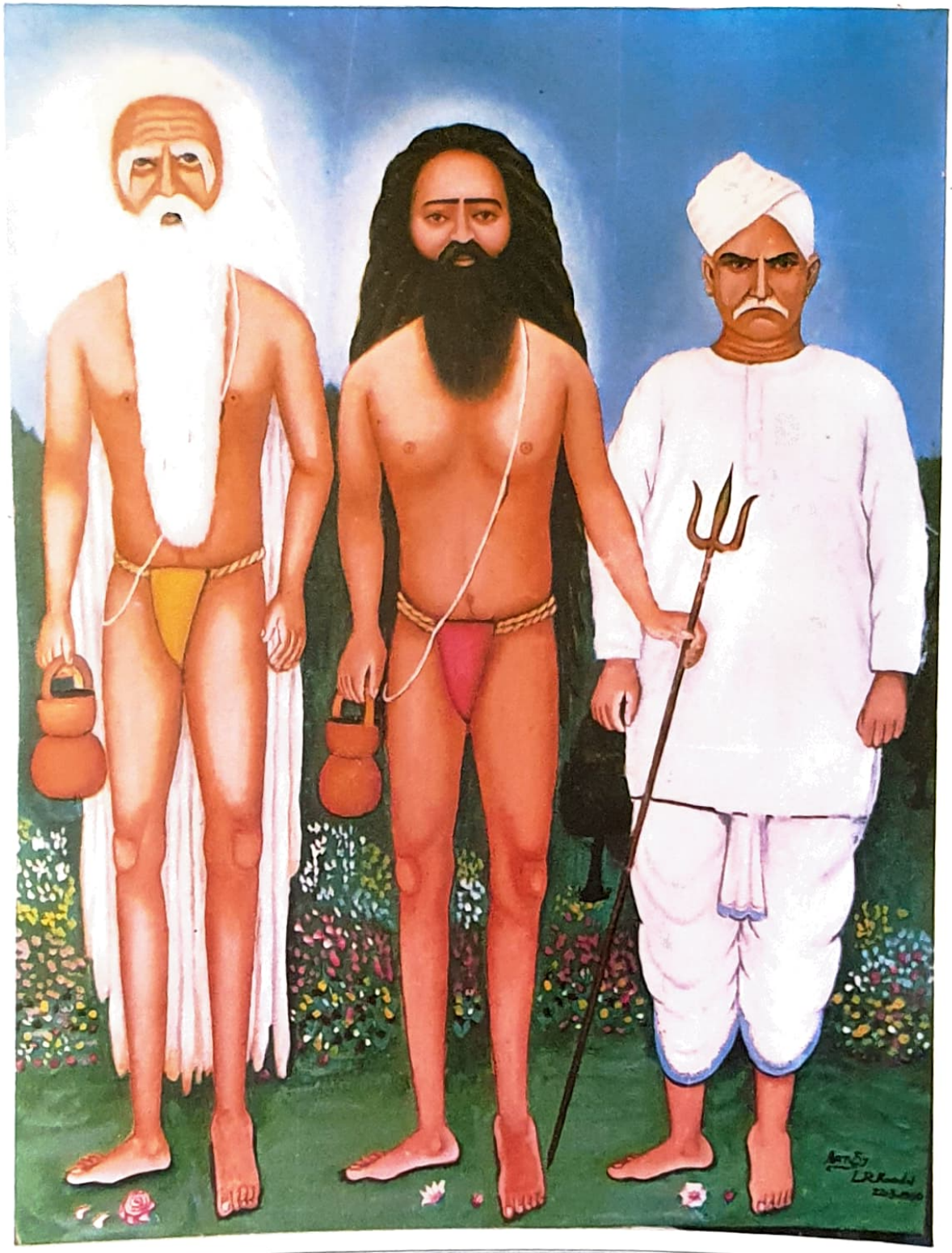

महाप्रभु, प्रभु राम जी,
और मुलखव जी राज ।
तीनों रूप ये दिव हैं,
भक्तन के सिरताज ।।

राम प्रभु ने जग को तारा, योग शिक्षा का कीन पसारा ।
आश्रम योग के दिव्य बनाये, शक्ति प्रभु की जहां मिल पाये ।
ऐसा सुन्दर बना विधान, आश्रम का जिमि कीन बखान ।
तन के साधन मन का योग, सीखें जहां जन बनें निरोग ।
अर्चन प्रभु का नित्य जहां होय, योग के आश्रम जानो सोय ।
कलि युग में सत युग के धाम, रचे हैं प्रभु ने दिव्य ललाम ।
सुमेरू पर्वत मुख्य स्थान, वहां से शक्ति आये महान ।
हर आश्रम में दिव्य संचार, ऐसी प्रभु की महिम अपार ।

दो० सुमेरू पर्वत से बहे, दिव्य धार इक योग ।
कण २ आश्रम का भया, दिव्य कहें सब लोग ॥ २०७८क

महा प्रभु प्रभु राम जी, और मुलख जी राज ।
तीनों मूरत दिव्य हैं, सकल करें ये काज ॥ २०७८ख

प्रभु की आज्ञा मान कर, सेवक कीन बखान ।
आश्रम प्रभु ने जिमि रचे, जिन से तरे जहान ॥ २०७८ग

आज संपूर्ण जब भया, यह रामायण काण्ड ।
मुलख राज भगवान ने, दीने दर्शन आन ॥ २०७८घ

श्रवण किया इस ग्रंथ को, प्रसन्न भये भगवान ।
आशिष फिर वे दे गये, कर किरपा का दान ॥ २०७८ङ

†बीस्सौ पैंतीस विक्रमी, कार्तिक मास अठाई ।
चन्द्र वासर के दिवस, इति श्री यह करवाई ॥ २०७८च

—: इति :—

'सेवक' चमन लाल कृत श्री योग महादिव्य रामायण का आश्रम काण्ड सम्पूर्ण ॥

†२८ कार्तिक सोमवार २०३५ विक्रमी संवत तदानुसार १३ नवम्बर १९७८

❖ योग साधन आश्रम होश्यारपुर के कुछ प्रकाशन ❖

1. श्री योग महादिव्य रामायण – सात खण्डों में
2. योगी सद्गुरु माहात्म्य
3. योग दिव्य जीवन बोध (योगेश्वर श्री 1008 स्वामी मुलख राज जी महाराज का जीवन चरित्र) द्वादश मासा और सद्गुरू स्तोत्र सहित
4. जीवन परिचय (योगेश्वर श्री 1008 प्रभु राम लाल जी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र) संपूर्णयोग विवरण और योग पुष्पांजली सहित
5. योग के आसन और प्राणायाम
6. योग के आसन और मुद्रायें
7. योग पुष्पांजली
8. नित्य कर्म
9. योग द्वारा कब्ज का उपचार
10. गाँधी योग
11. योग मार्ग
12. **Yogic cure of Catarrh, Cold & Allied Diseases**
13. **What is Yoga Part-1 (Shat Karma)**
14. **Yoga Asanas, Jivan Tattva and Yauvan Tattva**
15. **Yoga & Education**
16. **Yoga Teaching in India & Abroad**
17. **Divine Tales (Part-I & Part-II)**

पुर्न मुद्रित – भारती इन्टरनेशनल, 352, इन्डस्ट्रियल एरिया, फेस – 2 चण्डीगढ़ । दूरभाष :– 641308, 641374